श्रीश्री सद्‌गुरु संग

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

(तृतीय भाग)

श्रीश्री सद्‌गुरु संग

(तृतीय भाग)

{अभिमान से दुर्दशा, आदेश पालन में असमर्थता, मेरी संकीर्णता, कौशल का दान: अनुताप, योग-संकट, स्वप्न– क्रोध से पतन, परिवेषण में विषमता, गुरुवाक्य के ऊपर विचार-बुद्धि, आत्म-दर्शन, मेरी परमायु, विवाह का प्रलोभन, पुरुषकार में भरोसा, शालग्राम पर आकर्षण, धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि, गुरु-शिष्य में देवासुर संग्राम, श्रीधर के साथ झगड़ा, भिक्षा में विपत्ति की आशंका}

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

अनुवादक– अविनाश ब्रह्मचारी

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, रघुनाथपुर
जिला: पुरुलिया (प॰ बं॰)
पिन: 723 133

प्रकाशक

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, रघुनाथपुर
जिला: पुरुलिया (प॰ बं॰)
पिन: 723 133

Website : www.gosaiji.com
Email : info@gosaiji.com

प्रथम संस्करण (तृतीय भाग)
झूलन (राखी) पूर्णिमा
26 अगस्त, सन् 2018 ई॰

सहयोग राशि
नर-नारायण सेवार्थ :– Rs॰ 150.00

मुद्रक
एस॰ जी॰ प्रिन्ट एन पैक इण्डस्ट्रीज
सी/13, 4th– फेस, इण्डस्ट्रीयल एरिया
गमहरिया– झारखण्ड

'श्रीश्री गुरुदेवाय नमः'

अनुवादक की ओर से दो शब्द

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी की बंगला भाषा में 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' नामक ग्रन्थ रूपी उपलब्ध दैनिक डायरी (सन् 1886–94 ई॰) के विवरण के हिन्दी अनुवाद को चार भागों में विभाजित किया गया है। इसका प्रथम एवं द्वितीय भाग 14 नवम्बर, सन् 2016 ई॰ में प्रकाशित हो चुका है। अब इसका तृतीय एवं चतुर्थ भाग प्रकाशित किया गया है।

प्रथम एवं द्वितीय भाग में श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी की दीक्षा, साधना, त्राटक साधना, कुम्भक, अनुभूति, ज्योति-दर्शन, लोकनाथ ब्रह्मचारीजी का संग, साधु-संग, चक्र-शक्ति की अनुभूति, वृन्दावन-यात्रा, ब्रह्मचर्य-दीक्षा, ब्रह्मचर्य की अद्‌भुत अवस्था, प्रलोभन में अविकार, अहंकार से पतन, मातृ-सेवा से कल्याण, गुरुकृपा का निदर्शन, प्रकृति-पूजा से दुर्दशा, होम की उपकारिता, रुद्राक्ष-धारण, नीलकण्ठ वेश, ऊर्ध्वरेता की प्रणाली, आहार सम्बन्धी अनुशासन, वीर्यधारण की आवश्यकता इत्यादि के वर्णन के साथ-साथ श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के ब्रह्म-समाज-विरोधी कार्य का प्रतिवाद, प्रार्थना के प्रकार के सम्बन्ध में उपदेश, दरभंगा में प्राण-संकट पीड़ा, व्याधि से अद्‌भुत रूप से मुक्ति, धर्म और नीति के सम्बन्ध में उपदेश, माता ठाकुरानी के साथ कलह, कैलाश-यात्रा का विवरण, विविध साधना– परमहंसजी से दीक्षा, जाति-भेद के सम्बन्ध में उपदेश, काशीधाम में वास, काठिया बाबा से प्रथम साक्षात्कार, विधि-मार्ग और चंचलता के सम्बन्ध में उपदेश, ब्रह्मचर्य और संन्यास का प्रसंग, सत्यनिष्ठा का उपदेश, सत्संग के विषय में उपदेश, गुरु-शिष्य सम्बन्ध के विषय में प्रश्नोत्तर, जन्म-विवरण इत्यादि का वर्णन है।

इस ग्रन्थ में श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के पूर्वजन्म की स्मृति, पारलौकिक अवस्था की बातें एवं कुलगुरु, ग्रन्थगुरु, स्त्रीगुरु, सिद्धगुरु और सद्‌गुरु के सम्बन्ध में विविध प्रश्नोत्तर; फिर साधक के लिए संयम, स्त्री-संग का त्याग और वीर्यधारण का उपाय एवं उपकारिता, तीर्थ की प्रयोजनीयता, चिमटा, कमण्डलु, त्रिशूल रखने का अधिकार के सम्बन्ध में उपदेश; फिर आत्म-दर्शन, छाया-दर्शन, ज्योति-दर्शन, गुरुनिष्ठा, धर्म-प्राप्ति के सहज उपाय, दीक्षा ग्रहण के पूर्व कर्त्तव्य, श्वास-प्रश्वास में साधन तत्त्व जैसे अनेक विषय वर्णित हैं। ये समस्त प्रसंग जनवरी, 1892 ई॰ से मई, 1893 ई॰ की डायरी के अन्तर्गत हैं। भक्त एवं साधक पाठकगण इसे पढ़कर अवश्य कृतार्थ होंगे।

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी का संक्षिप्त परिचय

भारत के पूर्वी बंगाल में अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ है। धर्म-साधना में जो लोग चिरस्मरणीय हुए हैं, उनमें श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी अन्यतम हैं। इनके पिता श्री कमलाकान्त बन्द्योपाध्याय बड़े निष्ठावान् ब्राह्मण एवं सज्जन व्यक्ति थे और माता पुण्यशीला हरसुन्दरी देवी भी बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। धर्मनिष्ठ माता-पिता की कनिष्ठ सन्तान कुलदाकान्त का जन्म 10 नवम्बर, 1867 ई॰, रविवार को बैकुण्ठ चतुर्दशी (प्रदोष) के दिन हुआ। इनके देवतुल्य भाइयों ने भी श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की कृपा प्राप्त की थी। प्रसिद्ध नेत्री सराजनी नायडू इनकी बड़ी बहिन के पति मथुरानाथ चट्टोपाध्याय की भतीजी थीं।

16 दिसम्बर, सन् 1886 ई॰ को श्रीश्री गोस्वामीजी से दीक्षा प्राप्त करने के बाद 27 जुलाई, 1890 ई॰ को गोस्वामीजी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर कुलदाकान्त के साधन-जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ। तब इनका नाम कुलदानन्द हुआ। छः वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने के बाद गोस्वामीजी ने इनको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए कहा। इस प्रकार गुरुकृपा से कठोर साधना द्वारा ये धीरे-धीरे सिद्धि के पथ पर अग्रसर होने लगे। पूरी में, गोस्वामीजी के अन्तिम दिनों में जब ये गुरुदेव की अविश्रान्त सेवा करते थे, तब एक दिन गोस्वामीजी ने स्नेहपूर्वक इनसे कहा– **"जिस प्रकार अपने को सेवा में लगा रहे हो, यह व्यर्थ नहीं होगा; जीवन सार्थक होगा। गुरुशक्ति अदृश्य रूप से तुम्हारे भीतर संचारित हो रही है। जीवन मधुमय हो जाएगा। हजारों नर-नारी तुम्हारी सेवा के लिए व्याकुल होंगे।"** कुलदानन्दजी उनके श्रीचरणों में गिर पड़े। तब गोस्वामीजी ने इनके मस्तक पर हाथ रखकर कहा– **"मेरा कुछ ऐसा कार्य है जो इस शरीर में रहते हुए नहीं हो सकता। यथासमय वह कार्य आरम्भ होगा।"**

14 जुलाई, सन् 1904 ई॰ ब्रह्मचारीजी के सद्‌गुरु जीवन का विशेष स्मरणीय दिन था। इस दिन श्यामपुर के अनेक नर-नारियों ने इनसे दीक्षा ली। यह इनका सद्‌गुरु रूप में प्रथम परिपूर्ण आत्मप्रकाश था। इसके बाद सहस्र-सहस्र लोगों ने इनका शिष्यत्व प्राप्त किया एवं इनके अनेक योगैश्वर भी प्रकट हुए।

26 जून, सन् 1930 ई॰ अमावस्या को इन्होंने अपने इष्टदेव को हाथ जोड़कर प्रणाम करके प्रातः 9 बजकर 22 मिनट पर 63 वर्ष की आयु में मर्त्यलीला समाप्त करके दिव्यधाम में महाप्रस्थान किया। पुरीधाम में श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी (जटियाबाबा) के समाधि-मन्दिर के सामने इनके प्रतिष्ठित आश्रम में ही इनकी देह को समाधिस्थ किया गया।

—: सूची पत्र :—

तृतीय भाग

जनवरी, सन् 1892 ई॰

- ठाकुर के सम्बन्ध में नगेन्द्र बाबू की बातें ... 1
- ठाकुर की ढाका यात्रा : गुरुभाइयों की अवस्था ... 1
- पद्मा नदी की जलवायु : साहब का परिहास ... 2
- श्री योगजीवन गोस्वामी की पत्नी बसन्तकुमारी का देहत्याग ... 3
- योगजीवन की पत्नी का श्राद्ध और पारलौकिक अवस्था : प्रश्नोत्तर ... 5
- आश्रम में अशान्ति ... 6
- ठाकुर की दिनचर्या ... 9
- ठाकुर की हँसी और झगड़े की निवृत्ति ... 10
- श्रीधर के वैराग्य से बडा उत्पात : ठाकुर का उपदेश ... 11
- स्वप्न में फकीरों के दर्शन ... 14

फरवरी, सन् 1892 ई॰

- गुरुभाइयों के प्रति अश्रद्धा : ठाकुर का उपदेश ... 15
- अभिमान से दुर्दशा : ठाकुर का अनुशासन ... 16
- प्रसाद का गुण और उसमें अविश्वास ... 18
- गेण्डारिया के सिद्ध फकीरों की आश्चर्यजनक कथा ... 20
- रमना के बूढ़े शिव की कृपा : ठाकुर की पूर्वजन्म-स्मृति की बातें ... 22
- आदेश पालन में असमर्थता : ठाकुर की सहानुभूति और उपदेश ... 24
- साधु के प्रति अनादर और उत्पीड़न से संकट ... 27
- स्वप्न — कर्म का उपदेश ... 28
- स्वप्न — प्रलय का दृश्य ... 29

मार्च, सन् 1892 ई॰

- स्वप्न — ठाकुर का देहत्याग का प्रयास ... 30
- कृपणता में अनुशासन : कमरे का वसीयतनामा किसके नाम करोगे ... 31
- मेरी संकीर्णता : ठाकुर का उपदेश और भिक्षा की व्यवस्था ... 32
- प्रथम भिक्षा ठाकुर के हाथ से : यह कैसा चमत्कार है! ... 34
- सेवा-भक्ति से विग्रह जागृत हो जाते हैं ... 35
- कौशलपूर्ण दान : अनुताप ... 37
- दुर्दिन में ठाकुर की कृपादृष्टि ... 38

- अविश्वास: साधना में अभिमान – अनुशासन ... 41
- परिवेषण में त्रुटि: तीर्थ-भ्रमण का नियम ... 42
- योग-संकट ... 43

अप्रैल, सन् 1892 ई॰

- प्रकृति के दोष का वृद्धावस्था में प्रस्फुरण: उपदेश ... 46
- वर्षा के समय तर्पण: ठाकुर की कृपा ... 48
- साधकों का मादक द्रव्य लेना: गाँजे के धुएँ में दशमहाविद्या ... 49
- दया और सहानुभूति के सामने साधारण नीति टिकती नहीं ... 51
- वापण्डित और ठाकुर ... 52
- ठाकुर का स्वप्न: साधु पर विश्वास ... 53
- महापुरुष की चमारी-वृत्ति ... 55
- कुलगुरु, ग्रन्थगुरु, स्त्रीगुरु, सिद्धगुरु एवं सद्गुरु के सम्वन्ध में विविध प्रश्नोत्तर ... 57
- साधना की चेष्टा ही उन्नति की सीढ़ी है: निराशा में आश्वासन ... 61
- रूप की शोभा नष्ट होने से साधना में विरक्ति ... 63
- साधक के लिए पहले संयम: स्त्री-संग का त्याग और वीर्यधारण ... 65
- माँ एवं गुरु – बड़ी समस्या: ठाकुर की तृप्ति ... 66
- लोभवश प्रसाद खाना: ज्वाला और प्रायश्चित्त ... 67
- लोभ-संयम के उपाय: रिपु दो हैं – जिह्वा और उपस्थ ... 67
- तीर्थ-भ्रमण से संयम ... 68
- कर्त्तव्य पालन से वैराग्य प्राप्ति: प्रलोभन से बचने का उपाय ... 69
- संकल्प सिद्धि का उपाय: सत्य का पालन और वीर्यधारण ... 70
- स्वस्थ रहने का उपाय: विभिन्न माला-धारण की उपयोगिता: रुद्राक्ष धारण करने का आदेश ... 72
- स्वप्न - क्रोध से पतन ... 73
- दीक्षाकालीन उपदेश: परमहंसजी का आदेश ... 73
- परिवेषण में विषमता: ठाकुर की विरक्ति ... 75
- काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वारस्वरूप हैं ... 76

मई-जून, सन् 1892 ई॰

- इष्ट-मन्त्र गुरु से भी नहीं कहते ... 77
- ठाकुर की असाधारण अनुभूति ... 78
- माँ के ऊपर विरक्ति: उनका प्रसाद खाने हेतु ठाकुर का आदेश ... 79

- सद्‌गुरु का आश्रय लेना ही सम्पूर्ण निरापद् ... 79
- सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह ही साधना है ... 80
- चन्द्रग्रहण : नाम-संकीर्तन में भाव की कपटता : ठाकुर का दण्ड ... 81
- नदी में तूफानः भाग्य से रक्षा ... 82
- घर में उपस्थिति : माँ का आशीर्वाद ... 83
- कृपा करके ठाकुर का घृत-पान ... 85
- धर्म-ग्रन्थ पाठ की प्रणाली ... 85
- तुम्हारा काम तुम करो : हिंसा अनिवार्य है ... 86
- आग्रहपूर्वक अतिथि-सेवा से ठाकुर की कृपा-वृष्टि ... 86
- संकीर्तन में प्रेमानन्द की प्रार्थना : भाव की बाढ़ — मेरी शुष्कता : जीवात्मा अनन्त उन्नतिशील : पाप-पुण्य केवल संस्कार हैं : साधना से संस्कार की मुक्ति ... 87
- अरे नहीं! दूर हो गया है ... 90
- संकीर्तन से भारती जी का चैतन्य होना ... 91
- आकाश-वृत्ति संरक्षण हेतु ठाकुर का आदेश : गुरुभाइयों की अशिष्ट-चर्चा : ठाकुर का एक साथ में भोजन ... 91
- भोजन के दर्शन में देवी-देवताओं का आनन्द ... 92
- हमारा लक्ष्य ... 92
- साधना में मेरी चेष्टा और निष्फलता ... 93
- जिह्वा की लालसा से असह्य यन्त्रणा ... 94
- गुरुवाक्य के ऊपर विचार-बुद्धि ... 95
- गायत्री का माहात्म्य : ठाकुर का दुर्दैव — आसन ही निरापद् ... 96
- ठाकुर के वैषम्य भाव की कल्पना से पण्डित जी का आश्रम त्याग ... 97
- साधना करो : गुरु पर निर्भरता बहुत दूर की बात है ... 98
- ठाकुर के देहत्याग के बाद किस प्रकार चलूँगा : विविध प्रश्न और उपदेश ... 99
- ब्रह्मचर्य की सफलता कब समझूँगा : तीर्थ-प्रयोजन कब तक : ठाकुर के देहान्त के बाद किस प्रकार चलने से उनके दर्शन मिलेंगे ... 101
- मेरे पाप से ठाकुर के पीठ पर बेत का प्रहार ... 103
- शिष्य को अभय-दान : तुम्हारे बदले मैं भोगूँगा ... 104
- आँधी-पानी में आसन स्थिर ... 105
- ठाकुर के भजन-स्थल, आम के वृक्ष से मधु-क्षरण ... 106
- कु-स्वप्न : उसका कारण ... 108

- ठाकुर के श्रीअंग से कमल की सुगन्ध और मधु-क्षरण ... 108
- स्वप्नदोष का कारण : उपदेश ... 110
- आत्म-दर्शन : छाया-दर्शन : ज्योति-दर्शन ... 111
- अवस्था प्राप्ति अथवा ठाकुर की सेवा ग्रहण — एक ही बात है ... 112
- स्वप्न में गुरुरूप में आदेश भी असत्य हो जाता है ... 113
- बर्रे का काटना : हिंसाजनित अपराध का खण्डन : दो हिंसा का स्मरण : किसी के मन में आघात देना भी हिंसा है ... 114
- आवरण में रहकर ठाकुर की कृपा : प्रत्यक्ष अनुभूति : दैनिक पाप-खण्डन के लिए पंचसूना का उपदेश ... 116

जुलाई, सन् 1892 ई॰

- ठाकुर की दिनचर्या : दुर्दैव का खण्डन : कुतु द्वारा आरती : संकीर्तन ... 117
- साधन की अवस्था : प्रत्यक्ष अनुभूति : अपनी उन्नति न देखना अकृतज्ञता है ... 118

अगस्त, सन् 1892 ई॰

- ठाकुर की जटा उखाड़ने की चेष्टा : न्यास माँगने पर नस्य देना : विचित्र घटना : 24 तत्त्वों के न्यास का आदेश ... 120
- प्रणाम की विधि और निषेध ... 122
- स्वप्न — संसार रूपी शिशु को दूर फेंकना होगा ... 123
- महापुरुषों का कल्पनातीत भयंकर भोग ... 124
- तृतीय वर्ष में चार वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य प्रदान : छः वर्ष में ही पूर्ण होगा ... 125
- माता ठाकुरानी का झूलन-उत्सव : चण्डी-पाठ से पूजा ... 128
- आम के पेड़ का अभियोग : देह में कील ठोक दी ... 128
- भोजन के आरम्भ में ठाकुर का हस्त प्रसारण : मुझे एक ग्रास दो ... 129
- मेरी परमायु : स्पष्ट दर्शन ... 130
- ठाकुर की जटा ठीक करना : प्राण-धारण हेतु जीव हिंसा अनिवार्य ... 130
- हुक्का तोड़ना — तम्बाखू-त्याग : ठाकुर का तम्बाखू-सेवन ... 131
- पूर्वजन्म में निष्फल ब्रह्मचर्य : ठाकुर का सारभूत उपदेश : साधन-भजन जागृत रहने के लिए : कृपा ही सार है ... 132
- न्यास की उपकारिता : अनुभूति से परमानन्द ... 134

- मनसा पूजा : इष्ट मन्त्र से 33 करोड़ देवी-देवताओं की पूजा होती है ... 134
- ठाकुर का अभिमानपूर्ण कथन– जनेऊ नहीं है? सूक्ष्म शरीर में महापुरुष का कार्य ... 135
- ठाकुर के मुख से छोटे भैया की बातें : पिता का स्वभाव : तान्त्रिक साधना बहुत कठिन है ... 138
- हठकारिता से रोग में वृद्धि : दुग्धपान की व्यवस्था ... 139
- उच्छिष्ट बटलोई किसने माँजी ... 140
- इच्छा मात्र से वस्तु की प्राप्तिः अविश्वासी मन ... 140
- बिहारीलालजी के विग्रह को प्रसाद के लिए कहना ... 141
- 'हाँ! तुम्हारी भी लीला नित्य है' : तपस्या का उपदेश : श्याम भाषा ... 141
- विवाह का प्रलोभन : सावधान, प्रार्थना करते ही वह मंजूर होगी ... 144
- भैया के पास जाने हेतु अचानक बेचैनी : ठाकुर का आदेश ... 146
- गुरु की यह देह अनित्य है : छाया से काया मिल जाती है ... 147
- ठाकुर के समस्त आदेश कल्याणकारी : व्यर्थ प्रश्न से विपत्ति ... 148

सितम्बर, सन् 1892 ई॰

- पद्मा नदी की भीषणता : रास्ते में ठाकुर की कृपा ... 150
- बड़ी अद्भुत अनुभूति एवं नाम के प्रति आकर्षण : वियोग में ही निरन्तर सान्निध्य ... 151
- पुरुषकार में भरोसा : कृपा का दान अग्राह्य करने का परिणाम ... 152
- श्रद्धा का भिक्षान्न अमृत है : खिचड़ी में नारियल के टुकड़े ... 152
- प्रेत की करुण पुकार : फकीर का वाहन : अद्भुत वृक्ष : अँग्रेज साहब द्वारा प्रतिष्ठित काली की मूर्ति ... 153
- कुसमय में यात्रा का दुर्भोग : पग-पग पर ठाकुर की कृपा : परवर्ती आदेश ही बलवान है ... 154
- भैया का पाँच पैसा घूस लेने वाला स्वप्न सत्य : प्रायश्चित्त ... 155
- महात्मा गोविन्ददासजी का आश्चर्यजनक कार्य : दूसरे का भयंकर भोग ग्रहण करना ... 156
- अलौकिक आरती की सुगन्ध ... 158

अक्टूबर, सन् 1892 ई॰

- भिक्षा करने के लिए भैया की अनुमति ... 158
- सद्ब्राह्मण के हाथ से प्रथम भिक्षा ... 159
- भिक्षा में फटकार और विशेष सम्मान ... 159

- भ्रमण के समय साधना में एकाग्रता ... 160
- बाहरी शक्ति का अनुभव: प्रेत का उपद्रव ... 160
- बस्ती से प्रस्थान: अयोध्या में – 'हे राम!' उदास भाव ... 162
- काशी में पण्डों का उपद्रव:
ठाकुर के शासन-वाक्य का स्मरण : ताराकान्त भैया का घर ... 163
- पूर्णानन्द स्वामी: केदारेश्वर का दर्शन
साधु का आदेश – 'चले जाइए भागलपुर' ... 164
- दानापुर में मुझे गिरफ्तार करने का प्रयास ... 165
- पुनः उसी प्रेत की करुण पुकार:
प्रत्यक्षता पर भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता ... 166
- यथार्थ संवेदनशील सेवा:
पाठ रोककर ठाकुर का हवा करना ... 167
- नाम का अर्थ है– रूप: नाम-जप से उज्ज्वल कृष्ण-ज्योति ... 168
- जह्नु मुनि का आश्रम: फकीर का दर्शन ... 169

नवम्बर, सन् 1892 ई॰

- मनोरमा की अद्‌भुत गुरुनिष्ठा ... 170
- आभिचारिक क्रिया के कष्ट से मुक्ति के लिए
शान्ति-होम का संकल्प ... 172
- सर्वसंकट निवारण हेतु हवन: अपराधी का हृदय कम्पन ... 173
- हवन का परिणाम सार्थक: अपराधी की अद्‌भुत मृत्यु ... 174
- ठाकुर के पास उपस्थिति ... 174
- आत्मरक्षा का प्रयास – उस मृत्यु से तुम्हारा क्या दोष?
संकेत से बात स्पष्ट समझ आना ... 175
- ठाकुर के मस्तक पर सर्प का फन:
विषधर का अमृत-दान: सर्प पर दादी का शासन ... 176

दिसम्बर, सन् 1892 ई॰

- कोई गुरुनिष्ठा नष्ट करे, तो प्रतिकार करना उचित है ... 178
- श्रीधर की गुरुनिष्ठा – अलौकिक काण्ड:
ब्रह्मचारी पर शासन: कुत्ते की उलटी खाना ... 180
- ब्रह्मदैत्य द्वारा माला की चोरी:
आँगन में माला का मिलना – बड़ा आश्चर्यजनक ... 181
- स्वप्न – ठाकुर की गोद में नीला कौआ:
शक्ति-संचार की अवस्था: पैर छूने से देह अमृतमय ... 182
- दादीजी की सेवा ... 184
- नानीजी के साथ दादीमाँ का अद्‌भुत झगड़ा:
तुरन्त ही प्रेम ... 186

- नीलकण्ठ वेश की मर्यादा ... 186
- विविध चक्र-दर्शन : उसमें ज्योतिर्मय त्रिभंग की आकृति : शालग्राम-पूजा का आदेश ... 187
- तापने के लिए धूनी नहीं है : धूनी बुझाना ... 189
- धूनी का साधन बहुत ही श्रेष्ठ है : चिमटा, कमण्डलु, त्रिशूल रखने का अधिकार ... 190
- स्वप्न – ठाकुर की कटी हुई जटा को लेकर क्रन्दन ... 191
- ग्वालिनी का छाछ प्रदान : आकांक्षा पूर्ण होने से ही तो सर्वनाश ... 191
- मानस पूजा – ठाकुर की सहानुभूति : ठाकुर का खेल : उपदेश – अर्थ में अनर्थ : खीष्ट और कृष्ण एक हैं ... 192
- सेवा के अभिमान से नरक भोग ... 193
- ठाकुर साक्षात् सदाशिव : सर्वांग में भस्म लगाना : धूनी की विभूति का अद्भुत गुण : सूक्ष्म रूप के दर्शन का उपाय ... 195
- गुरु-सेवा में विघ्न : गुरुभाइयों के साथ झगड़ा ... 197
- शालग्राम के प्रति आकर्षण ... 198
- ठाकुर की पूजा : पाना चाहते हो या देना चाहते हो? ... 199
- भोग के पहले प्रसाद : मँझले भैया के सम्बन्ध में ठाकुर की बातें ... 199
- अयाचित दान : कचौड़ी, अदरक, चने ... 200
- स्वप्न में शालग्राम और गोपाल की पूजा ... 201
- मनोमुखी होकर चलने का फल : गुरु के संग का प्रभाव ... 201

जनवरी, सन् 1893 ई०

- वीर्यधारण का उपाय और उपकारिता : ऊर्ध्वरेता होने का उपाय और फलाफल : नास्ति प्राणायामात् बलम् ... 202
- धर्म के रूप में मनोमुखी कुबुद्धि : उसका परिणाम ... 206
- धर्म बुद्धि से अधर्म में क्यों पड़ा : अब उपाय क्या है ... 207
- ठाकुर द्वारा अल्पवयस्क गुरुभाई नरेन्द्र के प्रश्नों के प्रत्युत्तर ... 209
- दादीमाँ का उलंग अवस्था में नृत्य : गोसाँईजी की प्रसन्नता ... 215
- श्रद्धा और गुरुकरण के विषय में प्रश्न : धर्म का बाधक ... 215
- शराबी के आनन्द में ठाकुर की प्रसन्नता ... 217
- भक्ति कैसे होती है : ज्ञान द्वारा क्या भगवान् को पा सकते हैं? ... 218
- माताजी के पोथी-पाठ का श्रोता मैं ... 219

- धर्म की आड में विपरीत बुद्धि : स्वप्न – भयंकर दुर्दशा ... 220
- स्वप्न में आदेश ... 221
- व्रत सम्पूर्ण : माँ के ऊपर ठाकुर की कृपा ... 222
- रामायण श्रवण से विविध संचारी भाव ... 223

फरवरी–मार्च, सन् 1893 ई॰

- भाभियों का गेण्डारिया जाना और दीक्षा : ठाकुर का उपदेश ... 224
- शालग्राम और धातु की बनी मूर्ति : महापुरुषों का विचरणकाल : उनकी कृपा प्राप्त करने का उपाय ... 227
- दीक्षा ग्रहण के पूर्व कर्त्तव्य ... 228
- ठाकुर का आदेश समझना कठिन : इस विषय में नाना प्रश्नोत्तर ... 228
- नृत्यगोपाल गोस्वामी द्वारा ठाकुर को परखना ... 230
- ठाकुर की चिट्ठी – दूर रहना ही अच्छा है ... 230
- भावुकता में ठाकुर की डाँट ... 231
- भगवान् के प्रति समर्पण : अचला भक्ति कैसे होती है ... 231
- धर्म-प्राप्ति का सहज उपाय – नित्यकर्म की व्यवस्था ... 233
- कुअभ्यास से विषमय परिणाम ... 233
- ठाकुर के आदेश के अनुसार कार्य क्यों नहीं होता? वे ही बनाते है, वे ही तोड़ते हैं ... 234
- गुरु के प्रति एकनिष्ठा अत्यन्त दुर्लभ है ... 235
- तीन वर्ष ब्रह्मचर्य की विशेष-विशेष नियमावली ... 236
- गुरु-शिष्य में देवासुर संग्राम : मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम् ... 238
- ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः – श्रीगुरु के ध्यान को कल्पना नहीं कहते ... 239
- दृष्टि-साधन, पंचभूत एवं ज्योति का सारूप्य : नाम-साधना ... 242
- ऐसा दिन नहीं रहेगा ... 244
- श्रीधर के साथ झगड़ा : भागवत में स्याही का दाग : पहाड़ पर जाने का आदेश ... 244
- स्वामी हरिमोहन के ऊपर कटाक्ष करने से ठाकुर की विरक्ति और अनुशासन ... 246
- स्याही के दाग में चण्डी पहाड़ – अद्भुत चित्र : ईश्वरीय विधान ... 247
- पहाड़ पर जाने के लिए माँ की अनुमति और आशीर्वाद ... 249
- मदनोत्सव में महाविष्णु का संकीर्तन – ठाकुर की प्रसन्नता : दीक्षा ... 249
- महाविष्णु वावू के साथ झगड़ा : संध्या करने हेतु ठाकुर का आदेश ... 251

- अभय-कवच की प्राप्ति : ठाकुर का आशीर्वाद — कोई डर नहीं ... 255
- ग्वालन्द में सिपाही की डाँट : कुली के डिपो में रोके रखना : ठाकुर की अद्‌भुत व्यवस्था ... 256
- तारकनाथ का दर्शन : संकट : आश्चर्यजनक रूप से गया पहुँचना ... 257
- गया में रहने की अच्छी व्यवस्था ... 258
- गया में आकाशगंगा पहाड़ : रघुबरदास बाबाजी : शेष-चक्र संग्रह ... 259
- निराश्रित मनोरंजन बाबू : फल्गु नदी में स्नान ... 261
- सूक्ष्म तत्त्व — अतीन्द्रिय ... 262
- बुद्ध-गया का दर्शन ... 262
- साधु के आक्रोश से भूत का उपद्रव ... 263
- ब्रजमोहन की अलौकिक रूप से दीक्षा ... 264
- बस्ती की यात्रा : भैया का अद्‌भुत दीन भाव ... 265
- बस्ती में आरोग्य ... 266
- शालग्राम की पूजा और त्रिसंध्या आरम्भ ... 266
- पुरातन के प्रति समादर ... 267
- श्वास-प्रश्वास में साधन तत्त्व ... 267

अप्रैल—मई, सन् 1893 ई॰

- बस्ती त्याग : नीरव अयोध्या में राम का नाम ... 274
- हनुमान-गढ़ी के दर्शन से ठाकुर का स्मरण : महापुरुष का दर्शन ... 275
- वेदान्ती के ऊपर शोक का संचार ... 276
- भगवान् का नाम जपना सहज नहीं है ... 276
- अयोध्या के आश्रम और मन्दिर : हिरण्यगर्भ-चक्र की प्राप्ति ... 277
- गुप्तारघाट में श्रीरामचन्द्र की अन्तःलीला के स्मरण से शोकावेश ... 278
- भयानक स्वप्न — माँ के प्रति अत्याचार ... 279
- हरिद्वार में हर-गौरी का अनुपम ज्योति-दर्शन ... 280
- जलदान का व्रत ... 280
- रामप्रकाश महन्त का आश्रय : मधुमक्खियों के उत्पात से रक्षा ... 281
- चण्डी पहाड़ गमन : गंगा का बन्धन ... 282
- तपस्या का स्थान निश्चित ... 283
- भजन-कुटी तैयार ... 285
- भिक्षा में विपत्ति की आशंका — महामाया का खेल ... 286

- स्थूल भिक्षा की आवश्यकता और आदेश ... 288
- तन्द्रावस्था में प्रसाद की प्राप्ति : ज्वर से मुक्ति ... 288
- हरिद्वार में नित्यकर्म ... 289
- मेरी प्रार्थना से ठाकुर का भयंकर भोग ... 290
- उच्छिष्ट मुख से भोजन देने से उच्छिष्ट ही देना हुआ ... 292
- साधना में योगमाया की कृपा ... 293
- नाम-जप और ध्यान में परमानन्द का उपभोग ... 294
- तीव्र तपस्या से साधन-भजन बन्द ... 294
- स्वाभाविक आहार करने से ठाकुर की कृपा ... 296
- मेरा दैनिक कर्म ... 297
- अकारण ज्वाला : नित्य-क्रिया से शान्ति ... 297
- दण्डी स्वामी से त्रिसंध्या का उपदेश ... 298
- वर्षा से भीगना : ठाकुर के ऊपर क्रोध ... 299
- ये क्या प्रलोभन है या ठाकुर की दया? ... 299
- मदिरापान करने वाले के पल्ले पड़ना : ज्योतिर्मय शालग्राम ... 300
- शालग्राम की चोरी ... 301

———————

क्रमशः

—: चित्र सूची :—

- भक्तावतार श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी
- सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी
- माता योगमाया देवी
- बुद्ध
- नानक
- ब्रह्मकुण्ड (हरिद्वार)
- दामपाड़ आश्रम
- सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी
- श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

———————

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

हिन्दी ग्रन्थ :–

1. साधना पथ	- Rs. 20
2. श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत	- Rs. 75
3. सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग	- Rs. 75
4. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (प्रथम खण्ड)	- Rs. 125
5. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (द्वितीय खण्ड)	- Rs. 130
6. प्रश्नोत्तर एवं प्रवचन	- Rs. 25
7. श्रद्धांजलि (भजन संग्रह)	- Rs. 40
8. श्रीश्री सद्गुरु संग (प्रथम भाग) – कुल चार भागों में	- Rs. 150
9. श्रीश्री सद्गुरु संग (द्वितीय भाग) –	- Rs. 150

अँग्रजी ग्रन्थ :–

1. Life of Swami Asimananda Saraswati and our Memoirs	- Rs. 130
2. Sadhana Path (Path of Spiritual Practice) With Goswamiji's Lectures	- Rs. 60
3. Shri Shri Sadguru Sanga (in the Company of Sadguru) Part- I	- Rs. 200
4. Shri Shri Sadguru Sanga Part- II	- Rs. 250
5. Shri Shri Vijaykrishna Parijan Part- I	- In Press
6. Shri Shri Vijaykrishna Parijan Part- II	- In Press

बंगला ग्रन्थ :–

1. साधना पथ	- Rs. 20
2. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (प्रथम खण्ड)	- Rs. 55
3. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (द्वितीय खण्ड)	- Rs. 55
4. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (तृतीय खण्ड)	- Rs. 80
5. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (चतुर्थ खण्ड)	- Rs. 40
6. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (पंचम खण्ड)	- Rs. 40
7. स्मृति कुसुमांजलि	- Rs. 55
8. सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग	- Rs. 75

कन्नड ग्रन्थ :–

1. Shri Shri Vijaykrishna Kathamrita	- Rs. 100

2. Life of Swami Asimananda Saraswati and our Memoirs	- Rs. 130
3. Shri Shri Sadguru Sanga Part- I	- Rs. 400
4. Shri Shri Sadguru Sanga Part- II	- Rs. 400

गुजराती :–

1. श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत	- Rs. 130

ई-बुक :–

श्रीश्री सद्‌गुरु संग (श्रीवृन्दावन लीला)	- gosaiji.com

उपलब्ध अन्य ग्रन्थ

हिन्दी :–

1. माँ-मणि (जीवन-दर्शन एवं लीला अनुभूतियाँ)	- Rs. 100
2. माँ-मणि (द्वितीय खण्ड)	- Rs. 80
3. महापातकी के जीवन में सद्‌गुरु की लीला	- Rs. 75
4. श्रीश्री विजयकृष्ण वचनामृत (गुरु-शिष्य संवाद सहित)	- Rs. 100

गुजराती :–

सद्‌गुरु सानिध्यां (श्रीश्री सद्‌गुरु संग)

1. प्रथम खण्ड	- Rs. 160
2. द्वितीय खण्ड	- Rs. 200

–: ग्रन्थ प्राप्ति स्थल :–

1. श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, रघुनाथपुर, जिला : पुरुलिया– 723 133
फोन : 08016113131, 09432051887, 09932607101

2. खण्डेलवाल एण्ड सन्स
आठखम्बा बाजार, वृन्दावन– 281 121
फोन : 0565 – 2443-101, 2442-100

3. सुशील कुमार ताम्बी
'प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक केन्द्र'
ए–3, आर्यनगर (Near N. K. Public School)
मुरलीपुरा, जयपुर– 302 023
फोन : 0141 – 2233-765, 0982954773

4. इंडिका बुक्स
डी– 40/18, गोदलिया, वाराणासी– 221 001
फोन : 0542–2450-818, 09415697008
Website : www.indicabooks.com
Email : indicabooksindia@gmail.com

5. श्री प्रकाश सिंघानिया, कोलकाता
फोन : 033–6519-7523, 2498-7997, 09163360695

6. श्री संजय कुमार सिंघानिया, रायपुर (छत्तीसगढ़)
फोन : 09753357747

7. श्री मनीष व्यास, रायपुर (छत्तीसगढ़)
फोन : 0771–2423-627, 09827972127

8. श्री नवीन कुमार क्याल, नई दिल्ली– 110 019
फोन : 011–4610-9101, 09311177771

9. श्री अभिषेक पोद्दार, बैंगलोर– 560 102
फोन : 09880777130

10. श्री रामगोपाल अग्रवाल, मैंगलोर– 575 003
फोन : 09448131755

11. श्री रामअवतार शर्मा, जयपुर– 302 021
फोन : 0914522108, 09820166899

12. श्री सुशील अग्रवाल, जमशेदपुर– 831 006
फोन: 0657–2291577, 6560539

13. www.gosaiji.com

भक्तावतार श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।

— विष्णुपुराण

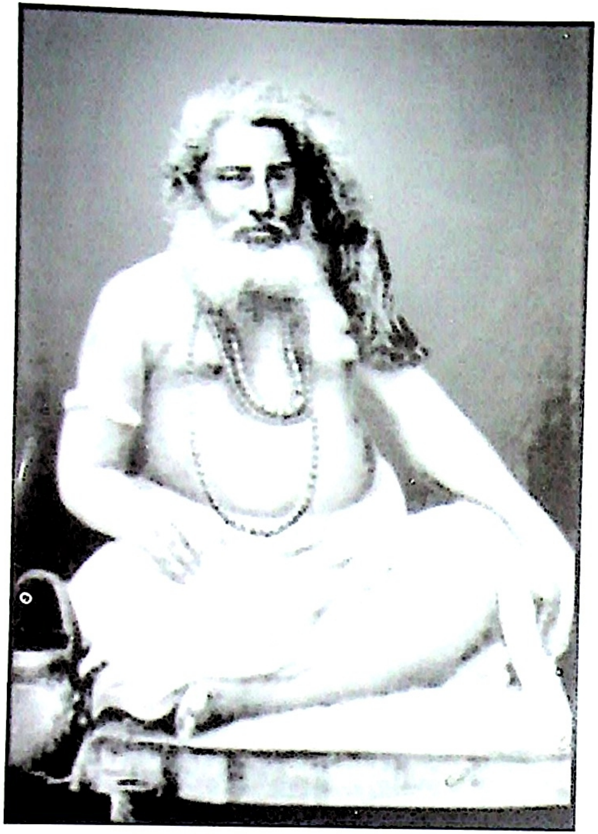

सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

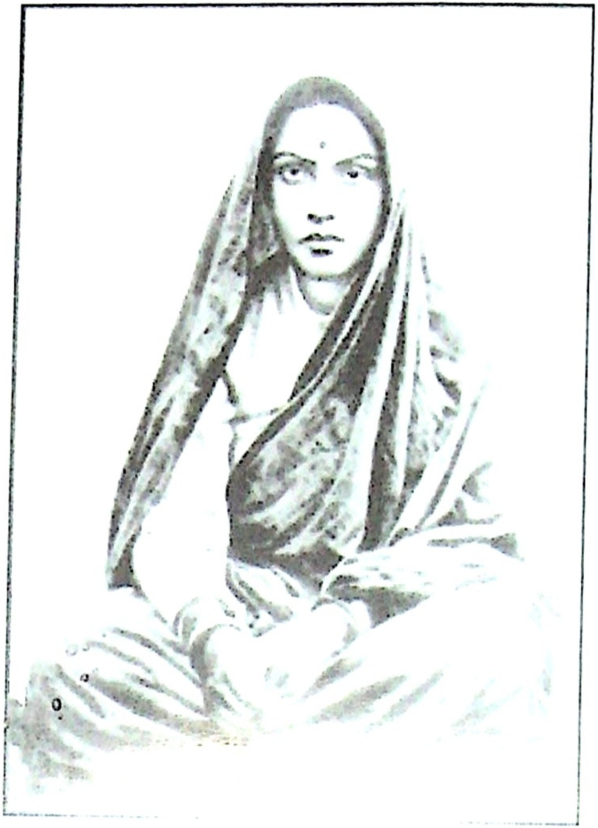

श्रीश्री [illegible]

(गोस्वा[illegible] सहधर्मिणी)

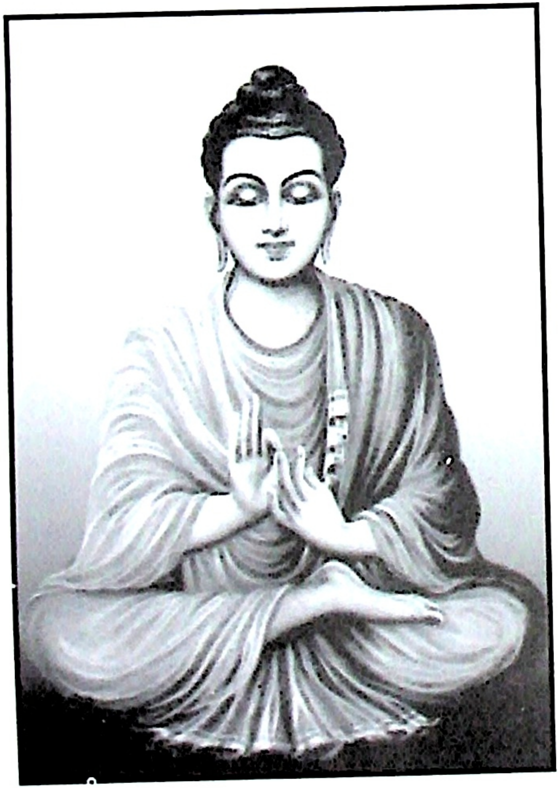

बुद्ध

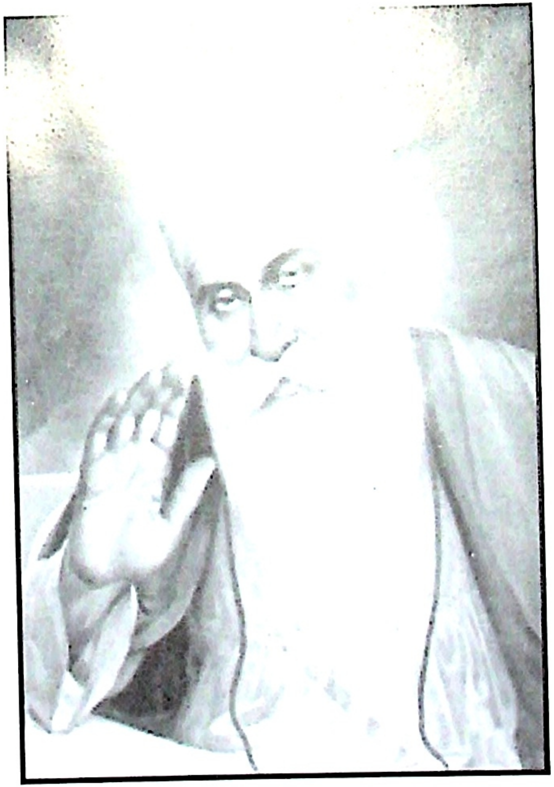

नानक

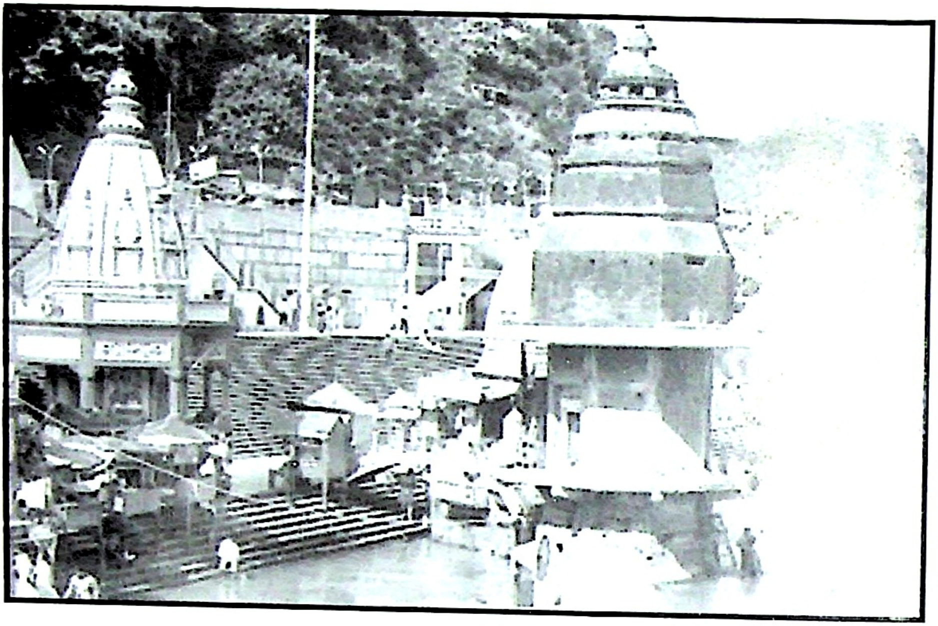

ब्रह्मकुण्ड (हरिद्वार)

दामपाड़ आश्रम

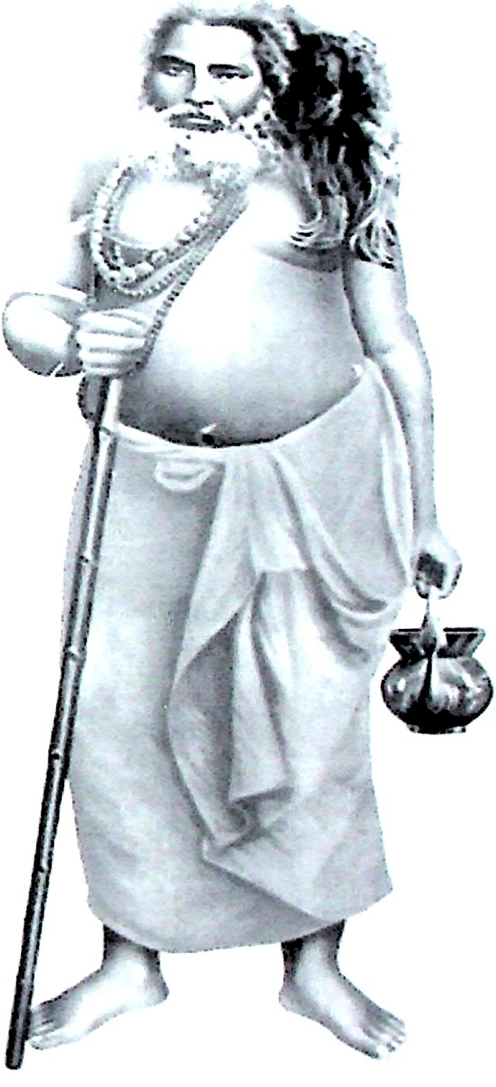

सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदर शरीरिणे।
कमण्डलु निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।

— महाभारत (शान्तिपर्व)

।श्रीश्री गुरुदेवाय नमः।

श्रीश्री सद्गुरु संग

तृतीय भाग

जनवरी, सन् 1892 ई॰

ठाकुर के सम्बन्ध में नगेन्द्र बाबू की बातें

जनवरी के प्रथम सप्ताह में खबर मिली कि योगजीवन की पत्नी बसन्तकुमारी की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है। कुछ दिनों से लगातार ज्वर से पीड़ित वे एक प्रकार से मृत्युशय्या पर हैं। गेण्डारिया के सभी लोग उनके चिन्तित हैं। ठाकुर ने यह संवाद पाते ही ढाका जाने की इच्छा व्यक्त की।

हम सब लोग भी जनवरी के प्रथम सप्ताह में ठाकुर के साथ ढाका जाने के लिए तैयार हो गए।

ढाका जाने के कुछ पहले श्री नगेन्द्र बाबू ने ठाकुर के साथ कुछ क्षण एकान्त में बातचीत की। उस समय क्या कहा, पता नहीं चला। बाद में एक बार छोटे भैया और कुंज गुह जी के साथ बातचीत में प्रसंगवश नगेन्द्र बाबू ने कहा– 'गोसाँईजी मन की बातें बतला सकते हैं, सुना था; परन्तु विश्वास नहीं करता था। गोसाँईजी की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। मैंने उनसे पूछा कि गोसाँई! कहो तो मैं किस चक्र में हूँ; तो उन्होंने तुरन्त षट्चक्र के मध्य ठीक उसी चक्र का नाम लेकर कहा– **"आप ..... चक्र में विचरण कर रहे हैं।"** उनसे दीक्षा लेने की आकांक्षा व्यक्त की तो उन्होंने कहा– **"आपको मैं मित्र के भाव से देखता हूँ, आपके लिए कोई प्रयोजन नहीं है।"**

नगेन्द्र बाबू ने इन दोनों एवं अन्यान्य लोगों से भी ठाकुर के प्रसंग में कहा, 'गोसाँईजी जिस दिन कोलकाता आए थे, उसी दिन आकाशमार्ग में उन्होंने मुझे दर्शन दिया था। उससे मैं स्पष्ट समझ गया था कि वे आ रहे हैं। मैं प्रस्तुत था। उस दिन गोसाँईजी रात में स्टेशन से सीधे मेरे घर में ही आकर ठहरे।'

ठाकुर की ढाका यात्रा: गुरुभाइयों की अवस्था

रात्रि में लगभग 9 बजे ट्रेन छूटने का समय निर्दिष्ट होने पर भी ठाकुर की व्यग्रता के कारण हम लोग 6 बजे ही निवास-स्थान से निकल पड़े। ठाकुर जब भी ट्रेन से कहीं जाते हैं, दो-तीन घण्टे पहले से स्टेशन में जाकर बैठे रहते हैं,

यह बचपन से ही ठाकुर का एक अटल नियम है। इतने पहले से स्टेशन जाने के लिए ठाकुर की व्यग्रता देखकर हम लोग कई बार विरक्त हो जाते हैं।

ठाकुर ने बातों-ही-बातों में कहा– **'घर में बैठ-बैठे व्यर्थ समय बिताकर, बाद में अधीर होकर हड़बड़ी करने की अपेक्षा दो-तीन घण्टे पहले ही स्टेशन पहुँचकर निश्चिन्त बैठे रहना अच्छा है। मुझे कहीं भी जाना होता है, ऐसा ही करता हूँ। जीवन में मैंने कभी ट्रेन 'मिस' नहीं की।**

संध्या के कुछ समय बाद सब गुरुभाई लोग ठाकुर को साथ लेकर सियालदाह स्टेशन पहुँचे। आज आनन्द का सम्मेलन समाप्त हो गया। [illegible] भी गुरुभाई के मन में सन्तुष्टि नहीं है। सभी का मुख उदास एवं चित्त स्फूर्तिहीन है। ठाकुर जितने समय तक स्टेशन पर थे, सभी उनको घेरकर चुपचाप बैठे रहे। गाड़ी छूटने के कुछ क्षण पहले, ठाकुर को गाड़ी में चढ़ाकर सभी ने पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया। ठाकुर भी स्नेहपूर्वक हाथ जोड़कर उनकी ओर अश्रुपूर्ण नयनों से देखते हुए सिर झुकाकर प्रणाम करने लगे। इस समय कोई भी गुरुभाई स्थिर न रह सका; उनका दुःखी मन और भी व्याकुल हो उठा। कुछ लोग खड़े-खड़े और कुछ दुःख के कारण बैठकर रोने लगे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर हम लोगों का मन भी रो पड़ा। गाड़ी के भीतर एवं बाहर क्रन्दन की अव्यक्त ध्वनि होने लगी। इसी समय गाड़ी छूट गई। अहा! ठाकुर के महीनेभर से अधिक दिनों के नित्यसंगी नवीन बाबू, अचिन्त्य बाबू, मणि बाबू, वृन्दावन बाबू, देवेन्द्र सामन्त, कुंज गुह, श्रीचरण बाबू, महेन्द्र बाबू, छोटे भैया और मनोरंजन गुह आदि की स्नेह से द्रवीभूत विषादपूर्ण मूर्ति का स्मरण करते-करते हम लोग दुःखी मन से गोयालन्द के लिए निकल पड़े। सोचने लगा, 'हाय रे भाग्य! इन सब गुरुभाइयों के स्नेह का एक कण ही पाकर ठाकुर का स्मरण करते-करते क्षणभर के लिए भी यदि मैं ऐसा रो पाता, तो यह जीवन धन्य हो जाता।'

पद्मा नदी की जलवायुः साहब का परिहास

हम लोग रातभर गाड़ी में रहकर प्रातःकाल गोयालन्द स्टीमर पर चढ़ गए। एक बड़ा कम्बल बिछाकर सभी ठाकुर के चारों ओर बैठ गए। ठाकुर पद्मा नदी को देखकर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करने लगे। रह-रहकर कहने लगे– **'गंगा की प्रबल धारा ही इस पद्मा में मिलकर प्रवाहित हो रही है। पद्मा की हवा से देह की जड़ता दूर हो जाती है; अंग-प्रत्यंग सब सतेज हो जाते हैं। जल का असाधारण गुण है; अधपका भात या कच्चा चिवड़ा खाकर, पद्मा नदी का एक लोटा पानी पीने से वह सहज में ही पच जाता है।**

पद्मा के किनारे रहने वाले नाविक लोग जिस प्रकार सबल व स्वस्थ हैं, ऐसा प्रायः देखा नहीं जाता। पद्मा नदी की विशालता को देखने से चित्त मानो निश्चल हो जाता है।'

ठाकुर पद्मा की जलवायु का कुछ समय तक गुणगान करके चुप हो गए। यहाँ की एक अच्छी घटना लिख रहा हूँ– दोपहर में ठाकुर शिष्यों से घिरे हुए ध्यानस्थ अवस्था में बैठे हैं। भाव की प्रगाढ़ता से वे बारम्बार ऊँघने लगते हैं, फिर सिर उठा लेते हैं; निरन्तर अश्रुधारा बहने से उनके गाल भीगते जा रहे हैं। गुरुभाई लोग भी शान्त भाव से अपने-अपने इष्ट-मन्त्र के स्मरण में स्थिर बैठे हैं। दूर से एक उच्च पदस्थ अँग्रेज साहब ने ठाकुर की यह अवस्था देखकर, शराबी समझकर उनके सामने आकर परिहास करते हुए कहा– 'क्यों जी, दारू पिया है? कितना पिया है? अरे तुमने कैसा दारू पिया है?' साहब के दो-तीन बार ऐसा कहने पर ठाकुर ने सिर उठाकर थोड़ा हँसते हुए उनकी ओर देखकर कहा– **"हाँ, दारू पिया हूँ, बहुत दारू पिया हूँ। तुम्हारे ईसा मसीह जो दारू पीते थे, हमने तो अभी वही दारू पिया है।"**

यह सुनकर साहब थोड़ा चमक उठे, कुछ क्षण ठाकुर की ओर देखते रहे; फिर लज्जित भाव से थोड़ा हँसकर, सिर से टोपी निकालकर दोनों हाथ से ठाकुर को सलाम करते हुए अपने स्थान पर चले गए।

रात्रि में हम लोग दोलाईगंज स्टेशन पर उतरकर गेण्डारिया आश्रम पहुँचे। आश्रम लोगों से परिपूर्ण है; ठाकुर के आने से सभी बड़े प्रसन्न हुए।

श्री योगजीवन गोस्वामी की पत्नी बसन्तकुमारी का देहत्याग

ठाकुर गेण्डारिया आश्रम में आ गए। आश्रम के एवं नगरवासी गुरुभाई-बहिनों से मिलकर जैसे मन में हर्षोल्लास जागृत हुआ, वैसे ही योगजीवन की पत्नी की मरणासन्न अवस्था देखकर शंका और विषाद का भाव सबके भीतर प्रवेश कर गया। डॉक्टर प्रसन्नचन्द्र मजूमदार जी रात-दिन बड़ी सावधानी के साथ चिकित्सा करके भी एकदम निराश हो गए हैं। इस समय आश्रम में ठाकुर की उपस्थिति से किसी-किसी के मन में थोड़ा भरोसा हुआ था; सोचे, अब बसन्तकुमारी बच जाएगी; पर देखते-देखते उनकी अवस्था क्रमशः बिगड़ने से सभी बिल्कुल निराश हो गए।

बसन्तकुमारी की सेवा की व्यवस्था करने के लिए ही ठाकुर ने योगजीवन को गेण्डारिया भेजा था; लेकिन सेवा-कार्य में अत्यन्त अनिपुण ही कहो या आरम्भ से ही उदासीन प्रकृति का कहो, वे स्वयं साक्षात् रूप से नियमानुसार सेवा-शुश्रूषा करके उनकी यातना को कम करने में कोई सहायता नहीं कर पाए; तथापि उन्होंने

अपने आगमन व उपस्थिति से बसन्तकुमारी को जो आनन्द व सान्त्वना प्रदान की, यह परम दयालु गुरुदेव की व्यवस्था और आदेश का ही परिणाम लगता है।

6 जनवरी, बुधवार को बसन्तकुमारी की विकार जैसी अवस्था में भयंकर श्वास चलने लगी; उस अस्वाभाविक अवस्था से ठाकुर को अवगत कराने पर उन्होने कहा– **"सामान्य जो थोड़ा-बहुत दैहिक भोग है, प्राणायाम से उसी का शोधन होता जा रहा है।"**

8 जनवरी को बसन्तकुमारी ने ठाकुर का दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। ठाकुर उनकी शय्या के पास जाकर खड़े हो गए। बसन्तकुमारी ने हाथ जोड़कर रोते-रोते ठाकुर से कहा, 'बाबा, और कितना दुःख देंगे बाबा?'

ठाकुर ने अश्रुपूरित होकर कहा– **"माँ! तुम्हारे क्लेश का बस अवसान हो गया।"**

उस दिन डॉक्टर बाबू ने थोड़ा विस्मित होकर ठाकुर के पास जाकर कहा– 'तीन दिन से बसन्तकुमारी की भयंकर श्वास चल रही है, इस अवस्था में और कब तक रहेगी? यह दशा तो अब देखी नहीं जाती।'

ठाकुर ने कहा– **"अब विलम्ब नहीं है, समय प्रायः आ ही गया है; किन्तु सांसारिक मामलों में नानी सास से समय-समय पर बहुत गालियाँ खाने के कारण नानीजी के प्रति अभी भी उनका थोड़ा विरक्ति भाव है, वह चले जाने से ही सब ठीक हो जाएगा।"**

डॉक्टर बाबू ने कहा– 'अब वह किस प्रकार जाएगा?'

ठाकुर– **नानी सास उनको थोड़ा प्रसन्न कर दें, तो हो जाएगा। इसके लिए भी चिन्ता नहीं करनी होगी, अभी सब ठीक हो जाएगा।**

इसके बाद रोगी की दशा बहुत खराब होती देखकर नानी बेचैन हो गई। बहू इस बार बचेगी नहीं, यह सोचकर नानीजी रोते-रोते बहू के पास जा पहुँचीं एवं हृदय के आवेग से कहने लगीं, 'बहू! मैंने यदि थोड़ा अन्याय कर दिया है, क्लेश दे दिया है, तो तुम मुझे क्षमा करो।' नानीजी का व्याकुल होकर रोना देखकर और उनकी कातरतापूर्ण बात सुनकर बसन्तकुमारी की आँखें भर आईं; नानीजी को गले से लगाकर बोलीं, 'नानीजी! आपने तो कोई अपराध नहीं किया।' इस घटना के बाद, संध्या बीत जाने पर पुण्यशीला भाग्यवती बसन्तकुमारी ने 18 वर्ष की आयु में, बड़े भाई जगबन्धु बाबू के समक्ष, आश्रम के सभी गुरुभाई-बहिनों को रुलाकर, पति के चरणों के समीप गुरु के आश्रम में देह त्याग दीं।

योगजीवन की पत्नी का श्राद्ध और पारलौकिक अवस्था

प्रश्नोत्तर

18 जनवरी, सोमवार। बसन्तकुमारी की शीघ्र मृत्यु हो जाएगी, यह अनुमान करके ही मैं ठाकुर को होम के घी और भोजन के चावल का अभाव बतलाकर उनकी अनुमति लेकर घर चला गया था। फिर सात दिन बाद आश्रम में लौटा। आकर सुना, अनेक गुरुभाई मिलकर हरि-ध्वनि करते हुए बसन्तकुमारी के पवित्र कलेवर को श्यामपुर श्मशानघाट में ले गए थे। ठाकुर की इच्छानुसार योगजीवन ने ही उनको मुखाग्नि दी। देह के अग्नि-संस्कार के समय अचानक एक गोलाकार ज्योतिःपिण्ड चिता से निकलकर नक्षत्र के वेग से ऊपर की ओर जाकर अनन्त आकाश में मिल गया, वहाँ उपस्थित लोगों में से किसी-किसी ने उसे देखा था।

मेरे गेण्डारिया आने के दूसरे दिन ही प्रातः चाय पीने के बाद ठाकुर ने मुझसे कहा– **"तुम योगजीवन को श्राद्ध का मन्त्रादि पढ़ा सकोगे?"**

मैंने कहा– श्राद्ध का मन्त्र मैं जानता नहीं।

ठाकुर ने कहा– **"पुस्तक देखकर पढ़ाना; उसमें फिर जानने या नहीं जानने की क्या बात है?"**

मैं– श्राद्ध का मन्त्र पढ़ने के समय तो कितने प्रकार की प्रक्रिया करते हुए देखा हूँ, वह तो मैं कुछ जानता नहीं। फिर संस्कृत भी मैं अच्छे-से नहीं जानता। श्राद्ध-मन्त्र मुझे पढ़ाना होगा, तो अभी से पुस्तक देखकर अभ्यास कर लेना होगा; अन्यथा शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाऊँगा।

ठाकुर ने फिर मुझसे कुछ नहीं कहा। 11 वें दिन ठाकुर ने श्राद्ध की पद्धति देखकर स्वयं ही योगजीवन को श्राद्ध का मन्त्र पढ़ाया एवं शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार श्राद्ध का कार्य करवाया। श्राद्ध के बाद ठाकुर ने बातों-बातों में कहा– **"बसन्त ने श्राद्ध-स्थल में पहुँचकर हाथ फैलाकर पिण्ड ग्रहण किया; उसने सूक्ष्म देह परित्याग करके दुर्लभ कारण-देह प्राप्त कर ली है।"**

अवसर देखकर मैंने पूछा– जीव की किस प्रकार की अवस्था में मृत्यु के बाद ही पुनः देह का आश्रय लेना पड़ता है?

ठाकुर ने कहा– **"विषय में जिन लोगों की अधिक वासना रहती है, भोग की इच्छा जिनकी अत्यन्त प्रबल है, वे लोग ही देहत्याग होते ही अन्य देह का आश्रय लेते हैं।"**

प्रश्न– पितृलोक में कौन लोग जाते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"विषय उपस्थित होने पर जो लोग भोग करते हैं,**

किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए वैसी कोई प्रबल आकांक्षा नहीं रखते, साधारणतः वे लोग ही पितृलोक गमन करते हैं।"

प्रश्न— बैकुण्ठ और ब्रह्मलोक एवं उसके भी अतीत लोक में जीव किस प्रकार की अवस्था होने पर जाते हैं?

ठाकुर— **जो लोग केवल धर्म को लक्ष्य रखते हुए किसी प्रकार से सदनुष्ठान में जीवन बिता देते हैं, कर्म के अनुसार वासना के अनुरूप एक-एक प्रकार के लोक उन्हें प्राप्त होते हैं। फिर सारी वासनाओं का मूल जिन लोगों का नष्ट हो जाता है, केवल भगवान् ही लक्ष्य रहते हैं, उनका ही ब्रह्मलोक के अतीत स्थान में गमन होता है। केवल वासना के कारण जीव का भिन्न-भिन्न लोक में गमन होता है।**

इसके सिवा लोकान्तर प्राप्ति का अन्य कोई कारण है या नहीं, पूछूँगा सोचा ही था कि ठाकुर स्वयं कहने लगे— **'इन सब विषयों के और भी कई सिद्धान्त हैं, परन्तु सब लोगों से सब अवस्था की बातें नहीं कहते। जिस-जिस अवस्था के व्यक्ति को जिस प्रकार से समझने की योग्यता है, उसको उसी प्रकार कहना पड़ता है; अन्यथा वह उसे समझ नहीं पाता, कहने से उपकार न होकर वरन् अनिष्ट ही होता है। यह सब सुनने से कोई लाभ नहीं, कार्य करते जाना चाहिए।'**

आश्रम में अशान्ति

22 जनवरी, शुक्रवार। 'ठाकुर के पास सर्वदा रह पाने से हजारों असुविधाओं को भी असुविधा नहीं मानते'— ऐसी बात हम अनेक लोग ही सब समय एक-दूसरे के सामने कहकर गर्व किया करते हैं। इस बार गेण्डारिया आश्रम में आने के बाद से हमारे उसी अभिमान को भगवान् पग-पग में चूर्ण कर रहे हैं। कुछ दिनों से, ठाकुर की समीपता के बाद भी आश्रम में बड़ी अशान्ति चल रही है। सभी गुरुभाई विचलित हो गए हैं; क्या करें, कहाँ जाएँ, सभी के भीतर ऐसा एक उद्वेगपूर्ण आन्दोलन चल रहा है।

आश्रम में केवल एक नौकर है, वह बाहरी कार्य को लेकर व्यस्त रहता है। रसोइया ब्राह्मण आश्रम में पहले कभी नहीं थां, अभी भी नहीं है। शान्तिसुधा रोग के कारण कार्य करने में असमर्थ हैं; रोग-शोक से जर्जरित होकर भी नानीजी इस वृद्धावस्था में अकेली ही आश्रम के सभी लोगों का एवं अतिथियों का भोजन बनाना, परोसने का काम एवं बर्तन माँजना आदि कार्य करके बिल्कुल हैरान हो गई हैं। अतएव अपनी असमर्थता बतलाकर प्रतिदिन ही वे गुरुभाइयों से इन समस्त कार्यों

का भार लेने के लिए अनुरोध करने लगीं। गुरुभाई लोग इतने समय से ये समस्त सेवाएँ गुरु-परिवार से निर्विघ्न स्वाधीन रूप से भोग करते आ रहे हैं, इस कारण अब नानीजी की इन कठिनाइयों या कठोर बातों की ओर वे ध्यान ही नहीं देते। इधर रुपयों का भी अत्यधिक अभाव होने लगा है। केवल भात के साथ दाल अथवा सब्जी के सिवा भोजन का अन्य कोई प्रबन्ध नहीं है। प्रतिदिन एक ही प्रकार का, अतः अधिकतर अरुचिकर भोजन खाकर एवं विरक्तिपूर्वक प्रदत्त आहार के साथ-साथ गालियाँ भी खा-खाकर गुरुभाई लोग अत्यन्त विरक्त हो गए हैं। नानीजी के किसी भी कार्य में कोई किसी प्रकार की सहायता या धन के अभाव में सहानुभूति न करके वरन् उनका रुपयों के प्रति लोभ, उनकी संकीर्णता और स्वार्थपरता के कारण ही यहाँ इन सब असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है– कटु भाषा में इस प्रकार की आलोचना करने लगे। यह अशान्तिकारक कलह क्रमशः इतना बढ़ गया कि अन्त में कुछ गुरुभाई तो भोजन की पृथक् व्यवस्था करने के लिए बाध्य हो गए, कुछ लोगों ने अन्यान्य गुरुभाइयों के घर में अपने भोजन की व्यवस्था कर ली और कुछ लोग आश्रम त्यागकर अलग हो गए। नानीजी के दोष की आलोचना करना ही सब लोगों का साधन-भजन हो गया है।

पवित्र आश्रम में सामान्य आहार और छोटे-छोटे कार्य को लेकर एक-दूसरे में मन-मुटाव और समय-समय पर भयंकर झगड़ा-विवाद चलते देखकर सोचा– 'ये सब क्या है? ठाकुर का परम शान्तिप्रद संग प्राप्त करना ही जिन लोगों का यहाँ रहने का एकमात्र उद्देश्य है, तुच्छ आहार-व्यवहार को लेकर उन लोगों का भी चित्त इतना दग्ध हो रहा है? ठाकुर ने मुझे स्वपाक आहार का आदेश देकर बहुत ही सुख में रखा है। मैं इन सब झमेलों से दूर रहकर बड़े आनन्द से हूँ।' गुरुभाइयों की दशा देखकर दिनो-दिन गर्वित होने लगा। कुछ ही दिनों में आश्रम के उष्ण वातावरण ने मुझे भी उद्विग्न कर डाला। मैं भी त्राहि-त्राहि पुकारने लगा।

मुझे जब चावल का अभाव होता है, घर से ले आता हूँ। दिन ढलने के पहले केवल एक बार चावल, सब्जी आदि सबको एक साथ उबालकर या खिचड़ी बनाकर खाता हूँ। दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले कमरे में संध्या के समय लोगों का जमघट होने के कारण भण्डारघर के बरामदे में भोजन बनाने लगा। ठाकुर के आदेश के अनुसार पर्दा लगाकर एकान्त में मुझे खाना पड़ता है। भण्डारघर के बरामदे में भोजन की व्यवस्था होने से भण्डारघर की सब्जी, दाल, नमक आदि चुरा लेने का मेरे नाम पर मिथ्या कलंक का प्रचार होने लगा।

आहार के समय क्या खाता हूँ, आड़ में रहकर कुछ लोग उसकी भी खोज-खबर लेने लगे हैं। यह सब देख-सुनकर तो मैं दग्ध होने लगा। शीघ्र ही दक्षिण ओर के छानी वाले कमरे के बरामदे में भोजन बनाने के लिए प्रवृत्त हुआ;

लेकिन तब भी कलंक के हाथ से छुटकारा नहीं मिला। दो मुट्ठी चावल पकाने के लिए तो दो-तीन लकड़ी ही पर्याप्त है। अतः मैं अवसर मिलने पर वृक्ष की सूखी डालियाँ तोड़कर एकत्र करके रखता हूँ। यदि कभी मेरे पास लकड़ी नहीं रहती, तो आश्रम से आवश्यकतानुसार ले लेता हूँ। उसे लेकर भी नाना बातें होने लगी। ये उत्पात देखकर आश्रम की किसी भी वस्तु का उपयोग न करने संकल्प किया। छोटी-छोटी बातों को लेकर आश्रम में इतनी अशान्ति हो रही है, फिर भी ठाकुर को निर्वाक् और उदासीन देखकर उनके ऊपर बड़ा क्रोध आया और चिढ़ हुई। पता नहीं कब तक ये सब स्वार्थपरता और संकीर्णता के कारण हम लोगों में हिंसा, विद्वेष, ज्वाला, यन्त्रणा विद्यमान रहेगी। ठाकुर सभी को अपनी प्रकृति के अनुसार चलने देकर चुपचाप बैठे हैं, इसका तात्पर्य क्या है?

अवसर देखकर ठाकुर से पूछा– मायिक विषय के सम्बन्ध के कारण कब तक ज्वाला-यन्त्रणा का भोग करना पड़ता है?

ठाकुर ने कहा– **"अरे भैया! कितने ज्ञानी, कितने योगी, कितने विद्वान्-विद्वान् व्यक्ति माया के चक्र में पड़कर एकदम बेचैन हो जाते हैं। कब किसके भीतर किस छिद्र से पाप प्रवेश कर ले, कह नहीं सकते। इसलिए सर्वदा केवल भगवान् को लेकर पड़े रहना चाहिए। सत्संग में, सदालाप में, सदनुष्ठान में, सच्चिन्तन में ही प्रातः से निद्रित न होने तक का समय बिता देना चाहिए; फिर मन में सर्वदा प्रार्थना करनी चाहिए– 'भगवान्! मुझे अपना बना लो, जिससे मैं तुम्हें छोड़कर कुछ न चाहूँ।' इसी प्रकार से दिन-रात बिता सकने पर भगवान् की कृपा से मोह-माया से धीरे-धीरे रक्षा हो जाती है। उनकी कृपा के सिवा किसी प्रकार से कुछ भी होना सम्भव नहीं है, उनकी बिन्दुमात्र कृपा होने से क्षणभर में सब सम्भव हो जाता है।"**

बसन्तकुमारी के देहत्याग के बाद योगजीवन ने सोचा, 'अब संसार के बन्धन से मुक्त हो गया हूँ; अब सर्वदा निश्चिन्त होकर ठाकुर के साथ परमानन्द से रह सकूँगा।' योगजीवन की पत्नी के लिए सभी का विषादयुक्त भाव होने पर भी योगजीवन में बिन्दुमात्र वैसा भाव नहीं देखा; गुरुभाइयों के साथ बातचीत में 'अब गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी' कहकर वे आनन्द व्यक्त करके दिन बिताने लगे। एक दिन शौच के लिए जाते समय ठाकुर ने योगजीवन को सामने देखकर अचानक कहा– **"योगजीवन यह निश्चित रूप से जान लो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अधिक-से-अधिक सामयिक रूप से एक आनन्द की तरंग मन में उठा सकते हैं, प्रारब्ध के भोग को नष्ट नहीं कर सकते; वह केवल एक के ही हाथ में है।"**

नानीजी कुछ दिन बाद ही योगजीवन के विवाह के लिए व्याकुल हो गईं। कुछ गुरुभाइयों ने भी ठाकुर के समक्ष इस विषय में बात उठाई।

ठाकुर ने कहा– **"मैं उसको पुनः विवाह करने के लिए नहीं कहता, उसकी वैसी इच्छा है, तो करेगा; पर अब विवाह करना ठीक नहीं है।"**

नानीजी ठाकुर का अभिप्राय जानकर विलाप करने लगीं, अनेक गुरुभाई-बहिन लोग भी 'योगजीवन का फिर विवाह नहीं होगा, गुरुवंश का लोप हो जाएगा' सोचकर बहुत दुःखी हुए; किन्तु किसी ने एकदम से आशा नहीं छोड़ी; सोचे, 'ठाकुर ने अभी निषेध किया है, फिर हो सकता है, कभी विवाह की अनुमति दे दें।'

ठाकुर की दिनचर्या

24 जनवरी, रविवार। ठाकुर गेण्डारिया में आ गए हैं, इस बात का प्रचार होते ही शहर से अनेक लोग आश्रम में आने लगे। प्रातः के समय ठाकुर को बातचीत करने का अवसर नहीं मिलता, अतएव संध्या के समय ही लोगों की भीड़ होती है। ठाकुर प्रतिदिन प्रातःकाल आसन से उठकर कुएँ के पास जाते हैं। शौच के बाद आसन पर न जाकर, वे खड़ाऊ पहनकर और हाथ में दण्ड लेकर आश्रम के दक्षिण की ओर चहल-कदमी किया करते हैं। पेड़-पौधों के निकट जाकर उसकी ओर देखते हुए खडे रहते हैं; किसी-किसी को मानो बड़े स्नेह भाव से स्पर्श करते हैं। पौधों की वृद्धि एवं दूर से ही पेड़ों का सहारा लेने के लिए लताओं का कौशल और प्रयास देखकर आनन्दित हुआ करते हैं। अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार चलने के लिए उनकी भी दृष्टिशक्ति है; सुख-दुःख का अनुभव और विचार-बुद्धि भी मनुष्य की अपेक्षा कम नहीं है, उसका प्रमाण दिखलाया करते हैं। हरे पेड़ में लाल फूल, एक-एक फूल के विविध रंगों की श्रृंखलाबद्ध पँखुड़ियाँ देखते-देखते बीच-बीच में भाव में डूब जाते हैं। टहलने के बहाने माता ठाकुरानी के मन्दिर की परिक्रमा करके कुंज बाबू के घर के दाहिनी ओर तालाब के उत्तर-पूर्व कोने में जाकर घास के ऊपर खड़े हो जाते हैं; तालाब के दक्षिण ओर स्थित बीहड़ जंगल की ओर कुछ क्षण स्थिर भाव से देखा करते हैं। उस समय ठाकुर मानो मच्छरों के काटने से विचलित होकर जोर-जोर से पैरों को झटकारने लगते हैं। फिर पक्षियों को खाने के लिए कुछेक मुट्ठी चावल देने के बाद अपने आसन पर स्थिर होकर बैठ जाया करते हैं।

इस बीच कुंज घोष जी अपने घर से चाय बनाकर ले आते हैं। अब तक ठाकुर को नारियल के खप्पर में चाय पीते देखा हूँ, इस बार ठाकुर के चाय पीने के लिए कुंज बाबू एक एनामेल की कटोरी लेकर आए हैं। ठाकुर उसमें ही चाय

पीते हैं। उनके चाय पीने के बाद कुंज बाबू श्रीचैतन्य-चरितामृत का पाठ करते हैं। फिर ठाकुर स्वयं 'ग्रन्थसाहब' का पाठ करते है, फिर शास्त्र-ग्रन्थ देखने लगते हैं। कई बार ग्रन्थ हाथ में रखा रहता है और ठाकुर ध्यानमग्न अवस्था में 11 बजे तक का समय बिता देते हैं। 11 बजे के बाद आसन से उठकर शौच के लिए जाते हैं। सिर छोड़कर सारा शरीर पानी से धो लेते हैं। फिर आसन पर आकर तिलक लगाते एवं औषधि खाते हैं। उनका भोजन प्रायः 12 बजे होता है। भोजन के बाद आसन को आम के पेड़ के नीचे ले जाता हूँ। ठाकुर धूनी सामने रखकर लगातार प्रायः तीन घण्टे तक पूर्व दिशा में किसी वृक्ष की ओर एकटक देखा करते हैं। ठाकुर का शरीर निश्चल प्रदीप के समान स्थिर रहता है; निरन्तर अश्रुधारा बहने से शरीर का वस्त्र भीग जाता है, दोनों आँखें नक्षत्र की भाँति चमकती रहती हैं। कभी-कभी शरीर का रंग भी अन्य प्रकार का हो जाता है। मैं उस समय लगभग दो घण्टे तक महाभारत का पाठ करके नाम-जप किया करता हूँ एवं बीच-बीच में ठाकुर की मग्नावस्था में उनके अंगों का विचित्र रूपान्तरण देखकर रोमांचित और स्तब्ध हो जाता हूँ।

अपराह्न में शहर के लोगों के आ जाने पर ठाकुर सब लोगों के साथ बातचीत करने लगते हैं, मैं भोजन बनाने के लिए चला जाता हूँ। संध्या के समय प्रतिदिन ही बड़े उल्लास के साथ हरिकीर्तन होता है। संकीर्तन पूर्व ओर के कमरे में हुआ करता है। रात्रि प्रायः 9 बजे गुरुभाई लोग अपने-अपने घर चले जाते हैं। ठाकुर जलपान करके अपने आसन पर बैठा करते हैं।

ठाकुर की हँसी और झगड़े की निवृत्ति

25 जनवरी, सोमवार। इस बार गेण्डारिया में भयंकर ठण्ड है। ठाकुर के कमरे की चिक जगह-जगह से टूट गई है। रात्रि के समय बहुत ठण्ड लगती है। चार-पाँच गुरुभाई रात्रि में ठाकुर के कमरे में रहते हैं; उन लोगों के पास अच्छे गरम कपड़े नहीं हैं, ठाकुर ने इस कारण रात्रि में धूनी रखने के लिए कहा है। अर्थाभाव के कारण आश्रम में भोजन बनाने की ही लकड़ी सब समय रहती नहीं, फिर धूनी की लकड़ी कहाँ से जुटेगी? रात अधिक हो जाने पर महेन्द्र बाबू, श्रीधर आदि गुरुभाई धूनी के लिए लकड़ी की खोज में आश्रम से संलग्न गुरुभाइयों के घर-घर घूमा करते हैं। सब लोगों के निद्रित होते ही वे लोग बिना विचार किए किसी के घर से दरवाजे के लिए रखी हुई चौखट की लकड़ी, तो किसी के घर से रसोईघर में लगाने की खूँटी, किसी के घर का मचान बनाने का अच्छा पाटा लाकर धूनी में डाल दिया करते हैं। प्रातः गृहस्वामी को पता चलते ही उस बात

को लेकर झगड़ा आरम्भ हो जाता है। मैंने बड़े कष्ट से भोजन बनाने के लिए कुछ लकड़ियाँ भिक्षा करके संग्रह की थी। उन लोगों के डर से राधारमण बाबू के गौशाला में मैंने उसे रख दिया। रात्रि के समय अन्धकार गौशाला में प्रवेश करते ही गाय उन लोगों को सींग मारेगी तो वे लोग भाग जाएँगे, मेरा यही मतलब था; लेकिन गुरुभाई लोग उसे भी पता नहीं कब और किस प्रकार कौशल से ले आए! मेरी एक महीने की लकड़ियाँ एक रात्रि में उन लोगों ने जलाकर शेष कर दी। प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन ही एक बार खोज-खबर लेता हूँ, लकड़ियाँ हैं या नहीं। आज गौशाला जाकर देखा, लकड़ियाँ नहीं हैं; मेरे सिर पर जैसे बिजली गिर पड़ी। उत्तेजित अवस्था में तुरन्त जाकर ठाकुर के सामने ही लकड़ियों के सम्बन्ध में सबसे पूछा। कुछ लोग कहने लगे, 'ठाकुर की धूनी में तुम्हारी लकड़ियाँ लग गई, यह तो तुम्हारा सौभाग्य है। इसके लिए इतना क्रोध क्यों करते हो?' मैंने कहा– ठाकुर के भण्डार से अपना भोजन बनाने के लिए एक दिन एक लकड़ी लेने पर कई दिनों तक चोर कहकर मेरा प्रचार किया जाता है, अब इस समय समझूँ कि चोरी नहीं हुई है? ठाकुर चुपचाप स्थिर भाव से हम लोगों का झगड़ा सुनने लगे, फिर जब झगड़ा बहुत बढ़ गया, क्रमशः और भी अधिक बढ़ जाने की आशंका हुई, उस समय ठाकुर एक बार हम लोगों की ओर देखकर खिलखिलाकर हँस पड़े। तब बड़ा विचित्र देखा– हँसी के साथ-साथ क्षणभर में सभी का मन शान्त हो गया, सबके मुख में हँसी छा गई एवं आनन्द की एक तरंग सभी के भीतर उमड़ पड़ी।

श्रीधर के वैराग्य से बड़ा उत्पात: ठाकुर का उपदेश

26 जनवरी, मंगलवार। आश्रम के दक्षिण में चौकोन छानी वाले कमरे में मेरा आसन दक्षिण-पूर्व कोने में है, इस कमरे के दक्षिण-पश्चिम कोने में श्रीधर रहते हैं। कमरे के बचे हुए स्थान पर एक साथ बिछौना करके अन्यान्य गुरुभाई रात्रि में शयन करते हैं। श्रीधर और मेरे आसन के बीच में दरवाजा है। बसंतकुमारी के देहान्त के बाद श्रीधर में बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो गया है, एक-एक दिन उनको एक-एक प्रकार का वैराग्य होता है। इस वैराग्य के धक्के से हम लोगों का मन उद्विग्न हो जाता है। एक दिन श्रीधर अपना आसन समेटकर साढ़े छः फीट लम्बे, साढ़े तीन फीट चौड़े स्थान पर अधीर होकर कुदाली मारने लगे। कमरे में लगभग एक फुट गड्ढा खोदकर मिट्टी का ढेर लगाने लगे। श्रीधर की ऐसी अवस्था में कुछ कहने का किसी का साहस नहीं होता। क्या पता, कहीं सिर पर कुदाली चला दे! नानीजी खबर पाकर आग-बबूला हो गई एवं उन्होंने आकर श्रीधर से कहा– 'पागल! ये क्या कर रहे हो? कमरे में गड्ढा करके कमरे का सर्वनाश कर दिया!

यह पागलपन क्यों कर रहे हो?' श्रीधर वृथा बातों में अपना समय नष्ट न करके, बड़े मनोयोग के साथ कमरे के भीतर धमाधम् कुदाली चलाने लगे; नानीजी की बात की ओर ध्यान ही नहीं दिए। नानीजी भी खूब ऊँचे स्वर में फटकारने लगीं। तब श्रीधर ने चिढ़कर नानीजी से कहा, 'जाइए, जाइए, आप जाकर भण्डार देखिए। कमरे का सर्वनाश कर दिया! कमरे का सर्वनाश कर दिया!! जब मेरी मृत्यु होगी, तब क्या आप उसकी व्यवस्था करने आएँगीं?' यह कहकर श्रीधर ने हाथ की कुदाली बाहर फेंक दी एवं एक कलसी लेकर वे तालाब की ओर दौड़े; फिर कलसी से पानी ला-लाकर कमरे में रखी मिट्टी के ऊपर डालने लगे। पूरा कमरा कीचड़-कीचड़ हो गया। मेरे आसन के किनारे पानी आता देखकर मैं आसन से उछल उठा एवं श्रीधर को धमकाते हुए कहा, 'श्रीधर! सावधान! एक बूँद भी पानी मेरे हवन-कुण्ड में या फिर आसन में लगा, तो आज तुम्हारा खून ही कर दूँगा।' श्रीधर ने तब कोई उपाय न देखकर तुरन्त ही बड़ी व्यग्रता के साथ पानी की धारा को दूसरी ओर खींचकर बड़े कोमल स्वर में कहा, 'भाई! और थोड़ा रुको न। उसके बाद खून करने से मुझे कोई दुःख नहीं होगा।' मैं चिढ़कर कमरे से बाहर निकल गया एवं ठाकुर के पास जाकर बैठ गया। अवसर देखकर ठाकुर से पूछा, कोई अत्याचार करे तो उसको दण्ड देना क्या अन्याय है?

ठाकुर ने कहा– **"मनुष्य के साथ उसकी प्रकृति समझकर व्यवहार करना चाहिए। यदि कोई अपनी प्रकृति के अनुसार चलता है, उससे किसी का कुछ अनिष्ट हो जाए, किन्तु दूसरों का अनिष्ट करना उसका उद्देश्य नहीं रहता, तो शान्तभाव से उसको वह समझा देना चाहिए। जितना सम्भव हो उसके भाव के अनुरूप व्यवहार करके उसका परिवर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिए; और यदि देखा जाए, कोई वास्तव में ही किसी प्रकार के असद्भाव से जान-बूझकर कुछ अत्याचार कर रहा है, तो फिर उसको दण्ड देना चाहिए। कई बार मनुष्य सदभिप्राय से काम करता है, फिर भी उससे किसी का अनिष्ट हो जाता है; लेकिन उससे उसको दोषी नहीं कहा जाएगा। भूल-चूक तो मनुष्य से होती रहती है। फिर समय होने पर वह स्वयं ही उसे समझ लेता है। सब कार्यों में बहुत धैर्य रखना चाहिए। धैर्य के अभाव से ही तो इतना विवाद होता है।"**

ठाकुर की बात सुनकर सोचा, 'वाह, यह अच्छा है! कोई व्यक्ति केवल अत्याचार करे और एक व्यक्ति कल्पना करके उसका शुभ उद्देश्य सोचकर उस अत्याचार में केवल धैर्य धारण किया रहे! यह अच्छा उपदेश है! श्रीधर के नाम का उल्लेख किए बिना ठाकुर ने उसको ही लक्ष्य करके यह सब उपदेश मुझे दिया, मैं समझ गया; लेकिन श्रीधर के माथा गरम की अवस्था में बिना विचार के किए

गए जिन उद्वेगजनक कर्मों को सब लोग पागलपन के सिवा और कुछ नहीं कहते; उसमे ठाकुर उसका क्या शुभ उद्देश्य देखते हैं, समझ में नहीं आता। श्रीधर ने सारा दिन कीचड़ सानकर आसन के बराबर गड्ढे के चारों ओर ऊँची वेदी बनाई। फिर कुछ तुलसी के पौधे लाकर शृंखलाबद्ध करके उसके ऊपर लगा दिया। उसके बाद गड्ढे में चटाई बिछाकर उसके ऊपर कम्बल का आसन बिछा दिया। अब वे एकतारा लेकर भजन गाने लगे (गाने का भावार्थ)– 'अन्त के उस दिन का स्मरण कर रे मन, भवधाम जब छोड़ेगा।' श्रीधर का भजन पूरा होने के पहले ही शहर के सब गुरुभाई आ गए। लगभग आधा कमरा श्रीधर के पागलपन से आच्छादित देखकर उन लोगों ने कहा– 'ये क्या है श्रीधर, ये सब क्या किया?'

श्रीधर ने थोड़ा उग्र होकर कहा, 'यह क्या है, देखते नहीं; आँखें नहीं हैं? तुलसी-कानन है।' गुरुभाइयों ने कहा, 'पागल, कानन क्या तुम्हारे कमरे में है? बाहर जाकर तुलसी-कानन में भजन नहीं करना था?' श्रीधर ने कहा, 'इतनी ठण्ड में ऐसा न हो कि बाहर जाना पड़े, इसीलिए तो इतना किया। मेरा शरीर छूटेगा तो इस तुलसी-कानन में ही छूटेगा; तुम लोगों को ठण्ड में कोई कष्ट नहीं होगा; इस गड्ढे में मुझे रखकर, यह सब मिट्टी डालकर कब्र देना।' यह कहकर श्रीधर एकतारा रखकर कम्बल ओढ़ लिए एवं सीधा सो गए। श्रीधर के चुप हो जाने पर कुछ गुरुभाई लोग हरि-ध्वनि देकर, 'श्रीधर मर गया' कहते-कहते चारों ओर की मिट्टी ठेलकर उसके शरीर के ऊपर डालते हुए दबाने लगे। उस समय श्रीधर हड़बड़ाकर उठ गए। सबके साथ श्रीधर का आधे घण्टे तक परिहास चलता रहा। मैं यह सब देख-सुनकर ठाकुर के उपदेश का तात्पर्य समझ गया एवं श्रीधर के पागलपन में भी शुभ उद्देश्य रहता है, यह जानकर चकित हो गया।

श्रीधर के प्रकृतिस्थ होने पर मैंने पूछा, भाई, यह पागलपन क्यों किया?

श्रीधर ने कहा– 'भाई, ठाकुर ने कहा था मेरे शरीर में संन्यास रोग (thrombosis) का बीज प्रविष्ट हो गया है, अतएव मैं कब किस अवस्था में मरूँगा, कुछ भी तो निश्चित नहीं है! इसलिए तुलसी-कानन बना लिया था; तुलसी के निकट यदि मरता हूँ, तब एक सद्गति तो होगी! फिर अभी भयंकर ठण्ड जो है! यदि संध्या के समय मरता हूँ, तो जो लोग मुझे श्मशान ले जाएँगे, उन लोगों को क्या कम कष्ट होगा? यह सोचते ही मेरे मन में आया, ऐसा न हो कि मेरे शरीर को लेकर किसी को कष्ट हो, इसलिए उसकी व्यवस्था अभी से करनी होगी। तुरन्त इतना परिश्रम करके कमरे के भीतर ही कब्र का स्थान ठीक कर लिया था।' श्रीधर का माथा ठीक होने पर वे अपने पागलपन के बारे में सोचकर लज्जित हुए।

स्वप्न में फकीरों के दर्शन

28 जनवरी, गुरुवार। एक दिन स्वप्न में देखा, गेण्डारिया आश्रम के दक्षिण-पूर्व कोने में तीन कठोर साधक मुसलमान फकीर विद्यमान हैं। उनमें से दुबले-पतले, लम्बे, गौरवर्ण के एक अत्यन्त तेजस्वी वृद्ध ने मुझसे कहा– 'देख, यह मैं बैठ गया; जब तक सिद्ध नहीं होऊँगा, इस आसन से नहीं उठूँगा; अनाहार से इस आसन पर ही शरीर त्याग दूँगा।' फकीर साहब यह कहकर बायें पैर के टखने के ऊपर सीधा बैठकर दाहिना पैर सामने फैला दिए एवं दाहिने हाथ की तर्जनी से पैर के अँगूठे को खींचते हुए, नाक के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर रखकर ध्यानस्थ हो गए। अन्य दो फकीर अपेक्षाकृत कम आयु के हैं, चेहरा थोड़ा स्थूल, स्वभाव शान्त है, थोड़े गौरवर्ण के हैं; तालाब के दक्षिण-पूर्व कोने में घने जंगल में वे मिट्टी के नीचे आसन लगाकर बैठ गए। कुछ दिन बाद उन लोगों की खबर लेने आया, तो देखा, पहले वाले फकीर साहब की अब वैसी आकृति नहीं रही, सारे अंग वात से फूल गए हैं, वहाँ फटने से रस निकल रहा है। घुटने और कमर का माँस सड़कर जगह-जगह से निकलता जा रहा है। फकीर साहब असह्य क्लेश भोगकर भी आसन पर स्थिर भाव से बैठे हुए हैं। अन्य दो फकीर की क्या दशा हुई, यह जानने के लिए जैसे ही जंगल में प्रवेश किया, पैर में ठोकर लगने से निद्रा भंग हो गई। फकीर लोगों के कठोर तपस्या के बारे में सोचते-सोचते अवशिष्ट रात्रि बीत गई।

प्रातःकाल ठाकुर अन्य दिनों की भाँति टहलते-टहलते कुंज बाबू के घर के दाहिनी ओर गन्ने के खेत के दक्षिण-पश्चिम कोने में घास के ऊपर गए एवं जहाँ प्रतिदिन खड़े होकर कुछ क्षण तक दक्षिण दिशा में जंगल की ओर देखा करते हैं, ठीक वहीं खड़े होकर दो-चार बार पैर को झटककर अपने आसन-गृह में आ गए। स्वप्न में जिस स्थान पर फकीर साहब को देखा था, ठाकुर प्रतिदिन ठीक उसी स्थान पर खड़े होकर देखते हैं। इसी से विस्मित होकर मैंने अवसर देखकर पूछा, प्रातः तालाब के कोने में जाकर जिस स्थान पर आप खड़े होते हैं, स्वप्न में ठीक उसी स्थान पर एक फकीर का आसन देखा, स्वप्न क्या सत्य है?

ठाकर ने कहा– **"पूरा स्वप्न स्पष्ट रूप से कहो न।"**

मैंने ठाकुर को आरम्भ से अन्त तक स्वप्न का वृत्तान्त सुनाया।

ठाकुर ने कहा– **"स्वप्न सत्य है; फकीर साहब की यथार्थ अवस्था ही देखे हो। वे काले सर्प की देह का आश्रय लेकर मेरे साधन-कुटीर में आसन के नीचे आकर रहने लगे हैं। फिर तालाब के दक्षिण-पूर्व कोने में तुमने जिनको देखा, उनमें से एक सर्प के रूप में हैं– उनका वर्ण दूध के समान सफेद है, आँखें रक्तवर्ण की बड़ी उज्ज्वल हैं; कभी-कभी वे**

आम के पेड़ के नीचे आया करते हैं। ध्यान रखने से देख सकते हो।"

स्वप्न का वृत्तान्त कहने के बाद फिर एक दिन भी ठाकुर को उस स्थान पर जाकर पैरों को झटकारते नहीं देखा। पता नहीं इसके भीतर क्या रहस्य है! स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर ठाकुर ने मुझसे डायरी में लिखकर रखने के लिए कहा। गेण्डारिया आश्रम का स्थान एक समय मुसलमान फकीरों की भजन-स्थली थी। कई सिद्ध फकीरों की कब्रें आश्रम में एवं आश्रम से संलग्न श्री सतीशचन्द्र गुह जी के घर पर हैं। घर के पूर्व में विशाल आम के पेड़ के नीचे एक मुसलमान महात्मा की कब्र है। कृपा करके वे कभी-कभी मनोहरा दीदी (सतीश बाबू की माताजी) को दर्शन देते हैं। फकीर साहब की तृप्ति के लिए या मर्यादा की रक्षा के लिए प्रतिदिन संध्या के समय उस वृक्ष के नीचे धूप-धूना आदि देकर प्रदीप जलाया जाता है।

फरवरी, सन् 1892 ई०

गुरुभाइयों के प्रति अश्रद्धा: ठाकुर का उपदेश

1 फरवरी, सोमवार। आश्रम के गुरुभाइयों का झगड़ा और बहिर्मुखी भाव देखकर मैं मन-ही-मन गर्वित होने लगा। सोचने लगा– 'घर में नाना प्रकार की दुश्चिन्ता, अशान्ति के साथ जिनको दिन बिताना पड़ता है, वे लोग ही सुख से स्वेच्छानुसार रहने के लिए यहाँ आकर पड़े हुए हैं। वास्तव में साधन-भजन करना अथवा ठाकुर का संग प्राप्त करना इन लोगों का यहाँ रहने का उद्देश्य नहीं है; तभी तो थोड़े-थोड़े स्वार्थ को लेकर ये लोग वाद-विवाद में समय बिता रहे हैं। ठाकुर के आकर्षण एवं धर्म-प्राप्ति की आकांक्षा से केवल मैं ही यहाँ पर हूँ। अन्यान्य गुरुभाइयों की अपेक्षा ठाकुर के आदेश का मैं अधिक प्रतिपालन करके चलता हूँ। ठाकुर के साथ भी मैं ही अधिक समय तक रहता हूँ। इन सब कारणों से अन्य लोगों की अपेक्षा मैं अधिक आदरणीय हुआ या नहीं, यह जानने के अभिप्राय से कौशल करके एक दिन ठाकुर से मैंने पूछा– सद्गुरु का आश्रय प्राप्त करके कोई तो नियम-निष्ठा के साथ चलता है; फिर कोई विपरीत ढंग से भी चलता है। किसी के सामान्य दोष में तो कठोर दण्ड मिलता है, फिर किसी के भयंकर अपराध में भी उपेक्षा दिखलाई पड़ती है, ऐसा क्यों है?

ठाकुर ने कहा– **"मनुष्य की प्रकृति देखकर, अवस्था समझकर उसको चलने देना पड़ता है और चलाना पड़ता है। सभी के लिए एक जैसी व्यवस्था नहीं है। बालक, वृद्ध, युवक तीनों एक ही घर में ज्वर से पीड़ित हो जाएँ, तो आरोग्य हेतु तीनों के लिए केवल कुनैन की व्यवस्था**

करना सब समय नहीं चलता। किसी को कुनैन से लाभ हो सकता है और किसी की मृत्यु हो सकती है। रोग एक होने पर भी रोग का कारण एवं रोगी के शरीर की अवस्थादि को समझकर प्रत्येक के लिए औषधि एवं आहार की व्यवस्था भिन्न-भिन्न करने की आवश्यकता हो सकती है। जिनके लिए जो है, वे उसे लिया करेंगे; किनका किससे क्या हो रहा है, उसे देखने की आवश्यकता क्या है? फिर देखने से भी क्या समझोगे? मेरे जैसा नहीं चलने से किसी का कुछ नहीं होगा, यह सोचना भूल है।"

मैंने पूछा– सद्गुरु से केवल दीक्षा ग्रहण कर लेने से ही क्या सबको एक ही अवस्था प्राप्त होगी?

ठाकुर ने कहा– **"हाँ, अवश्य होगी; किसी एक स्टेशन का टिकट लेकर कुछ लोग गाड़ी में बैठ गए, फिर वे जागते रहें या सोते रहें, लड़ाई-झगड़ा करते हुए जाएँ या ताश खेलते हुए जाएँ, सभी को एक ही स्थान पर पहुँचना होगा।"**

फिर पूछा– तो फिर आदेश या नियम आदि का पालन करने से क्या लाभ?

ठाकुर ने कहा– **"लाभ बहुत है। जाएँगे सभी एक ही स्थान पर; किन्तु कोई पालकी में बैठकर जाएगा, तो कोई पालकी कन्धे पर लेकर, पथ का इतना ही अन्तर है।"**

ठाकुर के प्रथम दो प्रश्नों के उत्तर से मन-ही-मन थोड़ा दुःखी हो गया था, अब मन में बड़ी स्फूर्ति आ गई; फिर ऐसा न हो कि ठाकुर के मुख से अन्य प्रकार की बातें निकल पड़े, इस भय से मैं और कोई प्रश्न न करके धीरे-धीरे आसन लपेटकर चला आया।

अभिमान से दुर्दशा: ठाकुर का अनुशासन

2 से 9 फरवरी। जनवरी के अन्तिम सप्ताह में मेरी राशि पर कुग्रह चढ़ गया। उसी समय से गुरुभाइयों के प्रति अश्रद्धा का भाव आने लगा एवं उन लोगों के कार्य-कलापों में दिनो-दिन दोषदृष्टि पड़ने लगी। उसके साथ-साथ अपनी अवस्था के बारे में सोचकर बहुत गर्वित होने लगा। नीलकण्ठ वेश, माला-तिलक, एकाहार, पैर के अँगूठे पर दृष्टि रखना, नित्य होम, पाठ और ठाकुर के साथ अधिक समय तक रहना इत्यादि बाहरी अनुष्ठान में मेरी दृष्टि अधिक रहने लगी। दिनभर नाम-जप करके जिस अपूर्व आनन्द का भोग करता हूँ, अब वह धीरे-धीरे मेरे अनजाने में लुप्त हो गया! भोजन के बाद रात्रि में 11-12 बजे तक सोता हूँ,

इस समय के भीतर भी प्रायः दो-एक दिन के अन्तर में स्वप्नदोष होने लगा। नाम-जप में अरुचि और मन में उदासी के साथ-साथ शरीर में उत्पात होने लगा। हाथ, बाहु, मस्तक आदि जिन-जिन स्थानों पर रूद्राक्ष की माला धारण करता हूँ, उन सब स्थानों में ज्वाला की अनुभूति होने लगी; क्रमशः इस ज्वाला के बढ़ने से 'बालतोड़' फोड़े के जैसी यन्त्रणा का सब समय भोग करने लगा एवं उन सब स्थानों पर फफोले पड़ने के समान छाल निकलने लगी। माथा गरम हो गया। भीतरी अशान्ति और शरीर का क्लेश असह्य होने पर ठाकुर के पास जाकर कहा, कुछ दिनों से मेरा सप्ताह में तीन-चार दिन स्वप्नदोष हो जाता है, मन में सब समय उदासीनता रहती है, शरीर की भी भयंकर यन्त्रणा रात-दिन भुगत रहा हूँ, मेरी इस प्रकार दुर्दशा क्यों हुई?

ठाकुर ने कहा– **"दुर्दशा अभी हुई क्या है? अभी से खूब सावधान होकर नहीं चलने पर और भी अधिक दुरावस्था में पड़ोगे! धर्म कोई तमाशा नहीं है। सबके पैरों के नीचे से धर्म का पथ है। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी के पैरों के नीचे से होकर धर्म की सीढ़ी पर चढ़ना होता है। सिर ऊँचा करने से कभी धर्म प्राप्त नहीं होता। अभिमान बड़ा भयानक है। जटा, माला, तिलक आदि धर्म की वेशभूषा धारण करने से यदि मन में थोड़ा भी प्रतिष्ठा का भाव आता है, तो उसी क्षण उसका त्याग करना चाहिए; अन्यथा वही सर्प होकर डसता है। सदा यह सब विचार करके चलना चाहिए। जिस वस्तु को धारण करने का उद्देश्य भगवान् नहीं हैं एवं जिससे केवल प्रतिष्ठा का लोभ बढ़ता है, वह जो भी क्यों न हो, काकविष्ठा के समान त्याग देना। फिर जो कुछ उनके उद्देश्य से रखा जाता है, पूरा ब्रह्माण्ड ध्वंस होने पर भी उधर ताकना नहीं। इन विषयों में बड़ी सावधानी के साथ चलना पड़ता है। धर्माभिमान बड़ा भयानक है; इतना अनिष्ट अन्य किसी से नहीं होता। नशाखोर, वेश्यागामी, अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी यदि अपनी दुरावस्था को समझकर स्वयं को अत्यन्त ही अयोग्य समझता है, तुच्छ समझता है, तो भी वह एक सदनुष्ठानी चरित्रवान् धर्माभिमानी व्यक्ति की अपेक्षा कई गुना श्रेष्ठ है। अन्यान्य अपराधों से तो पार पा सकते हैं, पर धर्माभिमानी का पार होना सहज नहीं है। साधन-भजन, तपस्या, वार्तालाप, वेशभूषा, जिस किसी विषय में धर्म का अभिमान होता है, प्रतिष्ठा का भाव मन में आता है, तो भयंकर रोग समझकर उसे त्याग देना। देह, मन शीतल हुए बिना रुद्राक्ष पहनने से सहन नहीं होगा, शरीर गरम हो जाएगा। अभी रुद्राक्ष की माला उतार दो, केवल तुलसी की माला धारण करो।"**

"आहार के सम्बन्ध में भी किसी प्रकार का अनियम, अनाचार करने पर स्वप्नदोष से छुटकारा नहीं मिलता। अशुद्ध आहार एक बार पेट में जाकर रक्त में परिवर्तित हो जाता है, तब वह धीरे-धीरे शरीर के सम्पूर्ण रक्त को दूषित करता है। वह रक्त जब तक शरीर में रहता है, नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। उसके पूर्णतः निःशेष न होने तक नाना प्रकार के उत्पात भोगने पड़ते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के रस भिन्न-भिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न करते हैं। रस का त्याग किए बिना शरीर सहज में निर्मल नहीं होता। शरीर के विकाररहित हुए बिना साधन-भजन भी नहीं होता। विशुद्ध सात्विक आहार द्वारा शरीर शुद्ध होता है। पहले शरीर को ठीक कर लो। शरीर से ही सब होता है। शरीर ठीक नहीं होने से कैसे कुछ करोगे?"

ठाकुर का अनुशासन वाक्य सुनकर मैं अपने आसन पर चला आया एवं रुद्राक्ष की मालाएँ खोलकर रख ली। भोजन की पवित्रता व परिमाण ठीक रखने के लिए ठाकुर का प्रसाद मिलाकर चावल, सब्जी एक साथ उबालकर खाने लगा।

प्रसाद का गुण और उसमें अविश्वास

10 फरवरी, बुधवार। गेण्डारिया निवासी हमारे श्रद्धेय गुरुभाई श्री श्यामाचरण बक्शी जी प्रतिदिन संध्या होने के कुछ पहले आश्रम में आते हैं; ठाकुर के पास कुछ समय चुपचाप बैठे रहकर, घर जाते समय मेरे पास से प्रसाद लेकर जाते हैं। ब्रह्मसमाजी होने पर भी प्रसाद में बक्शी भैया की अचल भक्ति है। केवल दो या तीन दाना प्रसाद का भात उनको गिनकर दिया करता हूँ; मेरे चाहने पर भी वे अधिक नहीं लेते। प्रसाद उनके हाथ में पड़ते ही वे थरथर काँपने लगते हैं। अफीमखोर के समान उनके दोनों नेत्र बन्द होने लगते हैं। वे क्षणभर भी खड़े न रहकर द्रुतगति से घर चले जाते हैं। समयानुसार अपने आसन पर बैठकर वह प्रसाद मुख में डालते ही अचेत हो जाते हैं, तीन-चार घण्टे समाधिस्थ रहते हैं। हम लोगों की जिद से कभी वे दो-एक ग्रास प्रसाद ले लेते हैं, तो दो-तीन दिन के लिए उनका शौच-कर्म ही बन्द हो जाता है। तब वे नशाखोर के समान ऊँघते हुए दिन-रात बिताते हैं। बातों-बातों में आज उन्होंने कहा, 'प्रसाद पाते ही ऐसा नशा होता है कि अन्य किसी ओर मन को ले जाने की मेरी क्षमता नहीं रहती; प्रसाद का गुण मन को नाम-जप में ही एकाग्र करके रखता है, शरीर भी अवसन्न हो जाता है।' बक्शी भैया की ऐसी अवस्था देख-सुनकर चकित हो जाता हूँ। सोचा, यही प्रसाद तो प्रत्येक ग्रास में प्रतिदिन खाता हूँ। मेरा ऐसा क्यों नहीं होता?

कुछ दिनों से रुद्राक्ष की माला उतार दिया हूँ; उससे मन का उत्साह मानो एकदम ठण्डा पड़ गया है; शरीर भी पहले के जैसा नहीं है, निस्तेज हो गया है; फिर किसी भी प्रकार से तो उलटे-पुलटे स्वप्न देखना बन्द ही नहीं हो रहा है। सब प्रकार के नियम-निष्ठा से रहने के बाद भी जब मुझे कोई फल नहीं मिला, तब बक्शी भैया की बात का स्मरण हुआ। सोचा, शयन के समय मुख में प्रसाद रखकर सोऊँगा। जागृत अवस्था में शरीर स्वभावतः अस्थिर एवं मन चंचल रहने के कारण प्रसाद के असाधारण गुण का अनुभव नहीं होता; परन्तु निद्रित अवस्था में देह-मन स्थिर रहता है, अतएव आहार अथवा संग के किसी भी प्रकार के दोष से यदि निद्रित अवस्था में एकाएक विकार की सम्भावना होती है, तो महाप्रसाद मुख में रखने से उसके गुण से अवश्य ही उसकी निवृत्ति होगी। इस प्रकार निश्चय करके आज एक ग्रास प्रसाद मुख में रखकर सो गया। रात्रि में स्वप्न देखा– 'ठाकुर हमारे घर में आए हैं। सब लोग ठाकुर को देखकर आनन्दित हो उठे। बहुत-सी उत्कृष्ट सामग्रियाँ संग्रह करके ठाकुर के लिए प्रसाद बनाया गया। ठाकुर ने बड़ी तृप्तिपूर्वक भोजन किया। अन्यान्य दिनों की भाँति भोजन का पात्र हाथ में लेकर मैं सबको प्रसाद बाँटने लगा। हमारी एक घनिष्ट स्वजन, 15-16 वर्ष की युवती प्रसाद लेने के लिए आई। वह मेरे हाथ से प्रसाद लेने की प्रतीक्षा न करके स्वयं ही उस पात्र से प्रसाद उठाकर खाने लगी। मैं उसके हाथ को बाएँ हाथ से बलपूर्वक पकड़कर, दूसरे हाथ से प्रसाद उठाकर शीघ्रता से खाने लगा। लड़की ने तब हाथ छुड़ाने की चेष्टा की।' उसी समय मैं जाग गया। देखा, स्वप्नदोष हो गया। मुख का वही प्रसाद बड़ी व्यग्रता के साथ चबा रहा हूँ। अवशिष्ट रात्रि रोते हुए बिताया। सोचा– 'हाय, यह क्या हुआ? बहुत समय से जिसे भूल गया हूँ, महाप्रसाद के गुण ने आज निद्रित अवस्था में उसकी स्मृति जगाकर मेरा यह सर्वनाश कर दिया। वश में किए हुए दोष को पुनर्जीवित करना ही क्या महाप्रसाद का गुण है? ऐसा लगा कि यह केवल अन्धभक्त लोगों की कल्पना का ही एक परिणाम है।'

दोपहर में महाभारत पाठ करने के बाद अवसर देखकर ठाकुर से कहा– स्वप्नदोष न हो इसलिए शयन के समय मुख में प्रसाद रखा था। निद्रित अवस्था में स्वप्न में एक लड़की के साथ प्रसाद को लेकर छीना-झपटी करके खाने से स्वप्नदोष हो गया। मुख का प्रसाद चबाते-चबाते जाग गया। उस लड़की को तो मैं एक प्रकार से भूल ही गया था, फिर ऐसा क्यों हुआ?

ठाकुर ने कहा– **"ऐसा कहने से क्या होता है? स्वभाव में जो दोष छिपा हुआ है, वह सब तो फूटकर बाहर निकलेगा। उसके प्रति आसक्ति भी तो तुम्हारी बहुत समय तक थी। कल्पना में भी जब किसी प्रकार का**

कामभाव उसके प्रति नहीं ला सकोगे, तब समझना कि तुम्हारी यह प्रवृत्ति नष्ट हो गई है। आठों प्रकार के मैथुन का परित्याग करना होगा। महिलाओं के स्पर्श से जिस प्रकार उत्तेजना हुआ करती है, उनके स्मरण, दर्शन एवं उनके साथ बातचीत आदि करने से भी उसी प्रकार होता है। अतएव वीर्यरक्षा करने के लिए इनमें से एक की भी अवहेलना करने से नहीं चलेगा। किसी विषय में चेष्टा करने के लिए भीष्म के समान प्रतिज्ञा करके लग जाना पड़ता है; अन्यथा कोई उपाय नहीं है। भूमि की ओर सिर झुकाए रखकर, आड़ से इधर-उधर ताकने पर व्रत की रक्षा नहीं होती, वरन् चोर के समान कपट व्यवहार ही करना हुआ। किसी प्रकार की असत् कल्पना मन में आने से उच्च स्वर में गान करो अथवा पाठ करो।"

मैं जिस बर्तन में खाना बनाता हूँ, उसी में खाया करता हूँ; कई बार केले का पत्ता संग्रह नहीं कर पाता, इसलिए बड़ी असुविधा अनुभव होती है। आज एक गुरुभाई ने मुझे एक एनामेल की थाली लाकर देते हुए कहा, 'तुम इसमें खाया करो, माँजने में कोई कष्ट नहीं होगा।' मैंने ठाकुर के पास उसे ले जाकर उनको दिखलाते हुए कहा– इस पात्र में मैं भोजन कर सकता हूँ?

ठाकुर ने देखकर कहा– **"राम! राम!! इसमें कहीं खाया जाता है? इन वस्तुओं को तो स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। मैंने कुछ दिन इसमें चाय पी थी, अब फिर से अपने नारियल के खप्पर में ही चाय पीता हूँ। एनामेल का पात्र शुद्ध नहीं है।"**

मैंने थाली लेकर जिन्होंने दी थी, उनको ही दे दी।

गेण्डारिया के सिद्ध फकीरों की आश्चर्यजनक कथा

14 फरवरी, रविवार। फरवरी का द्वितीय सप्ताह भी निकल गया, लेकिन गेण्डारिया की ठण्ड किसी प्रकार भी कम नहीं हो रही है। रात्रि में दो-एक घण्टा आसन पर बैठने से ही ठण्ड से मानो शरीर अवसन्न हो जाता है; धूनी जलाए बिना स्थिर नहीं रह पाता। प्रतिदिन ही मैं धूनी की लकड़ी संग्रह करके रखता हूँ। फरवरी के तृतीय सप्ताह में एक दिन मैं धूनी की लकड़ी संग्रह नहीं कर पाया था; नींद खुलते ही मैं बाहर से धूनी की लकड़ी लाने का विचार करके जैसे ही आसन से उठा, उसी समय पूर्व ओर के कमरे से अपने आसन पर बैठे-बैठे ही ठाकुर ने मुझको पुकारकर कहा– **"अरे, अभी बाहर मत जाना, थोड़ी प्रतीक्षा करो; बाघ पर चढ़कर फकीर साहब आ रहे हैं, अभी चले जाएँगे।"**

मैं ठाकुर की बात सुनकर तुरन्त आसन पर बैठ गया। सोचा, 'मनुष्य क्या कभी बाघ पर चढ़कर आ सकता है? ऐसा न हो कि फकीर साहब मुझे देखकर आश्रम में आए बिना ही चले जाए, इसीलिए लगता है, ठाकुर ने बाघ की बात कहकर मुझे इस समय बाहर निकलने के लिए मना किया।' प्रातः उठकर देखा, आम के पेड़ के नीचे एवं आश्रम के दाहिनी ओर मैदान में जगह-जगह बाघ के पैरों के चिह्न हैं। अवसर देखकर ठाकुर से पूछा– फकीर के साथ में बाघ क्यों है?

ठाकुर ने कहा– **"अनेक फकीर तान्त्रिक साधना की किसी प्रणाली को ग्रहण करके साधन-भजन करते हैं। ये लोग शक्ति के उपासक हैं। साँप, बाघ को साथ में रखना इन लोगों के लिए आवश्यक होता है।"**

मैंने कहा– फकीर साहब रात्रि के समय क्यों आते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"मिलने के लिए।"**

मैंने कहा– आप तो आसन छोड़कर उठते नहीं। किस प्रकार भेंट होती है?

ठाकुर ने कहा– **"वह हो जाती है।"**

मैंने फिर पूछा– इन सब फकीरों को क्या हम लोग रात्रि में बाहर रहने से देख सकते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"वे लोग कृपा करके दर्शन दें, तो देख सकते हो।"**

आज महाभारत पाठ होने के बाद, ढाई बजे एक दीर्घाकृति के वृद्ध मुसलमान फकीर आम के पेड़ के नीचे आए। फकीर के आते ही ठाकुर ने उन्हें बड़े आदरपूर्वक बैठाया। फकीर साहब को देखकर लगा, उनकी आयु 80 वर्ष होगी; परन्तु उनकी बातों से जो लगा, उससे अनुमान होता है कि और भी अधिक है। 30 वर्ष से भी अधिक समय से वे लोकालय परित्याग करके गेण्डारिया के घने जंगल में रहकर साधन-भजन कर रहे हैं। धर्म के सम्बन्ध में उन्होंने ठाकुर के साथ इंगित कर-करके सांकेतिक भाषा में जो सब बातें की, वह कुछ समझ नहीं पाया। बातों-बातों में फकीर साहब ने कहा– 'बहुत समय तक मैंने जहाज में नौकरी की। नये-नये देशों की खोज करना ही हम लोगों का काम था। एक बार हिन्द महासागर के दक्षिण समुद्र में जाते-जाते हम लोगों ने दूरबीन से एक देश देखा, देश देखने में बहुत बड़ा लगा। क्रमशः हम लोग उसी ओर जहाज चलाने लगे। एक दिन दूर से अचानक एक जहाज ने हम लोगों को देखते ही सीटी बजाकर आगे जाने से रोक दिया। फिर उस जहाज के साथ मिलकर हम लोग और भी कुछ दूर दक्षिण की ओर अग्रसर होकर देखे, बहुत दूर तक फैला हुआ विशाल भँवर भयंकर प्रवाह से साँय-साँय ध्वनि के साथ एक केन्द्र-स्थान में गिर रहा है। उस प्रवाह में एक बार जहाज चले जाए, तो फिर किसी भी उपाय से उसकी रक्षा

नहीं की जा सकती। उस जहाज के लोगों से सुना कि उस स्रोत में पड़कर कई जहाज डूब गए हैं। लगता है, समुद्र में ऐसी कोई वस्तु है जो जहाज को आकर्षित करके डुबा देती है अथवा जल का ही ऐसा गुण है कि उसमें कुछ तैर नहीं पाता। उस भँवर के बाहर रहकर कुछ दिन तक हम लोग घूमते रहे। विशेष तिथि में उस भँवर के केन्द्र-स्थान पर सोने के जैसे रंग का अत्यन्त उज्ज्वल बहुत बड़े एक पीपे (ड्रम) के समान मानो कुछ दिखलाई पड़ता है, फिर डूब जाता है। वह क्या था, दूरबीन द्वारा देखकर भी हम लोगों को कुछ समझ नहीं आया। भँवर की सीमा का अतिक्रम करके उस देश में पहुँचने का हम लोगों को कोई अवसर नहीं मिला।'

मैंने पूछा– रामायण में जो लंका की कथा है, यह देश क्या वही लंका है?

ठाकुर ने कहा– **"वह भी हो सकता है। अभी जिसे लंका कहते हैं, वह सिलोन है, लंका नहीं है। समुद्री मार्ग से जहाज के द्वारा लंका में जाना असम्भव है। आकाशमार्ग से भी वहाँ सहज में नहीं जा सकते। जल आकर्षित कर लेता है, ऐसा सुना गया है। लंका के चारों ओर भँवर का विवरण भी मिलता है। लंका बहुत दूर है।"**

फकीर साहब ने कहा– 'फिर एक बार हम लोग उत्तर महासागर गए थे; वहाँ भी हम लोगों ने उत्तर की ओर जाते-जाते एक बहुत ही विशाल देश देखा। बर्फ काटकर हमारा जहाज अधिक दूर जा नहीं सका। हम अपने बड़े साहब के साथ कुछ खाने की वस्तुएँ लेकर एक द्रुतगति से चलने वाली यान्त्रिक गाड़ी द्वारा बर्फ के ऊपर से उस देश की ओर गए। हम उस देश के दक्षिण प्रान्त में पहुँचे। हमने देखा, वहाँ भी मनुष्य हैं; उन लोगों की आकृति बिल्कुल हमारे समान ही है, किन्तु मुख घोड़े के जैसा है। वे गाना बहुत अच्छा गाते हैं। स्वर बड़ा ही मधुर है। उनके भीतर बड़ी दया है– व्यवहार से समझ में आ गया।'

ठाकुर ने कहा– **"उस देश को किंपुरुषवर्ष कहते हैं। घोड़े के समान मुख वाले मनुष्य वहाँ वास करते हैं, पुराणदि में इस प्रकार का वर्णन है। वे लोग असभ्य नहीं हैं; बहुत शिष्ट हैं।"**

रमना के बूढ़े शिव की कृपा: ठाकुर की पूर्वजन्म-स्मृति की बातें

17 फरवरी, बुधवार। ढाका शहर के उत्तर दिशा में प्राचीन रमना का अधिकांश स्थान भयंकर जंगल से परिपूर्ण है। उस जंगल में दिन के समय भी कोई अकेले जाने का साहस नहीं कर पाता। वहाँ कहीं-कहीं प्राचीन खँडहर दिखाई पड़ते हैं। ठाकुर के साथ हम लोग उस जंगल के भीतर प्रवेश करके एक मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर में दो-तीन नानकशाही संन्यासी रहते हैं। सुना है, लगभग चार सौ वर्ष

पहले जब गुरुनानक ढाका आए थे, उस समय से उनका पद-चिह्न यहाँ पर है। साधु लोग यहाँ निर्जन जंगल में रहकर इस पद-चिह्न की सेवा-पूजा करते हैं। उन्होंने हम लोगों को बड़े आदरपूर्वक बैठाया एवं 'कड़ा प्रसाद' दिया।

ठाकुर वहाँ से बाहर निकलकर रास्ते से कुछ दूरी पर वन के भीतर बूढ़े शिव के मन्दिर में हम लोगों को ले गए। बूढ़े शिव को साष्टांग प्रणाम करके मन्दिर के सामने एक वडे प्राचीन वट-वृक्ष के नीचे बैठते ही ठाकुर समाधिस्थ हो गए। सब गुरुभाई भी चुपचाप बैठकर भगवान् का नाम जपने लगे। इस समय अचानक दो-तीन सेकेण्ड के भीतर एक अलौकिक घटना घटी। भगवान् महेश्वर की असीम कृपा का आश्चर्यजनक निदर्शन स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष करके कई लोग बिल्कुल मुग्ध हो गए। कुछ लोग 'यह क्या हो गया' कहकर चंचल दृष्टि से ऊपर देखने लगे। हम सब घटना के बारे में सोचते-सोचते दिन ढलने पर गेण्डारिया आश्रम आ गए।

मैंने पूछा– जहाँ पर कभी गया नहीं, जिस स्थान को कभी देखा भी नहीं, वैसे किसी-किसी स्थान पर जाने से लगता है, मानो पहले कभी उसे देखा है। ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर ने कहा– **"पूर्वजन्म में जिन सब स्थानों के साथ विशेष सम्बन्ध रहता है, वहाँ पहुँचने से किसी-किसी को वह स्थान परिचित जैसा लगता है।"**

यह कहकर ठाकुर अपने पूर्वजन्म की स्मृति के विषय में कहने लगे–

"गया में जब मैं था, एक दिन घूमते-घूमते फल्गु नदी के दूसरे छोर पर स्थित रामगया पहुँचा। वहाँ एक मन्दिर में नृसिंहदेव का दर्शन किया, तभी मुझे लगा मानो पहले कभी मैंने इस मूर्ति को देखा है। उसके बाद मुझे धीरे-धीरे सारी बातों का स्मरण होने लगा! वहाँ फल्गु के किनारे पुराने घाट पर एक पीपल का पेड़ है, उस पेड़ के पश्चिम ओर की एक डाल में चाकू से गोदकर मैंने बड़े-बड़े अक्षरों में 'ॐ राम' लिखा था; मुझे उसका भी स्मरण हुआ; तुरन्त उठकर उस पेड़ के पास पहुँचा, देखा कि मेरा वही लिखा हुआ अक्षर उस डाल में है। डाल के बढ़ने के साथ-साथ उस समय अक्षर भी बहुत दूर-दूर हो गए थे। उसके बाद रामगया में जहाँ पर रहकर मैंने साधन-भजन किया था, उसका स्मरण हुआ एवं उस समय मेरे साथ में जो दो परमहंस थे, उनका भी स्मरण हुआ। फिर कई बातों की स्मृति जागी। पहाड़ के चारों ओर घूम-घूमकर वही सब स्थान एवं चिह्न देखकर मैं चकित हो गया। पूर्वजन्म की समस्त स्मृतियाँ उस दिन उस समय जागृत हो उठीं।"

"अनेक तीर्थों का दर्शन एवं कई स्थानों में भ्रमण करते-करते कोई पूर्वजन्म के भजन-स्थली में या विशेष सम्बन्ध रखने वाले किसी स्थान में पहुँच जाता है, तो एकाएक उनके पूर्वभाव या स्मृति का क्षणभर में उदय हो सकता है। बहुत साधन-भजन से भी यह सहज में नहीं होता। किसी स्थान के साथ, किसी विग्रह के साथ किसके जीवन का क्या सम्बन्ध है, कहा नहीं जा सकता। समस्त संयोग होने से किसी-किसी के भाग्य में उसका प्राकट्य होता है। सभी का होगा, ऐसा भी नहीं है!"

प्रश्न– किसी दूषित अस्वच्छ स्थान पर जाने से कई बार देखा जाता है, मन वहाँ प्रफुल्लित हो उठता है, चित्त में मानो अपने-आप उत्साह आ जाता है। फिर अत्यन्त स्वच्छ सुन्दर बगीचे में जाने से मन मानो विरक्तिपूर्ण हो जाता है, चित्त चंचल हो उठता है। इसका कारण क्या है?

उत्तर– **विशेष-विशेष भाव से जिन-जिन स्थानों पर जो-जो कार्य अनुष्ठित हुआ करते हैं, उन समस्त भाव से वे सब स्थान प्रभावित रहा करते हैं। वहाँ पर जाने से वही समस्त भाव चित्त को स्पर्श करते हैं। चित्त जितना निर्मल होता है, इन सबकी उतनी ही अनुभूति होती है; अन्यथा नहीं होती। साधन-भजन, तपस्या, देवी-देवताओं का अनुष्ठान, महापुरुषों का वास अथवा परलोकगत पुण्यात्माओं का अवस्थान जिन सब स्थानों पर होता है, हजार वर्षों के बाद भी वहाँ जाने से वही समस्त भाव चित्त को अभिभूत करते हैं। उसी प्रकार जिन सब स्थानों पर भयंकर अत्याचार, अनाचार, दुष्कर्म आदि का अनुष्ठान होता है, बहुत समय बाद भी वहाँ जाने से वे सब भाव चित्त को स्पर्श करते हैं। चित्त निर्मल होने से ही स्थान के प्रभाव को समझा जा सकता है।**

आदेश पालन में असमर्थता: ठाकुर की सहानुभूति और उपदेश

19 फरवरी, शुक्रवार। स्वभाव में जो समस्त दोष बहुत समय से विद्यमान हैं एवं जिसे अति तुच्छ समझकर इतने समय से उसकी ओर बिल्कुल ध्यान भी नहीं देता था, सोचता था– 'इन सब दोषों को छोड़ने के लिए अब प्रयास क्यों करेंगे? इच्छा मात्र से ही तो त्याग कर सकते हैं।' अब उसे छोड़ने का प्रयास करने पर देखता हूँ, एक को भी छोड़ नहीं पा रहा हूँ। मूल कारण की खोज करने पर देखा, इन सब दोषों की जड़ स्वभाव के इतने जटिल तल पर जाकर प्रवेश कर गई है कि उसका छोर ही नहीं मिलता। स्वभाव का वही बिन्दुमात्र दोष अब मानो अपार सागर लगता है। अपनी दुर्बलता का बोध होने पर निराश होकर ठाकुर से कहा–

साध्यानुसार चेष्टा करके स्वभाव के एक भी दोष को तो छोड़ नहीं पा रहा हूँ। अब क्या करूँ?

ठाकुर ने बड़े स्नेहपूर्वक सहानुभूति करते हुए कहा– **"स्वभाव के दोष का क्या कोई इच्छा मात्र से ही त्याग कर सकता है? 'निषेध का त्याग' और 'विधि का अनुष्ठान'– इसमें निषेध के त्याग की अपेक्षा विधि का अनुष्ठान ही सहज है। विधि का अनुष्ठान करते-करते निषिद्ध विषय अपने-आप धीरे-धीरे दूर होने लगते हैं। नियमों का प्रतिपालन करते हुए चलने की चेष्टा करो, सारे दोष अपने-आप ही दूर हो जाएँगे।"**

मैंने कहा– आपने जिन समस्त नियमों का पालन करके चलने को कहा है, वह तो ठीक से नहीं कर पाता।

ठाकुर ने कहा– **"प्रयास करते जाओ। पालन कर पाते हो या नहीं, उधर ध्यान मत दो। ब्रह्मचर्य-आश्रम में जो नियम-व्यवस्था है, उसे क्या लोग सहज में कर सकते हैं? इसीलिए 12 वर्ष का समय दिया गया है। 12 वर्ष के प्रयास में धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। दो-चार बार के प्रयास में सफलता नहीं मिलने से हाथ-पैर चलाना छोड़ नहीं देते; जितने दिनों तक ठीक नहीं होता है, तब तक प्रयास करना पड़ता है।"**

मैंने पूछा– जिन सब नियमों का प्रतिपालन और निषेध का परित्याग करने के लिए आपने कहा है, उसे नहीं कर पाने से क्या आप अपराध मानेंगे?

ठाकुर ने कहा– **"बिल्कुल नहीं। मैं तो कितना ही कहूँगा, फिर क्या ठीक प्रकार से सब कर सकोगे? ऐसा होने से तो सिद्ध ही हो जाओगे। जितना कर सकते हो, करते जाओ। प्रयास करके भी यदि न कर सको, तो कोई दोष नहीं होगा। इच्छापूर्वक कोई अनियम नहीं करना चाहिए। एकाएक जो हो जाता है, उसे स्वयं ही किए हो ऐसा क्यों सोचते हो? 'स्वयं किया हूँ', यह सोचना ही तो अपराध है। सब कुछ भगवान् के ऊपर छोड़ देना चाहिए। वे ही सब कर रहे हैं, वे ही सब करा रहे हैं– यह समझ जाने से ही शान्ति है।"**

मैंने कहा– किसी दूषणीय कार्य को न करने के लिए बारम्बार चेष्टा करने पर भी जब परास्त होकर कर डालते हैं, तब भी तो अनुताप होता है; लगता है, और भी चेष्टा करने से उससे बच सकता था।

ठाकुर ने कहा– **"यथार्थ पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, हम लोग कुछ तो समझते नहीं हैं! बचपन से देख-सुनकर अच्छे-बुरे का केवल एक संस्कार बन गया है। यथार्थ तत्त्व को समझना बहुत कठिन है। लोक-लज्जा से,**

लोगों के डर से हम लोग कुछ-कुछ कार्य नहीं करते; सोचते हैं– पाप है। वास्तव में वह पाप है या नहीं, ठीक-ठीक नहीं कह सकते। पाप, पुण्य सबका एक-एक स्वरूप है, उसे देखने से ही पाप क्या है, पुण्य क्या है, लोग ठीक-ठीक समझ सकते हैं। किसी कार्य में पाप का बोध होने पर उसे क्या वह पुनः कर सकता है? अभी जिसे पाप, पुण्य समझ रहे हो, सब एक संस्कार मात्र है।"

बारदी निवासी जमींदार, ढाका जगन्नाथ कॉलेज के वर्तमान प्रसिद्ध प्रिन्सिपल हमारे श्रद्धेय गुरुभाई श्री कुंजलाल नाग जी ने किसी समय विविध प्रसंग पर बातचीत करते हुए एक दिन ठाकुर से कहा था– 'हम लोग प्रतिदिन ढेरों अपराध किया करते हैं, उसके साथ आपने और एक बड़ा अपराध जोड़कर मानो हम लोगों को और भी संकट में डाल दिया है।'

ठाकुर ने कहा– **"क्यों?"**

उत्तर– आपने जिन सब विधि-निषेधों की व्यवस्था की है, उसका प्रतिपालन करना बड़ा कठिन है। हम लोगों के अन्य अपराध के ऊपर गुरु-आज्ञा का उल्लंघन के नाम से और भी बड़ा अपराध जुड़ गया है।

ठाकुर ने बड़े स्नेहपूर्वक कहा– **"इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त ठीक किए हो?"**

कुंज बाबू– 'मैंने मन-ही-मन एक समन्वय कर लिया है, वह ठीक है या नहीं, आप जानते हैं।'

ठाकुर ने कहा– **"क्या समन्वय किया है?"**

उत्तर– आपके विधि-निषेध देखने में सहज लगने पर भी है बहुत कठिन। एक दिन भी यदि उसका प्रतिपालन करके चल पाएँ, तब तो जीवन्मुक्त हो जाएँगे। आप ऐसी आशा या इच्छा नहीं करते कि एक दिन में हम लोग उसका पालन करने में समर्थ हो जाएँ। कुछ उच्च लक्ष्य हम लोगों के समक्ष रख दिए हैं। उसकी ओर दृष्टि रखकर सावधानीपूर्वक चेष्टा करके चलने से क्रमशः हम लोग उन लक्ष्यों को पूरा करने में समर्थ होकर धन्य हो जाएँगे, यही आपका अभिप्राय है। वैसा नहीं होने पर हम लोगों के कल्याण के बदले में अकल्याण का पथ प्रस्तुत हो गया है– समझ लेना होगा।

ठाकुर ने कहा– **"ठीक है, ठीक है, यही तो ठीक है।"**

साधु के प्रति अनादर और उत्पीड़न से संकट

21 फरवरी, रविवार। आज अपराह्न में शहर से कई लोग ठाकुर के पास आए। धर्म के विषय में नाना प्रकार की बातचीत होने लगी।

एक सज्जन ने ठाकुर से कहा– 'सुनते हैं, भारतवर्ष में लाखों की संख्या में साधु-संन्यासी हैं, वे लोग बंगाल में क्यों नहीं आते?'

ठाकुर ने कहा– **"इस सम्बन्ध में मैंने किसी-किसी जमात के महन्तों से पूछा था, उन्होंने कहा, 'बंगाल में उनका आदर-सत्कार नहीं होता, रहने का स्थान भी नहीं है। यहाँ आने पर आहार और निवास की असुविधा होने से उन लोगों को भागना पड़ जाता है।' भारतवर्ष के लगभग सभी स्थानों पर साधुओं के रहने के लिए बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ, अन्न-क्षेत्र आदि हैं; इच्छानुसार साधु लोग उसमें आराम से रह सकते हैं। स्थानीय जमींदार, राजा, महाराजा आदि धनी लोग सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ देकर उन लोगों की सेवा करते हैं। बंगाल में उस प्रकार का स्थान नहीं है, फिर उनकी सेवा करने वाले लोग भी नहीं हैं; वरन् चोर, बदमाश समझकर बंगाली लोग उनकी अवज्ञा ही करते हैं।"**

एक व्यक्ति ने कहा– 'पश्चिम अँचल के निम्न स्तर के लोग भोजन न मिलने के कारण शरीर में भस्म लगाकर लंगोटी पहनकर साधु बन जाते हैं। अनेक गुण्डे, बदमाश भी साधु के वेश में घूमते हैं। सुविधा मिलने पर वे लोग सब जगह चोरी, डकैती करते हैं। अच्छे साधु लोग थोड़ा परिचय भी तो दे सकते हैं।'

ठाकुर– **"ठीक प्रकार से परिचय लेने पर वे लोग परिचय देते हैं। कई लोग साधु की परख करने के कारण संकट में भी पड़ जाते हैं।**

यह कहकर ठाकुर ने कुछ दिन पहले की एक घटना का उल्लेख किया। घटना इस प्रकार है– "एक बार गंगासागर के पथ पर साधुओं का एक दल रामपुरहाट में कुछ दिन रुका था। रास्ते के किनारे खुले मैदान में वे लोग रात-दिन धूनी जलाकर रहते थे। स्थानीय सज्जन लोग अपराह्न में उनके दर्शन करने आते थे। एक वकील बंगाली बाबू प्रतिदिन आकर साधु लोगों का हास-परिहास करने लगते। क्रमशः उन्होंने साधुओं को सताना आरम्भ कर दिया। स्थूल शरीर के किसी साधु को देखकर वे साधु के पेट में छड़ी कोंचकर कहते, 'अरे तुम तो हलुआ, मालपुआ के सिद्ध हो, कितना खाता है'; किसी साधु की जटा हिलाकर कहते, 'चोरी का कितना माल इसमें रखा है?' रात्रि में चोरी करता है और दिन में साधु बनकर बैठा है।' साधु लोग उस बंगाली बाबू को देखकर ही भय से सकुचा जाते थे। जमात में एक सिद्ध पुरुष थे, उन्होंने महन्त से कहा, 'महाराज,

बंगाली बाबू प्रतिदिन बड़ा अपराध करके जाता है, उस पर थोड़ी कृपा कीजिए।' महन्त ने कहा, 'बंगाली लोग साधु को नहीं मानते।' एक दिन उस बाबू ने आकर महन्त से कहा, 'ओ साधु! तुम गाँजा में तो खूब दम मारते हो, इसमें तो बड़ी करामात है। और कुछ करामात दिखा सकते हो?' इसी समय उस सिद्ध पुरुष ने वकील बाबू को बुलाकर बड़े तेज स्वर में कहा, 'अरे बंगाली बाबू, क्या बोलते हो? साधु की कुछ करामात देखोगे? अच्छा, लड़का-बच्चा लेकर गृहस्थी करता है न; ठीक है, चले जा घर और जाकर साधु की करामात देख।' साधु की बात सुनकर वकील बाबू चौंक गए, उनका मुख सूख गया; वे तीव्र गति से घर की ओर गए। रास्ते में देखा, उनका नौकर दौड़कर आ रहा है। बाबू को देखकर उसने चिल्लाते हुए कहा, 'बाबू आपके लड़के को साँप ने डस लिया है।' बाबू घर जाकर लड़के को मूर्च्छित दशा में देखकर एकदम बेचैन हो उठे; तुरन्त ओझा, वैद्य, डॉक्टर आदि को बुलाकर जितने प्रकार के उपाय करने के हैं, किए; परन्तु सभी निष्फल हो गए। तब साधु की इच्छा से ही इस प्रकार घटित हुआ समझकर वे पत्नी के साथ उस साधु के पास गए एवं अत्यन्त विलाप करते-करते साधु के पैरों को पकड़ लिए। साधु ने कहा– 'अब क्यों आए हो? साधु की करामात देखो न? अब तीन रोज बाद आ जाना।' साधु की बातों से आश्वासन पाकर वकील बाबू ने लड़के को एक कमरे में रख दिया, उसका शरीर फूल गया। तीन दिन बाद फिर उन्होंने साधु के पैर पड़कर औषधि माँगी; साधु ने धूनी से कुछ भस्म लेकर बाबू के हाथ में देकर कहा, 'अपने हाथ से सौ घड़ा पानी लेकर लड़के के सिर में डाल दो और यह भस्म अच्छे-से उसके शरीर में मल दो; आधे घण्टे के बाद लड़का ठीक हो जाएगा।' साधु यह कहकर उसी समय जमात छोड़कर चले गए। बाबू के वैसा करने पर लड़का स्वस्थ हो गया। सभी चकित हो गए। बाबू ने फिर साधु को बहुत ढूँढ़ा, लेकिन वे मिले नहीं।"

स्वप्न– कर्म का उपदेश

23 फरवरी, मंगलवार। ठाकुर मुझे कुछ दिनों से आश्रम के सब लोगों की सेवा और बाहर का कार्य करने के लिए कह रहे हैं। प्रातः से संध्या तक अपना नियमित कार्य करके प्रायः अवसर नहीं मिलता; नाम-जप करने में कभी-कभी उदासीनता आने पर भी बाहर के किसी कार्य या किसी की सेवा करने की इच्छा नहीं होती। मैं उस समय कुछ प्रश्न उठाकर ठाकुर के ही साथ बातचीत करता हूँ। कल रात्रि में स्वप्न देखा, एक महात्मा ने आकर मुझसे कहा, 'गुरु जैसा कहते हैं, ठीक वैसा ही करते जाओ, उससे कभी निरुत्साहित नहीं होना। कर्म का त्याग नहीं करते। जब तक विशुद्ध सत्त्वगुण की प्राप्ति नहीं होती, तब तक कर्म करना होगा;

रजो-तमोगुण जब तक हैं, कर्म किए बिना छुटकारा नहीं मिलेगा। आलस्य से कर्म नहीं करने पर फिर भुगतना होगा। वैध कर्म द्वारा रजो-तमोगुण नष्ट हो जाते हैं।' स्वप्न की बात ठाकुर को बतलाने पर उन्होंने कहा– **"समय दीर्घ लगने पर अथवा नाम-जप करने में उदासीनता आने पर बैठे नहीं रहते, बाहर का कार्य करना चाहिए। उस समय बलपूर्वक नाम जपने से नाम में और भी शुष्कता आती है। उससे अनिष्ट होता है।"**

मैंने कहा– मुझे लगता है, बाहर का कार्य करने की अपेक्षा उस समय बलपूर्वक नाम-जप या पाठ करने से अधिक उपकार होता है।

ठाकुर ने कहा– **"वैसा कुछ नहीं है। बाहर का कार्य करना और नाम-जप करना, मैं तो दोनों को समान समझता हूँ। सभी तो कर्म है। लक्ष्य निश्चित होने से ही सब हो जाता है। बात है, कर्म करने की; किसको किस कर्म से कौन-सी वस्तु प्राप्त होती है, कौन कह सकता है? लक्ष्य स्थिर रखकर कपड़े की सिलाई ही करो या नाम का जप करो, एक ही बात है। जीवन की गति किस ओर है, वह ठीक न होने तक इसी प्रकार करना पड़ता है। अभी भी तुम्हारे जीवन की कोई दिशा ठीक नहीं हुई है। जब वह ठीक हो जाएगी, तब एक ही प्रकार का कर्म करना। जीवन की गति ठीक होने पर यह जीवन किस ओर किस पथ से होकर जाएगा, कह नहीं सकते। सब लोगों का एक पथ तो नहीं है; नाना पथ से चलकर मनुष्य लक्षित वस्तु प्राप्त करता है। बैठे नहीं रहते; तभी क्रमशः एक में जाकर स्थिर होगे।"**

स्वप्न– प्रलय का दृश्य

26 फरवरी, शुक्रवार। कल रात्रि में एक भयानक स्वप्न देखा। देखा कि दिन प्रायः ढलने वाला है। मैं भोजन बनाने बैठा हूँ, अचानक कमरे में कम्पन होने लगा। कुछ सेकेण्ड में बार-बार भूकम्प होने लगा। बैठकर भी मैं स्थिर नहीं रह पाया। चारों ओर भयंकर ध्वनि सुनकर कमरे से बाहर निकल गया। भयंकर दृश्य देखा, पूरे आकाश में फैला हुआ भयंकर चक्रवात ग्रह-उपग्रह सहित समूचे ब्रह्माण्ड को चक्राकार घुमाते-घुमाते मानो कहीं ले जा रहा है। धूल से सारा आकाशमण्डल पूर्णतः आच्छादित हो गया है। असंख्य कौए, चील, बाज आदि सभी पक्षी बवंडर में पड़कर भँवर में तृण की भाँति घूमते-घूमते पृथ्वी की ओर आकर गिर रहे हैं। चारों ओर चटचट शब्द करके एक साथ पत्थर गिर रहे हैं। भयानक दुर्लक्षण देखकर मैं अचानक पश्चिम दिशा में आकाश की ओर ताकने लगा; देखा, झलमलाता हुआ एक सूर्य उस ओर से उदित हुआ। विस्मित होकर उस समय

मैं आकाश के चारों ओर ताकने लगा; देखा, सभी दिशा में एक-एक करके सूर्य उदित हो गए हैं। धीरे-धीरे 10-12 भयंकर तीव्र तेजोमय सूर्य का एक साथ बढ़ता प्रकाश और उनका बारम्बार कम्पन देखकर स्तब्ध हो गया। उस समय उन सबके साथ पृथ्वी भी भयंकर साँय-साँय ध्वनि करती हुई नक्षत्र के वेग से नीचे की ओर मानो कहीं जाने लगी। मैं तुरन्त आसन पर बैठकर गुरुदेव के श्रीचरणकमल का ध्यान करते हुए 'जयगुरु, जयगुरु' कहते-कहते तल्लीन हो गया। थोड़े समय बाद देखा, सब शान्त हो गया है, पूरा सन्नाटा छा गया! उसी समय मैं जाग गया।

ठाकुर ने स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर कहा– **"भविष्य के प्रलय का ही दृश्य देखे हो। प्रलय अनेक प्रकार के हैं। जो देखे हो, वह इस सौर जगत् का प्रलय है; वैसा ही एक समय शीघ्र आएगा।"**

* * *

मार्च, सन् 1892 ई०

स्वप्न– ठाकुर का देहत्याग का प्रयास

1 मार्च, मंगलवार। तीन-चार दिन हो गए, स्वप्न में प्रलय का दृश्य देखे हुए; कल फिर उसकी अपेक्षा भयानक स्वप्न देखकर मन बहुत खराब हो गया। देखा– हम बहुत-से लोग एक स्थान पर ठाकुर के साथ में हैं। ठाकुर ने उत्तर की ओर आसन लगाकर बैठते हुए कहा, 'मेरा काम पूर्ण हो गया; अब मैं देहत्याग करूँगा।' फिर हम लोगों की ओर देखकर कहा, 'श्रीवृन्दावन में अपना कपड़ा छोड़ आया था, उसे कोई लेकर आ सकता है?' मैं तुरन्त श्रीवृन्दावन चला गया एवं वहाँ से कुछ क्षण के भीतर कपड़ा लाकर दे दिया। उस समय सब गुरुभाई-बहिन ठाकुर को घेरकर खड़े हो गए। मैं ठाकुर के बायीं ओर, एक हाथ की दूरी पर हूँ। ठाकुर सब लोगों की ओर स्नेहपूर्वक देखकर, प्रत्येक को एक-एक करके कुछ-कुछ देने लगे। सब लोगों की अपेक्षा ठाकुर के निकट रहने पर भी मुझे उन्होंने कुछ नहीं दिया। फिर देहत्याग के समय समाधिस्थ होते-होते एकाएक उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा, 'क्यों, तुमको कुछ दिया नहीं?' यह कहकर अपने मस्तक के सामने से कोई वस्तु मुट्ठी से उठाकर मेरे हाथ में देते हुए कहा, 'अच्छा, तुम इसको लो।' उसे पाते ही मैंने मस्तक में रख लिया। मैं भाव के आवेश में उन्मत्त होकर नृत्य करने लगा। कुछ क्षण बाद उस वस्तु को नीचे फेंककर आसन बनाकर उस पर बैठ गया और नाम जपने लगा। फिर उसी समय जाग गया।

ठाकुर को स्वप्न का वृत्तान्त बतलाकर पूछा– मैं तो कभी ऐसी कल्पना भी नहीं करता, फिर इस प्रकार क्यों देखा?

ठाकुर ने कहा– **"क्यों देखे हो, कह नहीं सकते। इन सब स्वप्न को लिखकर रखना चाहिए। सभी स्वप्न असत्य नहीं होते। एक स्वप्न को मैंने 20 वर्ष बाद में सत्य होते देखा है।"**

मैं– जिस वस्तु को मस्तक पर एक बार स्पर्श करने से कृतार्थ हो जाते हैं, उसको नीचे फेंककर आसन बनाकर उसके ऊपर बैठने की प्रवृत्ति मेरी क्यों हुई?

ठाकुर ने कहा– **"वह है, शक्ति। भगवान् का नाम लेने के लिए शक्ति के ऊपर ही तो बैठना पड़ता है।"**

इसके बाद ठाकुर ने कुछ क्षण चुप रहकर कहा– **"तुम्हारे सब भाइयों के भीतर वैष्णव का बीज विद्यमान है। अभी वे किसी भी भाव में रहें, बाद में सभी का वैष्णव भाव रहेगा।"**

ठाकुर देह त्याग देंगे सोचकर कहाँ दुःख से अधीर होने की बजाय वह वस्तु ठाकुर मुझे देंगे सोचकर गर्व होने लगा। हाय रे दशा! ये तो मेरी अवस्था है!

कृपणता में अनुशासन: कमरे का वसीयतनामा किसके नाम करोगे

3 मार्च, गुरुवार। आश्रम के दक्षिण ओर के कमरे में प्रातः व संध्या के समय अनेक लोग आते हैं। यही कमरा बैठकखाना है। अतएव यहाँ आसन पर शान्त भाव से बैठना सम्भव नहीं है। आज ठाकुर से कहा– दक्षिण ओर के कमरे में सर्वदा ही लोगों की हलचल रहती है। वहाँ पर साधना करने में बड़ी असुविधा होती है। वहाँ सब निरर्थक बातें करते हैं, फिर कुछ कहने से झगड़ा होता है।

ठाकुर ने कहा– **"वहाँ असुविधा होने से अन्यत्र तो जा सकते हो? पेड़ के नीचे, यहाँ-वहाँ, आश्रम में स्थान का तो अभाव नहीं है। बात है, नाम-जप करने की; वह तो जहाँ-तहाँ कहीं भी बैठकर हो सकता है। अनेक लोग जहाँ मिलकर आनन्द करते हैं, वहाँ उनको बाधा देकर अपनी सुविधा की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।"**

मैंने कहा– आश्रम के दक्षिण-पूर्व कोने में तालाब के किनारे आप यदि कहें तो एक छोटा कमरा बनवा सकता हूँ। तब फिर कोई असुविधा नहीं रहेगी।

ठाकुर ने कहा– **"उसके बाद? कहीं चले जाने पर उस कमरे की वसीयत किसके नाम पर करके जाओगे?"**

ठाकुर की बात सुनकर चुप रह गया, मन में बहुत ही कष्ट होने लगा। सोचने लगा, 'ठाकुर ने मुझसे यह बात क्यों कही?'

रात्रि के समय ठाकुर ने मेरे सम्बन्ध में महेन्द्र बाबू से कहा– **"उसके**

साधन-भजन से जो थोड़ा-बहुत हो रहा है, एक कृपणता के दोष से वह मिट्टी में मिल जा रहा है। उसके पास सौ रुपये हैं, बड़े यत्न से जमा किया है। उसे किसी प्रकार से खर्च करवा सकते हो? कृपणता संकीर्णता है कि नहीं? धर्मार्थियों के स्वभाव में एक भी दोष रहता है, तो उसके कारण साधन-भजन के समस्त फल ही नष्ट हो जाते हैं। अभी से इस विषय में सावधान नहीं होने से क्रमशः घटनाओं में पड़कर, धक्का खा-खाकर ठीक होगा।"

ठाकुर ने इस समय छोटे भैया की उदारता की बड़ी प्रशंसा की। 'कमरे का वसीयतनामा किसके नाम पर करके जाओगे?' ठाकुर की इस बात का तात्पर्य अब मुझे समझ आया। ठाकुर के मुख से वह बात सुनकर मैं बहुत उत्तेजित हो गया। सोचा, 'आवश्यक वस्तु के अभाव से जब तक उद्वेग, अशान्ति व कष्ट का अनुभव होता है, तब तक बिना परिश्रम के रुपये संचय करके उस क्लेश और अशान्ति की निवृत्ति के लिए व्यवस्था करना दोष हुआ! सर्वदा अभाव भोग करके मन यदि अशान्तिपूर्ण रहा, तो साधन-भजन कैसे करूँगा? रुपयों का संचय तो साधन-भजन की ही सुविधा के लिए किया है, विलासिता के लिए तो नहीं किया। ठाकुर इतना सब समझते हैं, मेरे इस अच्छे अभिप्राय को समझे नहीं!'

मेरी संकीर्णता: ठाकुर का उपदेश और भिक्षा की व्यवस्था

4 मार्च, शुक्रवार। कल ठाकुर से अपनी संकीर्णता के बारे में सुनने के बाद से भयंकर यन्त्रणा का भोग कर रहा हूँ। अन्तःकरण मानो दग्ध होता जा रहा है। अभाव के कारण मेरी यह कृपणता है या मेरे स्वभाव में ही संकीर्णता है, यह मैं स्पष्ट रूप से समझ नहीं पा रहा हूँ। ठाकुर ने कहा है कि **'क्रमशः धक्का खाकर, मेरा यह दोष दूर होगा।'** फिर धक्का भी तो कम नहीं खा रहा हूँ! दोष दूर कहाँ हो रहा है? कुछ दिन हुए, आश्रम के भण्डार में 'घी का अभाव है', नानीजी के यह कहने पर मैं ठाकुर की सेवा के लिए आधा छटाक घी प्रतिदिन दे देता था। पाँच-छः दिन उस प्रकार देने के बाद एक दिन मुझे लगा, 'अच्छा है! आश्रम के भण्डार में घी तो आ नहीं रहा है, नानीजी ने भी अच्छी सुविधा ढूँढ़ ली। वे लोग जब तक घी नहीं लाते, तब तक तो ठाकुर की सेवा के लिए मुझे इस प्रकार घी देना होगा! इतने कष्ट से मैं घी संग्रह करता हूँ; इसी प्रकार प्रतिदिन देने से तो मेरे होम का एक महीने का घी दस दिन में ही समाप्त हो जाएगा।'

इस प्रकार का विचार और क्षोभ मेरे मन में आने के बाद, उसी दिन ठाकुर ने नानाजी को बुलाकर कहा– **"भोजन के समय उसका घी मुझे मत देना।**

वह घी मुझे हजम नहीं होगा।” ठाकुर की बात सुनकर सब लोग समझे कि होम का घी बहुत दिनों का संग्रह किया हुआ है– नष्ट हो गया है, इसीलिए ठाकुर ने यह बात कही; लेकिन मैं ठाकुर के कहने का तात्पर्य उसी समय समझकर इतने दिनों से भयंकर दग्ध हुआ जा रहा हूँ। मेरे अभिप्राय के अनुकूल ही तो ठाकुर ने व्यवस्था की है, फिर उसमें इतनी ज्वाला क्यों? भीतर का क्लेश असह्य लगने पर मैंने जाकर ठाकुर से कहा– मेरी संकीर्णता किस प्रकार दूर होगी, बता दीजिए। पास में जो रुपये हैं, उसका मैं दान कर डालूँ?

ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा– **“जो रुपये रखे हैं, अभी व्यय करने की आवश्यकता नहीं है; अभी रहने दो। सामयिक किसी भाव अथवा उत्साह से कोई भी काम नहीं करना चाहिए। कई बार लोग उत्साह से दान कर देते हैं, फिर अनुताप से भयंकर यन्त्रणा भोगते हैं। सभी कार्य स्वाभाविक अवस्था में धैर्यपूर्वक करना चाहिए। अब से और कुछ संचय मत करना। भाई लोग महीने-महीने में जो देते हैं, मिलते ही उसे तुरन्त व्यय कर डालना। जिस पथ पर चल रहे हो, उसमें संचय नहीं करते।”**

मैंने कहा– व्यय क्या अपने लिए करूँगा या अन्य के लिए?

ठाकुर ने कहा– **“तुम्हारे स्वयं के लिए अब क्या आवश्यकता है? आज से आहार के लिए भिक्षा करना। रुपये किसी से नहीं माँगना। भिक्षा में दैनिक प्रयोजन से अधिक नहीं लेना। कोई अधिक दे देता है, तो वह किसी को दे देना। आहार की वस्तुओं का संचय नहीं करना। स्वयं की आवश्यकता से अधिक भोजन भी नहीं बनाना। जिस दिन भिक्षा में कुछ भी नहीं जुटेगा, भण्डार से लेना। आश्रम के भण्डार की सामग्री तो भिक्षुकों के लिए ही है। इस प्रकार चलने से यदि वैसा वैराग्य उत्पन्न हो गया, तभी तो संन्यास की अवस्था हुई; अन्यथा इस समय से जिस ओर जीवन की गति होगी, उसी ओर जाना होगा। ब्रह्मचर्य-आश्रम में ही सब अभ्यास करना चाहिए। ब्रह्मचर्य ठीक होने से ही तो सब हो गया। ये सब अभ्यास अभी नहीं करोगे तो कब करोगे?”**

मैंने पूछा– भिक्षा कितने घरों में कर सकूँगा?

ठाकुर ने कहा– **“भिक्षा तीन घर तक कर सकते हो।”**

मैंने पूछा– किस-किस जाति के लोगों के घर से भिक्षा ले सकते हैं?

ठाकुर ने कहा– **“भिक्षा में चावल सभी के घर से ले सकते हो। श्रद्धा का भिक्षान्न सर्वत्र ही पवित्र है। ब्रह्मचारियों के लिए भिक्षा ही व्यवस्था है।”**

प्रथम भिक्षा ठाकुर के हाथ से: यह कैसा चमत्कार है!

ठाकुर ये बातें कहकर चुप हो गए, फिर मैं सोचने लगा– 'लोग कहते हैं, प्रथम दिन की भिक्षा में जिस भाव से जो मिलता है, सारे जीवन की भिक्षा में उसी भाव से उसी प्रकार की वस्तु मिला करती है। सम्भवतः इसीलिए उपनयन के समय प्रथम भिक्षा माँ के पास से ली जाती है। स्नेहपूर्वक सहानुभूति करके उत्कृष्ट पवित्र वस्तु ठाकुर के बिना और कौन मुझे देगा?' यह सोचकर ठाकुर से कहा– तो फिर जीवन की प्रथम भिक्षा आज आपके पास से ले लूँ?

ठाकुर ने बड़े स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा– **"ठीक है, आज मैं ही तुमको भिक्षा दूँगा, कल से अन्य घर में जाना। अभी भिक्षा इसी बस्ती में करना।"**

प्रातः ठाकुर का आदेश और उपदेश पाकर अपने आसन पर आ गया। लगभग 9 बजे देखा, आश्रम में बड़ा समारोह होने लगा। एक समृद्धशाली गुरुभाई आज ठाकुर की सेवा के लिए अधिक मात्रा में सामग्रियाँ लेकर आश्रम में आए। पुलाव, पनीर की सब्जी आदि स्वादिष्ट खाद्य ठाकुर के भोग के लिए प्रस्तुत हुआ। दिन के लगभग 1 बजे ठाकुर ने भोजन किया। भोजन के बाद उन्होंने अपना भुक्तावशिष्ट पुलाव, सब्जियाँ इत्यादि एक पत्थर की कटोरी में निकाल दिया और मुझको बुलाकर वह देते हुए कहा– **"यह लो, आज यही तुम्हारी भिक्षा है। अभी लेकर रख दो, अपने भोजन के समय पर ही खाना।"**

मैं बड़े आनन्दपूर्वक उसे ले आया एवं ढाँककर रखते हुए सोचने लगा– हाय ठाकुर! पुलाव जब दिए हो, तो गरम-गरम अभी खाने के लिए क्यों नहीं कहा? चार-पाँच घण्टे बाद वह तो बिल्कुल ठण्डा हो जाएगा। प्रथम भिक्षा का उत्कृष्ट प्रसाद हाथ में दे देने के बाद भी तृप्ति के साथ गरम-गरम खाने नहीं दिया!

ठाकुर के भोजन के बाद नियमित रूप से महाभारत का पाठ करके स्थिर होकर आसन पर बैठा रहा। ठाकुर ने अन्यान्य दिनों की भाँति साढ़े 5 बजे मुझसे कहा– **"जाओ, अब तुम जाकर भोजन करो।"** मैं भोजन करने के लिए बैठा। प्रसाद की कटोरी को स्पर्श करते ही चौंक उठा। देखा, सब्जियों सहित सारा पुलाव अच्छा गरम है, ठीक जैसे कोई उसे चूल्हे के ऊपर से लाकर रखा है। पत्थर की कटोरी में पुलाव का प्रसाद पाँच घण्टे बाद भी कैसे इतना गरम रहा, सोचकर एकदम चकित हो गया। बहुत समय तक उसे लेकर बैठे-बैठे रोता रहा। मेरे प्रसाद खाने में आज संध्या बीत गई। प्रसाद खाने के बाद रात्रि में निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा, 'संकल्प करते ही पक्षी के समान हवा में ऊपर की ओर अनन्त आकाश में उड़ता जा रहा हूँ।'

आज (5 मार्च, शनिवार) जीवन में पहली बार बाहर जाकर भिक्षा की। मनोहरा दीदी ने बड़ी श्रद्धा के साथ चावल, चना दाल, आलू, कच्चा केला, बैगन, मिर्च, सेन्धा नमक और घी भिक्षा में दिया। मैंने अपने परिमाण के अनुसार रखकर अवशिष्ट पक्षियों के खाने के लिए डाल दिया। पकाए हुए अन्न द्वारा होम करने के बाद योगजीवन, श्रीधर और पण्डित जी को एक-एक ग्रास देकर मैंने प्रसाद पाया। भिक्षान्न से मुझे बडी तृप्ति मिली।

10 मार्च, गुरुवार। इन कुछ दिनों से ठाकुर की बात सर्वदा मन में आती है। पास में रखे रुपयों को व्यय नहीं करने तक मन में बड़ी अशान्ति लग रही है। श्रीवृन्दावन में रहते समय माता ठाकुरानी ने ठाकुर को एक महाभारत देने की आकांक्षा व्यक्त की थी। मैंने ठाकुर को वही देने का निश्चय किया; इसके लिए रुपये लाने घर जाऊँगा। ठाकुर को घर जाने की इच्छा से अवगत कराने पर उन्होंने कहा– **"घर जाकर भिक्षा मत करना; माँ के मन में कष्ट होगा। जब भी घर जाओगे, माताजी का प्रसाद लेना।"**

समवयस्क गुरुभाई श्री अश्विनी कुमार मित्र को साथ में लेकर घर गया। घर पहुँचने के लिए नौका एवं सड़क से होकर जाने पर पाँच-छः घण्टे लगते हैं। इस समय के बीच कई वार 15-20 मिनट तक रास्ते में धूप, धूना, चन्दन व गुग्गुल की स्पष्ट सुगन्ध पाकर हम दोनों चकित होने लगे। विस्तृत मैदान में चलने के साथ-साथ ऐसी सुगन्ध कहाँ से किस प्रकार आ रही है, कुछ समझ में नहीं आया।

सेवा-भक्ति से विग्रह जागृत हो जाते हैं

22 मार्च, मंगलवार। इस बार घर पर माताजी ने बातों-बातों में अपने बाल-गोपाल की बात कही, सुनकर चकित हो गया। माँ के दो सुन्दर छोटे-छोटे गोपाल हैं। वे प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी सेवा-पूजा किया करती हैं। एक दिन बस्ती का एक दुष्ट लड़का हमारे घर के लड़कों के साथ खेलने आया तो उन दोनों गोपाल को देखा; खेल समाप्त होने पर कुछ क्षण रुककर, संध्या के बाद उन दोनों गोपाल को चोरी करके ले गया। माँ को इसका कुछ पता नहीं था। रात्रि के अन्तिम प्रहर में गोपाल ने स्वप्न में माँ से कहा– 'अरे, हम लोग को एक बार देखो। उस दुष्ट लड़के ने हमें उठाकर इस घर में लाकर उत्तर दिशा के कमरे में रस्सी पर लटकी हँडी के भीतर नारियल के खप्पर में छिपाकर रख दिया है। प्रातः होते ही पुरोहित को भेजकर हम लोग को ले आना।' माँ रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखकर तुरन्त जाग उठीं एवं बड़ी बेचैनी के साथ ठाकुरजी के कमरे में जाकर देखीं, वास्तव में सिंहासन पर ठाकुरजी नहीं हैं। उन्होंने उसी समय

पुरोहित को बुलाकर, स्वप्न का सब वृत्तान्त सुनाया। पुरोहितजी गाँव के दूसरे छोर पर स्थित उसी घर में जाकर सीधे उस कमरे में पहुँच गए एवं रस्सी पर लटकी हँडी के भीतर नारियल के खप्पर से दोनों गोपाल को निकालकर ले आए।

ठाकुर को यह बात बतलाने पर उन्होंने कहा– **"श्रद्धा के साथ सेवा-पूजा करने से विग्रह जीवन्त हो जाते हैं। तब वे सेवक के साथ बातें करते हैं; मनुष्य की भाँति खाना माँगते हैं; किसी प्रकार का अनाचार, अन्याय होने पर कह देते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अनेक स्थानों पर यह सब देखा जाता है। तुम्हारे भैया के शालग्राम भी बड़े चमत्कारी हैं; अच्छे जागृत हैं। मैं जिस समय फैजाबाद में तुम्हारे भैया के घर में था, एक दिन अयोध्या से ठाकुरजी का दर्शन करके घर आकर जैसे ही बरामदे में खड़ा हुआ, तुम्हारे भैया के ठाकुरजी ने मुझसे कहा– 'अरे, मुझे कुछ खाने के लिए दो। ये लोग मेरी पूजा करते हैं, पर खाना नहीं देते।' अपने साथ कुछ खाने की वस्तु लाया था, वही उस वामनदेव को दिया। उसके बाद से ही तुम्हारे भैया ठाकुरजी को भोग लगाते हैं।"**

यह कहकर ठाकुर ने भैया के शालग्राम की और भी बहुत-सी बातें कही। उन सब घटनाओं को, पिछले वर्ष मैं जब भैया के पास में था, भैया के मुख से सुनकर उस समय की डायरी में लिख रखा हूँ, इसलिए यहाँ और नहीं लिखा। कोई एक वैष्णव परमहंस अयाचित रूप से अचानक एक दिन आकर वह शालग्राम भैया को दे गए। भैया ने उनसे कहा– 'मैं ये सब मानता नहीं, विश्वास भी नहीं करता।' परमहंस ने कहा– 'घर में ऐसे ही रख दीजिए। मेरे ठाकुरजी जागृत हैं, ये स्वयं ही मनवा लेंगे।' शालग्राम के सम्बन्ध में बिल्कुल उदासीन रहने पर भी ठाकुर की कृपा से भैया शालग्राम के ऊपर विश्वास करने के लिए बाध्य हो गए।

ठाकुर द्वारा भैया की बात उठाने से सुयोग पाकर मैंने उनसे कहा– अनेक दिन हो गए, भैया ने अपनी पाँच-छः वर्ष की लड़की के जागृत अवस्था में भी होने वाले दर्शन के सम्बन्ध में आपसे पूछने के लिए लिखा है। यह कहकर मैंने भैया के पत्र का विषय ठाकुर को विस्तारित रूप से बताया।

ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारे भैया डॉक्टर हैं। लिख दो, माथा गरम हो गया अथवा कोई रोग हो गया है समझकर उसको औषधि न खिलाएँ। इस अवस्था में औषधि खिलाने से अनिष्ट होगा। साधारण लोग आँखों से जो नहीं देखते, उसे कोई देखता है, इसी कारण तो गड़बड़ होता है। लोग समझते हैं, मस्तिष्क का कोई रोग हुआ है। ऐसी अवस्था में रोग समझकर औषधि खिलाने से कई बार संकट उत्पन्न हो जाता है।"**

मैंने पूछा– दिमाग गड़बड़ होने से लोग क्या वैसा सब देखते नहीं?

उत्तर– **"वैसा क्यों नहीं देखेंगे, बहुत देखते हैं। इसीलिए शास्त्र-पुराणों के कथन के साथ अक्षरशः सब मिला लेना चाहिए। दिमाग खराब होने से जो देखते हैं, वह गड़बड़ ही देखते हैं, शास्त्र के साथ उसका मेल नहीं रहता।"**

प्रश्न– साधना के समय आसन पर बैठकर लोग जो विभीषिकाएँ देखते हैं, वह क्या सत्य है?

उत्तर– **"आसन पर स्थिर रहकर साधना करने से ही वह सत्य है या मिथ्या पकड़ में आ जाता है।"**

कौशलपूर्ण दान: अनुताप

24 मार्च, गुरुवार। घर जाकर इस बार आठ-दस दिन था। पोस्ट-आफिस से रुपये निकालकर, माताजी को 25 रुपये देकर गेण्डारिया लौट गया। ठाकुर को एक महाभारत क्रय करके देने के अभिप्राय से एक गुरुभाई को 40 रुपये दिया। अपने प्रयोजन की पुस्तकें लेने में आठ-दस रुपये व्यय किया। अवशिष्ट रुपयों को दो दिन अपने पास ही रखा था। किसी-किसी गुरुभाई को इसका पता चल जाने पर वे अपना अभाव और प्रयोजन बतलाकर मेरे से कुछ-कुछ रुपये माँगने लगे। मैं बड़े संकट में पड़ गया। सोचा 'यह कैसा उत्पात है।' मैंने तुरन्त रुपये नानीजी के हाथ में देते हुए कहा– 'नानीजी! ये रुपये आप अपनी इच्छानुसार व्यय करना; इसे मैंने आश्रम के भण्डार में दे दिया।' पता नहीं ठाकुर किस माध्यम से मेरे दान करने के कौशल को समझकर मुझसे कहा– **"आश्रम के भण्डार के लिए नानीजी के हाथ में इतने रुपये क्यों दिए हो?"**

ठाकुर के हास्यपूर्ण मुख से परिहास भाव के इस प्रश्न को सुनते ही मेरे ऊपर मानो बिजली गिर पड़ी, मैं लज्जा से सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा, सोचा– 'हो गया, इस बार लगता है, सब पोल खुल जाएगी!'

पिछले वर्ष श्रीवृन्दावन में दामोदर पुजारी को जो दान किया था, उसका मुझे इस समय स्मरण हुआ, फिर भयंकर अनुताप और ज्वाला से बेचैन होने लगा। पिछले वर्ष श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास पहुँचते ही उन्होंने मुझसे यमुना में स्नान करके आने के लिए कहा। मेरे पास 11 रुपये थे; उसे खुले स्थान पर रखकर जाने से ऐसा न हो कि किसी को पता चल जाए, इस आशंका से अंटी में बाँधकर स्नान करने गया। रास्ते की जानकारी न रहने के कारण कुंज के मालिक दामोदर पुजारी साथ में गए। स्नान के समय रुपये निकालकर रखते समय दामोदर ने देख लिया।

मैं बड़े संकट में पड़ गया। सोचा, 'ठाकुर का कुछ भी प्रयोजन बतलाकर ये बेटा जब इच्छा होगी सब रुपये बाहर करवा लेगा। नजर जब उसकी पड़ ही गई है, तो ये रुपये नहीं बचने वाले। अतएव इसी समय भविष्य के उत्पात से छुटकारा पाने की व्यवस्था कर लेना अच्छा है।' मन में यह निश्चित करके, स्नान के बाद दामोदर से कहा, पुजारीजी! आपने ही तो हमारे ठाकुर की सेवा का सम्पूर्ण भार लिया है। ये थोड़े रुपये मेरे पास हैं, आप इसे ठाकुर की सेवा में लगा दीजिए। फिर मैं जो दो-तीन महीने आपके आश्रम में रहूँगा, दया करके ठाकुर का दो मुट्ठी प्रसाद दोनों समय मुझे दीजिएगा। तीर्थ में आकर सर्वप्रथम ब्राह्मण को ही तो दान करना होता है, अन्यथा कुछ भी सार्थक नहीं होता। अतएव मेरे पास जो कुछ है, आपको ही दान करता हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए। यह कहकर सब रुपये दामोदर के हाथ में देकर प्रणाम किया। दामोदर हाथ में रुपये पाकर बहुत प्रसन्न होते हुए अत्यन्त आदर के साथ मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले, 'ओह, तुम्हारी तो बडी भारी भक्ति है! अच्छा है! अच्छा है!! अरे, सब दे दिया! राम! राम!!' मैंने मन में कहा– हाँ, दान-भक्ति मेरी जो है, तुम बाद में समझोगे।

इस बार भी मेरे जिस अभिप्राय से आश्रम में सेवा के लिए दान हुआ, उसे समझ जाने पर ठाकुर ने कहा– **"जिसको आवश्यकता है, किसी ओर देखे बिना दान उसी को देना चाहिए। दान सहानुभूति से करना चाहिए। स्वयं का कुछ अभाव होने पर उसे जिस प्रकार पूर्ण करने की इच्छा होती है, दूसरों की आवश्यकता को भी यदि उसी प्रकार अनुभव करें, तभी तो वास्तविक दान होता है। श्रद्धाहीन दान, देखा-देखी दान या उत्पात की शान्ति के लिए जो दान करते हैं, उसको दान नहीं कहते। फिर प्रतिष्ठा के लिए दान, कुछ मतलब से दान या अन्य किसी प्रकार से स्वार्थ का सम्बन्ध रखकर जो दान करते है, वह भी दान नहीं है। वह केवल एक चतुराई है। उससे आत्मा का कोई कल्याण नहीं होता, वरन् अनिष्ट ही होता है।"**

दुर्दिन में ठाकुर की कृपादृष्टि

25 मार्च, शुक्रवार। कल एकादशी में पहले की भाँति निर्जला उपवास किया। संध्या के बाद छः-सात वर्ष की कुछ बालिकाएँ आकर मेरे आसन के पास बैठ गई एवं कहानी सुनाने के लिए बार-बार जिद करने लगीं। मैंने दो-एक कहानी सुनाकर उन लोगों को विदा किया। रात्रि में स्वप्नदोष हुआ। अवशिष्ट रात्रि, लगभग 12 बजे से प्रातः तक कभी बाहर तो कभी कमरे में उठ-बैठकर बिताया। बड़ा क्षोभ होने लगा। मन के क्लेश से माथा गरम हो गया। ठाकुर के ऊपर बड़ा

अविश्वास उत्पन्न हो गया। सोचा, 'सभी व्यर्थ है! निरर्थक ही श्रम कर रहा हूँ। शरीर की एक सामान्य दुर्गति, जो गुरु की व्यवस्था के अनुसार इतने समय तक कार्य करने पर भी दूर नहीं हुई, फिर उनके उपदेश के अनुसार चलने से स्वभाव के दोष, मन की बहिर्मुख दुरावस्था समस्त दूर होंगे, उसका भी क्या प्रमाण है? भगवत्प्राप्ति की प्रत्याशा से केवल जिनकी कृपा का भरोसा करके निश्चिन्त हूँ एवं जिनके उपदेश को ही एकमात्र कर्त्तव्य समझकर स्थिर बैठा हूँ, साधारण-साधारण विषय में भी यदि उनका वाक्य मिथ्या हुआ, तो वास्तविक धर्म की प्राप्ति के लिए उन्होंने जो सब उपाय बतला दिया है, वह सत्य ही है, उसका भी क्या भरोसा? चिकित्सक की व्यवस्थानुसार औषधि खाने से रोग कम न होने पर उनके हाथ के यश पर रोगी का निर्भर रहना, एवं भाग्य की ओर ताकते रहना, एक ही बात है। मैं वैसा किसी प्रकार से नहीं कर सकूँगा। कल ही मैं ठाकुर को अन्तिम साष्टांग प्रणाम करूँगा।' यह निश्चय करके सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा।

सूर्योदय के पूर्व स्नान करके किसी प्रकार से नित्यकर्म समाप्त किया। एकान्त में अवसर देखकर, ठाकुर के चाय पीते समय मैंने उनके पीछे की ओर, कमरे के बाहर से ही आँगन में लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। 'हाय! ठाकुर को छोड़कर जा रहा हूँ,' ऐसा सोचते ही मुझे रोना आ गया, उसका संवरण न सका। इस समय ठाकुर भी रुआँसे स्वर में लगभग दो मिनट तक बारम्बार **'हरि बोल, हरि बोल'** कहने लगे। मेरे सिर उठाते ही, ठाकुर ने पीछे मेरी ओर मुख घुमाकर ममतापूर्ण डबडबाई आँखों से देखते हुए बड़े स्नेह के साथ मुझे बुलाकर कहा– **"अहा! कल निर्जला उपवास करके अभी भी कुछ खाए नहीं? यह लो, अब जाओ थोड़ा पानी पीकर ठण्डा हो लो।"**

यह कहकर उन्होंने कुछ मिठाई और एक बेल मेरे हाथ में दिया। ठाकुर के उस समय के रोदन, अस्फुट स्वर और देखने के ढंग से मानो मेरी छाती फट गई। मन में केवल यही विचार होने लगा, 'अहा! इस जगत् में इस प्रकार सहानभूतिपूर्ण दृष्टि से मुझे और कौन देखेगा?' मैं रोते-रोते अवसन्न हो गया। कुछ क्षण के बाद प्रसाद लेकर अपने आसन पर आकर बैठ गया।

प्रातः जलपान के बाद, प्रायः साढ़े 9 बजे ठाकुर के पास जाकर बैठ गया। ठाकुर ने कुछ समय के लिए पाठ बन्द कर दिया। तब मैंने कहा, कई बार अनेक बातें आपसे कहूँगा सोचता हूँ, लेकिन पास आते ही सब भूल जाता हूँ।

ठाकुर ने मेरी बात के बीच में ही कहा– **"कहोगे क्या? बोलने-कहने का अब क्या है। कार्य करते जाओ। कोई स्थायी अवस्था महात्मा एकाएक तो देते नहीं। सिंह का दूध सोने के पात्र में न रखने से टिकता नहीं,**

नष्ट हो जाता है। महात्मा लोग पात्र ठीक कर लेने पर वस्तु देते हैं। अवस्था प्राप्त करने के लिए व्यग्र मत हो, वह ठीक समय पर ही होगी।"

मैंने कहा– एक समय पर होगी, यह आशा मिल जाए तो निश्चिन्त रहूँ।

ठाकुर ने कहा– "अभी यदि तुमको वह अवस्था दी जाए, तो तुम्हारा अहित करना होगा। ऊर्ध्वरेता होने से तुम किसी को कुछ नहीं समझोगे। वह अवस्था मिल जाने पर तुम स्थिर नहीं रह पाओगे। उस ऐश्वर्य के द्वारा तुम सारे संसार को चौपट करोगे, उसका सर्वनाश करोगे। अभिमान के नष्ट होने पर ही उन सब ऐश्वर्यों की प्राप्ति निरापद् है। अभी कार्य करते जाओ। उस ओर ध्यान मत दो। सब ओर से ठीक होना दो-एक दिन का काम नहीं है।"

ठाकुर थोड़ा रुककर फिर कहने लगे– "ब्रह्मचर्य-आश्रम में महिलाओं के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखते! इस विषय में बहुत सावधान रहना होता है। उनकी ओर देखना नहीं, उन लोगों के साथ बैठना नहीं, उन लोगों के साथ किसी प्रकार की बातें नहीं करना। स्त्री-जाति की कोई भी क्यों न हो, अत्यन्त वृद्धा ही हो या युवती हो अथवा बिल्कुल छोटी बालिका ही हो, सर्वदा उन लोगों से दूर रहना। चुम्बक जिस प्रकार लोहे को आकर्षित करता है, उसी प्रकार स्त्री-जाति का शरीर ऐसे कुछ उपादानों से गठित है, जो पुरुष शरीर को आकर्षित करता है। यह वस्तु का गुण है, इसमें पात्र-अपात्र, साधु-असाधु का विचार नहीं है। इसलिए शास्त्रकारों ने यहाँ तक कि माता, बहिन, बेटी के सम्बन्ध में भी सावधान रहने की शिक्षा देते हुए कहा है–

'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।'

माता, बहिन, बेटी के साथ भी एकान्त में एक आसन पर नहीं बैठना; बलवान् इन्द्रियों का समूह विद्वान् को भी आकर्षित करता है। विद्वान् कहने का अर्थ है– ब्रह्मविद्यावित्, जिनको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है। जो मुक्त पुरुष हैं, उन्हें भी ये आकर्षित करते हैं। काशी में दण्डी स्वामी इस बात पर विश्वास नहीं कर पाए, उन्होंने सोचा, 'ऐसा कभी होता है? ब्रह्मविद्या जिन्होंने प्राप्त की है, वैसे विद्वान् को किसी प्रकार से ये आकर्षित नहीं कर सकते।' व्यासदेव ने भूल लिखा है, यह सोचकर उसे काटकर उन्होंने 'न हि कर्षति, न हि कर्षति, न हि कर्षति' लिख दिया। उसके बाद उनकी जो दुर्दशा हुई थी, वह तो सुने हो?"

अविश्वास: साधना में अभिमान– अनुशासन

महाभारत पाठ के बाद, मन में बड़ा उद्वेग का अनुभव होने लगा। सोचा, ठाकुर के सम्बन्ध में मेरा जो सब अविश्वास, सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसे कह डालूँ। उसे मैं दबाकर नहीं रख सका, ठाकुर से कहा– असत्य बात कहने पर क्या केवल हम लोगों का दोष है या भगवान् का भी है?

ठाकुर ने कहा– **"भगवान् कभी असत्य नहीं कहते; उनकी इच्छा, कार्य, वाक्य सभी सत्य है! वहाँ असत्य का कोई प्रश्न ही नहीं है।"**

मैंने कहा– श्यामबाजार में मेरे लिए आदेश हुआ था, 'दो घण्टे स्थिर बैठकर नाम-जप करो, स्वप्नदोष नहीं होगा।' मैं तो तब से प्रतिदिन अन्ततः पाँच-सात घण्टे बैठकर नाम-जप करता हूँ, परन्तु स्वप्नदोष का तो निवारण हुआ ही नहीं। अतः आपकी बात पर अविश्वास हो गया है। देखता हूँ, हम लोग असत्य कहते हैं, अतीत और वर्तमान विषय में और आप लोग कहते हैं, भविष्य के सम्बन्ध में।

ठाकुर ने यह बात सुनकर, कोई भी असन्तुष्टि का भाव प्रकाश किए बिना, शान्तिपूर्वक कहा– **"तुम स्थिर मन से दो घण्टे नाम-जप किया करते हो?"**

मैं– स्थिर मन से किस प्रकार करूँगा? मन तो स्वभावतः ही चंचल है। आसन पर दो घण्टे से अधिक समय तक एक भाव से बैठकर नाम-जप करता हूँ।

ठाकुर ने कहा– **"इसमें फिर दूसरों का क्या दोष है? दो घण्टे क्यों, दो मिनट भी तुम स्थिर होकर नाम-जप नहीं करते। एक बार करो, देखूँ, कैसे बात असत्य होती है? केवल नाम-जप करने से तो होगा नहीं, स्थिर होकर करना पड़ेगा। यह नाम अक्षर नहीं है, कोई शब्द नहीं है; इस नाम में भगवान् की अनन्त शक्ति है। भगवान् ही नाम हैं। नाम-जप करना और भगवान् का संग करना एक ही है। लक्षित वस्तु को छोड़कर नाम-जप करने से क्या होगा? नाम-जप करते समय मन विभिन्न ओर घूमता फिरे, तो जप ठीक से नहीं होता। अपना दोष तो देखते नहीं, सोचते हो अन्य के दोष से ही कष्ट मिल रहा है। अपनी त्रुटि देखे बिना अन्य के प्रति इस प्रकार दोषारोपण नहीं करते, अपराध होता है।"**

थोड़ा रुककर फिर कहने लगे– **'तुम अन्य लोगों की अपेक्षा आसन पर थोड़ा अधिक समय बैठा करते हो, इसमें ही तुमको कितना अभिमान हो गया! देखो, कितना भयंकर है! तुम्हारे जैसे जो आसन में नहीं बैठते, नाम-जप नहीं करते, सर्वदा हास-परिहास करते हुए घूमते-फिरते हैं, उन्हें कुछ करते हुए नहीं देखते, उनके भीतर भी ऐसे सब सद्गुण हैं, जो तुममें नहीं हैं। कुछ प्रयास किए बिना ही, केवल विश्वास के बल पर**

कुछ लोग ऐसी अवस्था प्राप्त करेंगे, जो बहुत समय तक साधन-भजन करके भी तुम्हारे लिए प्राप्त करना बड़ा कठिन होगा। सर्वदा स्वयं को छोटा समझो, किसी भी विषय में किसी की अपेक्षा श्रेष्ठ मत समझना। कई लोग कठोरतापूर्वक बहुत साधन-भजन करके जो अवस्था लम्बे समय तक प्राप्त नहीं कर पाते, एक लम्पट बदमाश डकैत की वही अवस्था स्वाभाविक रह सकती है। अभिमान करने की क्या बात है? थोड़ा साधन-भजन करने के कारण अभिमानवश पथ नहीं देख रहे हो! इस अभिमान के रहते कोई अवस्था तुमको देने से तुम ऐश्वर्य में उन्मत्त होकर किसी को तृण के समान भी नहीं समझोगे। प्रत्येक कार्य में विचार करते हुए चलो, विचार नहीं करने से अनेक अनर्थों की सृष्टि होती है। स्वयं को छोटा न समझने तक जितनी भी साधना, चेष्टा, तपस्या करो, कुछ नहीं होगा।'

27 मार्च, रविवार। ठाकुर के ऊपर मुझे अविश्वास हो गया है एवं भविष्य के सम्बन्ध में वे असत्य बातें कहते हैं– ये बातें ठाकुर के मुँह पर कहने के बाद से मेरा हृदय मानो सूना श्मशान हो गया। दिन-रात मेरा किस प्रकार बीत रहा है, उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं है। भीतर की असह्य यन्त्रणा से उन्मत्त के समान होकर स्वयं अपने ही शरीर में कई स्थानों पर आघात किया, बाल नोंचा, सिर ठोका, रोते-रोते मैं अधीर होकर बीच-बीच में हाथ-पैर पटकने लगा। आत्महत्या करने की भी समय-समय पर प्रवृत्ति होने लगी। ठाकुर इस समय पाठ करना बन्द करके एक-एक बार उच्च स्वर में **'हरि बोल, हरि बोल'** कहने लगे।

कुछ क्षण बाद मुझे बुलाकर कहा– **"कल से तुम पुनः रुद्राक्ष की माला धारण करो।"**

आज ठाकुर के आदेश के अनुसार पुनः वही 'नीलकण्ठ' वेश धारण करने के बाद उनको प्रणाम करके आया। वेश का गुण हो अथवा ठाकुर की कृपा ही हो, धीरे-धीरे मेरी ज्वाला-यन्त्रणा कुछ क्षणों के भीतर ही दूर हो गई।

परिवेषण में त्रुटि: तीर्थ-भ्रमण का नियम

29 मार्च, मंगलवार। इस बार कोलकाता से आने के बाद अभी तक आश्रम में रुपयों का बड़ा अभाव चल रहा है। भोजन की असुविधा होने के कारण अनेक गुरुभाइयों के पृथक् व्यवस्था कर लेने के बाद भी आश्रम में भोजन आदि के विषय में कोई सुधार नहीं हुआ। ठाकुर एवं समाधि-मन्दिर के भोग के लिए और आश्रम के गुरुभाइयों के लिए पृथक्-पृथक् भोजन बनाने की व्यवस्था कुछ दिन चली थी।

ठाकुर ने हम लोगों के भीतर की दुरवस्था हमें दिखलाने के लिए ही लगता है, तब उस विषय में कुछ कहा नहीं। 'वे पूर्व ओर के कमरे में अलग भोजन करते हैं, उनका भोजन अलग प्रकार का बनता है' इसे लेकर हम लोगों के बीच किसी-किसी ने नाना प्रकार की बातें उठाई। ठाकुर उस बात से अवगत होते ही, उसी दिन से वे दक्षिण ओर के कमरे में सभी के बीच एक साथ बैठकर सबके लिए बना भोजन ग्रहण कर रहे हैं। परोसने का भार पहले की भाँति मेरे हाथ में ही है। मैं गुरुभाइयों की अपेक्षा ठाकुर को दाल, सब्जियाँ अधिक मात्रा में दिया करता हूँ। ठाकुर ने दो-तीन दिन मुझे उस प्रकार से देने के लिए मना किया। मैंने वह सुनकर भी अनसुना कर दिया।

आज ठाकुर ने कहा– **"एक स्थान पर कई लोग एक साथ बैठकर भोजन करें, तो परोसने में भेदभाव नहीं करते; एक जैसा देना चाहिए। प्रसाद पाने की इच्छा से अधिक मात्रा में देने का अर्थ उच्छिष्ट वस्तु ही देना हुआ। खाने पर भोजन से तृप्ति नहीं मिलती, भूख नहीं मिटती।"**

आज महाभारत पाठ करने के बाद ठाकुर ने मुझसे तीर्थ-भ्रमण के नियम के विषय में कहा– **"तीर्थ-भ्रमण युवावस्था में न करने से फिर हो नहीं पाता। जो कुछ करना है, इसी समय में कर लेना चाहिए। भ्रमण के समय सर्वदा सिर झुकाए हुए, नीचे की ओर दृष्टि रखते हुए चलना चाहिए। प्रतिदिन तीन-चार कोस या दिन में 10 बजे तक चलकर किसी स्थान पर विश्राम करना चाहिए। वहाँ पर भिक्षा करके स्वपाक आहार करना ही अच्छा है। भ्रमण के समय धातु की कोई वस्तु साथ में नहीं रखते। रुपये को स्पर्श नहीं करते। टिकट किसी के बना देने पर ले सकते हो। जलपात्र लकड़ी का कमण्डलु होने से अच्छा है। केवल कौपीन, बहिर्वास, एक कम्बल और पढ़ने के लिए एक-दो पुस्तकें साथ में रखना चाहिए। किसी के साथ न चलकर अकेले चलने से ही अधिक लाभ होता है। आहार के लिए किसी मन्दिर में प्रसाद ग्रहण सकते हो।"**

मैंने सोचा, यह भी अच्छा है। देवता के विग्रह को कल्पना के सिवा कुछ नहीं समझता, फिर ऐसी दशा में मेरे लिए तीर्थ-भ्रमण की व्यवस्था!

योग-संकट

31 मार्च, गुरुवार। कल रात्रि में बड़े संकट में पड़ गया था। रात्रि में 12 बजे अन्यान्य दिनों की भाँति हाथ-मुँह धोकर आसन पर बैठा। लगभग डेढ़ बजे ठाकुर के गले की आवाज सुनकर चमक उठा। वे प्रायः गहन रात्रि में गाने के दो-एक

पद गाते हैं, फिर दो-एक मिनट के भीतर ही भावावेश में कराहते-कराहते उनका कण्ठ रुद्ध हो जाता है। कल रात्रि ने भी ब्रह्म-संगीत के इस बंगला गीत का दो-एक पद गाते-गाते समाधिस्थ हो गए (गीत का भावार्थ)–

उसी एक आदिपुरुष परमात्मा में, चित्त को करो एकाग्र रे;
आदि सत्य हैं वे कारण-स्वरूप, प्राण रूप में व्याप्त हैं चराचर में।

जीवन्त ज्योतिर्मय, सबके आश्रय,
देखे वही, जो जन विश्वास करे।

अतीन्द्रिय नित्य चैतन्य स्वरूप, विराजित हैं हृदि-कन्दर में;
भूषित हैं ज्ञान प्रेम पुण्य नाना गुण से, जिनके चिन्तन से सन्ताप हरे।

अनन्त गुण के आधार, प्रशान्त मूरति, धारणा कोई कर नहीं पाते,
निज गुण से दया करके, दीन-हीन जानकर पदाश्रितों को दर्शन देते।

चिरक्षमाशील कल्याण-दाता सहायक हैं दुःख-सागर के निकट में;
परम न्यायवान, करते हैं फलदान, पाप पुण्य कर्म अनुसार से।

प्रेममय दयासिन्धु कृपानिधि, जिनके गुण श्रवण से अश्रु झरे;
उनका मुख देख, सब होय सुखी, तृषित मन-प्राण जिनका तृप्त करे।

विचित्र शोभामय, निर्मल प्रकृति,
उस रूप के वर्णन का कथन नहीं रे;
साधन-भजन उनका, करो निरन्तर रे,
चिरभिखारी होकर उनके द्वार में।।"

ठाकुर का यह गान एवं एक प्रकार का अद्‌भुत गम्भीर स्वर सुनकर मेरे भीतर अपने-आप इतने वेग से नाम-जप होने लगा कि मैं बिल्कुल सुस्त हो गया। कुछ क्षण बाद मेरा हाथ, पैर, सिर मानो सिकुड़कर पेट के भीतर खिंचाने लगा। उस समय वह अस्वाभाविक क्रिया प्रत्येक अंग में हो रही है, यह जानकर भी मैं उसे किसी प्रकार से रोक नहीं पाया। ऐसा लगा मानो शिरा, धमनी और अंग-प्रत्यंग की माँस-पेशियाँ ऐंठकर मुझे बिल्कुल कुम्हड़े की आकृति का बना दीं। भीतर-बाहर केवल 'नाम' सुनाई पड़ने लगा। शरीर में एक प्रकार की अव्यक्त यन्त्रणा का अनुभव होने लगा; लेकिन उसके निवारण के लिए किसी प्रकार की चेष्टा ही नहीं हुई। कुछ क्षण बाद मुझे शरीर का ज्ञान नहीं रहा। उस समय किस दशा में कहाँ किस भाव में था, ठाकुर ही जानते हैं। इस अवस्था में कब तक था, मैं कुछ नहीं जानता। बाद में धीरे-धीरे 'नाम' का वेग कम हुआ, हाथ-पैर को चेष्टा से धीरे-धीरे सीधा करके बैठ गया। ठाकुर को दोपहर में सब अवस्था बतलाकर उनसे पूछा– इस प्रकार क्यों हुआ?

ठाकुर ने कहा– "हाँ, वैसा होता है। नाम-जप श्वास-प्रश्वास में होने से जब वह नाम प्रत्येक शिराओं में चला करता है, उस समय हाथ, पैर, नाक, कान, नेत्र आदि समस्त अंग-प्रत्यंग भीतर की ओर खिंच जाते हैं। उस अवस्था के आरम्भ में ही यदि सतर्क न रहें एवं उस समय नाम-जप करना बिल्कुल छोड़ दें, तो फिर बड़े संकट का सामना करना पड़ता है। उस अवस्था में हाथ-पैर आदि सारे अंग बिल्कुल पेट के भीतर भी चले जा सकते हैं। फिर अन्य प्रकार का भी होता है। नाम-जप जब अस्थि, मज्जा, माँस में, प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में होने लगता है, तब हाथ, पैर, घुटने आदि शरीर के सभी सन्धि-स्थल की समस्त ग्रन्थियाँ हट जाती हैं, बिल्कुल अलग हो जाती हैं; हाथ-पैर लम्बे हो जाते हैं। उस प्रकार होने से हाथ, पैर, यहाँ तक कि सिर भी शरीर से अलग हो जाया करता है। फिर धीरे-धीरे सब ठीक उन्हीं स्थानों पर आकर जुड़ जाया करते हैं। यह सब केवल कहने की बात नहीं है, स्वयं देखा हूँ।"

प्रश्न– एक ही नाम के जप से शरीर के भीतर परस्पर विरुद्ध अवस्था क्यों होती है?

उत्तर– "नाम भिन्न-भिन्न भाव से चलकर देह में भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्था उत्पन्न करता है।"

प्रश्न– नाम जपते-जपते शरीर में कभी-कभी भयंकर जलन क्यों होती है?

ठाकर ने कहा– "यह जलन कोई जलन है? नाम-जप यदि ठीक से कर सकते हो, तो फिर ज्वाला क्या है, समझ पाओगे। प्राचीनकाल में ऋषियों के समय तुषानल (तुषाग्नि से देह तपाने) की व्यवस्था थी। देह-शुद्धि के लिए किसी-किसी की देह को वे तुषानल से शुद्ध कर लेते थे। इस युग में वैसा होना सहज नहीं है। शरीर उस प्रकार का नहीं है; उसी प्रकार हठयोग (पंचाग्नि-साधन) का अभ्यास भी कोई नहीं करता। आजकल महापुरुष कृपा करके नामाग्नि से देह को शुद्ध कर लेते हैं। श्वास-प्रश्वास में जब नाम-जप होने लगता है, तब यह ज्वाला आरम्भ हो जाती है। क्रमशः जप के साथ-साथ यह जलन इतनी बढ़ जाती है कि लगता है, शरीर के प्रत्येक अणु-परमाणु बिल्कुल दग्ध हो गए हैं। इस नामाग्नि की ज्वाला से मनुष्य उस समय पागल के समान भागदौड़ करने लगता है। संन्यास लेने के बाद परमहंसजी के आदेश से मैं जब विन्ध्य-पर्वत में था, तब यह जलन मुझे हुई थी। इस जलन से स्थिर नहीं रह पाने के कारण, दिनभर मैं शरीर में पतला कीचड़ मलता था।

एक दिन वह जलन अत्यन्त असह्य होने पर मैं पर्वत के भीतर स्थित एक कुण्ड में कूद पड़ा। उस समय एक संन्यासी ने मुझे निकाला और कहा– 'यह क्या करते हो? इस पानी में कभी उतरते हैं? अभी पत्थर हो जाते। देखो, इससे तुम्हारे सारे बाल, दाढ़ी, मूँछ बिल्कुल सफेद हो गए हैं। इस पानी का गुण ही ऐसा है।' संन्यासी तुरन्त पहाड़ से एक पेड़ की लता खोजकर लाए, उसे कुचलकर रस निकालकर बाल में लगा दिए। जहाँ-जहाँ रस लगाए, वहाँ के बाल काले हो गए और जहाँ नहीं लगा, वहाँ के बाल अभी भी सफेद हैं। इसीलिए मेरे सामने के ये सब बाल सफेद हैं और दोनों ओर व पीछे के बाल काले हैं। गुरुजी का दर्शन पाने पर उन्हें ज्वाला की बात बताई, तो उन्होंने कहा– 'इस जलन से इतने बेचैन हो रहे हो! अभी तुम ज्वालामुखी चले जाओ। वहाँ जाकर साधना करने पर स्थान के प्रभाव से यह जलन और भी चार गुना बढ़ जाएगी; फिर शीघ्र ही बिल्कुल छुटकारा मिल जाएगा।' मैं उसी समय ज्वालामुखी चला गया।"

यह कहकर ठाकुर ने विन्ध्य-पर्वत में साधना के समय जो सब अवस्थाएँ हुई थीं, बहुत-सी बतलाई। ठाकुर के मुख से वह सब बातें सुनकर पहले एक बार डायरी में लिख रखने के कारण इस स्थान पर फिर नहीं लिखा।

अप्रैल, सन् 1892 ई०

प्रकृति के दोष का वृद्धावस्था में प्रस्फुरण: उपदेश

मेरे जीवन की गति कुछ ठीक होने में अभी भी बहुत विलम्ब है। ठाकुर के मुख से यह बात सुनने के बाद से मेरा मन बहुत खराब हो गया है। इस बार घर जाकर अपने हिताकांक्षी घनिष्ठ स्वजन एक वृद्ध से उनके जीवन की घटना सुनकर सर्वदा केवल उसी का विचार करता हूँ। मेरे ब्रह्मचर्य की बात सुनकर उन्होंने कहा– "अरे भैया, अभी जो भी क्यों न करो, भविष्य में क्या परिणाम होगा, कह नहीं सकते। यौवन में इन्द्रिय की प्रबलता जिस प्रकार अधिक हुआ करती है, उसी प्रकार फिर सत्संग में रहने से धर्म के प्रति उत्साह में भी बड़ी वृद्धि होते देखी जाती है। स्वभाव के दोष को यौवन में दबाकर रखा जा सकता है, किन्तु वृद्धावस्था में वह प्रायः प्रस्फुटित हो जाता है। यौवनावस्था में धर्म की ओर मेरा बड़ा झुकाव था; प्रायः संध्या-पूजा, जप-तप में ही अधिकांश समय बिताया करता। चरित्र-बल भी मुझमें असाधारण था। एक बार भयंकर आँधी-तूफान के दूसरे दिन

ही मैं एक जरूरी मामले के कारण पद्मा नदी से होकर ढाका गया। गत रात्रि में बहुत-सी नौकाएँ डूब गई थीं। मैंने अपनी पनसुइया (छोटी नौका) से देखा– 17-18 वर्ष की एक सुन्दर युवती नग्नावस्था में एक टापू पर बैठी रो रही है। विपत्ति में फँसी हुई सोचकर मैं तुरन्त उसके पास पहुँच गया। लड़की ने कहा, 'कल रात्रि में हम लोगों की नाव इस नदी में डूब गई। मेरे पति जीवित हैं या नहीं, पता नहीं। प्रायः अचेत अवस्था में मैं इस टापू में आ पहुँची। मैं बड़े संकट में पड़ गई हूँ; मेरी रक्षा कीजिए।' मैं उसकी बात सुनकर रो पड़ा। तुरन्त अपने कपड़े का आधा भाग करके उसे पहनने के लिए दिया एवं उसको अपनी नौका पर ले आया। मेरा कार्य पूरा न होने तक, वह युवती तीन-चार दिन नौका में मेरे साथ ही थी। फिर उसके घर में उसको पहुँचा दिया। उस समय साथ में और कोई भी नहीं था। तब एक क्षण के लिए भी मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। मेरी आयु तब 27-28 वर्ष थी। फिर जीवन में आज तक कभी कोई बड़ा दुष्कर्म भी मैंने नहीं किया; किन्तु अब मेरी आयु लगभग 67 वर्ष हो गई, दाँत गिर गए हैं, शरीर अस्वस्थ व सुस्त हो गया है; इस निस्तेज वृद्धावस्था में भी मेरी ऐसी दुर्दशा हो गई है कि उस समय की बात सोचकर अनुताप से दिन-रात बिता रहा हूँ। केवल यही सोचता हूँ, 'हाय, उस समय ऐसा सुयोग हाथ में पाकर क्यों छोड़ा?' इसलिए कहता हूँ भैया, भयंकर प्रलोभन में पड़ने पर भी एक समय अपनी चेष्टा से अच्छा बने रह सकते हैं; परन्तु मूल से अच्छे नहीं हो पाते। स्वभाव में जो सब दोष हैं, उसे दबाकर रखना सहज है, लेकिन उसको मूल से उखाड़ फेंकना अपने बस की बात नहीं है। वह केवल गुरुकृपा से ही होता है।"

इस घटना का विवरण ठाकुर को सुनाया। ठाकुर ने कहा– **"भविष्य के सम्बन्ध में कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं हैं। अभी जो कहा जाता है, उसे करते जाओ। इसलिए युवावस्था में ही साधन-भजन करना चाहिए। आयु बढ़ जाने पर मन का उत्साह-उद्यम धीरे-धीरे ठण्डा पड़ जाता है। शरीर अवसन्न और अस्वस्थ हो पड़ता है, उस समय क्या साधन-भजन करना सहज है? युवावस्था ही साधन-भजन करने का श्रेष्ठ समय है। इसी समय से खूब चेष्टा करते हुए धर्म के प्रति एक संस्कार और रुचि उत्पन्न कर सकें, तो बहुत-कुछ रक्षा हो जाती है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप अभ्यस्त न हो जाने तक योग की निरापद् अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। प्रारब्ध का भोग यदि सोलह आना ही भुगतना पड़े, स्वभाव के दोष का त्याग करना यदि असम्भव ही हो, तो फिर व्रत, साधन-भजन, तपस्या– इन सबका क्या तात्पर्य? भगवान् की बिन्दुमात्र कृपा होने से लाखों जन्म के भोग पलक झपकते ही नष्ट हो जाते हैं;**

यह बिल्कुल सत्य है। उनकी कृपा ही सार है, अन्य सब कुछ नहीं है। व्याकुल होकर उनकी ओर ताकने से वे अवश्य कृपा करते हैं।"

वर्षा के समय तर्पण: ठाकुर की कृपा

4 अप्रैल, सोमवार। आज अष्टमी-स्नान का दिन है। ब्रह्मपुत्र में जाकर स्नान-तर्पण करने का बहुत दिनों से विचार करता आ रहा था, वह हुआ नहीं। अन्यान्य दिनों की भाँति प्रातःकाल उठकर बूढ़ीगंगा में ही स्नान करने गया। भयंकर वर्षा होने लगी। पिताजी की पुण्यतिथि में आज एक चुल्लू जल पिता को दे नहीं पाऊँगा, यह सोचकर बड़ा कष्ट होने लगा। तर्पण के जल में वर्षा की बूँद पड़ने से वह जल रक्त हो जाता है, ऐसा सुना है। इसलिए नदी के किनारे जाकर कुछ क्षण असहाय होकर बैठा रहा; फिर कोई उपाय न देखकर, साष्टांग प्रणाम करते हुए ठाकुर का स्मरण करके बहुत व्याकुलता के साथ प्रार्थना करने लगा– 'ठाकुर सालभर मैं पिता को तर्पण का जल देता आया हूँ, फिर आज विशेष दिन में एक चुल्लू जल उनको दे नहीं पाया! ठाकुर, दया करके कुछ क्षण के लिए इस वर्षा को रोक दीजिए।' वर्षा एक समान होती देखकर, अन्त में विवश होकर मैं नदी में उतरा एवं ब्रह्मपुत्र को आह्वान करके एक-एक व्यक्ति के नाम से झटपट 15-20 डुबकी लगाई। फिर सिर उठाकर देखा, वर्षा नहीं हो रही है; बिल्कुल रुक गई, एक बूँद भी पानी नहीं गिर रहा है। मैंने देव-तर्पण, ऋषि-तर्पण, पितृ-तर्पण करके जैसे ही अन्तिम अँजलि जल दिया, अचानक हवा के झोंके के साथ मूसलधार वर्षा आरम्भ हो गई। यह देखकर मैं एकदम चकित हो गया। यह सब क्या आकस्मिक घटना है या ठाकुर की कृपा का फल, स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ नहीं पाया। गंगा के किनारे बहुत अच्छी सुगन्ध पाकर चित्त बड़ा प्रफुल्लित हो गया।

दोपहर में अवसर पाकर ठाकुर से पूछा– कभी-कभी दिन के समय आसन में बैठने पर, तो कभी गहन रात्रि में, फिर कभी रास्ते में, बगीचे में, जंगल में अचानक कुछ क्षण के लिए बहुत सुगन्ध आती है, फिर कुछ समय बाद नहीं रहती। कई बार जाँच-पड़ताल करके देख लिया, उन सब स्थानों पर उस प्रकार की सुगन्ध का कोई कारण ही नहीं रहता; ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर ने कहा– **"यह सब सुगन्ध पाना अच्छा है। देवी-देवता, ऋषि-मुनि या महापुरुष दया करके जिस स्थान पर आते हैं, वहाँ उनकी ही कृपा से उन लोगों के शरीर की सुगन्ध किसी-किसी को मिलती है। यह सुगन्ध विविध प्रकार की होती है। कभी धूप-धूना की सुगन्ध, कभी चन्दन-गुग्गुल की, कभी कमल की सुगन्ध, कभी अन्य प्रकार के सुगन्धित**

फूलों की सुगन्ध, मर्तवान केले की सुगन्ध, कटहल की सुगन्ध आती है; फिर फकीरों के आगमन से गाँजे अथवा लोबान की सुगन्ध मिलती है। उस समय उनके चरणों के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिए। फिर स्थिर बैठकर खूब नाम-जप करना चाहिए; उन्हें भी उससे बड़ा आनन्द मिलता है। क्रमशः उनकी और भी कृपा अनुभव की जाती है।"

साधकों का मादक द्रव्य लेना: गाँजे के धुएँ में दशमहाविद्या

आज बातों-बातों में ठाकुर से पूछा– 'साधु, फकीर, तान्त्रिक अनेक ही साधक तो मदिरा, गाँजा आदि का सेवन करते हैं। यह सब लेने से उनकी साधना में क्या किसी प्रकार की सहायता मिलती है? गाँजाखोर साधु लोग तो देखने से ही गुण्डे जैसे लगते हैं।'

ठाकुर ने कहा– **गुण्डे भी बहुत हैं, समय-समय पर साधु का वेश धारण किए रहते हैं, वह ठीक बात है। गया में आकाशगंगा पहाड़ पर जब मैं था, एक दिन गुफा के भीतर से देखा, कई लोग बहुत-सी वस्तुएँ लेकर धड़ाधड़ पहाड़ पर चढ़ रहे हैं। उनको देखते ही मैं पहचान गया। पहाड़ के नीचे वे लोग साधु बनकर रहते थे। प्रतिदिन प्रातः मैं उन लोगों को साष्टांग प्रणाम करता था। उस दिन प्रातः बाबाजी के पास जाकर कहा, 'बाबाजी, पहाड़ के नीचे जो लोग शरीर में भस्म लगाकर, तिलक लगाकर, माला पहनकर साधु बने बैठे रहते हैं, वे साधु नहीं हैं। कल रात्रि में मैंने उनको कुछ-कुछ सामान लेकर पहाड़ पर चढ़ते देखा।' बाबाजी ने कहा, 'वे लोग साधु नहीं, गुण्डे हैं। दिन में साधु के वेश में रहते हैं और रात्रि के समय शहर में जाकर चोरी-डकैती किया करते हैं। वह सब चोरी का माल पहाड़ के ऊपर एक गुफा में ले जाकर रखते हैं, वह सब मैं जानता हूँ। तुमको उन लोगों का जो परिचय मिल गया है, वह उन्हें किसी भी प्रकार से जानने मत देना; संकट में पड़ जाओगे। उन लोगों के साथ इतने समय से जिस प्रकार व्यवहार करते आए हो, ठीक वैसा ही करना।' मैं बाबाजी की बात सुनकर, अन्यान्य दिनों की भाँति उन लोगों को साष्टांग प्रणाम करके आ गया। लोगों के सामने साधु बनकर वे धूनी के पास बैठे रहते और लोगों के नहीं रहने पर गाँजा पीकर उपद्रव करते थे। किसी भी साधु को गाँजा पीते हुए देखने पर मुझे कभी-कभी ऐसा लगता था कि ये भी उसी प्रकार के साधु हैं। बचपन से ही, किसी को गाँजा पीते देखता तो मैं उससे चिढ़ जाता था।**

एक दिन बुद्धगया जाते समय रास्ते के किनारे एक वटवृक्ष के नीचे देखा, शरीर में भस्म लगाए हुए एक बड़े तेजस्वी साधु धूनी जलाकर बैठे हुए हैं। मैं उनके पास गया, मेरे पहुँचते ही उन्होंने मुझे बैठने के लिए आसन दिया। बार-बार उनको गाँजा पीते हुए देखकर, मुझे बड़ी चिढ़ होने लगी। मैंने साधु से कहा, इतना गाँजा पीने से क्या चित्त स्थिर रखकर साधन-भजन किया जा सकता है? आप इतना गाँजा क्यों पीते हैं? साधु ने थोड़ा हँसकर मुझसे कहा, 'बैठो बच्चा, गाँजा क्यों पीते हैं, देखोगे? ठीक है।' यह कहकर उन्होंने चेले से कहा, 'अरे! दस चिलम गाँजा एक बार चढ़ाओ।' उनका चेला पूरे दस चिलम में गाँजा चढ़ाकर उस पर आग देने लगा। साधु एक-एक चिलम लेकर उसे एक-एक दम में साफ कर डालने लगे। प्रत्येक दम में वे धुएँ को निगलकर कुम्भक के साथ कुछ क्षण के लिए आँखें बन्द करके स्थिर रहकर उसे छोड़ने लगे; फिर मुझे उस धुएँ की ओर देखने के लिए अंगुलि से इंगित किया। मैंने धुएँ की ओर देखा, कुम्भक के बाद छोड़े प्रत्येक दम के धुएँ में दशमहाविद्या की एक-एक आकृति बनने लगी। क्रमशः दस दम के धुएँ में उन्होंने मुझे दशमहाविद्या का रूप दिखलाया। मैं वहाँ कुछ क्षण बैठे रहकर फिर बुद्धगया चला गया।

शीत, ग्रीष्म, वर्षा में साधुओं को प्रायः खुले मैदान में, जंगल में, पहाड़ में रहना पड़ता है। उन स्थानों पर नाना प्रकार की जलवायु से रोग हो सकते हैं। उसे रोकने के लिए ही साधु लोग गाँजा, चरस, कुचला इत्यादि नशीले पदार्थों का अभ्यास करने हेतु बाध्य हो जाते हैं।

मदिरा, गाँजादि नशीले पदार्थों का एक स्वाभाविक गुण यह है कि उससे प्रकृति की यथार्थ अवस्था प्रकट हो जाती है। कई अच्छे-अच्छे तान्त्रिक, साधु, संन्यासी भी आत्मपरीक्षा के लिए, स्वभाव वास्तव में नियन्त्रण में है या नहीं, उसे स्पष्ट रूप से जानने के लिए बहुत प्रलोभन की वस्तु को आँखों के सामने रखकर, वह सब नशा किया करते हैं। फिर उससे भीतर की अवस्था किस प्रकार होती है, उस ओर सर्वदा लक्ष्य रखा करते हैं। अच्छे साधु लोग कभी भी नशे के वश में नहीं होते, केवल आवश्यकता के अनुसार ही ग्रहण किया करते हैं।

दया और सहानुभूति के सामने साधारण नीति टिकती नहीं

इस बार दो-तीन चोर गहन रात्रि में, भिन्न-भिन्न समय में हमारे आश्रम में कई बार घुसे, किन्तु कोई सुविधा नहीं मिलने पर वैसे ही चले गए। आश्रम में चोरों के प्रवेश करते ही ठाकुर उन लोगों को पुकारकर कहते– **'ऐ, मैं जाग रहा हूँ।'** चोरों ने प्रत्येक बार ही ठाकुर की यह बात सुनकर आश्रम में आना बन्द कर दिया। यह सब जानकर हममें से किसी-किसी के मन में इस प्रकार विचार आ रहा है, 'ठाकुर ऐसा क्यों करते हैं? चोर को तो पकड़कर दण्ड दिलवाना ही उचित है। कहीं ऐसा न हो कि चोर के ऊपर अत्याचार हो, इसलिए ही लगता है, ठाकुर इस प्रकार से उनको सब समय सतर्क कर दिया करते हैं, जिससे वे लोग भाग जाएँ।' ठाकुर के समक्ष इस विषय में बात उठाने पर उन्होंने कहा– **'जिस स्थान पर दया और सहानुभूति होती है, साधारण नीति वहाँ टिकती नहीं। गाजीपुर के पयहारी (दुधाहारी) बाबा प्रायः सर्वदा समाधि में रहते थे। सप्ताह में केवल दो-तीन दिन कुछ समय के लिए गुफा का दरवाजा खुला रखते थे, तब अनेक बड़े-बड़े लोग उनका दर्शन करने आते थे; कई लोग बहुत मूल्यवान् वस्तुएँ भी बाबाजी को देते थे। बाबाजी की गुफा में ही वह वस्तुएँ पड़ी रहती। बाबाजी केवल पावभर दूध पीते थे। एक दिन बाबाजी प्रातः गुफा से बाहर निकलकर गंगा-स्नान करने गए, उसी बीच एक चोर बाबाजी की गुफा में घुस गया और जो कुछ था, सब बटोरकर उसने कम्बल में बाँधकर गठरी बना ली। तभी बाबाजी स्नान करके आए; उनकी दृष्टि पड़ते ही चोर गठरी फेंककर भाग गया। बाबाजी गुफा में आकर, आसन पर न बैठकर तुरन्त उस गठरी को बड़ी कठिनाई से सिर पर उठाए और लाठी के सहारे धीरे-धीरे चलने लगे। आठ-दस बार रास्ते में विश्राम करके, डेढ़-दो मील का पथ बड़े परिश्रम से चलते हुए, पाँच-छः घण्टे में उस चोर के घर पहुँचकर वे हाँफने लगे। गठरी को रखकर उन्होंने चोर को बुलाकर कहा, 'बाबा! मैं बूढ़ा मानुष, मेरे ऊपर तुमको थोड़ी दया भी नहीं आई, जो इतनी बड़ी गठरी बाँधकर मेरे लिए रखकर आ गए! लाठी के सहारे चलने में अब मुझे बड़ा कष्ट होता है, फिर इतना बड़ा बोझा लेकर क्या मैं बूढ़ा मानुष, दो मील चलकर आ सकता हूँ?' तब चोर बाबाजी के पैर पकड़कर रोने लगा। बाबाजी ने कहा, 'बाबा! इसमें तुम्हारा भी क्या दोष है? तुम अभाव से कष्ट पाते हो और मेरे घर ये वस्तुएँ अनावश्यक रखी हैं; मिल जाने से तुम्हारा लाभ होता है, तो लोगे क्यों नहीं? फिर बड़ी आशा से बाँधने के बाद वहाँ छोड़कर न आने से अच्छा होता। मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ।'**

बाबाजी के इस व्यवहार से एक चोर में भी परिवर्तन हो गया। साधारण नीति के विचार से तो उस चोर को जेल में भेज देना ही उचित था, लोग यही कहते।'

थोड़ा रुककर ठाकुर फिर कहने लगे– "बहुत दिनों पहले, प्रचारक अवस्था में एक दिन मैं थोड़ी अधिक रात्रि में मछुआबाजार होकर घर की ओर जा रहा था; फुटपाथ पर एक लड़की को देखा। फटा हुआ बहुत गंदा कपड़ा पहने हुए वह लड़की बार-बार बड़ी व्यग्रता के साथ रास्ते के दोनों ओर ताक रही है। उसका शुष्क मलिन मुख और एक प्रकार की व्याकुलता से ताकना देखकर मेरे हृदय में चोट पहुँची। मैंने पूछा, माँ! इतनी रात में तुम इस प्रकार क्यों खड़ी हो? लड़की ने कहा, 'देखिए, तीन-चार दिन से मेरी कुछ कमाई नहीं हुई। दो दिन से मैंने कुछ नहीं खाया।' उसकी बात सुनकर मुझे रोना आ गया। उससे कहा, और थोड़ी प्रतीक्षा करो; देखो, आज भगवान् तुम्हें कुछ देते हैं या नहीं। यह कहकर रात 11 बजे तक घूम-घूमकर मैंने कुछ ब्राह्म मित्रों के पास से पाँच रुपये संग्रह किए। उससे आठ आने की खाद्य वस्तु, ढाई रुपये की एक अच्छी साड़ी व दो रुपये नगद लेकर उस लड़की के पास गया। लड़की को प्रणाम करके, वह सब उसके हाथ में देते हुए मैंने कहा, 'माँ! यह खाना ले जाकर खा लो। आज भगवान् ने यही तुमको दिया है। फिर यह कपड़ा पहनकर तुम रास्ते में खड़े होना।' कैसे क्या होता है, कुछ पता नहीं! उस दिन से मैं उपासना में विशेष रूप से भगवान् की कृपा अनुभव करने लगा।"

वापण्डित और ठाकुर

हमारे गुरुभाई श्री राधारमण बाबू के पाँच-सात वर्ष के अधपगले पुत्र 'वापण्डित' ने धूल से लथपथ नंग-धड़ंग अवस्था में दौड़ते हुए आकर अपने घर की एक गाय को पकड़ा। उस गाय को लेकर पण्डित ने ठाकुर से 15-20 फीट की दूरी पर, तालाब के किनारे एक छोटे पेड़ में लम्बी रस्सी से बाँधकर ठाकुर को पुकारते हुए कहा, 'गोसाँई, गाय रखी है, देखना जिससे भागे न; मैं आता हूँ।' यह कहकर वह दोनों हाथ से अपने नितम्ब में थपकी मारते-मारते खेलने के लिए दौड़ पड़ा। तब ठाकुर घूमकर गाय की ओर मुख करके बैठ गए; इस प्रकार अन्य कुछ न करके, भावावेश में मग्न न होकर केवल गाय की ओर लगातार देखते रहे। दिन के लगभग 2 बजे से लेकर साढ़े 5 बजे तक वापण्डित का कोई पता नहीं। संध्या के कुछ पहले आश्रम के भीतर से होकर वापण्डित जा रहा है, इसका पता

चलने पर ठाकुर ने उसको पुकारते हुए कहा, **"पण्डित! अब अपनी गाय लोगे? मैं तब से तुम्हारी गाय को ही देख रहा हूँ।"** पण्डित ने दौड़ते हुए आकर कहा, 'ओह, गाय यहीं है? अच्छा ले जाता हूँ।' यह कहकर गाय को ले गया। ठाकुर भी आसन से उठकर शौच के लिए गए।

ठाकुर का स्वप्न– साधु पर विश्वास

कल रात तन्द्रावस्था में एक बहुत ही अच्छा स्वप्न देखा। मैंने देखा– "धर्म-प्राप्ति के लिए कई स्थानों में घूम-फिरकर गेण्डारिया आश्रम में आ पहुँचा। ठाकुर के सामने जाकर देखा, उनके मस्तक पर सुन्दर जटा है, रंग कुछ ताँबे के समान है, शरीर लम्बा-चौड़ा है; हाथ कर मुद्रा में है, आसन पर वे स्थिर भाव से सीधे बैठे रहकर सामने की ओर एकटक देख रहे हैं; अपनी असाधारण साधना के प्रभाव से मानो वे समूचे विश्व-ब्रह्माण्ड को अग्राह्य कर रहे हैं। मैंने इनसे दीक्षा लेकर कुछ समय विभिन्न स्थानों में रहकर साधन-भजन किया। अन्त में, उन्हीं के दर्शन की आकांक्षा से पुनः उनके पास पहुँचकर देखा, वे अब पहले जैसे नहीं हैं। वैसी प्रखर तेजयुक्त आकृति विलुप्त हो गई; अब उनका रूप अन्य प्रकार का है। जटा बढ़कर कमर तक लटक गई है। थोड़े श्यामवर्ण के ज्योतिर्मय स्थूल सौम्यमूर्ति गोसाँईजी शान्त भाव से माधुर्यरस में डूबकर अपनी अवस्था में विभोर होकर मानो ऊँघ रहे हैं। मन को लुभाने वाले उस रूप की ओर देखकर मैं अवश हो गया। तब उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखकर कहा, 'क्या बात है? क्या चाहते हो, दीक्षा लोगे?' मैंने कहा, हाँ, लूँगा? ठाकुर ने कहा, 'पहले जिनसे दीक्षा लिए हो, उनका तो त्याग करना होगा।' मैंने कहा, आपको देखने से उस रूप को भूल गया। तब उन्होंने मुझे पुनः दीक्षा दी। निद्रा भंग होने के बाद से अभी तक ठाकुर के उस रूप को एक मुहूर्त के लिए भी भूला नहीं पा रहा हूँ; अन्तःकरण में मानो अपूर्व रूप की एक छाप पड़ गई है।"* अवसर देखकर एकान्त में ठाकुर को इस विषय में बतलाने पर उन्होंने कहा– **"इन सब स्वप्नों को लिखकर रखना चाहिए। एक मिनट के ही स्वप्न से एक जन्म का भोग भी समाप्त हो सकता है। मेरे जीवन का एक अंश स्वप्न ने स्पष्ट कर दिया। स्वप्न कभी सत्य होता है, पहले मैं यह विश्वास नहीं करता था, फिर देखते-देखते विश्वास करना पड़ा।"**

"ब्राह्मधर्म के प्रचारक की अवस्था में बहुत समय पहले एक बार मेरा हृदय-रोग (हार्ट-डिजीज) बहुत बढ़ गया था; वेदना होते ही मैं

---

* बिल्कुल ऐसा ही रूप ठाकुर का पुरी में हुआ था।

मूर्च्छित हो जाता था; एक मिनट पहले भी कुछ समझ नहीं पाता था। कब कहाँ किस अवस्था में गिर जाऊँ या मर जाऊँ, इस आशंका से मेरी देह की रक्षा के लिए एक दरबान नियुक्त हुआ था। कहीं भी बाहर नहीं जा पाने के कारण मन में बड़ा दुःख होता था। सोचता था, यदि कुछ काम-काज ही नहीं कर पा रहा हूँ, तो फिर मेरा बचे रहने से क्या लाभ? इस समय मैं कार्नवालिस स्ट्रीट के एक मकान में रहता था। रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा– जगन्नाथ घाट पर कई साधु आए हुए हैं, उनके बीच एक जटाधारी साधु शरीर में भस्म लगाकर कम्बल ओढ़े हुए धूनी जलाकर बैठे हैं। उन्होंने हाथ हिलाते हुए मुझको बुलाकर कहा, 'बच्चा, यहाँ आओ, दवाई ले लो, बीमारी छूट जाएगी।' स्वप्न देखकर जाग गया। मन बड़ा विचलित हो गया; सोचा– 'एक बार गंगा के किनारे जाकर देख क्यों न लूँ।' मैं तभी बाहर निकल पड़ा। गंगा के किनारे जगन्नाथ घाट में जाकर देखा, गंगासागर के यात्री बहुत-से साधु वहाँ डेरा डालकर बैठे हैं। स्वप्न में जहाँ मुझे साधु का दर्शन हुआ था, ठीक उसी स्थान पर जाकर मैंने देखा, वही साधु धूनी जलाकर बैठे हैं। मुझे देखकर साधु ने बड़े स्नेह के साथ 'बैठो बच्चा, बैठो, दवाई लोगे?' कहकर एक लकड़ी की डिबिया से बहुत कम परिमाण में कुछ भस्म मेरे हाथ में देकर कहा, 'इसे खा लो, तुम्हें और कभी मूर्च्छा नहीं आएगी। हमारे पास दवा और नहीं है, रहने से तुम्हारी बीमारी पूरी छूट जाती।' यह कहकर मुझे धूनी से कुछ भस्म देते हुए उन्होंने कहा, 'कुछ रोज यह भस्म लेकर शरीर में अच्छे-से मलो।' तब मैं उसे लेकर आ गया। प्रतिदिन उस भस्म को शरीर में कुछ दिनों तक मला। उस समय मेरे अनेक ब्राह्म मित्र मुझे भयंकर कुसंस्कारी समझने लगे; लेकिन तब से मुझे हार्ट-डिजीज और मूर्च्छा नहीं हुई। इस घटना के बाद से साधुओं के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा होने लगी। कहीं पर भी साधुवेश देखते ही मैं उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करता। अच्छा-बुरा कुछ भी विचार नहीं करता था। सोचता था, किसके भीतर क्या है, मैं तो जानता नहीं। फिर प्रणाम करने में दोष ही क्या है? यदि भाग्यवश प्रणाम किसी महापुरुष को हो जाए, तब विशेष कल्याण भी तो हो सकता है।"

"एक दिन मैं मिर्जापुर स्ट्रीट से होकर जा रहा था, देखा कि कंगाल वेश में एक दीर्घाकृति साधु हाथ में कमण्डलु लिए द्रुतगति से आ रहे हैं। दूर से देखकर मैं उनको प्रणाम करने के उद्देश्य से फुटपाथ के अन्य ओर जाकर खड़ा हो गया। पास आते ही मैंने उनको प्रणाम किया।

चलते-चलते ही उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दिया। तब मुझे ऐसा लगा मानो कोई आधा मन बर्फ मेरे सिर पर रख दिया है। सारा शरीर शीतल हो गया। साधु के साथ में जाने का मेरा मन होते ही उन्होंने मेरी पीठ पर एक थपकी मारकर कहा, 'चलो बच्चा, चलो।' फिर वे बड़ी द्रुतगति से जाने लगे। मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। किस प्रकार, किस ओर से होकर, कहाँ पर गए, कुछ भी जानता नहीं। मानो बिल्कुल मिस्मेराइज्ड (सम्मोहित) हो गया। कुछ समय बाद देखा, ईडन गार्डन में पहुँच गए हैं। साधु ने मुझे एक पेड़ के नीचे बैठाकर अनेक उपदेश दिया। गुरु के बिना कुछ नहीं होता, वे बारम्बार यह कहने लगे। मैंने उनसे दीक्षा के लिए प्रार्थना की, तो उन्होंने मुझसे कहा, 'नहीं, यह नहीं होगा; तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं, समय पर वे ही तुम्हें खोज लेंगे, चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।' उसके बाद उनका अनुसरण करने की इच्छा से मैं उनके पीछे-पीछे गया। हावड़ा-पुल के ऊपर से चलते-चलते देखा, साधु अचानक अदृश्य हो गए। इस घटना के बाद से साधु लोगों के प्रति मेरी और भी श्रद्धा बढ़ गई।"

"एक बार स्वप्न देखा, भगवान् को पाने के लिए कई स्थानों का भ्रमण करते-करते एक स्थान पर जैसे ही पहुँचा, एक साइनबोर्ड उड़ते-उड़ते मेरे सामने गिरा। साइनबोर्ड में बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था, 'इस पथ से चलो।' लिखावट के बाद उसमें मुट्ठी बन्द तर्जनी से संकेत करता हुआ एक हाथ दिखाई पड़ा। फिर साइनबोर्ड हवा में चलने लगा। मैं दूसरी ओर ध्यान न देकर उस अंगुलि के संकेतानुसार चलने लगा। हाथ मेरे आगे-आगे चलता रहा; मैं कितने ही जंगल, पहाड़, दुर्गम स्थान, पथ-अपथ से चलकर एक अत्यन्त विशाल नदी के किनारे जा पहुँचा, नदी का तो मानो ओर-छोर ही नहीं है; वहाँ पहुँचकर देखा, एक अन्य साइनबोर्ड नदी के ठीक किनारे पर पड़ा है; उसमें लिखा है, 'विश्वासी लोगों के पार होने का घाट।' उसके बाद और भी कितना कुछ देखा! ये सब स्वप्न, स्वप्न नहीं हैं; यथार्थ अवस्था ही है, किसी-किसी के स्वप्न में प्रकाशित हो जाती है।"

महापुरुष की चमारी-वृत्ति

ठाकुर ने बातों-बातों में कहा– "एक बार मैं मछुआबाजार स्ट्रीट से होकर जा रहा था, मेरा जूता फट गया। रास्ते में एक मोची को देखा,

उसे जूता सिलाई करने के लिए दिया; पर उसने पैसे की बात नहीं की। जूता सिलाई हो जाने पर मैंने उसको पैसे दिए। उसमें से उसने दो पैसा मुझे लौटा दिया एवं तुरन्त अपना सामान आदि उठाकर जाने लगा। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ। मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह गंगा के किनारे बाबूघाट में अपना सब सामान रास्ते के नीचे एक दीवाल के टूटे-फूटे आले के भीतर घुसाकर, गंगा में स्नान किया; फिर तिलक लगाकर संध्या-तर्पण करके खिदिरपुर की ओर गया। मैं भी उसके पीछे-पीछे जाने लगा। उसने एक घर में प्रवेश किया। उस घर के द्वार पर मेरे पहुँचते ही एक व्यक्ति मुझे अतिथि समझकर भीतर ले गए। जाकर देखा, वे चर्मकार एक महन्त हैं। उनके बहुत-से सेवक-शिष्य हैं। अखाड़े में ठाकुरजी का विग्रह प्रतिष्ठित है। बड़ा ठाटबाट है। देख-सुनकर मैं एकदम चकित हो गया। महन्त से पूछा, 'आपके इतने सेवक-शिष्य हैं, स्वयं महन्त हैं, जाति से ब्राह्मण हैं, कुछ भी तो अभाव नहीं है, फिर आप जूता सिलाई क्यों करते हैं?' महन्त बाबाजी मेरा प्रश्न सुनकर रो पड़े एवं हाथ जोड़कर अपने गुरुदेव का स्मरण करके बारम्बार प्रणाम करते-करते कहने लगे– मेरे गुरु बड़े दयालु थे, एक दिन अतिथि को भोजन कराने के पहले ही मैंने भोजन कर लिया था, उससे उन्होंने मुझ पर अनुशासन करते हुए कहा, 'अरे, तू क्यों साधु हुआ, तू तो चमार है।' अपने गुरुदेव के उस वाक्य को मैं अन्य कैसे मानूँगा? इसलिए उस दिन से मैं जूता सिलकर जीविका निर्वाह कर रहा हूँ। दिनभर मोची का काम करके अपने भोजन हेतु चार आने पैसे मिल जाने पर मैं चला आता हूँ। अन्त समय में गुरुदेव दया करके अपनी गद्दी पर मुझे ही बैठा गए; लेकिन ऐसा होने पर भी सामर्थ्य के अनुसार मैं मोची का काम करके उन्हीं की सेवा में दिन बिता देता हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे अन्तिम दिनों तक मैं अपने गुरुदेव के उस वाक्य की रक्षा कर सकूँ।"

"इनको देखने के बाद, मुझे लगा, 'इस प्रकार छद्मवेश में महात्मा लोग जहाँ-तहाँ रह सकते हैं; बाहरी आकृति, वेशभूषा और आचार-व्यवहार देखकर जब उन्हें पहचानना सहज नहीं है, तो किसकी क्या अवस्था है, कैसे समझूँगा?' तब से मैं बाहर रास्ते में निकलते ही सामने व दोनों ओर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, कुली-मजदूर, मेहतर, चमार, जिसे भी देखता हूँ, मन-ही-मन प्रणाम करके चलता हूँ। इससे लोकालय में जो महात्मा-महापुरुष समय-समय पर उस प्रकार छद्मवेश में घूमा करते हैं, सामने आने से वे भी पकड़ में आ सकते हैं।"

कुलगुरु, ग्रन्थगुरु, स्त्रीगुरु, सिद्धगुरु एवं सद्‌गुरु के सम्बन्ध में विविध प्रश्नोत्तर

यथार्थ धर्म-प्राप्ति के लिए प्रबल आकांक्षा एवं मन का उत्साह अनेक लोगों के भीतर रहने पर भी आजकल उपयुक्त गुरु के अभाव से उस विषय में बड़ी असुविधा होती है। जो लोग लौकिक गुरु का काम कर रहे हैं, देश की दुरवस्थावशतः और समय के गुण से अब उन लोगों की वैसी अवस्था नहीं है। वर्तमान शिक्षा के गुण से अथवा समय के प्रभाव से लोगों की बुद्धि भी अब अन्य प्रकार की हो गई है। सरल विश्वास से लौकिक गुरु से दीक्षा लेकर सभी तृप्त नहीं हो पाते हैं, इसलिए कई लोग पुस्तक देखकर योगाभ्यास की चेष्टा करते हैं; पर उससे किसी-किसी की दुर्दशा हो जाया करती है। अतः अब उपाय क्या है? इस विषय में संशय होने पर ठाकुर से पूछा गया, 'कुलगुरु किसको कहते हैं? लौकिक गुरु से दीक्षा ग्रहण करके आजकल लोग को वैसा फल क्यों नहीं मिलता? इससे क्या किसी प्रकार के अनिष्ट की सम्भावना है?'

प्रश्न सुनकर ठाकुर इस प्रकार कहने लगे– **'आजकल गुरुकरण बड़ी ही समस्या का विषय हो गया है। पहले हमारे देश में जो लोग गुरु थे, सब सिद्ध पुरुष ही थे। कुल-कुण्डलिनी शक्ति जागृत होने पर ही उन लोगों को कुलगुरु कहा जाता था। अभी कुलगुरु कहने पर लोग वंश-परम्परा का गुरु समझते हैं। अभी जो लोग गुरु का कार्य करते हैं, जाँच-पड़ताल करके देखने पर पता चलता है कि उनके वंश में कोई-न-कोई सिद्ध पुरुष थे। कुछ समय पहले भी सिद्ध पुरुषों के वंश में जो लोग गुरु का कार्य करते थे, सिद्ध न होने पर भी वे लोग बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ पण्डित थे; ज्योतिष आदि भी वे लोग अच्छे-से जानते थे। किसी के दीक्षाप्रार्थी होने पर गुरु उसकी जन्म-पत्रिका लेकर जन्म-लग्न से गणना करते थे; गणना द्वारा दीक्षार्थी की प्रकृति सात्विक है या राजसिक अथवा तामसिक, उसे पता करके उस प्रकृति के साथ किस देवता का सम्बन्ध है, निश्चित कर लेते थे। फिर उस व्यक्ति के शरीर, मन और प्रकृति के साथ चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह, यहाँ तक कि समस्त ब्रह्माण्ड का अनुकूल-प्रतिकूल किस प्रकार का योग है, वह भी निर्धारित कर लेते थे। उसके बाद, जिन सब अक्षरों के स्मरण से समूचा विश्व-ब्रह्माण्ड उसके गुण के अनुरूप प्रकृति के अधिष्ठाता देवता की ओर उसको अग्रसर होने में सहायता करेगा, उसे एक-एक करके गणना द्वारा निकाल लेते। फिर उन समस्त अक्षरों के संयोजन से मन्त्र**

निकालकर शिष्य को प्रदान करते थे एवं उसके अनुसार पूजा-पद्धति की व्यवस्था करते थे। इस प्रणाली से दीक्षा होने पर, गुरु की कोई सहायता न मिलने पर भी शिष्य यदि श्रद्धापूर्वक यथावत् मन्त्र का जप और उन सब क्रियाओं का अनुष्ठान करते हैं, तो उसके साथ-साथ समूचे ब्रह्माण्ड की एवं उस देवता की कुछ सहायता पाकर इष्ट वस्तु की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। ठीक प्रकृति के अनुरूप, प्रणाली के ही अनुसार दीक्षा पाकर साधक यदि रीति के अनुसार प्रयास करते हैं, तो उसका फल अवश्य होगा। इसलिए अनेक स्थानों पर देखा जाता है, गुरु की अवस्था साधारण रहने पर भी शिष्य सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। वर्तमान समय में ठीक इसी प्रणाली के अनुसार दीक्षा प्रायः होती नहीं। शाक्त के घर में एक वैष्णव प्रकृति के व्यक्ति को गुरु आकर वंश-प्रणाली के अनुसार कभी तो शक्ति की ही उपासना दे देते हैं; फिर वैष्णव वंश के एक शाक्त भाव के व्यक्ति को कभी विष्णु का मन्त्र देकर उसके अनुसार नियम-पद्धति बतला देते हैं। इस प्रकार प्रकृति के विरुद्ध पथ से चलकर साधन-भजन करने से कोई उपकार होते देखा नहीं जाता। तामसी भाव के व्यक्ति से सात्विक उपासना कराने के लिए जैसे उसके स्वभाव, मन– यहाँ तक कि शरीर के अणु-परमाणु को परिवर्तित करके उनको सात्विक उपादानों में गठित करना पड़ता है, अन्यथा सत्त्वगुणी देवता को प्रसन्न करना असम्भव है; उसी प्रकार सत्त्वगुणी को तामसिक देवी-देवताओं की उपासना कराने के लिए भी वैसा ही करना पड़ता है। ये सब सहज नहीं है। इसीलिए 15 वर्ष की आयु में कोई व्यक्ति साधन लेकर 80 वर्ष की आयु तक जप-तप करके भी किसी देवी-देवता के दर्शन और कृपा की प्राप्ति के विषय में कुछ भी प्रमाण नहीं दे पाता। फिर कोई-कोई तो कम आयु में ही कुछ दिन साधन-भजन करके अपने आराध्य देवता की कृपा के विषय में स्पष्ट प्रमाण दे दिया करते हैं। वर्तमान समय में जो लोग गुरु का कार्य करते हैं, प्रायः अन्य कुछ विचार किए बिना वे केवल वंश-परम्परा से लोगों को साधन प्रदान कर देते हैं, इसी कारण बड़ी हानि हो रही है; क्योंकि साधन-भजन करके लोगों को कोई फल न मिलने से मन्त्र के ऊपर, क्रिया के ऊपर एवं देवी-देवताओं के ऊपर एक अविश्वास होने लगता है। फिर लौकिक गुरु से विधि के अनुसार दीक्षा अथवा गुरु-शक्ति की सहायता न पाने पर भी अन्य कोई अनिष्ट होने की वैसी सम्भावना नहीं रहती, वरन् साधक की श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा एवं चेष्टा रहने पर उससे उनका उपकार ही होता है;

किन्तु अज्ञात कुलशील से दीक्षा लेने से कई बार संकट में पड़ जाते है।'

प्रश्न– आजकल तो देखा जाता है, अनेक पुस्तकों में योगाभ्यास की सब प्रणाली दी हुई है। वह देखकर योगाभ्यास करने से क्या वैसा उपकार नहीं होता?

उत्तर– **"उपकार क्या, ग्रन्थादि देखकर योगाभ्यास करना तो और भी भयानक है। कई लोग वैसा करके कभी हार्निया, कुष्ठ, मस्तिष्क के रोग से पीड़ित होकर, तो कभी अन्य किसी प्रकार के दुःसह रोग से पीड़ित होकर बिल्कुल सर्वनाश कर लेते हैं। साधन-भजन की कोई भी क्रिया का कौशल जाने बिना, केवल पुस्तक देखकर अभ्यास नहीं करते। प्रायः सब क्रियाओं की अनुष्ठान विधि शास्त्रकार नियम से लिख गए हैं। उन क्रियाओं का अभ्यास करने के लिए क्रियावान् गुरु से यथाक्रम वह सब जान लेना चाहिए, प्रणाली के अनुसार शिक्षा लेनी पड़ती है; अन्यथा कुछ नहीं होता।"**

प्रश्न– कुछ महिलाएँ भी तो गुरु का कार्य करती हैं, वे लोग दीक्षा देती हैं; सुना है, वे लोग भी सिद्ध हैं!

उत्तर– **देती हैं, तो दें। फिर वे सिद्ध हों या महासिद्ध ही हों, ब्रह्मविद्या प्राप्त कर लेने पर भी नारी देह कभी आचार्य नहीं हो सकती। गुरु की देह सर्वदा ही पवित्र है; उनकी सेवा करने से, उनको स्पर्श करने से शिष्य शुद्ध हो जाते हैं। शास्त्रकार किसी-किसी प्राकृतिक अनिवार्य कारणों से नारी देह को स्वाभाविक अशुचि कह गए हैं। ब्राह्मणी तो जनेऊ धारण नहीं कर सकतीं; अब यदि कोई वैसा ही करे, तो क्या करोगे? शास्त्र की व्यवस्था और अनुशासन जो नहीं मानते, स्वीकार नहीं करते, वे लोग जो चाहे कर सकते हैं। उसमें क्या कहें?**

प्रश्न– महापुरुषों के कथनानुसार यदि कोई शास्त्र-विरुद्ध कार्य करे तो?

ठाकुर– **"महापुरुषों का कथन तो शास्त्र के विरुद्ध नहीं होता। फिर शास्त्र की साधारण व्यवस्था के साथ हो सकता है, मेल न हो। उससे वह शास्त्र-विरुद्ध ही होगा, यह नहीं कह सकते। 'विशेष-विशेष अवस्था में, विशेष-विशेष व्यवस्था है', यह तो शास्त्र में ही है। शास्त्र-विरुद्ध कार्य तो धर्म-विरुद्ध कार्य है– महापुरुष ही क्यों, स्वयं भगवान् भी यदि करने को कहते हैं, अभिमान के रहते, विचार-बुद्धि के रहते उसे कोई करता है, तो उसको उसी के अनुसार दण्ड मिलता है। भगवान् के कहने पर ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने 'अश्वस्थामा हत इति गजः' कहकर तो एक प्रकार से मिथ्या बात कही थी; उससे उनको छुटकारा**

कहाँ मिला? फिर भगवान् ने ही इस कारण उनको नरक-दर्शन कराया। इस प्रकार के और भी कई दृष्टान्त हैं। भगवान् भी तो कोई कम नाटक करने वाले नहीं हैं! शास्त्रकारों ने सब दिखला दिया है।"

इन सब बातों के बाद, सिद्ध पुरुष से दीक्षा लेने में किसी प्रकार के इष्ट-अनिष्ट की सम्भावना के सम्बन्ध में पूछने पर ठाकुर इस प्रकार कहने लगे– **केवल 'कोई सिद्ध पुरुष हैं' यह सुनकर उनके पास जाकर बिना विचार किए दीक्षा ले लेना भी ठीक नहीं है। सिद्ध तो कितने प्रकार के हैं! भूतसिद्ध, प्रेतसिद्ध, किसी विशेष-विशेष देवी-देवता के सिद्ध, ऐश्वर्यसिद्ध। जिनका जो संकल्प है, वे उसे प्राप्त कर लेने से तो सिद्ध हो जाते हैं। मुझे जो चाहिए, उस विषय में जो सिद्ध नहीं हैं, वे मुझे वह पथ कैसे बतला सकते हैं, उस विषय में क्या सहायता करेंगे? जो लोग जिस विषय में सिद्ध हैं, वे केवल वही पथ बतला सकते हैं। फिर सिद्ध होने से ही तो सर्वज्ञ नहीं हो जाते! फिर सिद्ध होने से ही वे धार्मिक होंगे, वह भी कहा नहीं जा सकता। धर्म के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखकर भी कितने लोग कितने विषय में सिद्ध हो जाते हैं! केवल योगांग के अभ्यास द्वारा, ऐश्वर्य के सहारे कोई नास्तिक व्यक्ति भी चन्द्रलोक, सूर्यलोक, नक्षत्रलोक में सशरीर सरलता से आवागमन कर सकता है। अतएव किसी सिद्ध व्यक्ति से भी साधन लेने के पूर्व, वे कैसे सिद्ध हैं, यह अच्छे-से पता कर लेना चाहिए। सात्विक प्रकृति का एक व्यक्ति, सिद्ध नाम सुनकर यदि एक कापालिक या पिशाचसिद्ध के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करता है एवं उस प्रणाली के अनुसार मदिरा, माँसादि लेकर तामसिक साधना करता रहे, तो फिर उससे उसका क्या उपकार होगा? प्रकृति के विरुद्ध साधना करने से सिद्धगुरु की सहायता मिलने पर भी उपकार कुछ नहीं होगा, वरन् अनिष्ट ही होगा। इसलिए दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व वे सिद्ध पुरुष हैं, यह जानते हुए भी कुछ समय नियमानुसार उनका संग करना चाहिए। क्रमशः उनके आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप, साधन-भजन को देखकर यदि उनके प्रति चित्त आकर्षित हो जाए एवं अपने लक्षित विषय में वे सिद्ध लगें, तो उनसे दीक्षा ली जा सकती है। इस प्रकार होने से सिद्धगुरु की सहायता एवं अपनी प्रकृति के अनुकूल साधना की चेष्टा से वे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।**

ठाकुर इस प्रकार कहकर चुप हो गए; फिर पूछा गया– 'सद्गुरु क्या हैं? उनकी शिक्षा की क्या विशेषता है? वह दीक्षा प्राप्त होने से क्या अवस्था होती है?'

ठाकुर भावावेश में रह-रहकर कहने लगे– **सद्‌गुरु से दीक्षा लेना बिल्कुल अलग प्रकार का है। वहाँ समय-असमय, योग्य-अयोग्य किसी प्रकार का विचार नहीं है; वह सम्पूर्ण कृपा-सापेक्ष है। यह दीक्षा किसी भी अवस्था में, कहीं भी, एकमात्र भगवान् की कृपा से ही हुआ करती है। भगवान् ही सद्‌गुरु हैं। भगवान् के पदाश्रित भगवज्जन महापुरुष लोग ही सद्‌गुरु हैं। सद्‌गुरु शिष्य नहीं बनाते, वे गुरु बनाते हैं। वे शिष्य के भीतर अपने इष्ट देवता को प्रतिष्ठित करके उनकी सेवा-पूजा करते हैं। शिष्य की देह उनका देव-मन्दिर है। देव-मन्दिर में किसी प्रकार के अत्याचार-दुराचार होने पर सेवक उसे देखकर जैसे लज्जित होते हैं, दुःखी होते हैं; शिष्य की भी किसी प्रकार की दुर्दशा देखने पर गुरु उसी प्रकार सेवा-पूजा में अपनी ही त्रुटि मानकर उदास हो जाते हैं। सद्‌गुरु प्रदत्त 'नाम' नाम नहीं है, अक्षर नहीं है या कोई शब्द नहीं है; इस नाम में भगवान् की अनन्त शक्ति है। शिष्य के भीतर इस शक्ति का संचार ही सद्‌गुरु दीक्षा है। यह दीक्षा भगवान् की कृपा से एक बार किसी को प्राप्त हो जाने पर फिर उसके अपने हाथ में करने का कुछ भी नहीं रहता। उसके जीवन के समस्त कार्य, यहाँ तक कि प्रत्येक श्वास-प्रश्वास भी उस एक की इच्छा के अधीन हो जाते हैं। भृंगी-कीट द्वारा कीड़ों को पकड़ने की भाँति सद्‌गुरु शक्ति-संचार करके, शिष्य को दीक्षा देकर क्रमशः आत्मसात् कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्र में है– 'दीक्षाग्रहणमात्रेण नरो नारायण भवेत्।'**

साधना की चेष्टा ही उन्नति की सीढ़ी है

निराशा में आश्वासन

जीवन की नाना प्रकार की दुरावस्था की चिन्ता करके धर्म के विषय में अत्यन्त निराश होकर ठाकुर से कहा– ब्राह्म-समाज में जब तक था, लगता है कि अच्छे-से था। उस समय सत्य के प्रति कैसा एक अनुराग था, धर्म में उत्साह था, सभी ओर उन्नति के लिए प्राणपण से चेष्टा थी। सभी ओर एक अच्छी अवस्था का उपभोग कर रहा था। अब तो जीवन में उस प्रकार का कुछ भी नहीं देख रहा हूँ। थोड़ा कुछ अवलम्बन करके दो-चार दिन चेष्टा करते-करते ही हैरान हो जाता हूँ; एक दोष दूर करने जाता हूँ तो भीतर के और भी कई दोष बाहर जा जाते हैं। हाथ-पैर मानो ढीले पड़ जाते हैं, मन का उत्साह बिल्कुल ठण्डा हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? सद्‌गुरु का आश्रय पाकर मेरी उन्नति का क्या यही परिणाम हुआ?

ठाकुर ने कहा– "यह साधन जिन लोगों को मिला है, प्रायः बहुतों की यही दशा है। सब विषयों में 'मैं करने वाला हूँ, अपनी उन्नति मैं कर सकता हूँ', यह अभिमान रहने से मनुष्य भगवान् की ओर नहीं देखता। इस अभिमान को नष्ट करने के लिए ही इस प्रकार की अवस्था का आना आवश्यक है। मनुष्य कुछ है ही नहीं, मनुष्य का कुछ करने का सामर्थ्य ही नहीं है, इसे अच्छे-से समझना होगा; अन्यथा भगवान् की ओर कोई ताकेगा नहीं, उन्नति भी नहीं होगी।"

यह कहकर ठाकुर कुछ क्षण स्थिर बैठे रहे, फिर भावावेश में झूमते-झूमते कहने लगे–

"गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बारम्बार संग्राम करने हेतु कहा है। यह संग्राम सभी साधकों के जीवन में आएगा। अनेक दुरावस्था में पड़कर प्रलोभन के साथ साधक संग्राम करता रहेगा। फिर इस संग्राम में कभी साधक प्रलोभन को परास्त करेगा, तो कभी प्रलोभन साधक को पराजित करेगा। इस भयंकर संग्राम में ही साधक को अधिकांश समय काटना पड़ता है। इस समय एकमात्र गुरुप्रदत्त 'नाम' को अस्त्र बनाकर, खूब धैर्य धारण करके रिपुओं के साथ प्राणपण से युद्ध करना पड़ता है। संग्राम की अवस्था जैसी भयंकर अवस्था साधक-जीवन में अन्य नहीं है। बारम्बार प्राणपण से चेष्टा करके भी साधक जब नाना प्रकार के भयंकर प्रलोभन और रिपुओं द्वारा बार-बार परास्त होने लगता है, उस समय फिर उसका धैर्य नहीं रहता। 'साधन-भजन से कुछ नहीं होता, साधन-भजन सब व्यर्थ है', साधक इस प्रकार सोचकर बिल्कुल नास्तिक के समान हो जाता है। जो लोग दो-चार बार धक्का खाकर बिल्कुल हाथ-पैर चलाना छोड़कर बैठ जाते हैं, उनका भोग समाप्त होने में समय लगता है। फिर जो बार-बार गिरकर भी शरीर झाड़ते हुए उठ जाते हैं, संग्राम से निराश नहीं होते, उनका भोग शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। जिसकी जिस प्रकार प्रकृति है, वह उसी प्रकार संग्राम कर सकता है; कोई कम, तो कोई अधिक। फिर भी अन्त में सभी को इस युद्ध में परास्त होना होगा। युद्ध में पग-पग पर परास्त होते-होते जब बिल्कुल निस्तेज हो जाएगा, अस्थि-पंजर टूटकर बिल्कुल चूर्ण-चूर्ण होने से चारों ओर अन्धकार देखेगा, तब साधक समझेगा कि उसकी क्षमता से अब कुछ होने का नहीं; वह अत्यन्त असार है; एक साधारण विषय में भी कुछ करने का उसका सामर्थ्य नहीं है। तब वह स्वयं को यथार्थ में तुच्छ, पतित, अधम जानकर प्रबल शक्तिशाली की ओर ताकेगा; हृदय से

उनका आश्रय लेगा; उनके ऊपर सम्पूर्ण रूप से निर्भर रहकर यथार्थ कृपाप्रार्थी होगा। स्वयं की कोई क्षमता ही नहीं है; स्वयं को असार से भी असार जानकर सम्पूर्ण रूप से भगवान् के शरणापन्न होने से ही 'भक्तियोग' आरम्भ होता है; तब फिर साधक की किसी प्रकार की अभिलाषा, चेष्टा अथवा स्वाधीनता नहीं रहती। सब भगवान् करते हैं, इसे स्पष्ट जानकर स्वयं को पूर्णतः उनकी कृपा के ऊपर छोड़ देता है। भक्त स्वयं को भगवान् के चरणों में सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर देता है, तब भगवत्कृपा से उसके समक्ष विविध तत्त्व प्रकाशित होने लगते हैं। इन सब तत्त्वों के प्रकट होने की अवस्था ही 'ज्ञानयोग' है। गीता में जो कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के विषय में कहा गया हैं, उसका तात्पर्य यही है। तीव्र तपस्या, कठोर वैराग्य और प्राणपण से साधन-भजन करके भी यथार्थ अवस्था प्राप्त नहीं होती, उनकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं होगा– इसको स्पष्ट रूप से समझने के लिए ही साधन-भजन है। स्वयं की चेष्टा, सामर्थ्य सभी असार है। केवल उनकी कृपा ही सार है।"

ठाकुर कुछ क्षण रुककर, फिर कहने लगे– **'खूब संग्राम करते जाओ, इस संग्राम का जीवन में आना भी बड़े सौभाग्य की बात है। बहुतों के जीवन में यह संग्राम आता ही नहीं। संग्राम आरम्भ होने से ही समझना, धर्म-जीवन का सूत्रपात हो गया। इस साधना के भीतर जो लोग हैं, सभी को इस संग्राम का सामना करना होगा; सभी को अन्तःकरण से समस्त रिपुओं के समक्ष पराजय स्वीकार करनी होगी। स्वयं की जो यथार्थ नींव है, उसमें जाकर खड़े होना होगा। अपनी जगह में एक बार खड़े होने से ही स्वयं को अत्यन्त तुच्छ, पतित, कंगाल समझने लगोगे। इस समय दीनबन्धु, पतितपावन, कंगाल के देवता कहकर भगवान् को पुकारना कोई साधारण बात अथवा कोई सीखी हुई बात नहीं होगी। अपनी दुरावस्था का अनुभव करके भगवान् को पुकारने से वह हृदय की पुकार होगी। तब भगवान् दया करेंगे। निराश होने की बात नहीं है।'**

रूप की शोभा नष्ट होने से साधना में विरक्ति

गुरुदेव मेरे साधन-भजन और जीवन की उन्नति के विषय में जितना भी भरोसा क्यों न दें, मैं अपने भीतर की दुरावस्था देखकर दिनो-दिन बहुत निराश होता जा रहा हूँ। पिछले वर्ष ब्रह्मचर्य लेते समय ठाकुर ने मुझे दो नियम की ओर विशेष रूप से ध्यान रखकर चलने को कहा था। प्रथम– सर्वदा पैर के अँगूठे की

ओर दृष्टि रखकर चलना; द्वितीय– केवल पूछे गए प्रश्न का आवश्यक लगने पर ही संक्षेप में उत्तर देना। इनमें से एक भी नियम का मैं अब तक पूर्ण रूप से प्रतिपालन नहीं कर पाया। पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि रखकर चलने के प्रयास के फलस्वरूप मेरे भयंकर कामरिपु की उत्तेजना शान्त तो हुई, पर उसकी प्रशाखा भीतर-ही-भीतर अन्य ओर से बढ़ रही है। स्त्रियों के दर्शन की अभिलाषा वैसी बलवती न रहने पर भी, स्त्री लोग मुझे देखें– इस लालसा से मैं माला-तिलक से सजकर सुन्दर वेश धारण किया करता हूँ। ठाकुर ने मुझसे उस दिन कहा–

"ब्रह्मचारी! आइने में मुख देखे बिना नहीं रह सकते? ब्रह्मचारी को ऐसा नहीं करना चाहिए।"

मैंने लज्जित होकर कहा– मुख न देखने से तिलक किस प्रकार लगाऊँगा? ठाकुर ने कहा– **"बायें हाथ की हथेली इस प्रकार सामने रखकर उसकी ओर देखते हुए तिलक लगाना। क्रमशः अपना मुख उसमें देख सकोगे।"**

मैं ठाकुर के कहे अनुसार अंदाज से ललाट पर ब्राह्मणों का त्रिपुण्ड्र बनाकर उस पर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाने लगा; किन्तु वह ठीक सीधा नहीं बनने के कारण सभी गुरुभाई मेरी हँसी उड़ाने लगे। तिलक के झमेले से मुख की शोभा बिगड़ गई, यह सोचकर दिनभर मैं बेचैन रहने लगा। भीतरी उद्वेग के कारण साधना में भी मुझे विरक्ति आने लगी। मेरा जप-ध्यान धीरे-धीरे छूट गया। तब रुद्राक्ष पहनने की जगह पर 'बालतोड़' फोड़े के समान ज्वाला का अनुभव करने लगा। क्रमशः यह ज्वाला इतनी बढ़ गई कि बाहु के जोड़ों से फफोले के समान छाल निकलने लगी। तब मैं यन्त्रणा से बेचैन हो गया। ठाकुर को अपनी दशा बतलाई तो उन्होंने कहा–

"विधिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करके नियमानुसार चलने पर उससे तमो और रजो गुण नष्ट हो जाते हैं और साधक विशुद्ध सत्त्व गुण में स्थिरता प्राप्त करता है। सर्वदा नाम-जप करके मन को शीतल नहीं रख पाने से उसे धारण नहीं करना चाहिए। अभी तुम कुछ दिनों के लिए रुद्राक्ष उतारकर रख दो; तुलसी की माला पहनो। उससे ज्वाला कम हो जाएगी, लाभ होगा।"

अब मैं वही कर रहा हूँ। रुद्राक्ष उतार देने से उज्ज्वल तेजस्वी रूप खोकर उदासीन वैरागी के समान हो गया हूँ। ऐसा न हो कि कोई मेरा चेहरा देख ले, इस लज्जा से मैं पहले की अपेक्षा और भी सिर झुकाकर रहता हूँ। मन मानो मृतवत् निस्तेज हो गया है– लोगों की दृष्टि से दूर ही रहने की इच्छा होती है। हाय, भगवान्! केवल रूप की गरिमा को लेकर था– रुद्राक्ष उतरवाकर ठाकुर ने उसमें भी प्रतिबन्ध लगा दिया। अब क्या लेकर रहूँगा?

साधक के लिए पहले संयमः स्त्रीसंग का त्याग और वीर्यधारण

आश्रम में रहने वाले स्त्री-पुरुष सब मेरे वेश का परिवर्तन देखकर नाना प्रकार की बातें कर रहे हैं। लोगों के अनजाने में कोई भयंकर अपराध के प्रायश्चितस्वरूप ही ठाकुर ने मुझे यह दण्ड दिया है– ऐसा अनुमान लगाकर कुछ लोग मेरे सम्बन्ध में चर्चा भी कर रहे हैं। एक गुरुभाई ने एक दिन सुयोग पाकर इस विषय में ठाकुर से कहा– 'ब्रह्मचारी के खाना बनाते समय छोटी-छोटी लड़कियाँ जाकर उसके पास बैठ जाती हैं, वह भी उनको खूब स्नेह करता है। ब्रह्मचारी जब आसन पर बैठता है, तब भी लड़कियाँ उसके आसन से सटकर बैठ जाती हैं; वह कोई आपत्ति नहीं करता– वरन् उससे मानो बड़ा आनन्द पाता है। क्या उसका ऐसा करना ठीक है?' यह बात सुनकर मेरा अन्तःकरण जलने लगा; लेकिन करूँ भी क्या? मेरे पास तो कुछ कहने का उपाय नहीं है– मुख बन्द है! ठाकुर ने उनकी सब बातों को मुझसे कुछ पूछे बिना ही मानो स्वीकार कर लिया एवं मुझ पर अनुशासन करते हुए कहा–

"ब्रह्मचर्य ग्रहण करने से स्त्रियों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते। स्त्रियों की ओर ताकते नहीं, उनके साथ बैठते नहीं, उनके साथ किसी प्रकार की बातचीत नहीं करते। स्त्री-जाति की कोई भी क्यों न हो– अत्यन्त वृद्ध ही हो, युवती हो अथवा अत्यन्त छोटी बालिका ही हो– सदा उन लोगों से दूर रहना चाहिए; अन्यथा यथार्थ ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता। स्त्री-देह ऐसे उपादानों से गठित है, जो निर्विकार पुरुष के शरीर को भी उससे आकर्षित करती है– यह वस्तु का गुण है। जीवन्मुक्त व्यक्ति भी जो देह धारण करते हैं, उन्हें भी उसकी कुछ अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। शास्त्र में इसके अनेक दृष्टान्त हैं।"

थोड़ा रुककर फिर कहने लगे–

'वीर्यधारण और सत्य का पालन– इन दोनों का ब्रह्मचारियों को सबसे पहले अभ्यास करना चाहिए। साधक अवस्था में देह-मन-वाक्य से स्त्रीसंग का त्याग किए बिना वीर्यधारण नहीं होता। अनजाने में भी स्त्री-देह का स्पर्श हो जाने से देह में स्थित वीर्य चंचल हो उठता है। उससे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है। वीर्यधारण न होने से सत्य का पालन भी सहज में नहीं होता। वीर्यधारण और सत्य के पालन के साथ-साथ धैर्य, एकाग्रता, प्रतिभा आदि गुण अपने-आप साधक को प्राप्त होने लगते हैं। ये दोनों एक बार वश में हो जाएँ, तो सारी सिद्धियाँ साधक के लिए सहज हो जाती हैं। सभी सम्प्रदाय में सबसे पहले संयम की व्यवस्था है।

वीर्यधारण और सत्य का पालन ही यथार्थ संयम है। इन दोनों के बिना यथार्थ धर्म की प्राप्ति बहुत दूर है। धर्मार्थियों को सर्वप्रथम इन दोनों पर विशेष रूप से ध्यान रखकर चलना पड़ता है। धर्म कोई कहने की बात नहीं है। प्राणपण से प्रयास करना पड़ता है, अन्यथा प्राप्त नहीं होता।'

माँ एवं गुरु– बड़ी समस्या: ठाकुर की तृप्ति

मैंने भिक्षा-वृत्ति ली है, यह बात सुनकर माताजी तो बहुत क्लेश पा रही हैं। दिन-रात वे विलाप करते हुए बिताती हैं। खाने के लिए बैठकर भोजन की ओर ताकती रहती हैं और आँखों से पानी बहता है। उन्होंने दूध पीना भी छोड़ दिया। कम खाने एवं निराहार रहने के कारण वे दुर्बल हो गई हैं। उन्होंने मेरे लिए चावल, दाल, घी, गुड़ इत्यादि कितनी ही सामग्री भेज दी है। मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। 'स्थूल-भिक्षा' लेना मेरे लिए निषेध है, नित्य भिक्षा ही ब्रह्मचर्य व्रत का नियम है। अब मैं यह सामग्री लेकर क्या करूँ? एक ओर गुरुवाक्य का उल्लंघन करना; दूसरी ओर वृद्ध दुःखी जननी के हृदय में आघात पहुँचाना। अब कौन-सा करूँ? यदि केवल गुरुवाक्य उल्लंघन करना होता, तो भी हो सकता है, मैं उन वस्तुओं को लेकर माँ को सन्तुष्ट रखता। मेरी स्पष्ट धारणा है कि गुरुदेव मुझे माँ की अपेक्षा अधिक स्नेह करते हैं; अतएव उनके वाक्य उल्लंघन में मुझे लज्जा, भय, संकोच कुछ नहीं होता; किन्तु व्रत का उल्लंघन मैं कैसे करूँ? यह पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत समस्त ऋषि, मुनि, योगियों की परम आदर की सम्पदा है। इसे भंग करने से मेरे माता-पिता, यहाँ तक कि जिनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है, उन सभी को अल्पाधिक परिमाण में नरक-यन्त्रणा भोगनी होगी। ये सब विचार मन में आने लगे। मैंने होम के लिए घी और एक दिन के लिए चावल-दाल लेकर शेष समस्त सामग्री ठाकुर के भण्डार में दे दी। अब ठाकुर की सेवा में वह चावल दिया जा रहा है। उसे खाकर ठाकुर ने भात की बड़ी प्रशंसा की। कहा–

"इस नये धान के चावल का भात इतना मीठा है कि केवल नमक के साथ ऐसे ही खाया जा सकता है। भात में मानो घी मिला हुआ है। बहुत ही स्वादिष्ट एवं पुष्टिकर है। यह चावल बीच-बीच में गाँव से मेरे लिए लाया करो।"

ठाकुर की बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। माँ के हाथ का भेजा चावल ठाकुर आनन्दपूर्वक खा रहे हैं– इससे माँ वास्तव में कृतार्थ हो गई।

लोभवश प्रसाद खाना: ज्वाला और प्रायश्चित्त

गुरुदेव के भोजन के बाद प्रसाद की थाली को मैं बरामदे में रख देता हूँ। फिर खाने का स्थान पोंछकर मैं सब लोगों को वह प्रसाद बाँट दिया करता हूँ। मेरे न देने तक उसे कोई स्पर्श नहीं करता। खाद्य वस्तुओं पर मेरा बड़ा लोभ है– अच्छी वस्तुओं को देखते ही मेरे मुँह में पानी आ जाता है। अनेक लोग कहते हैं, प्रसाद में लोभ अच्छा है; किन्तु ठाकुर का प्रसाद विशुद्ध सत्त्व-गुणी होने पर भी उसका स्थूल उपादान सूखा, बासी, दुर्गन्धमय हो सकता है! अतएव बहुतों के शरीर में उसका भी एक विषमय परिणाम अवश्य हो सकता है। हो सकता है, लोभ में पड़कर तीखा, मीठा इत्यादि स्वादिष्ट, गरिष्ठ, उत्तेजक वस्तुएँ खाकर ब्रह्मचर्य को हानि पहुँचाऊँगा– सम्भवतः इस कारण अथवा बहुतों को प्रसाद बाँटने के बाद कुछ न बचे, इस कारण दयालु गुरुदेव अपने हाथ से मेरे लिए प्रतिदिन प्रसाद निकालकर अलग रखते हैं। उस प्रसाद को मेरे भोजन के समय में खाने के लिए कहते है; किन्तु जिह्वा की लालसा के कारण कई बार मैं वैसा नहीं कर पाता। आज पनीर की अच्छी सब्जी पाकर खाने का बड़ा लोभ हुआ। मैंने मन में सोचा– यह उत्कृष्ट वस्तु यदि कोई मेरे अनजाने में खा लेगा, तो आज प्रसाद से वंचित हो जाऊँगा। फिर शास्त्र में है, 'महाप्रसाद प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा'– इस युक्ति से गुरुवाक्य का उल्लंघन करके ठाकुर का प्रसाद पहले ही खा लिया। प्रसाद खाने के बाद ठाकुर के पास बैठने में संकोच होने लगा– भीतर एक जलन होने लगी। इस जलन के क्रमशः बढ़ने से मैं बहुत बेचैन हो गया। नाम-जप में अरुचि और विरक्ति होने लगी। फलस्वरूप साधन-भजन छूट गया। सारा दिन यन्त्रणा से छटपटाते हुए बिताया एवं प्रायश्चित्तस्वरूप आज उपवास करके रहा। अब कल संध्या के समय भोजन करूँगा।

लोभ-संयम के उपाय: रिपु दो हैं– जिह्वा और उपस्थ

अवसर पाकर ठाकुर से कहा– लोभ का क्लेश अब सहन नहीं कर सकता। अच्छी वस्तु देखते ही खाने की इच्छा होती है। आसन पर बैठकर जब नाम-जप करता हूँ, अनजाने में स्वादिष्ट वस्तुओं की कल्पना आ जाती है। जप-ध्यान कुछ होता नहीं। मेरा पहले ऐसा कभी नहीं होता था। अब क्या करूँ? ठाकुर ने कहा–

"जो खाने की इच्छा होगी, खा लेना। नहीं खाने से वह इच्छा जाएगी नहीं।"

मैं– तब तो एकाहार के नियम का पालन नहीं होगा! बिना खाए क्या यह इच्छा जाएगी नहीं?

ठाकुर– न खाना ही अच्छा है। जो वस्तु खाने की तीव्र इच्छा हो, खा लेना। और एक काम करना; जिन वस्तुओं पर लोभ अत्यधिक है, वह वस्तु पास बैठकर किसी को तृप्तिपूर्वक खिलाना। उपकार होगा। नमक का त्याग करने से खाने की वस्तुओं पर लोभ कम हो जाता है। वह तो तुम कर नहीं पाए! ब्रह्मचारीजी कहते थे, 'रिपु केवल दो हैं– जिह्वा और उपस्थ।' उपस्थ का संयम सहज है; लेकिन जिह्वा को संयत करना बड़ा कठिन है। लोभवश स्थूल वस्तु के संसर्ग से जीव में क्रमशः जड़ता आ जाती है। इसीलिए ऋषि-मुनियों ने कितनी कठोर तपस्या की। अनाहार रहकर, गलित पत्ते खाकर कितना समय बिताए। असंयत जिह्वा द्वारा कितने प्रकार के भयंकर पापों की सृष्टि होती है। जिह्वा को वश में करने के लिए ऋषि लोग मौन रहते थे। लोगों का गुणगान, शास्त्र-पाठ और भगवान् का नाम-संकीर्तन आदि से जिह्वा शिष्ट और शुद्ध होती है। क्रमशः वह संयत होने लगती है।

तीर्थ-भ्रमण से संयम

सुना है, नियमानुसार तीर्थ-भ्रमण करने से इन सब विषयों पर बड़े सहज में संयम का अभ्यास हो जाता है! इस सम्बन्ध में पूछने पर ठाकुर तीर्थ-भ्रमण के नियम कहने लगे–

'तीर्थ-भ्रमण से बड़ा कल्याण होता है। दीक्षा लेकर युवावस्था में तीर्थ-भ्रमण करना चाहिए; अन्यथा हो नहीं पाता, कई बाधाएँ आती हैं। भ्रमण के समय सर्वदा नीचे की ओर दृष्टि रखकर प्रत्येक पग पर इष्ट-मन्त्र का स्मरण करके चलना चाहिए। प्रतिदिन तीन-चार कोस या दिन के 10 बजे तक चलकर फिर किसी स्थान पर डेरा डालना चाहिए। वहाँ स्नान-संध्यादि सम्पन्न करके, सुविधा होने पर किसी मन्दिर में प्रसाद ले सकते हैं; अन्यथा किसी ब्राह्मण के घर में बना भोजन करने से भी चल जाता है, किन्तु भिक्षान्न का स्वपाक आहार ही सर्वश्रेष्ठ है। वह कभी अपवित्र नहीं होता– परम पवित्र है। शास्त्र में उसको अमृत कहा है। भोजन के बाद कुछ समय विश्राम करके फिर साधन-भजन में रात बितानी चाहिए। भ्रमण करते समय रुपया-पैसा अपने हाथ में कभी नहीं रखना चाहिए। कोई कुछ देना चाहे, तो भी नहीं लेना चाहिए। कहीं जाने की सुविधा के लिए कोई टिकट बना दे, तो ले सकते हैं। साथ में एक जल-पात्र रखना चाहिए, वह लकड़ी का हो तो निरापद् है।

भ्रमण के समय एक कम्बल, कौपीन, बहिर्वास, एक जल-पात्र और एक गीता रखना ही पर्याप्त है। किसी दल में न मिलकर अकेले अथवा एक व्यक्ति को साथ में लेकर चलना सबसे अच्छा है। साधुओं की जमात के साथ चलने पर उनके नियन में बँधना पड़ता है। उसमें असुविधा भी है।'

'तीर्थ-भ्रमण के समय मार्ग में जो मन्दिर पड़ते हैं, वहाँ दर्शन करते हुए जाना चाहिए। कहीं बहुत अच्छा लगे, तो वहाँ बैठ जाना चाहिए। कुछ सनय उस स्थान में रहकर साधना करनी चाहिए। भ्रमण के समय एक रात्रि से अधिक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। तीर्थ पहुँचकर सबसे पहले तीर्थगुरु करने का नियम है। पण्डों से तीर्थ के सब कर्त्तव्य जानकर उसके अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। किसी तीर्थ में कुछ दिन संयमपूर्वक रहकर नियम-निष्ठा से साधन-भजन करने पर तीर्थ देवता की प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है। केवल नियम रक्षा के लिए तीन रात्रि वास करने से तीर्थ का माहात्म्य समझा नहीं जा सकता।'

'तीर्थ-यात्रा के समय कभी क्रोध नहीं करना चाहिए, क्रोध करने से साधक के साधना से अर्जित पुण्य सब नष्ट हो जाते हैं। हिंसा, दम्भ, परनिन्दा का तीर्थ-भ्रमण के समय विषवत् परित्याग करना चाहिए। चित्त प्रसन्न रखकर केवल सत्य का अवलम्बन करके चलना पड़ता है। इस समय इन सब नियमों के प्रतिपालन में विशेष रूप से सावधान रहना आवश्यक है। इस प्रकार पूरे भारतवर्ष का एक बार परिभ्रमण करके आने में 12 वर्ष लगते हैं। इससे अच्छा जीवन तैयार हो जाता है। विधिपूर्वक तीर्थ-भ्रमण करने से संयम का सहज में अभ्यास हो जाता है– और भी अनेक प्रकार के कल्याण हुआ करते हैं।'

कर्त्तव्य पालन से वैराग्य की प्राप्ति : प्रलोभन से बचने का उपाय

21 अप्रैल। मध्याह्न में महाभारत पाठ के बाद एकान्त पाकर ठाकुर से पूछा– मेरा क्या और भी कर्म बाकी है? ठाकुर ने कहा–

"कर्म अभी हुआ ही क्या है? सभी तो बाकी है।"

मैंने कहा– उस कर्म की बात नहीं कह रहा हूँ– श्रीवृन्दावन में आपने कहा था कि माँ और भाइयों के प्रति मेरा कर्म है– मैं उस कर्म की बात कह रहा हूँ।

ठाकुर ने कहा– **"माँ तुम्हारी सेवा से बहुत सन्तुष्ट हुई हैं, ठीक है– फिर भी यह पर्याप्त नहीं है। यदि वे रोग से दीर्घकाल कष्ट पाती हैं, तो उस समय स्वयं जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करना उचित होगा।**

फिर तुम्हारे भाइयों के प्रति भी कई कर्त्तव्य हैं। आपत्ति-विपत्ति में सर्वदा उनका ध्यान रखना होगा। सबके प्रति कर्त्तव्य है; इन कर्त्तव्यों का पालन करते-करते क्रमशः वैराग्य आएगा। यह वैराग्य आने से ही बचाव है; अन्यथा पुनः संसार में प्रवेश करना पड़ता है।"

मैं– संसार में प्रवेश करने का अर्थ क्या है? मुझे क्या विवाह करना पड़ेगा? मैं तो विवाह की कल्पना भी नहीं करता।

ठाकुर– **वह अवस्था अभी भी तुम्हारी आई नहीं है। भविष्य में वही परीक्षा रह गई है। उस समय यदि स्त्रीसंग काक-विष्ठावत् लगे, स्त्री-सहवास अत्यन्त अपवित्र, घृणित व जघन्य कार्य लगे, तो बचाव है; अन्यथा क्या बच पाना सम्भव है? भविष्य में अनेक ही परीक्षाएँ आएँगी। तब ठीक रह पाने से ही रक्षा होगी। विषय-वासना रहने से यहाँ बद्ध होना पड़ता है। वैराग्य उत्पन्न हुए बिना क्या ठीक रहा जा सकता है?**

मैं– भविष्य में जो प्रलोभन-परीक्षाएँ आएँगी, उससे किस उपाय से बचूँगा?

ठाकुर– **श्वास-प्रश्वास में केवल नाम-जप ही बचने का उपाय है। उस समय नाम-जप के प्रति ठीक रह पाने से ही रक्षा हो जाएगी। नाम-जप में रुचि उत्पन्न न होने तक ही विपत्ति की आशंका है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करते-करते ही नाम में रुचि उत्पन्न होती है, ऐसा होने से फिर कोई कठिनाई नहीं होती।**

संकल्प सिद्धि का उपाय: सत्य का पालन और वीर्यधारण

4 अप्रैल, सोमवार (बंगला नया वर्ष, पहला वैशाख) को प्रातः मन-ही-मन संकल्प कर लिया कि इस वर्ष बड़े नियम-निष्ठा से रहकर ठाकुर के आदेश का यथावत् प्रतिपालन करके चलूँगा; किन्तु दो-चार दिन व्यतीत होते-होते ही देखा, मेरा सारा संकल्प व्यर्थ हो गया। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने का निश्चय करके उठता हूँ; साधना में प्रवृत्त होकर दो-चार घड़ी बीतते ही देखता हूँ, मन कहाँ-से-कहाँ चला गया– सब भूल गया। कुम्भक के साथ प्राणायाम करके सारा दिन नाम-जप करने का संकल्प करके बड़ी दृढ़ता के साथ लग जाता हूँ– दो-चार घण्टे बाद ही देखता हूँ, मन कल्पना के राज्य में इच्छानुसार घूम रहा है। दो-तीन घण्टे विश्राम के बाद रातभर जागकर नाम-जप करने की प्रतिज्ञा की थी– कहाँ से घोर निद्रा आकर प्रतिदिन ही मुझे विवश कर डालती है। जैसे ही जिसमें दृढ़ता का अवलम्बन करता हूँ, वैसे ही अनजाने में उसमें शिथिलता आ जाती है। मेरा इस प्रकार क्यों होता है– ठाकुर से पूछने की प्रबल इच्छा हुई।

ठाकुर रातभर एकासन में बैठे रहने के बाद 4 बजे एकबार केवल आधे घण्टे के लिए शयन करते हैं। सोते हैं या नहीं, कह नहीं सकता। रात्रि साढ़े 3 बजे प्रतिदिन ही वे बाहर आकर आम के पेड़ के नीचे जाते हैं एवं उच्च स्वर में हरि-ध्वनि किया करते हैं। उसी समय ठाकुर को अकेले पाकर उनसे अपनी दुर्दशा की बात कहकर पूछा– मन की एकाग्रता, साधना के प्रति दृढ़ता कैसे आएगी? नींद भी अत्यधिक आती है, साधना नहीं कर पाता। क्या करूँ?

ठाकुर ने कहा– **"उपाय वही एक है। वीर्य यदि स्थिर हो जाता है, तो सब कुछ सहज होने लगेगा। वह नहीं होने तक कुछ भी ठीक प्रकार से नहीं होता। वीर्यधारण और सत्य की रक्षा– इनका यदि ठीक प्रकार से पालन 'कर सको, तो एक दिन भगवान् की कृपा अवश्य प्राप्त करोगे। सत्य का पालन करने के लिए सत्य बातें, सत्य चिन्तन और सत्य व्यवहार करना चाहिए। कुछ पूछा न जाए, तो कभी बातें नहीं करना। पूछे जाने पर सत्य धारणा के साथ आधे घण्टे तक बोलने पर भी कोई दोष नहीं होगा। पहले से स्वयं बात करना बिल्कुल छोड़ना पड़ेगा। वीर्यधारण करना सहज नहीं है। कितने प्रकार से वीर्य क्षय होता है। प्रस्राव (पेशाब) करते समय जिस प्रकार करने के लिए कहा गया है– वैसा ही करना, अन्यथा धारण नहीं कर पाओगे। प्रयास करते जाओ– धीरे-धीरे सब होने लगेगा।**

कुछ समय बाद फिर कहने लगे– **'तुम्हारे इधर के लड़कों में पश्चिम के लड़कों की अपेक्षा कुअभ्यास अधिक है। इस विषय में लड़कों को बिल्कुल भी शिक्षा नहीं दी जाती; इसीलिए लड़के लोग बिगड़ते हैं। बचपन से ही कुअभ्यास उत्पन्न हो जाता है। माता-पिता आदि अभिभावक लड़कों को सब विषय की शिक्षा देते हैं, किन्तु जिससे देह-मन का विशेष कल्याण होता है– उस विषय की शिक्षा देने में संकोच करते हैं। शिक्षा देना तो दूर रहा, वरन् कु-दृष्टान्त ही दिखलाते हैं। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को एक कमरे में रखकर स्त्री-पुरुष स्वयं अन्य कमरे में रहते हैं। बचपन से ये सब सुयोग पाने के कारण बच्चे लोग बुराई की ओर चलते हैं। दिनो-दिन जिस प्रकार हो रहा है– उससे लगता है, और कुछ दिनों बाद भयंकर परिणाम उपस्थित हो जाएगा।'**

यह कहकर ठाकुर ने कुछ घटनाएँ कही। मैंने कहा– कोई मुझ पर विद्वेष भाव से मिथ्या दोषारोप करता है, तो मैं वह सहन नहीं कर पाता।

ठाकुर ने कहा– **"उत्तर देने से भी क्या लाभ? झगड़ा ही होता है। उसमें तो स्वयं की हानि है। सदा ये सब विचार करके चलना चाहिए।"**

स्वस्थ रहने का उपाय: विभिन्न माला-धारण की उपयोगिता रुद्राक्ष धारण करने का आदेश

25 अप्रैल, सोमवार। आज बदली के कारण समय का ठीक पता नहीं चला। दिन ढलने के अनुमान से सोचा– ठाकुर प्रतिदिन 4 बजे मुझसे कहा करते हैं, **'ब्रह्मचारी! खाना बनाने जाओ'**– आज लगता है कि ठाकुर वह भूल गए हैं। अतः मैंने खाना बनाकर खा लिया; उसके बाद जाकर ठाकुर के पास बैठ गया। कुछ समय बाद ठाकुर ने कहा– **"ब्रह्मचारी! खाना बनाने जाओगे नहीं?"**

मैंने कहा– समय का ठीक पता नहीं चला। खाना बनाकर खा लिया हूँ।

ठाकुर ने कहा– **"संन्यासी लोग आकाश देखकर ठीक समय का पता कर लेते हैं, हम लोगों के लिए ही समस्या है; घड़ी देखे बिना समय पता नहीं चलता। भोजन का परिमाण और समय बिल्कुल ठीक रखना। ये दोनों ठीक रहने से ही शरीर अच्छा स्वस्थ रहेगा।"**

आज ठाकुर के गले में मूँगे (Coral) की माला देखकर पूछा– मूँगे की माला धारण करने से क्या लाभ होता है? ठाकुर– **"मूँगा देह को ठण्डा रखता है।"**

मैं– तुलसी की माला पहनने से भी तो शरीर ठण्डा रहता है। यह क्या उसी प्रकार का है?

ठाकुर ने कहा– **"तुलसी की माला पहनने से शरीर ठण्डा रहता है और देह-मन सात्विक रहता है। मूँगा पित्त नष्ट करके देह को ठण्डा रखता है, मन के ऊपर भी कुछ-कुछ क्रिया करता है।"**

पद्म-बीज व स्फटिक की उपकारिता के विषय में पूछने पर ठाकुर ने कहा– **"पद्म-बीज धारण करने से मन प्रफुल्लित रहता है। स्फटिक तेज और शक्ति बढ़ाता है। इसलिए शाक्त लोग स्फटिक का उपयोग करते हैं; अच्छे-अच्छे फकीरों को भी स्फटिक का उपयोग करते देखा जाता है। कई लोग स्फटिक की माला से जप करते हैं।"**

रुद्राक्ष त्याग करने के बाद से मेरी जो दशा हुई, वह ठाकुर से कहने पर उन्होंने कहा–

"तुलसी उग्र भाव नष्ट करती है– स्वभाव को नम्र और विनयी कर देती है। रुद्राक्ष उत्साह, उद्यम और तेज वृद्धि करता है। शरीर को अच्छा गरम रखता है। कल से तुम पहले की भाँति रुद्राक्ष धारण करो। रुद्राक्ष के तेज को तुम्हारा शरीर सहन नहीं कर पाया, इसी कारण उसे उतारकर रखने को कहा था। अब उसे पुनः नियमानुसार धारण करो।"

ठाकुर की बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कब दिन ढलता है, देखने लगा।

स्वप्न– क्रोध से पतन

26 अप्रैल, मंगलवार। कल रात स्वप्न देखा– ठाकुर के साथ एक घने जंगल में प्रवेश किया। श्रीधर एवं श्यामाकान्त पण्डित जी साथ में हैं। ठाकुर ने कहा–

'यह साधन जो पाए हैं, सब बड़े लोग हैं; सब मोक्ष प्राप्त करेंगे।' मुझसे कहा– **'पहले तुम संन्यासी थे। क्रोध के कारण तुम्हारा पतन हुआ। 12 वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने से पुनः पूर्वावस्था प्राप्त करोगे।'**

यह बात सुनने के बाद मेरी नींद टूट गई। मैंने अवसर देखकर ठाकुर से स्वप्न की बात पूछी। ठाकुर ने सिर हिलाकर स्वप्न की यथार्थता के सम्बन्ध में सहमति प्रदान करके उसे लिखकर रखने को कहा।

दीक्षाकालीन उपदेश: परमहंसजी का आदेश

29 अप्रैल, शुक्रवार। आज अक्षय तृतीया है। आज कई लोगों की दीक्षा होगी। प्रातःकाल से दीक्षाप्रार्थी लोग धीरे-धीरे आने लगे। मेरे छोटे भाई रोहिणी की आज दीक्षा लेने की बात थी, आज बड़े भैया के लड़के सजनी के विवाह के कारण रोहिणी नहीं आ सका। मन में बड़ा कष्ट होने लगा। ठाकुर ने दीक्षा के पूर्व पूछा– **"दीक्षाप्रार्थी सब लोग आ गए?"** एक गुरुभाई ने कहा– 'ब्रह्मचारी का छोटा भाई रोहिणी नहीं आया। ठाकुर ने कहा– **"वह कैसे आएगा? उसकी दीक्षा बाद में होगी।"**

इसके बाद बड़ा कमरा लोगों से भर गया। ठाकुर आकर आसन पर बैठे। कुछ क्षण ध्यानस्थ रहकर वे दीक्षाप्रार्थियों से कहने लगे–

1. सर्वदा सत्य का पालन करना। मन में जो यथार्थ प्रतीत होगा– उसे ही सत्य मानकर स्वीकार करना। सत्य की रक्षा करने के लिए असत्य कल्पना, वृथा चिन्ता का परित्याग करना होता है; अन्यथा सत्य नहीं बोला जा सकता। फिर कुछ पूछा न जाए, तो बात नहीं करना। सर्वदा कम एवं उचित बातें करना। किसी की निन्दा नहीं करना। परनिन्दा महापाप है; नर-हत्या की अपेक्षा बहुत बड़ा पाप है।

2. वीर्यधारण करना। वीर्यरक्षा यद्यपि शारीरिक तपस्या है, तथापि उसका विशेष प्रयोजन है। वीर्यरक्षा के बिना सत्य की रक्षा नहीं होती। उससे साधना में बड़ी सहायता मिलती है। जो संन्यासी हैं, वे किसी

प्रकार भी वीर्य नष्ट न करें। जो गृहस्थ हैं, वे शास्त्रानुसार ऋतुकाल में ही स्त्री-सहवास करें। अनुचित रीति से जो लोग वीर्य नष्ट करते हैं– वे पितृ-मातृघाती हैं। यह देह पिता-माता के वीर्य-शोणित से बनी है। केवल पितृ-ऋण शोध करने के लिए ही वीर्य त्याग करना उचित है। वृथा वीर्य नष्ट करने से पितृ-मातृघाती, आत्मघाती और ब्रह्मघाती होना पड़ता है। वीर्यरक्षा द्वारा मन की एकाग्रता और शरीर की स्वस्थता प्राप्त होती है। वीर्यरक्षा नहीं होने से साधना में उत्साह नहीं रहता। साधना की उपकारिता का भी अनुभव नहीं होता।

3. श्वास-प्रश्वास में नाम जपने का प्रयास करना। यही हम लोगों की साधना है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास को जैसे लेते हैं और छोड़ते हैं– उस पर ध्यान रखते हुए उसी प्रकार सर्वदा नाम-जप करना।

अचानक एक बार में यह सब नहीं होता। बारम्बार चेष्टा करते-करते, गिरते-पड़ते इन कुछ विषयों में अटल होना होगा। प्रयास करते रहने से एक समय यह सब अवश्य ही होगा। साधना के नियम बतलाए गए– अब निषेध बतलाए जा रहे हैं–

4. मांस, उच्छिष्ट और मादक द्रव्य का पूर्णतः त्याग करना होगा। किसी भयानक रोग में अच्छे चिकित्सक की व्यवस्था के अनुसार मांस, नशीली वस्तु का सेवन केवल औषधि के रूप में किया जा सकता है। फिर प्रयोजन पूरा होते ही छोड़ना होगा। मत्स्य आहार निषेध नहीं है। नियम भी नहीं है; जिसकी जैसी इच्छा हो। जूठा कभी नहीं खाना। माता-पिता परम गुरु हैं; उनका भुक्तावशिष्ट जूठा नहीं है। उसको प्रसाद समझकर खाने से उपकार होता है। जूठा लगे, तो नहीं खाना। जिनकी आयु पाँच वर्ष से अधिक है, उनका भुक्तावशिष्ट जूठा होता है। जिन शिशुओं को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं है– उनका जूठा उतना हानिकारक नहीं होता।

5. किसी दल या सम्प्रदाय में किसी प्रकार से बद्ध नहीं रहना। जहाँ पर परमेश्वर का नाम हो, जहाँ पर धर्म का कोई अनुष्ठान हो, भक्तिपूर्वक वहाँ प्रणाम करना। सभी धर्मार्थियों का सम्मान करना। किसी भी सम्प्रदाय का अनादर नहीं करना। हमारा कोई दल अथवा सम्प्रदाय नहीं है।

6. स्त्रियों से सर्वदा सावधान रहना। उनके साथ एक कमरे में साधना नहीं करना। जहाँ पर कमरे का अभाव है– वहाँ कम-से-कम एक

पर्दा लगा लेना। एकान्त में किसी स्त्री के साथ नहीं बैठना।

7. यथासाध्य परोपकार करना। जो लोग गृहस्थ हैं वे बड़े आदर के साथ अतिथि-सत्कार करें। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता इत्यादि सभी की जिससे तृप्ति हो– गृहस्थ लोग वैसा करें। किसी प्रकार की हिंसा नहीं करना। वृक्ष का एक पत्ता भी बिना प्रयोजन के नहीं तोड़ना। किसी के मन में निरर्थक कष्ट नहीं पहुँचाना।

जो लोग यहाँ दीक्षा लेने आए हैं, केवल उनके लिए ये सब बातें नहीं हैं। इहलोक और परलोक में जो लोग इस साधन के अन्तर्गत हैं– सभी के लिए परमहंसजी ने यह आदेश दिया है।

यह सब आदेश प्रदान करने के बाद ठाकुर **'जय गुरु! जय गुरु!'** कहते-कहते ध्यानस्थ हो गए; फिर उन्होंने दीक्षा का मन्त्र प्रदान किया।

इस समय गुरुभाइयों की नाना प्रकार की अवस्थाएँ प्रकाशित होने लगीं। कमरे के भीतर-बाहर सब लोगों के बीच हँसी, क्रन्दन, आनन्द के आवेश की तरंग में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। ठाकुर क्रमशः सबको संयत करके ध्यानस्थ हो गए। गुरुभाई लोग ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके बाहर आ गए। स्त्री-पुरुषों से आश्रम परिपूर्ण है। सभी बड़े प्रसन्न हैं।

परिवेषण में विषमता: ठाकुर की विरक्ति

आज आश्रम में महोत्सव है। स्वादिष्ट सामग्रियों द्वारा ठाकुर के भोग का आयोजन देखने से मेरा अन्तःकरण शुष्क हो जाता है; मुँह उदास हो जाता है। सर्वदा स्वादिष्ट वस्तुएँ मैं अपने हाथ से परोसकर सभी लोगों को खिलाता हूँ– और स्वयं एक कण भी नहीं खा पाता। लोभ की ज्वाला में जल-भुनकर मरता हूँ– भीतर का कष्ट किसी से कहने का उपाय नहीं है; सब मेरे ब्रह्मचर्य के विरोधी हैं। आज गुरुभाइयों को लेकर ठाकुर जब भोजन करने बैठे, तब परोसते समय सभी वस्तुएँ मैंने ठाकुर को कुछ अधिक मात्रा में दी थी। ठाकुर ने उससे विरक्ति प्रकट करते हुए सभी के सामने मुझसे कहा–

"ब्रह्मचारी! प्रसाद पाने की प्रत्याशा से अधिक मात्रा में भोजन देने से उच्छिष्ट वस्तु ही देना हुआ।"

ठाकुर की बात सुनकर कुछ गुरुभाई मेरी ओर घूरकर देखने लगे– कोई-कोई व्यंगपूर्वक हँसने लगे। हाय! उच्छिष्ट वस्तु ठाकुर को खिला रहा हूँ– यह सोचकर मैं मन-ही-मन हृदय से ठाकुर के चरणों में क्षमा याचना करने लगा।

इसके पहले भी ठाकुर ने मुझे एक बार परिवेषण की विषमता हेतु कठोरतापूर्वक अनुशासित किया था– **'एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वालों के बीच परोसने में भेदभाव नहीं करते।'** यह तो साधारण नीति है; लेकिन ठाकुर के पक्ष में इस नीति का पालन करके चलना मेरे लिए असम्भव है। शिष्यों की पंक्ति में गुरु का विशेषत्व तो रहेगा ही– यह मुझे दोषपूर्ण नहीं लगता; फिर उन्हें प्रसाद भी रखना पड़ता है, इसलिए वे कम खाएँगे– इस प्रकार का विचार भी परोसते समय मन में स्वतः उदित होता है।

भोजन के अन्त में ठाकुर मेरे लिए अन्यान्य दिनों की भाँति अपने हाथ से स्वादिष्ट प्रसाद निकालकर रखते हैं। ऐसा किसके भाग्य में होता है? बड़े पाप का छोटा दण्ड देकर ठाकुर इच्छापूर्वक असीम दया करते हैं। यह देखकर रोने का संवरण नहीं कर पाता। प्रतिदिन ठाकुर को अपने हाथ से प्रसाद दिया करता हूँ, परन्तु भक्ति से गद्‌गद होकर जैसा देना चाहिए, वैसा एक दिन भी नहीं दे पाता। ठाकुर क्यों इस नीच के हाथ से भोजन ग्रहण करते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। आज मैं लोभ का संवरण नहीं कर पाया, मध्याह्न में ही ठाकुर का प्रसाद खा लिया। तुरन्त भयंकर जलन होने लगी। हाय रे भाग्य! गुरुभाई लोग मेरे हाथ से एक कण ठाकुर का प्रसाद पाकर परमानन्द से दिन काटते हैं और मुझे ठाकुर अपने हाथ से प्रसाद देते हैं– उसे पाकर दिनभर जल-भुनकर मरता हूँ, साधना नहीं होती– नाम-जप भी बिल्कुल बन्द हो जाता है।

काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वारस्वरूप हैं

अवसर देखकर ठाकुर से पूछा– प्रसाद पाकर भी भीतर जलन होती है– यह कैसी बात है? ठाकुर ने कहा– **"निर्दिष्ट समय में एक बार आहार का तुम्हारा नियम है। नियम का पालन करके चलने से यह सब नहीं होता। नियम का पालन करके चलना।"**

मैं– लोभ का मैं संवरण नहीं कर पाता; मेरा यह लोभ क्या दूर नहीं होगा?

ठाकुर ने कहा– **"काम, क्रोध, लोभादि रिपु के हाथ से पूर्णतः बच पाना बहुत कठिन है। इसलिए ऋषि-मुनियों ने कितना कुछ किया है। कठोर तपस्या और साधन-भजन द्वारा अवस्था की थोड़ी उन्नति होते ही ये सब रिपु साधक पर आक्रमण करते हैं। नाना प्रकार की दुरावस्था एवं प्रलोभन में डालकर इनका सर्वनाश करते हैं। विश्वामित्र ऋषि तपस्या द्वारा इतनी शक्ति प्राप्त करके भी काम के हाथ से छुटकारा नहीं पाए। पतित होना पड़ा। बहुत प्रयास से काम का थोड़ा दमन करते ही क्रोध**

ने आकर आक्रमण कर दिया। सृष्टि, स्थिति, प्रलय के अधिकारी होकर भी विश्वामित्र दुर्जय रिपु क्रोध के सामने बारम्बार परास्त होने लगे; उनकी सारी तपस्या का फल नष्ट हो गया। तब कोई उपाय न देखकर उन्होंने लोगों का संग त्याग दिया, मौनी हुए। तीव्र तपस्या द्वारा पुनः पूर्वावस्था प्राप्त करने लगे; तब फिर लोभ का उत्पात आरम्भ हो गया। उन्होंने आहार त्याग दिया। काम, क्रोध, लोभ नरक के द्वारस्वरूप हैं। केवल भगवान् के भजन द्वारा इनका मुख घुमा सकें, तभी बचाव है। उस समय ये सब भजन में सहायक होते हैं, मित्र हो जाते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम जपने से ही क्रमशः इनके उत्पातों से बच पाते हैं। ऐसा सहज उपाय और नहीं है।"

———

मई-जून, सन् 1892 ई०

इष्ट-मन्त्र गुरु से भी नहीं कहते

1 से 5 मई। कुछ दिनों से साधन-भजन में मन नहीं लग रहा, सर्वदा माँ की बात का स्मरण होता है। घर जाने की इच्छा हो रही है। अचानक ऐसा क्यों हुआ, समझ में नहीं आता। आज अपराह्न में छोटे भैया घर से रोहिणी को लेकर आए। उनसे सुना, माँ मेरे लिए रोना-धोना कर रही हैं। समझ गया, इसीलिए मुझे इतनी बेचैनी हुई। माँ को शान्त करके उनकी चरण-धूलि लिए बिना चित्त किसी प्रकार स्थिर नहीं होगा। माँ के लिए मन बारम्बार व्याकुल होने लगा।

आज रोहिणी की दीक्षा हुई। 'वीर्यधारण और सत्य का पालन' विषय में आज ठाकुर ने विशेष रूप से कहा। इस विषय में ऐसा और कभी भी नहीं कहा।

ठाकुर ने कहा– **वीर्यधारण एवं सत्य का पालन जब तक नहीं होगा, तब तक साधना का परिणाम अनुभव नहीं होगा। साधना में यदि यथार्थ उपकार पाना चाहते हो, तो इन दोनों का पालन करके चलना होगा।**

गृहस्थ लोग वैध भोग द्वारा किस प्रकार कर्म समाप्त करेंगे– ठाकुर ने इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहा– **'गृहस्थ लोग ऋतुगामी होवें; शास्त्र के नियमानुसार स्त्रीसंग करें। मादक द्रव्य, उच्छिष्ट और मांसाहार से साधना की शक्ति बिल्कुल दब जाती है; ये उसको प्रकट नहीं होने देते। इन सबका सम्पूर्ण रूप से त्याग करें। इष्ट-मन्त्र किसी से नहीं कहना। यहाँ तक कि गुरु के पूछने पर भी नहीं कहना।'**

दीक्षा के समय ठाकुर अन्यान्य लोगों को जो सब उपदेश दिया करते हैं, रोहिणी को भी वही दिए। आज गुरुदेव ने दया करके मेरे समस्त भाइयों का ही भार ग्रहण कर लिया। आज मैं निश्चिन्त हुआ।

ठाकुर की असाधारण अनुभूति

आज मध्याह्न में पाठ करने बाद ठाकुर के पास बैठा– ठाकुर ध्यानस्थ हैं। अचानक सिर उठाकर उन्होंने कहा– **"जगबन्धु कटारी लेकर बेर के पेड़ को काटने निकले हैं, शीघ्र जाकर उनसे कहो, जहाँ से काटने की सोचे हैं– उसके दो फीट ऊपर से काटें।"** मैं दौड़कर दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले कमरे के पश्चिम में स्थित बेर के पेड़ के पास पहुँचकर देखा– जगबन्धु कटारी लेकर आ रहे हैं। पेड़ कहाँ से काटेंगे, पूछने पर उन्होंने स्थान दिखलाकर कहा– 'यहाँ से।' मैंने कहा– ठाकुर ने और दो फीट ऊपर से काटने के लिए कहा है। जगबन्धु बाबू ने वही किया। देखा, वहाँ से पेड़ काटने पर दो बड़ी डालें बच गईं, उससे पेड़ भी बच गया।

कल ठाकुर ने पाठ सुनते-सुनते मुझसे कहा– **'ब्रह्मचारी! कटहल के पेड़ के चारे को बकरी खा रही है– सात ग्रास खाने के बाद भगा देना।'** मैंने शीघ्र कटहल के पौधे के पास जाकर देखा– बकरी शान्त भाव से खड़े होकर उसके एक पत्ते को चबा रही है। पौधे के सात पत्ते खा लेने के बाद भगा दिया। ठाकुर के पास आकर पूछा– बकरी को सात ग्रास खाने देने हेतु आपने क्यों कहा? पौधा छोटा है, सात पत्ते खाने से तो वह बचेगा ही नहीं! ठाकुर ने कहा– **'जिसकी जो खाने की वस्तु है, खाना आरम्भ करने पर बाधा नहीं देते– कम-से-कम सात ग्रास खाने दें, फिर बाधा देना चाहिए।'**

ठाकुर कहाँ पर हैं– और कटहल का पौधा कहाँ है– ठाकुर कैसे जान गए, यह पूछने की इच्छा ही नहीं हुई। उस दिन ब्राह्मधर्म प्रचारक श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने अपने कुछ आवश्यक प्रश्नों के साथ ठाकुर को एक पत्र लिखा था; ठाकुर के पास वह पत्र पहुँचने के पहले ही ठाकुर ने जगबन्धु द्वारा सारे प्रश्नों के उत्तर लिखवाकर भेज दिया। बाद में पता चला कि पत्र पढ़कर उत्तर देने से यथासमय वह नगेन्द्र बाबू को नहीं मिलता। ठाकुर की इस प्रकार दूरदृष्टि और अनुभूति सर्वदा देखकर इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब यह सब देख-सुनकर मन में किसी प्रकार की संशय वाली बात आती ही नहीं।

माँ के ऊपर विरक्ति: उनका प्रसाद खाने हेतु ठाकुर का आदेश

6 मई, शुक्रवार। छोटे भैया रोहिणी को लेकर घर चले गए। रोहिणी का विवाह है। मुझसे घर आने के लिए बार-बार कह गए। माँ मेरे लिए बहुत दुःखी हो रही हैं। छोटे भैया ने कहा कि विवाह में जो आत्मीयजन आए हैं, मेरे सम्बन्ध में उनकी आलोचना सुनकर माँ का मन दुःखी हो गया; वे सर्वदा रोती रहती हैं और ठाकुर को गालियाँ देती हैं। यह बात सुनने के बाद से मेरा अन्तःकरण मानो जलने लगा। माँ ठाकुर को गालियाँ देती हैं; उनके ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आया। अब माँ का मुख नहीं देखूँगा– मन-ही-मन निश्चय किया।

मध्याह्न में ठाकुर के भोजन करने के बाद अन्यान्य दिनों की भाँति उनके पास जाकर बैठ गया। मन बहुत विचलित है। एक ओर घर जाने की इच्छा– दूसरी ओर माँ के ऊपर भयंकर क्रोध; उसके बाद इस समय घर जाने से ब्रह्मचर्य के नियम का पालन कर पाऊँगा या नही, बड़ा संशय है। ऐसी दशा में क्या करूँ? सोचने लगा– ठाकुर यदि इस विषय में थोड़ा कुछ कह दें, तो निश्चिन्त हो जाऊँ। इसी समय ठाकुर ने मुझसे पूछा– **"क्यों ब्रह्मचारी! विवाह में घर जाने के लिए तुमको निमन्त्रण-पत्र नहीं मिला?"**

मैं– केवल पत्र क्यों? लोग भी छः-सात बार आ गए।

ठाकुर– **तो फिर घर क्यों नहीं गए?**

मैं– इस समय अनेक स्त्री-पुरुष (आत्मीयजन) घर में आए हैं। उनके सामने माथा झुकाकर चुपचाप बैठे रहना सहज नहीं है, ब्रह्मचर्य के नियम का प्रतिपालन करके चल पाना इस समय बड़ा कठिन है– इसलिए इतने दिन घर नहीं गया।

ठाकुर ने कहा– **"नहीं जाकर बहुत अच्छा किए। विवाह हो जाने पर एक बार घर जाना। वहाँ भिक्षा नहीं करना। माँ का प्रसाद लेना।"** इसके बाद ठाकुर हमारे यहाँ विवाह के नियम आदि पूछे। रोहिणी के विवाह में 'कितने रुपये दहेज में लिए गए' थोड़ा हँसकर उन्होंने उसकी भी खबर ली। ठाकुर के साथ इन सब विषय में बातचीत करके मेरा मन शीतल हो गया।

सद्‌गुरु का आश्रय लेना ही सम्पूर्ण निरापद्

ठाकुर से पूछा– दीर्घकाल कठोर तपस्या करके अच्छी उन्नत अवस्था प्राप्त करने के बाद भी सामान्य अपराध से पतित होना पड़ता है; तो क्या निरापद् स्थान नहीं है?

ठाकुर– **सद्‌गुरु का आश्रय जिन्हें मिला है, वे निरापद् हो गए हैं।**

सद्गुरु का आश्रय मिल जाने से फिर कोई डर नहीं रहता।

मैं– तो क्या उन सब महात्माओं, ऋषि-मुनियों को सद्गुरु प्राप्त नहीं हुए?

ठाकुर– **सद्गुरु प्राप्त करना क्या इतना सहज है? अनेक जन्म में सिद्धि प्राप्त करके, एकमात्र भगवान् की कृपा से सद्गुरु प्राप्त होते हैं। सद्गुरु मिल जाने पर फिर वे किसी भी अवस्था से पतित नहीं होते। फिर भी कर्म क्षय कराने के लिए उनकी अवस्था को कुछ समय के लिए दबाए रखना आवश्यक हो सकता है। नष्ट कभी नहीं होती। सद्गुरु प्राप्ति के बाद जो भी अवस्था प्राप्त क्यों न हो, वह पूर्ण स्थायी होगी। सद्गुरु प्राप्त होने से ही सम्पूर्ण निरापद हैं।**

मैं– सद्गुरु की दीक्षा ग्रहण करके फिर यदि कोई अन्यत्र दीक्षा लेते हैं, सद्गुरु प्रदत्त साधन का त्याग कर देते हैं, तो क्या सद्गुरु उनको त्याग देते हैं?

ठाकुर– **वैसा क्या कभी होता है? फिर भी कर्म-भोग समाप्त कराने के लिए कुछ समय घुमा सकते हैं; किन्तु तीन जन्म में अवश्य ही कर्म समाप्त करवा लेते हैं।**

सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह ही साधना है

कुछ समय बाद ठाकुर स्वतः ही सब लोगों से कहने लगे–

'अपना यह साधन पहले कभी भी गृहस्थ लोगों को नहीं मिला। इस बार ही गृहस्थों को सर्वप्रथम यह साधन मिला है। योगी, ऋषि, संन्यासियों के बीच ही इस साधन का प्रचलन था। इच्छा करने से ही कोई तुरन्त यह साधन प्राप्त नहीं कर पाते थे। वर्तमान समय में संसार की दुरावस्था देखकर कुछ महापुरुषों ने जीव के कल्याण हेतु संसारी लोगों में प्रार्थी होने पर यह दुर्लभ साधन अनेक लोगों को दे दिया। जिन लोगों को यह साधन दिया गया है, उनमें से कोई भी नियमानुसार साधना नहीं कर रहे हैं। अब तक एक भी व्यक्ति सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए इन लोगों की क्या अवस्था होती है, कुछ समय तक वह देखेंगे। जिन लोगों को आशा दी गई है, केवल उनको ही यह साधन मिलेगा। इस वर्ष नये प्रार्थी को साधन नहीं मिलेगा– अभी यही आदेश हुआ है। साधन लेकर यदि कुछ भी नहीं करते, तो फिर यह साधन क्यों लेना? व्यर्थ ही ऋषि-मुनियों के परम आदर के साधन-पथ में कलंक लगता है। साधन में किसी की निष्ठा नहीं है। अपने साधन में अधिक कुछ नहीं हैं– केवल तीन बातें हैं। जो इन तीनों का पालन करते हैं, वे ही साधन कर

रहे हैं। सत्य, अहिंसा एवं इन्द्रिय-निग्रह– अभी ये तीनों अपने साधन हैं। कोई यदि ईश्वर को नहीं मानते, नाम-साधना नहीं करते, किन्तु इन तीनों गुण का अवलम्बन करके चलते हैं, तो मैं उन्हें धार्मिक मानता हूँ। आस्तिक हो या नास्तिक– मूल बात है, ये तीनों ही गुण रहने चाहिए। रही प्रेम-भक्ति की बात, वह अन्य प्रकार की है। ये गुण रहने से अवश्य उन्हें प्रेम-भक्ति प्राप्त होगी। उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ेगा। मनुष्य के जो कर्त्तव्य हैं– ये तीनों गुण प्राप्त होने से ही पूरे हो जाते हैं। इन तीनों में से एक में भी शिथिलता आती है, तो फिर संकीर्तन में भाव का आवेश ही हो या नाम में अश्रुपात– निरर्थक है।'

चन्द्रग्रहण : नाम-संकीर्तन में भाव की कपटता – ठाकुर का दण्ड

11 मई, बुधवार। आज चन्द्रग्रहण है– आश्रम लोगों से परिपूर्ण है। संध्या के पूर्व शहर से भी अनेक गुरुभाई आश्रम में आ गए। वे जगह-जगह दलों में मिलकर ठाकुर के प्रसंग में आनन्द लेने लगे। रात्रि में लगभग 2 बजे ठाकुर बाहर आए। मन्दिर के प्रांगण में आकर उन्होंने कहा–

"आज यहाँ इस शुभ मुहूर्त में कई देवी-देवता, ऋषि-मुनि आए हैं; वे कितने आनन्दित हो रहे हैं। तुम लोग कीर्तन करो।"

ठाकुर के कहते ही मृदंग-मंजीरे बजने लगे। चारों ओर से गुरुभाई लोग ठाकुर को घेरकर संकीर्तन करने लगे। बीच में ठाकुर शान्त भाव से हाथ जोड़कर खड़े रहे। एक सज्जन नाना प्रकार से अंग-संचालन करके नृत्य करने लगे। उनका नृत्य हम सब लोगों को अच्छा नहीं लगा; वरन् विरक्ति ही आने लगी। **'कपटता मत करो, कपटता मत करो'**– ठाकुर बारम्बार ऐसा कहने लगे। सज्जन और भी भावोन्मत्तता दिखाने लगे। तब ठाकुर द्रुतगति से जाकर पीछे से उसकी गर्दन पकड़कर रास्ते की ओर जाने लगे। फिर उसको कीर्तन-प्रांगण से बाहर ढकेलकर कहा–

"यहाँ भाव दिखाने आए हो? भाव के नाम पर कपटता करते हो– धर्म के नाम पर धोखा?"

वह व्यक्ति फिर पीछे देखे बिना दौड़कर भाग गया। ठाकुर कीर्तन-स्थल में आकर उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करने लगे। दाहिना हाथ ऊपर उठाकर घूमते-घूमते **'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहने लगे। गुरुभाई लोग भी ठाकुर को देखकर उन्मत्त हो गए। वे सब ठाकुर को घेरकर घूमते-घूमते नृत्य करने लगे। संकीर्तन की भावोद्दीपक उच्च ध्वनि और मृदंग, मंजीरे, घण्टों की ध्वनि से सभी

दिग्भ्रान्त हो गए। दर्शकों के बीच भावावेश से आनन्द का कोलाहल होने लगा। महिलाओं की मंगल-ध्वनि बीच-बीच में होने वाली शंख की ध्वनि से मिलकर क्षण-क्षण में मानो आश्रम को कम्पित करने लगी। राहु द्वारा ग्रसित चन्द्र की ओर देखकर ठाकुर उद्दाम नृत्य करने लगे। योद्धा के समान उच्च स्वर में 'वाह-वाह' कहकर ललकारने लगे। कुछ क्षण बाद एकाएक खड़े होकर चन्द्रमा की ओर अंगुलि दिखलाते हुए काँपने लगे। फिर क्षणभर में ही वे अचेत होकर गिर पड़े। घने आकाश में तारे चमक उठे। पता नहीं ठाकुर को देखकर गुरुभाई लोग किस प्रकार उन्मत्तवत् हो गए; वे लोग उच्च स्वर में 'हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः' गाकर भयंकर गर्जन करने लगे। अद्‌भुत भाव से अभिभूत होकर ठाकुर की प्रदक्षिणा करते-करते वे लोग नृत्य करने लगे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। राहु से मुक्त होकर चन्द्रमा की शुभ्र किरण विकीर्ण होकर प्रकाशित होने लगी। ठाकुर भी **'हरि बोल, हरि बोल'** कहते हुए उठकर बैठ गए। गुरुभाइयों ने धीरे-धीरे संकीर्तन बन्द करके ठाकुर को साष्टांग प्रणाम किया। कुछ क्षण विश्राम करने के बाद वे लोग अपने-अपने घर चले गए। आश्रम सूना हो गया।

साधनप्रार्थी एक सज्जन आश्रम में आकर ठाकुर की प्रतीक्षा कर रहे थे। आज ग्रहण के बाद ठाकुर ने उन्हें बुलाकर मन्दिर के चबूतरे में बैठाकर दीक्षा दी। उसके बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। अवशिष्ट रात्रि ठाकुर के साथ रहकर बड़ा आनन्द मिला। प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर ठाकुर पूर्व ओर के कमरे में अपने आसन पर जाकर बैठ गए। मैं भी ठाकुर को प्रणाम करके अनुमति लेकर घर के लिए निकल पड़ा।

नदी में तूफान: भाग्य से रक्षा

बूढ़ी गंगा के किनारे पहुँचकर स्नान्-तर्पण सम्पन्न किया। नदी के बीच नौका देखकर उसे इंगित करते ही नाविकों ने आकर मुझे नौका पर चढ़ा लिया। नौका में उपस्थित लोगों ने मुझको साधु के वेश में देखकर आदरपूर्वक बैठाया। कुछ घण्टे में हम लोग धलेश्वरी के किनारे पहुँचे। तब अचानक काले बादल उठने से चारों ओर अन्धकार छा गया। सामने नदी की भीषणता देखकर सब लोग बड़ी विपत्ति की आशंका से चिन्तित हो गए। वे नाविकों को आगे बढ़ने से रोकने लगे।

'मीरा-बेग' के माझी लोग आँधी-तूफान की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। वे नौका में पाल तानकर बेधड़क बढ़ने लगे। नदी के बीच में पहुँचने पर काले मेघ छाने से एवं भयंकर गर्जन के साथ तीव्र वर्षा होने से चारों ओर धुँधला हो गया। नदी में भयंकर उफान आ गया। प्रबल तरंग से नौका डगमगाने लगी। इस समय

अचानक झपट्टे के साथ तूफान क्रमशः बढ़ने लगा। नाविक लोग पाल उतारने का साहस नहीं कर पाए। उसे सम्हाल नहीं पाने से वे लोग भगवान् को पुकारने लगे। तूफान के एक झपट्टे से नौका टेढ़ी हो गई। यात्री लोग डूबने की आशंका से हताश होकर चिल्लाने लगे। मैं गुरुदेव के अभय-चरणों का एकाग्र मन से स्मरण करने लगा। ऐसा लगा, ठाकुर मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे हैं। तब उल्लास के साथ चीत्कार करते हुए सब लोगों से कहा– डर नहीं है, कोई डर नहीं है; ठाकुर अवश्य हमारी रक्षा करेंगे। इसी समय एकाएक तूफान के एक झपट्टे ने पाल को दो भागों में फाड़ दिया। नौका सीधी होकर बड़ी तीव्र गति से किनारे की ओर बढ़ने लगी। अद्भुत रूप से नौका किनारे जाकर ठहर गई। आँधी-पानी रुक गया। सेराजदीघा का घाट अभी भी बहुत दूर था। भट्टाचार्य ब्राह्मण लोग 'आज यात्रा अशुभ है– पक्षान्ते मरणं ध्रुव' (पक्षान्त में मरण निश्चित है) कहकर आपस में तर्क करने लगे। फिर 'नौका में साधु के रहने से ही रक्षा हुई' यही बात मान ली गई। बहुत कहने पर भी नाविकों ने मुझसे किराया नहीं लिया। प्रायः डेढ़ बजे नौका सेराजदीघा पहुँची। यात्री लोग– 'दुर्गा, दुर्गा' कहते हुए उतरकर तट पर आ गए। मौसम पुनः बिगड़ने लगा। काले आकाश में बारम्बार बिजली चमकने के साथ भयंकर मेघ-गर्जन होने लगा। सब लोगों ने दुकान व घरों का आश्रय लेकर मुझे घर जाने से रोका। मैं शुभ्र उज्ज्वल ज्योति सामने प्रकाशित देखकर निर्भय होकर जाने लगा। वर्षा होने जैसी अवस्था में ही लगभग डेढ़ घण्टे चलकर मैं घर पहुँचा। माँ की चरण-धूलि मस्तक पर लेकर सारी थकान दूर की। दो-तीन मिनट बीतते ही मूसलधार वर्षा आरम्भ हो गई। केवल ठाकुर की कृपा से इस बार मृत्यु के मुख से रक्षा हुई, यह स्पष्ट रूप से समझकर घटना को मैंने संक्षेप में लिख रखा है।

घर में उपस्थिति: माँ का आशीर्वाद

घर में मँझले भैया और छोटे भैया को प्रणाम करके अपने भजन-कुटीर में प्रवेश किया। निर्दिष्ट स्थान पर आसन बिछाकर मन लगाकर नाम जपने लगा। विवाह के उपलक्ष्य में आए लोगों से घर परिपूर्ण है। सब आत्मीयजन आ-आकर मुझे देख जाते। मैं चुपचाप बैठा रहा। फिर माताजी के आदेश से उनका विविध व्यंजनों से युक्त प्रसाद पाया। भोजन का समय कोई ठीक नहीं रहा; उसके बाद भी मेरा चित्त प्रफुल्लित रहा एवं सरस भाव से अपने-आप नाम-जप होने लगा। यह सब ठाकुर की ही कृपा लगने लगी। जय गुरुदेव!

मई का द्वितीय सप्ताह। घर जाकर आरम्भ में कुछ दिन तक अच्छे-से था। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर शौचादि सम्पन्न करके स्नान के बाद जप, पाठ,

होमादि नियमानुसार करता था। उस समय माँ मेरे लिए भूना चिवड़ा, कीसा नारियल, घी और चीनी लातीं और मेरे सामने बैठकर मुझे खिलातीं। फिर कभी भीगे चावल को पीसकर उसमें दूध, चीनी और कीसा नारियल मिलाकर खिलातीं। माँ जानती हैं, मुझे ये दोनों वस्तुएँ बहुत अच्छी लगती हैं। भजन-कुटीर में रहने से लड़कियाँ मेरे पास आने का सुयोग पाएँगी– इस आशंका से जलपान के बाद बाहर आम के पेड़ के नीचे जाकर बैठता था। दिन में लगभग 1 बजे तक वहीं रहने के बाद प्रचण्ड धूप होने पर भजन-कुटीर में आ जाता था। छोटे भैया उस समय एक डाब (कच्चा नारियल) लाकर मुझे देते और मेरे पास बैठ जाया करते थे। उनके असाधारण प्रेम और स्नेहदृष्टि से मेरा मन बड़ा शीतल रहता; ठाकुर का अभाव बहुत-कुछ पूर्ण हो जाता था। मुझे कब किस वस्तु की आवश्यकता होगी, उसी चिन्ता में वे व्यस्त रहते थे। छोटे भैया का स्वाभाविक सेवा-भाव देखकर चकित हो जाता; अपने जीवन पर घृणा आती। संध्या के पूर्व माँ का दो ग्रास प्रसाद पाकर स्वपाक आहार करता। उसके बाद जब अपने कमरे में बैठकर विश्राम करता, उस समय आत्मीयजन, मित्रगण, गाँव के स्त्री-पुरुष आकर मुझसे भेंट करते थे। सिर झुकाए रखकर उनकी बातों का जवाब देता था। वे सन्तुष्ट होकर चले जाते। आरम्भ में कुछ दिन इसी प्रकार आनन्द से बीता– फिर दुर्दशा आरम्भ हो गई।

कल प्रातः नित्यकर्म करने के बाद आसन पर बैठा। अचानक मन बड़ा विचलित हो गया। बहुत प्रयास करके भी नाम-जप न कर सका। तब आसन से उठकर बाहर चला आया। बहुत समय तक मैदान में घूमकर लगभग 10 बजे 'छकिरबाड़ी' के जंगल में चला गया। अपराह्न 5 बजे तक वहाँ रहकर घर लौटा। स्वपाक आहार करके आसन-गृह में प्रवेश किया। नाम-जप न होने पर कितना कष्ट होता है, स्पष्ट अनुभव करने लगा। सारी रात मैंने अनिद्रा और यन्त्रणा से छटपटाते हुए बिताई। आज प्रातः नित्यकर्म सम्पन्न करने के बाद ढाका जाने के लिए तैयार हो गया। माँ ने विविध प्रकार के खाद्य लाकर मुझे स्नेहपूर्वक खिलाया। उस समय माँ ने कहा– 'तुझे जहाँ रहने से शान्ति मिलती है, वहीं जाकर रह। समय-समय पर तेरे को देखने की इच्छा होती है, बीच-बीच में तू आ जाया कर। तेरे लिए जो वस्तुएँ भिजवाई थी, वह तूने नहीं ली; सुनकर बड़ा कष्ट हुआ था। इसीलिए तो तेरे गोसाँई को गालियाँ दी; मन में कितना कष्ट पाकर दी थी, गोसाँईजी वह समझ गए। मेरे अपराध के लिए उन्होंने क्षमा भी किया।' माँ की बात सुनकर मेरा मन शीतल हो गया। जलपान के बाद माँ की चरण-धूलि लेकर सेराजदीघा के लिए निकल पड़ा। छोटे भैया बहुत दूर तक मेरे साथ-साथ गए। अपराह्न में 5 बजे गेण्डारिया आश्रम पहुँचा। ठाकुर का दर्शन करते ही हृदय उत्साह और आनन्द से भर गया। थकावट दूर हो गई।

कृपा करके ठाकुर का घृत-पान

झोला लेकर ठाकुर के पास बैठा हूँ, उसी समय कुतुबुड़ी ने एक कटोरी लाकर मेरे सामने रखते हुए कहा– 'ब्रह्मचारी! अच्छा घी लाए हो– मुझे थोड़ा दो।' मैं बहुत सम्भालकर ठाकुर के लिए अच्छा धी लाया हूँ, वह ठाकुर को देने के पहले कुतु को कैसे दे दूँ– यह बात एक बार मन में आई। फिर कुतु को घी देने के लिए आगे बढ़ते देखकर ठाकुर ने आनन्दपूर्वक थोड़ा मुस्कुराते हुए बालक की भाँति हाथ फैलाकर मुझसे कहा–

"ब्रह्मचारी! मेरे लिए नहीं लाए? मुझे भी थोड़ा दो।"

मैंने ठाकुर की हथेली में घी भर दिया, ठाकुर उसे पीकर हाथ चाटने लगे एवं घी की प्रशंसा करके उन्होंने कहा–

"विक्रमपुर का घी बहुत उत्कृष्ट है– शान्तिपुर के मलाई से बनी घी की भाँति। कमरे में रख देने से बाहर उसकी सुगन्ध मिलती है। स्वाद भी मानो खीर के समान है।"

ठाकुर के नाम से रखी वस्तु उनको देने के पहले ही उन्होंने आग्रह के साथ माँग ली– इससे मुझे बड़ा आनन्द मिला।

धर्म-ग्रन्थ पाठ की प्रणाली

21 मई, शनिवार। ठाकुर के आदेश के अनुसार आज महाभारत के मोक्ष-पर्व अध्याय का पाठ करने लगा। सुनने के बाद ठाकुर ने कहा–

"महाभारत महासमुद्र है! इसमें कहाँ क्या है, उसे क्या कोई पाठ करके स्मरण रख सकता है? इन ग्रन्थों का पाठ करते समय काम की अच्छी-अच्छी बातों को लिख लेना चाहिए। बाद में मूल संस्कृत ग्रन्थ से उन सब श्लोकों को लेकर कण्ठस्थ कर लेना चाहिए।" कुछ समय बाद ठाकुर ने कहा–

"मनुष्य यदि हिंसारहित हो सके, मन से हिंसा का भाव यदि सम्पूर्ण रूप से दूर कर सके, तो कोई भी प्राणी उससे हिंसा नहीं करेगा; घने जंगल में शेर-भालू के बीच भी वह सहज में सुरक्षित रह सकता है। पहाड़-जंगलों में जो सब साधु-महात्मा हैं, वे मन से हिंसा दूर करके ही स्वाधीन हैं। अहिंसा, सत्य और वीर्यधारण– ये तीन ही यथार्थ धर्म हैं। इन तीनों का पालन होने से सब अपने-आप ही हो जाता है।"

ठाकुर ने बहुत समय तक इन सब विषयों पर उपदेश दिया।

तुम्हारा काम तुम करो: हिंसा अनिवार्य है

22 से 28 मई। मध्याह्न में महाभारत पाठ के बाद ठाकुर के सामने हम सभी एकाग्र मन से बैठे हैं; अचानक एक बिल्ली ने मुँह से एक गिरगिट को पकड़ लिया। वह छटपटाने लगा। सभी 'ओह' करके चीख उठे। मैं गिरगिट को छुड़ाने के लिए आसन से उठ गया। ठाकुर ने तुरन्त अंगुलि से संकेत करके मुझे बैठाकर कहा–

"बैठो। एकाएक कुछ नहीं करते। सब कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए। चुपचाप बैठकर तुम अपना काम करो। ये तुम्हारा काम नहीं है। इधर देखने के लिए कोई एक हैं। उनके अनजाने में या उनकी इच्छा के बिना एक पत्ता नहीं हिलता; कोई किसी का वध नहीं कर सकता। किसकी कहाँ किस प्रकार मृत्यु होगी– उसे वे निश्चित करके रखते हैं। बिल्ली ने विधि द्वारा निश्चित किया हुआ अपना भोजन मुँह में ले लिया, तुम उसे छुड़ाने में व्यग्र क्यों होते हो? जीव-हिंसा?– कौन नहीं करता? जीवन धारण करने के लिए जीव-हिंसा अनिवार्य है। भूमि से उत्पन्न वृक्ष-लता इत्यादि वनस्पति का भी जीवन है; इनमें सुख-दुःख, रोग-शोक, दर्शन, श्रवण, स्पर्शन आदि सब ठीक मनुष्य की भाँति ही होता है। वर्तमान दर्शन-विज्ञानादि जो भी सिद्धान्त क्यों न लें, यह बात सत्य है। यदि कभी वैसी अवस्था होती है, तो सब समझ जाओगे। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में कितने प्राणियों की हत्या होती है, पलक झपकने पर ही असंख्य प्राणियों का वध हो जाता है; उसका निवारण कैसे करोगे? वृक्ष-लता, पत्ते भी हिंसा द्वारा जीवन धारण करते हैं। सर्वत्र हिंसा है। तब फिर एक प्राणी के आहार में दूसरा बाधा क्यों दे? यह भगवान् का ही विधान है। सब उनकी इच्छा, उनकी व्यवस्था के अनुसार होता है। मन को शान्त रखो, चुपचाप बैठकर सर्वत्र भगवान् का कार्य देखो। उनकी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता।"

आग्रहपूर्वक अतिथि-सेवा से ठाकुर की कृपा-वृष्टि

रात्रि प्रायः 11 बजे प्रेमानन्द भारती जी के साथ कुछ साधु आश्रम में आए। वे सभी बंगाली हैं एवं सुशिक्षित, बी॰ए॰, एम॰ए॰ पढ़े हुए हैं। कुछ तो उच्च-पदस्थ सरकारी कर्मचारी थे। ठाकुर ने मुझे बुलाकर उनके लिए भोजन बनाने को कहा। मैं बड़े उत्साह के साथ भोजन बनाने चला गया। भण्डार में जाकर देखा– चावल, दाल, नमक, मिर्च के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह भी बहुत कम परिमाण में है। मैंने पानी में केवल नमक व मिर्च डालकर दाल उबाल ली। भोजन बनाकर

अश्विनी को दाल चखने के लिए दिया। अश्विनी ने दाल मुँह में डालते ही कहा– 'बाप रे! कितना नमक! कोई मुँह में रख भी नहीं सकता।' मेरे सिर पर मानो बिजली गिर पड़ी। दाल में कितना ही पानी डाल दिया– नमक कम नहीं हुआ। इधर रात में ढाई बज गए। भूखे साधु भोजन के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्या करूँ! बिल्कुल निरुपाय होकर एकाग्र मन से ठाकुर को स्मरण करने लगा। अतिथि लोग तृप्तिपूर्वक भोजन कर लें– यह प्रार्थना की। साधुओं को भोजन के लिए बुलाया। ठाकुर को स्मरण करके मैं परोसने लगा। साधु लोगों ने दाल की सुगन्ध और स्वाद की प्रशंसा करके तृप्तिपूर्वक भोजन सम्पन्न किया। सब गुरुभाइयों ने बची दाल खाकर कहा– 'ऐसी स्वादिष्ट दाल आश्रम में कभी नहीं बनी।' मैं समझ गया, यह ठाकुर की प्रत्यक्ष कृपा है; उन्होंने दया करके मेरी प्रार्थना सुन ली।

संकीर्तन में प्रेमानन्द की प्रार्थना: भाव की बाढ़– मेरी शुष्कता जीवात्मा अनन्त उन्नतिशील है: पाप-पुण्य केवल संस्कार है साधना से संस्कार की मुक्ति

प्रेमानन्द भारती (सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) मेरे अच्छे मित्र हैं। ये समाचार-पत्र गप एण्ड गॉसिप (Gup and Gossip) के सम्पादक थे। जब मैं फैजाबाद में था, तब प्रायः सर्वदा ही मेरे साथ रहते थे। दीक्षाप्रार्थी होने पर ब्रह्मानन्द भारती से दीक्षा लेने के लिए कहा था। तब से ये इसी भाव में हैं। नीलानन्द, शिवानन्द आदि श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के कृपा-पात्र हैं। सभी अच्छी सम्पन्न अवस्था के लोग हैं। धर्म के प्रति अनुराग होने से ये लोग गृहस्थाश्रम त्यागकर उदासीन भाव से गाँव-गाँव में संकीर्तन करते हुए घूम रहे हैं।

उच्च शिक्षित कुछ वैष्णव संन्यासी आश्रम आए हैं– यह संवाद शीघ्र ही शहर में फैल गया। साधुओं के दर्शन करने के लिए लोग की भीड़ आने लगी। आज अनेक सज्जन संकीर्तन के वृहत् आयोजन के साथ आश्रम पहुँच गए। यथासमय मन्दिर-प्रांगण में मृदंग-मंजीरे बज उठे। ठाकुर संकीर्तन स्थल में आकर साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो गए। भक्तवृन्द चारों ओर से ताली बजाते हुए संकीर्तन आरम्भ कर दिए। संन्यासी लोग ठाकुर को घेरकर नृत्य करने लगे। ठाकुर हाथ जोड़कर सामने की ओर स्थिर दृष्टि से कुछ समय तक देखते रहे। उनके स्थिर शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग थरथर काँपने लगे। देखते-देखते ठाकुर की आकृति अन्य प्रकार की हो गई। वे **'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहते हुए थोड़ा आगे बढ़कर रुक गए। दाहिना हाथ ऊपर उठा-उठाकर उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करने लगे। गुरुभाई लोग ठाकुर को देखकर उन्मत्तवत् हो गए।

वे भावावेश में नाना प्रकार से नृत्य करते-करते ठाकुर की परिक्रमा करने लगे। ठाकुर उद्दाम नृत्य करते हुए कीर्तन-प्रांगण में घूमने लगे। दर्शकगण चकित होकर ठाकुर की ओर देखते रहे। मृदंग-मंजीरे की झमाझम ध्वनि से उपस्थित लोगों का हृदय नाच उठा। रह-रहकर होने वाली हरि-ध्वनि से भाव की तरंग उमड़ उठी। ठाकुर को देखकर कई गुरुभाई मूर्च्छित हो गए। ठाकुर के प्रत्येक पद-विस्तार में वृक्ष-लता सहित आश्रम भी मानो नृत्य करने लगा। पता नहीं किस शक्ति से आज सब एकाकार हो गए! स्त्री-पुरुष में भी पार्थक्य नहीं रहा। सभी लोग झूमने लगे। अदम्य भाव के अद्भुत सौन्दर्य से उपस्थित लोगों का चित्त अभिभूत हो गया। ठाकुर अचेत हो गए। क्रमशः संकीर्तन बन्द हो गया। कुछ क्षण बाद ठाकुर उठकर बैठ गए। भारती जी ने ठाकुर के चरणों में गिरकर व्याकुल होकर रोते-रोते कहा– 'शक्ति दो, शक्ति दो।' ठाकुर ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए उन्हें शान्त किया।

आज महाभाव की बाढ़ में कितने लोग तैरे, कितने ही डूबे; पर मैंने तट की तप्त बालू के ऊपर खड़े रहकर आनन्द सागर में सबको डूबकी लगाते ही देखा। बाढ़ के पानी की एक बूँद का भी स्पर्श नहीं हुआ, एक क्षण के लिए भी ठण्डी हवा का शरीर से स्पर्श नहीं हुआ। सोचा– हाय! मेरी यह कैसी दशा हो गई? दिनो-दिन शुष्क लकड़ी जैसा होता जा रहा हूँ। कीर्तन में एक समय मुझे भी भावावेश होता था, किन्तु ब्रह्मचर्य लेने के बाद से वह बिल्कुल विलुप्त हो गया। अब संकीर्तन के सामयिक आनन्द की भी अभिलाषा नहीं रही– मुझे तीव्र वैराग्य के कठोर नियन का पालन करने में ही अब तृप्ति मिलती है। ठाकुर ने कहा था– **'अहिंसा, सत्य और इन्द्रिय-निग्रह– ये तीन ही मानव के यथार्थ धर्म हैं। ये प्राप्त नहीं होने से किसी उच्च अवस्था के अधिकारी नहीं हो सकते।'** प्राणपण से चेष्टा करके विचार-बुद्धि द्वारा संयत होने का केवल परिश्रम करता हूँ– किन्तु प्रकृत धर्म का आभास भी अभी तक स्वभाव में खोज नहीं पाया। मेरा स्वभाव सम्पूर्ण धर्म-विरोधी है। विचार का धर्म छोड़कर कब स्वभाव का धर्म प्राप्त करूँगा? संकीर्तन का आनन्द सामयिक व क्षणिक होने पर भी वह जिनको प्राप्त होता है, वे बड़े भाग्यवान् हैं, श्रेष्ठ हैं। मेरी अपेक्षा वे लोग हजार गुना अधिक श्रेष्ठ हैं। भगवान् के नान से जिनके अश्रु गिरते हैं, भगवान् के गुणगान में जो आत्मविस्मृत हो जाते हैं, वे सामान्य नहीं हैं। वे जितने ही स्वेच्छाचारी, दुराचारी क्यों न हों– वे आदरणीय हैं।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्,
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।

(यदि कोई अति दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे निरन्तर भजता है,

वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भली-भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।) गीता– 9/30

हाय! मैं सब ओर से ठाकुर की कृपा से वंचित हूँ, मन में बड़ा कष्ट हुआ। अवसर पाकर ठाकुर से पूछा– मेरी किसी ओर भी कोई उन्नति क्यों नहीं हो रही?

ठाकुर ने कहा– **"उन्नति सभी की हो रही है। भगवान् के राज्य में कोई भी वस्तु एक ही अवस्था में नहीं रहती। तुम्हारी उन्नति हो रही है– यह अवश्य जान लो।"**

थोड़ा उत्तेज़ित होते हुए मैंने अपनी बात पर अड़कर कहा– कैसे समझूँ उन्नति हो रही है? पहले जिन पाप-कर्मों को नहीं करता था, अब उसे करता हूँ। पहले जिन सब चिन्तन, कल्पना को घोर अपराध समझता था, अब उन सब में आनन्द पाता हूँ। इस प्रकार सभी विषय में अवनति ही देख रहा हूँ।

ठाकुर– **इससे उन्नति में बाधा नहीं होती। अवनति भी नहीं होती। ये सब बाहरी विषय हैं। आत्मा की उन्नति प्रतिदिन प्रत्येक क्षण में हो रही है। अभी जिसे पाप कहते हो, पुण्य कहते हो– सब संस्कार है। वास्तव में ये सब कुछ नहीं हैं। यह पाप है, यह पुण्य है; यह सुख है, यह दुःख है, इस प्रकार संस्कार में आबद्ध होने से ही हम कष्ट पाते हैं– उन्नति देख नहीं पाते। वृक्ष जैसे अपने-आप बढ़ता है, जीवात्मा भी उसी प्रकार हमारी इच्छा-अनिच्छा, कामकाज का कोई विचार न करके उन्नति प्राप्त कर रही है। वृक्ष में कीड़े लग सकते हैं, कोई उसकी डाल तोड़ सकता है, किन्तु उससे वृक्ष की वृद्धि बन्द नहीं होती। जिसे पाप-पुण्य कहते हो– वह कुछ नहीं, केवल संस्कार है। इसलिए मन खराब करना, वृथा अशान्ति भोगना ठीक नहीं है। स्वभाव को जो कराना है, करा ले; जो होने का है, हो जाए। केवल देखते जाओ। अशान्ति क्यों भोगते हो? जो कुछ भी क्यों न करो, यह अवश्य जान लो, अवनति नहीं हो रही है– आत्मा की क्रमशः उन्नति ही हो रही है। सर्वदा विचार करके चलो। भीतर जो सब संस्कार विद्यमान हैं, उनका स्फुरण होगा ही; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना कि उन्नति नहीं हो रही है। शम, सन्तोष, विचार और सत्संग से आत्मा की उन्नति अनुभव होती है। काम-क्रोध आदि आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। आत्मा अनन्त उन्नतिशील है।**

मैं– आत्मा की उन्नति-अवनति से मुझे क्या लेना-देना? लाभ भी क्या है? यदि उसे मैं समझ न सकूँ। ऐसे में आत्मा की उन्नति तो मेरे लिए अन्य की उन्नति के समान ही हुई। मुझे जिससे कष्ट अनुभव होता है, वह त्रिताप की ज्वाला है; वह दूर नहीं होने से मैं अपनी उन्नति नहीं समझता।

अरे नहीं! दूर हो गया

कुछ समय से श्रीधर मेरे पास में ही बैठकर ठाकुर की बातें सुन रहे थे। मेरी बात पूरी होते ही श्रीधर ने खूब हँसते हुए हाथ हिलाकर कहा– 'अरे नहीं! वह सब कुछ नहीं है, दूर हो गया।' यह सुनकर ठाकुर ने हँसते-हँसते कहा– **"क्यों श्रीधर, क्या कह रहे हो?"**

श्रीधर ने कहा– "हमारे गाँव में एक वैद्य थे। वे नाई थे, कविराजी करते थे। एक दिन उन्होंने एक ज्वर के रोगी को देखकर कहा– 'यह रोग कुछ नहीं है, औषधि लो– खिला दो। तीन दिन में रोग दूर हो जाएगा। चौथे दिन आकर आरोग्य स्नान कराऊँगा। अच्छे-से सब व्यवस्था करके रखना।' रोगी नियम के अनुसार औषधि खाने लगे; लेकिन उसका रोग क्रमशः और अधिक बढ़ने लगा। चौथे दिन घर में रोना-धोना आरम्भ हो गया। इसी समय वैद्य ने आकर घर के बाहर से ही उच्च स्वर में कहा– 'अरे! सब व्यवस्था हो गई तो? आज आरोग्य स्नान कराऊँगा।' उन लोगों ने वैद्य को रोगी के पास ले जाकर बैठाया। रोगी तब अनाप-शनाप बक रहे हैं– फिर कभी थोड़ी चेतना आने पर 'उँह, आह; मर गया, मर गया' कहकर चिल्ला रहे हैं। वैद्य उधर ध्यान दिए बिना उसको हाथ पकड़कर खींचते-खींचते कहने लगे– 'अरे नहीं! दूर हो गया। उठ, आरोग्य स्नान कराऊँ!' रोगी जितना ही कहते– यन्त्रणा सहन नहीं होती, मर गया; वैद्य उतना ही कहते– अरे नहीं! वह सब कुछ नहीं है। दूर हो गया– उठ, अब आरोग्य स्नान कराऊँ!" श्रीधर की बात सुनकर ठाकुर बहुत हँसे; फिर बोले– **'सुख-दुःख, पाप-पुण्य– ये सब संस्कार हैं। संस्कार वस्तु ही मिथ्या है। इसको विचार द्वारा समझकर शान्त होने का प्रयास करो।'** ठाकुर की बात सुनकर मैंने सोचा– यह तो कठिन बात है। संस्कार से ही भोग की उत्पत्ति होती है। भोग आरम्भ होने से तो विचार द्वारा शान्त हो गया; किन्तु भोग आरम्भ होने के पहले अन्तर्निहित संस्कार की जाँच किस प्रकार करूँगा? अज्ञात संस्कार को कैसे शान्त करूँगा? ठाकुर से पूछा– जिन संस्कारों से भोग उत्पन्न होते हैं, उन सब अज्ञात संस्कारों को कैसे हटाया जाए? ठाकुर ने कहा– **"जिसके स्वभाव में जो संस्कार है, उसमें वह प्रकट होगा ही। फिर भी श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से देह-मन निर्मल होता है, चित्त शुद्ध होता है। तब फिर दैहिक, मानसिक किसी भी प्रकार का संस्कार नहीं रहता।"**

संकीर्तन से भारती जी का चैतन्य होना

एकरामपुर में बिहारी मालाकार के ठाकुरबाड़ी में बड़ा कीर्तन-उत्सव हुआ। प्रेमानन्द भारती इत्यादि साधु वहाँ गए हुए है। आश्रम से भी कुछ गुरुभाई गए थे। आज ठाकुर के पास एक गुरुभाई ने आकर कहा– 'भारती जी 12-14 घण्टे से अचेत अवस्था में पड़े हैं। सब उनकी दशा देखकर डर गए हैं। क्या किया जाए?'

ठाकुर ने कहा– **"जाकर संकीर्तन करो– अभी चेतना आ जाएगी।"**

ठाकुर के कथनानुसार संकीर्तन कराने से उनकी चेतना लौटी। भारती जी आश्रम आ गए। भारती जी इत्यादि साधुओं के साथ हम सब बड़े आनन्द से हैं। आश्रम में बाहर के लोग रहते हैं, तो प्राणायाम करने में बड़ी असुविधा होती है; किन्तु ठाकुर कुछ दिन रुकने वाले अतिथि साधुओं को बड़े आदरपूर्वक रखने को कहते हैं।

आकाशवृत्ति संरक्षण हेतु ठाकुर का आदेश

गुरुभाइयों की अशिष्ट-चर्चा: ठाकुर का एक साथ में भोजन

किसी दिन भण्डार में कुछ न रहे, तो बाजार से उधार लेकर वस्तुएँ लाने का कोई उपाय नहीं है; ठाकुर असन्तोषपूर्वक कहते हैं– **'मेरी आकाशवृत्ति है; भगवान् जिस दिन जिस प्रकार देते हैं, मैं उससे ही सन्तुष्ट रहता हूँ। कुछ नहीं देने पर भी उनकी ही दया मानता हूँ। आप लोग कभी भी आश्रम के लिए उधार नहीं लेना। केवल शिशु, रोगी, गर्भवती और अत्यन्त असमर्थ वृद्ध के लिए उधार ले सकते हैं। मेरे साथ जो लोग हैं, उनके लिए इस नियम की ओर विशेष रूप से ध्यान रखकर चलना उचित है।'**

ठाकुर का यह अनुशासन सुनकर कुछ गुरुभाई दुःखी व उत्तेजित हो गए– कुछ दिन से वे लोग अतृप्तिकारक भोजन का कष्ट सहन नहीं कर पाने के कारण अत्यन्त विरक्तिजनक चर्चा करने लगे हैं। वे लोग अशिष्ट चर्चा का विष ठाकुर के पवित्र अंगों पर छिड़क रहे हैं– ठाकुर एकान्त में भोजन करते हैं, उनके भोजन के समय कमरे का दरवाजा बन्द रहता है; योगजीवन और कुतुबुड़ी ठाकुर का एवं मन्दिर का प्रसाद लिया करते हैं। नानीजी और शान्ति इत्यादि कब क्या खाते हैं, कोई देख नहीं पाता। इससे स्पष्ट प्रमाण होता है कि गोसाँईजी और उनके परिवार के लोगों का भोजन एक प्रकार का है एवं आश्रम में जो लोग रहते हैं, उनका भोजन अन्य प्रकार का हुआ करता है। ठाकुर के पैसे से कोई नहीं खाता।

योगजीवन भी रोजगार करके पैसे नहीं लाता। आश्रम के खर्च के लिए गुरुभाई लोग जो देते हैं, उसमें आश्रम में रहने वाले सभी लोगों का समान अधिकार है। उन पैसों को नानीजी हाथ में लेकर अपनी इच्छा के अनुसार खर्च क्यों करती हैं– यह सब लेकर ठाकुर के अनजाने में नानीजी के साथ किसी-किसी की दो-चार बातें एवं गाली-गलौज भी हो चुकी है। इसके बाद ठाकुर ने एक दिन योगजीवन को बुलाकर कहा– **"योगजीवन, मध्याह्न में सबके साथ चौकोन छानी वाले कमरे में ही मुझे भोजन देना।"** तब से दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले कमरे में सबके साथ ठाकुर मध्याह्न भोजन करते हैं। मैं मध्याह्न में भोजन नहीं करता, इसलिए भोजन परोसने का भार मेरे ऊपर ही है।

भोजन के दर्शन में देवी-देवताओं का आनन्द

भोजन के समय सबके साथ ठाकुर को भोजन परोसने में जैसी असुविधा होती है, ठाकुर के साथ बैठकर सबका भोजन करना वैसा ही असुविधाजनक है। एक मुट्ठी भात खाने में ठाकुर को प्रायः आधा घण्टा लग जाता है। भात का ग्रास मुख में देकर कभी-कभी ध्यानस्थ हो जाते हैं; भात मुख में ही पड़ा रहता है। बीच-बीच में कितना कुछ कहते हैं, पर सब बातें सब समय समझ में नहीं आती। आज भोजन करते-करते सामने दरवाजे से उत्तर दिशा में आकाश की ओर बहुत समय तक एकटक देखते रहे, फिर **'आहा, कितना सुन्दर! कितना सुन्दर।'** कहते हुए आँखें पोंछकर पुनः धीरे-धीरे भोजन करने लगे।

मैंने पूछा– सुन्दर क्या?

ठाकुर ने कहा– **"ये जो सब आए थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि कितने ही देवी-देवता, ऋषि-मुनि आए थे। देखकर कितने आनन्दित होकर गए।"**

मैं– क्या देखकर वे लोग आनन्दित हुए?

ठाकुर– **तुम लोगों का भोजन देखकर कितने आनन्दित हुए।**

हमारा लक्ष्य

मैंने विस्मय के साथ पूछा– हमारा आहार देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आनन्दित होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"तो क्या नहीं होंगे? तुम लोग क्या साधारण हो? तुम लोगों का जो लक्ष्य है, उनके चारों ओर कितने योगी, कितने ऋषि,**

कितने देवी-देवता, कितने ब्रह्मा, कितने विष्णु, कितने शिव विद्यमान हैं। उस उन्नति के पथ पर कोटि-कोटि विश्व-ब्रह्माण्ड, कोटि-कोटि बैकुण्ठादि लोक छोटे से भी छोटे बिन्दु हैं– और कुछ नहीं। हम जिन्हें चाहते हैं– कोटि-कोटि अवतार, कोटि-कोटि ..... भक्त और पार्षदगण उनके चारों ओर घूम रहे हैं। वे अन्तविहीन, महान् पुराण-पुरुष ही हमारे लक्ष्य हैं। अविराम उसी ओर हम चलेंगे; सर्वत्र निमन्त्रण खाएँगे, आनन्द मनाएँगे, कहीं रुकेंगे नहीं, किसी की निन्दा-प्रशंसा में नहीं पड़ेंगे। पार्षद होने से क्या होता है, कुछ नहीं होने से भी क्या होता है? कितने इन्द्र, चन्द्र हुए और चले गए; कितने होंगे और चले जाएँगे। इस पथ पर कहीं बद्ध होने से ही विपद् है। **कहीं भी बद्ध मत होना।"** कुछ समय बाद पुनः कहने लगे– **'इस साधन-पथ पर चलने से भगवान् की अनन्त विभूति, समस्त लीलाएँ धीरे-धीरे प्रकट होती रहेंगी– नौका में भ्रमण के समान दोनों ओर कितने ही दर्शन करोगे। श्रद्धा-भक्ति के साथ सर्वत्र प्रणाम करना। कहीं भी आसक्त नहीं होना। आसक्त होने से ही वहाँ बद्ध हो जाओगे। अग्रसर न होने से नये-नये दर्शन नहीं होते। कोई भी नई अवस्था प्राप्त नहीं होती।'**

ठाकुर की बातें सुनकर सभी चकित हो गए। मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। सबका भोजन हो जाने के बाद कुछ क्षण चुपचाप बैठकर सोचा– ठाकुर ने यह क्या कहा? ठाकुर की बातों से लगा कि समस्त लीलाओं एवं विभूतियों के प्राकट्य और अन्तर्धान के अतीत नाम के प्रतिपाद्य अज्ञात महान् पुरुष ही हमारे लक्ष्य हैं। सर्वदा अबाध गतिशील नाम में अवस्थिति ही हमारी अवस्था है; इसीलिए ठाकुर से कोई भी अवस्था की बात क्यों न पूछें, वे पहले नाना प्रकार के उपदेश और नियम की बातें कहकर अन्त में कहा करते हैं– **'श्वास-प्रश्वास में नाम जपो; नाम से ही सब प्राप्त होता है।'**

साधना में मेरी चेष्टा और निष्फलता

29 मई से 6 जून। देख रहा हूँ, अपनी चेष्टा से कुछ नहीं होगा। ठाकुर के आदेश का प्रतिपालन करने का यथासाध्य प्रयास किया, किन्तु किसी प्रकार भी सफल नहीं हुआ। किसी भी विषय में उत्साह के साथ जितना ही प्रवृत्त होता हूँ, हाथ-पाँव उतने ही ढीले पड़ जाते हैं। ठाकुर के किसी एक आदेश का भी मैं ठीक प्रकार से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। उन्होंने मुझे सर्वदा पैर के अँगूठे पर दृष्टि स्थिर रखने के लिए कहा था; कई दिनों तक ठीक से चला, लेकिन अब कुछ दिन

से उस पर भी वैसा ध्यान नहीं रहता। जितना ही इस विषय में दृढ़ता के साथ लगता हूँ, प्रत्येक बार पता नहीं क्यों निष्फल हो जाता हूँ। सभी विषय में इसी प्रकार देख रहा हूँ। वाक्य संयम के लिए एक वर्ष से प्राणपण से चेष्टा करता आ रहा हूँ, इतने दिनों तक एक प्रकार से ठीक ही चला; परन्तु कुछ दिन से बड़ी शिथिलता आ गई। मैं प्रतिदिन आसन से उठते समय प्रतिज्ञा करके उठता हूँ– आज कोई बात नहीं करूँगा; पर आश्चर्य है! दो-एक घण्टे बीतते-बीतते ही प्रतिज्ञा भंग हो जाती है। सदा अचानक या अनजाने में इस प्रकार होता है, वैसा नहीं है; जानकर भी बात करने की अदम्य प्रवृत्ति को रोक पाने का अवसर नहीं मिलता। अभ्यास के दोष से एक बात कहते ही तुरन्त चुप हो जाता हूँ, पश्चात्ताप होता है; मन-ही-मन प्रतिज्ञा करता हूँ– अब नहीं कहूँगा; किन्तु कुछ समय बाद पुनः कह डालता हूँ। प्रत्येक घण्टे में चेष्टा हो रही है– प्रत्येक घण्टे में विफल हो जाता हूँ। बारम्बार इस प्रकार देखकर एवं भुगतने के बाद सोचता हूँ– ऐसा क्यों होता है? अपनी इच्छा से जब मैं अपना कार्य नहीं कर पा रहा हूँ, तो निश्चय ही मेरी इच्छा के ऊपर और एक इच्छा है। वह मेरे से अधिक बलवान् है। अब भीतर से बारम्बार यही भाव आ रहा है कि एकाग्र मन से व्याकुल होकर ठाकुर के श्रीचरणों का आश्रय लिए बिना, उनकी कृपा से शक्ति प्राप्त किए बिना मैं अपने साधन-भजन और संयम के प्रयास से उनका आदेश पालन करने में कभी समर्थ नहीं होऊँगा। गुरुदेव! एक बार दया करो।

जिह्वा की लालसा से असह्य यन्त्रणा

इस बार मेरे पास कोई उपाय नहीं है; मैं लोभ का संवरण नहीं कर पाया। ठाकुर ने इतने दिनों तक अपने आदेशानुसार चलाने में मुझ पर यथेष्ट कृपा की। दिनभर में एक चुल्लु भी पानी पिये बिना, अपराह्ण 5 बजे डेढ़ छटाक चावल-दाल उबालकर खाया हूँ– कोई कष्ट नहीं हुआ। आहार की कठोरता से मेरी शारीरिक स्फूर्ति और मानसिक उत्साह में दिनो-दिन वृद्धि हो रही थी। हाय! कुछ दिनों से मेरी यह कैसी दुर्दशा आरम्भ हो गई? 'मेरे भीतर लोभ नहीं रहा'– इस प्रकार की भूल धारणा से मुग्ध होने पर धीरे-धीरे संयम के प्रयास में शिथिलता आ गई। 'इससे मुझे क्या होगा'– इस प्रकार की धारणा से गुरुवाक्य का उल्लंघन करके अत्यन्त साधारण स्वादिष्ट वस्तुओं का रसास्वादन करने के कारण अब संकट में पड़ गया हूँ। ठाकुर ने कहा था– **'आहार के समय में ही भोजन करना।'** ठाकुर के इस आदेश के ऊपर 'प्रसाद खाने में दोष नहीं है'– इस प्रकार शास्त्रीय नियम लागू करके जब-तब प्रसाद पाने लगा। अब देख रहा हूँ, बालक भी खाने की जिन वस्तुओं पर सहज में लोभ का संवरण कर लेता है, मैं वह भी नहीं कर

पा रहा हूँ। फिर सहज में नहीं मिलने से चोरी करके खाने की इच्छा होती है। भीतर की दुरावस्था देखकर लज्जित होने पर भी मैं लोभ नहीं छोड़ पा रहा हूँ। कृपा द्वारा प्राप्त अवस्था को स्व-उपार्जित अवस्था समझने से जो दुर्दशा होती है, अब मेरी वही हुई है। लोभ संवरण करने का बिल्कुल भी प्रयास नहीं हो रहा है– इच्छा भी नहीं होती। फिर पूर्वावस्था का स्मरण करके दग्ध हुआ जा रहा हूँ। निश्चय किया– मैं अब एक बार प्राणपण से चेष्टा करके देखूँगा। साध्यानुसार चेष्टा करके भी यदि मेरी मति विपरीत ओर जाती है, तो उसे प्रारब्ध ही मानकर ठाकुर की ओर ताकता रहूँगा। फिर यदि ठाकुर की इच्छा से ही मेरा प्रयास विफल होता है– तो पछताने की क्या बात? वरन् बुद्धि को उसी के मत के अनुसार चलने देकर निश्चिन्त रहते हुए आनन्द मनाऊँगा। गुरुदेव! कुछ समझ नहीं आ रहा है– दया करके सद्‌बुद्धि और शक्ति देकर मेरी रक्षा करो। तुम्हारी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता– जिस किसी भी अवस्था में डालकर यह मुझे स्पष्ट रूप से समझा दो। मैं निश्चिन्त होकर तुम्हारी ओर ताकते बैठा रहूँ। ठाकुर! अब मुझसे नहीं होता।

गुरुवाक्य के ऊपर विचार-बुद्धि

गुरुदेव मुझे पग-पग पर दिखा रहे हैं कि कोई भी अच्छी अवस्था अपने प्रयास से प्राप्त नहीं की जा सकती एवं प्रयास करके गुरुप्रदत्त किसी भी अवस्था की रक्षा नहीं कर सकते। यह सब बारम्बार देख-सुनकर एवं विचार-बुद्धि द्वारा समझकर भी अपने कर्तृत्व-अभिमान को बिल्कुल नहीं छोड़ पा रहा हूँ। नाना प्रकार की अवस्था में डालकर दयालु गुरुदेव मुझे मेरी वास्तविक प्रकृति दिखला रहे हैं। अब मेरी असंयत मन की मलिनता, स्वभाव की नीचता और कुत्सित् चरित्र के दोष ही मानो अस्तित्व की नींव लग रहे हैं। सब प्रवृत्तियाँ गुरुदेव की इच्छा के प्रतिकूल भाग रही हैं, प्रतिकार का कोई उपाय नहीं मिल रहा है– कहीं कोई किनारा नहीं दिख रहा है। इतने दिनों तक रात्रि के अन्धकार में, निर्जन कमरे में, सोते समय भी पैर के अँगूठे की ओर मानसिक रूप से दृष्टि रखा। एकाएक जागने से देखता– गर्दन झुकी हुई है एवं दृष्टि पैर की ओर है। आज मेरी वह अवस्था कहाँ गई? गुरुदेव के आदेश के ऊपर बुद्धि प्रयोग न करके जितने दिन बिना विचार किए अक्षरशः उसका प्रतिपालन करने का प्रयास किया– उनकी कृपा से बहुत सहज में ही सफल हुआ हूँ; लेकिन उनके आदेश का अथवा वाक्य का तात्पर्य क्या है, उसे अपनी बुद्धि के अनुसार जब समझ लिया कि सर्वदा पैर के अँगूठे की ओर दृष्टि रखने का उद्देश्य स्त्रियों का दर्शन नहीं करना है– इस प्रकार जब निश्चय कर लिया एवं गुरुवाक्य का अक्षरशः पालन करना और उसका अभिप्राय समझकर उसी के अनुसार कार्य करना, इन दोनों में कोई भेद नहीं है– इस प्रकार जब बोध

होने लगा, तभी मेरे भयंकर सर्वनाश का सूत्रपात हो गया। स्त्रियों का दर्शन नहीं करना ही उद्देश्य है; अतएव पैर के अँगूठे पर सब समय दृष्टि रखना अथवा मस्तक झुकाकर पैर की ओर देखते रहना, एक ही बात है– इस प्रकार सोचकर दृष्टि का थोड़ा विस्तार करने की इच्छा हुई। फिर धीरे-धीरे बढ़कर वह स्त्रियों के पैरों पर आ गई। अब उनके पैरों को देखने से शरीर को देखने की इच्छा होती है। अचानक मुख पर दृष्टि करने से छाती की कल्पना होने लगी। आजकल यही सब चिन्तन करते-करते मेरा दिन बीत रहा है; कुप्रवृत्ति के विरुद्ध किसी भी प्रकार का प्रयास मेरे लिए असम्भव हो गया है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से गुरुदेव के सहज वाक्य का सूक्ष्म अभिप्राय निकालकर मैंने भयंकर अनर्थ की सृष्टि कर ली है। गुरुदेव! अब मेरी क्या गति होगी?

अवसर देखकर सुविधा मिलते ही ठाकुर से कहा– आपने मुझसे सर्वदा पैर के अँगूठे पर दृष्टि रखकर चलने के लिए कहा था; मैंने सोचा, स्त्रियों को न देखना ही इसका तात्पर्य है; इसलिए सदा पैर के अँगूठे पर दृष्टि न रखकर कई बार पैर की ओर या भूमि पर दृष्टि रखकर चलता हूँ। फिर देह-मन स्वस्थ और शुद्ध रखने के लिए ही निर्दिष्ट समय पर एक परिमाण में स्वपाक आहार करने को कहा है, ऐसा सोचकर अयाचित रूप से कोई खाने की हल्की वस्तु देता है तो ले लेता हूँ– ठाकुर ने मेरी बात पूरी होने के पहले ही कहा– **"इसी से झंझट में पड़ गए। ठीक गुरुवाक्य के अनुसार ही चलना पड़ता है। गुरुवाक्य का अर्थ समझना क्या सहज है? गुरुवाक्य के अनुसार चलने से धीरे-धीरे उसका यथार्थ तात्पर्य समझ में आ जाता है।"** ठाकुर की बात सुनकर सोचा, गुरु-गीता में मैंने पढ़ा है– 'मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं', समस्त मन्त्र अथवा शक्ति का मूल गुरुवाक्य अर्थात् गुरु-शक्ति है। गुरुवाक्य मानकर चलने से साक्षात् रूप से गुरु के साथ अथवा गुरु-शक्ति के साथ सम्बन्ध रखना हो जाता है। अपने विचार, बुद्धि, कल्पना अथवा अनुमान द्वारा कोई तात्पर्य ठीक करके उसके अनुसार चलने से साक्षात् रूप से गुरु के साथ सम्बन्ध रखना नहीं होता। गुरुवाक्य ही सार है।

गायत्री का माहात्म्य: ठाकुर का दुर्दैव– आसन ही निरापद

प्रतिदिन प्रातः बूढ़ी गंगा में जाकर स्नान-तर्पण करता हूँ। फिर अपने आसन पर आकर हवन एवं पाठ करके नाम-जप और गायत्री का जप किया करता हूँ। ठाकुर ने गायत्री का जप क्रमशः बढ़ाने के लिए कहा है। गायत्री-जप से सम्भवतः ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं। सोचा, ब्रह्मतेज से मेरा क्या काम? ठाकुर से पूछा– श्वास-प्रश्वास में इष्ट-मन्त्र का जप करने से तो और भी अधिक उपकार होता है; केवल वही करने से नहीं हो जाता?

ठाकुर ने कहा– **"गायत्री का जप भी करना। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप से जो उपकार होता है, गायत्री के जप से भी वही होगा। ब्राह्मणों के लिए गायत्री-जप करना निश्चय ही कर्त्तव्य है।"** मैं गायत्री-जप की संख्या क्रमशः बढ़ाते जा रहा हूँ। दिन में 9 बजे से 11 बजे तक ठाकुर के पास बैठा करता हूँ। ठाकुर इस समय ग्रन्थसाहब और भागवत आदि का पाठ करते हैं। 11 बजे के बाद ठाकुर शौच के लिए जाते हैं। कुएँ के एक कलसी पानी से अर्ध-स्नान करके आसन पर आते हैं। तिलक लगाने के बाद दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले कमरे में जाकर सबके साथ भोजन करते हैं। भोजन के बाद ठाकुर का आसन आम के पेड़ के नीचे बिछा दिया जाता है। संध्या तक वे वहीं बैठा करते हैं। 1 से 3 बजे तक मैं महाभारत पाठ करके सुनाता हूँ। फिर 5 बजे तक का समय ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप करके बिताता हूँ। भिक्षा करने, भोजन बनाने और खाने में मुझे डेढ़ घण्टे लगते हैं। ठाकुर ने कई बार कहा है– **'साधना के लिए रात्रि ही श्रेष्ठ समय है।'** इसके बाद भी बहुत प्रयास करके मैं वह नहीं कर सका। श्रीधर के उपद्रव करने से ही रात्रि में जागरण होता है। तब बाध्य होकर नाम-जप करता हूँ, अन्यथा नहीं होता। आज समाधि की अवस्था में ठाकुर ने एक संकट की बात कही। सुनकर हम लोगों का हृदय काँप उठा– भाग्य में क्या है, पता नहीं। आगामी 23 जून तक ठाकुर का प्राणनाशक दुर्दैव है। बचने की सम्भावना बहुत ही कम है। महापुरुषों ने ठाकुर को सर्वदा आसन पर बैठने के लिए कहा है। आसन पर ठाकुर के रहने से महात्मा लोग उनकी देह की सब प्रकार से रक्षा करने का प्रयास कर सकेंगे। आसन पर ठाकुर के न रहने से वे कुछ नहीं कर पाएँगे। ठाकुर ने कहा– **"प्रकृति की गति से जो होता है, हो जाए, इस विषय में मैं कोई आकांक्षा नहीं रखता।"** ठाकुर की बात सुनने के बाद से समय बड़े क्लेश में बीत रहा है। ठाकुर के पास दिन-रात रहूँ, यही प्रयास करने का निश्चय किया। रात्रि में प्रायः 11 बजे तक अनेक गुरुभाई ठाकुर के पास रहते हैं। स्थानाभाव के कारण योगजीवन पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर के पास सोते हैं। अभी तो ठाकुर का शरीर अच्छा स्वस्थ ही देख रहा हूँ।

ठाकुर के वैषम्य भाव की कल्पना से पण्डित जी का आश्रम त्याग

कुछ दिन पहले श्रीधर और पण्डित जी को ज्वर हो गया था। ठाकुर प्रतिदिन उन लोगों की बात पूछते थे। एक दिन श्रीधर तीव्र ज्वर के कारण क्लेशसूचक शब्द कर रहे हैं, यह सुनकर ठाकुर उसका हाथ देखकर आ गए; पण्डित जी के ज्वर की एक जैसी अवस्था है, कोई परिवर्तन नहीं हुआ– जानने के बाद भी उनसे कुछ नहीं पूछे। इससे पण्डित जी के अभिमान में बड़ी ठेस लगी।

'ठाकुर के व्यवहार में विषमता? इनके साथ अब कभी नहीं रहूँगा'— निश्चय करके ठीक होते ही वे आश्रम छोड़कर चले गए। विश्वास जी भी आश्रम वास का क्लेश, बार-बार अभिमान में आघात एवं ठाकुर का उस प्रकार व्यवहार सहन नहीं कर पाने के कारण पण्डित जी के पीछे-पीछे चले गए। सुना है, वे लोग रास्ते में नाना प्रकार के दुर्भोग भोगकर इस समय आकाशगंगा पहाड़ पर रघुबर बाबाजी के आश्रम में पहुँच गए हैं। सम्भवतः वहीं पर रहेंगे। बाबाजी बहुत ही सेवा-परायण हैं! कोई कष्ट नहीं होगा। पहाड़ पर रहकर उन लोगों के साधन-भजन करने की सब प्रकार की व्यवस्था बाबाजी कर देंगे, सभी ने ऐसा कहा।

उनके सम्बन्ध में ठाकुर ने कहा— **"वे लोग यदि साथ छोड़कर किसी की सेवा लिए बिना उदासीन भाव से रहें, साधन-भजन करें, तब तो इस बार एक अच्छी अवस्था प्राप्त करेंगे। और यदि दोनों एक साथ रहते है एवं अन्य की सेवा ग्रहण करते हैं, तो वह प्राप्त नहीं होगी।"**

साधना करोः गुरु पर निर्भरता बहुत दूर की बात है

7 जून, मंगलवार। मध्याह्न में भोजन के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे गए। आज बड़ी गर्मी है। महाभारत पाठ के बाद पंखा लेकर ठाकुर को हवा करने लगा। ठाकुर कुछ क्षण ध्यानस्थ रहकर फिर स्वयं-ही मुझसे कहने लगे— **"लोगों के कोलाहल से साधना नहीं होती कहकर तुम कुटिया बनाना चाह रहे थे। अब देखो, आश्रम में अच्छा एकान्त हो गया है— दिन-रात अब खूब साधना करो। साधना की बातें किसी से भी नहीं कहना। किसी की साधन-विरोधी बातें मत सुनना। अन्य ओर न देखकर बड़ी दृढ़ता के साथ स्वयं अपना काम करते जाओ। अभी से सहनशीलता का अच्छे-से अभ्यास कर लो। बड़ा उपकार होगा। भोजन केवल एक बार करना। भोजन की मात्रा और समय सर्वदा ठीक रखना। ये दोनों ठीक रहने से कोई रोग नहीं होगा। एक सब्जी और भात खाने का अभ्यास हो जाने पर फिर चावल और सब्जी दोनों को एक साथ उबालकर खाना। उसका अभ्यास हो जाए, तो नमक एवं पानी मिलाकर भात खाना। धीरे-धीरे नमक त्याग देना। फिर पानी के साथ रोटी खा सकते हो। आहार के विषय में खूब संयत रहना। अधिकांश मानसिक विकार, चंचलता और अस्थिरता शरीर के कारण होते हैं। जिस प्रकार का भोजन किया जाता है, रक्त उसी प्रकार का हो जाता है। मन भी उसी के अनुरूप होने लगता है। केवल पानी मिलाकर भात खाने का अभ्यास**

हो जाने पर देखना शरीर व मन कैसा स्वस्थ रहता है! भोजन की मात्रा और समय ठीक रखना सहज नहीं है। समय ठीक रहने पर भी मात्रा में गड़बड़ी हो जाती है। तीर्थ-भ्रमण के समय कहाँ क्या खाद्य जुटता है, कहा नहीं जा सकता। अधिक मिलने पर परिमाण के अनुसार तो ले सकते हैं, कम मिलने पर ही समस्या है। तीर्थ-भ्रमण जमात के साथ मिलकर करना ही अच्छा है। रास्ते में बहुत प्रलोभन और डर भी है। जमात में रहने से उन सब उत्पातों से रक्षा हो जाती है। जमात में जो सब साधु रहते हैं, उनके साधन-भजन, आचार-व्यवहार के विरुद्ध कुछ कहना नहीं चाहिए। जो भजन-स्थल में अशान्ति फैलाते हैं, वे उस स्थान पर टिक नहीं पाते; उन्हें हटना पड़ता है। साधना न करके केवल 'गुरु करेंगे, गुरु करेंगे' कहने से कुछ नहीं होगा। गुरु पर विश्वास करे, ऐसा एक भी व्यक्ति इस साधन के भीतर अभी तक नहीं हुआ। गुरु पर विश्वास करना क्या सहज है? जो गुरु पर विश्वास करते हैं, वे इच्छा मात्र से सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर सकते हैं। जब तक अहंकार है, पुरुषकार है, तब तक 'गुरु करेंगे' कहने से नहीं चलेगा। परिश्रम करो, परिश्रम किए बिना कुछ नहीं होगा। कोई साध्य के अनुसार परिश्रम करे, तो गुरु उसकी सहायता करते हैं। गुरुवाक्य ही गुरु है। गुरु जो कह दें, वह करने से ही गुरु की कृपा प्राप्त कर सकते हैं।"

"श्वास-प्रश्वास में नाम जपो, फिर तुम लोगों को मुक्ति देने का दायित्व महात्माओं का है। उनके आदेश के अनुसार यदि कुछ न करो, तो क्या होगा? खूब साधना करो, श्वास-प्रश्वास में सदा नाम-जप करो, सब प्राप्त होगा, कुछ भी अभाव नहीं रहेगा।"

ठाकुर के देहत्याग के बाद किस प्रकार चलूँगा

विविध प्रश्न और उपदेश

8 से 10 जून। आज मध्याह्न में भोजन के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे नहीं गए। पूर्व दिशा के कमरे में अपने आसन पर ही रहे। महाभारत पाठ के बाद मूसलधार वर्षा होने लगी। एकान्त पाकर ठाकुर से पूछा– आप कब देह छोड़ देंगे, कुछ भी तो निश्चित नहीं है। उसके बाद क्या करूँगा? तब तो बिल्कुल अकेला पड़ जाऊँगा; क्या होगा, पता नहीं। उस दिन रात्रि के समय आपने कहा– **'कामभाव रहने से विवाह करके शीघ्र भोग समाप्त कर लेना अच्छा है।'** पहले आपने मुझसे तीन बार कहा है– **'तुम्हें अब गृहस्थी नहीं करनी होगी।'**

आपका वह कथन क्या असत्य होगा?

ठाकुर– **क्यों, तुम्हारी क्या विवाह करने की इच्छा होती है?**

मैं– वह बात सुनने से ही डर लगता है। मेरी वैसी बिल्कुल इच्छा नहीं है– फिर भी कामभाव जब विद्यमान है, तब सामयिक उत्तेजना से कु-इच्छा बिल्कुल ही नहीं होती– ऐसी बात भी नहीं है; किन्तु स्त्रीसंग के प्रति मेरी बड़ी अश्रद्धा है।

ठाकुर ने कहा– **"नहीं, तुम्हें अब घर-गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। यह सब सामयिक उत्तेजना या इच्छा कुछ नहीं है; सब चली जाएँगी। स्त्रीसंग में अश्रद्धा होने से तो कोई बात ही नहीं है। फिर मेरी देह छूटने से क्या होता है? जो कहा गया है, वह करने से कोई अभाव नहीं रहेगा। उन बातों को स्मरण रखने से ही हो जाएगा। तीन वर्ष तक पानी मिला हुआ भात खाने का अभ्यास हो जाने पर केवल सब्जी उबालकर खाना। ब्रह्मचर्य में सत्य, अहिंसा और वीर्यधारण मुख्य साधन है। खूब नाम-जप करना। छः वर्ष ब्रह्मचर्य हो जाने से मन की गति किस ओर जाती है, समझ जाओगे। उस समय यदि विवाह करने की बिल्कुल इच्छा न रहे, तो गेरुआ वस्त्र और कौपीन धारण करके तीर्थ-भ्रमण करना। जगन्नाथ पुरी होकर क्रमशः चारों धाम भ्रमण करना। किसी से पैसे नहीं माँगना। इस विषय में बहुत सावधान रहना। घाट पर जाकर पार कराने के लिए नाविक से प्रार्थना करना; नहीं कराने पर वहीं बैठ जाना। तीर्थ-भ्रमण की यदि वैसी इच्छा न हो, तो जहाँ तक कर सकते हो वहाँ तक करना। तीर्थ में जाकर संकल्प करके तुम श्राद्ध-तर्पणादि कुछ भी नहीं करना। केवल नित्य-क्रिया करना। विग्रह-दर्शन, साधु-संग, स्नानादि ही करना। जब तक हो, होम का त्याग नहीं करना। अन्य माला रखो या न रखो, रुद्राक्ष की माला सर्वदा धारण करना। जनेऊ का त्याग नहीं करना। तीर्थ-भ्रमण हो जाए, तब एक स्थान पर आसन लगाकर बैठ जाना। काशी ही अच्छा स्थान है। ब्रह्मचर्य में जिस प्रकार सत्य, अहिंसा और वीर्यधारण मुख्य साधन है, संन्यास में उसी प्रकार वासना का त्याग और सर्वदा भगवान् का स्मरण करना उद्देश्य है। वासना का त्याग कर पाओ, तो इस बार पार कर लोगे। निन्दा-प्रशंसा जब मन को स्पर्श नहीं करेंगे, तब समझना वासना नष्ट हो गई। इन बातों का ध्यान रखकर चलना– फिर कोई विघ्न नहीं आएगा।"**

मैंने पूछा– सर्वदा ही क्या भिक्षा करके खाना होगा?

ठाकुर– **भिक्षा की कोई बात नहीं है। अयाचित रूप से जो मिलेगा,**

वही लेना। शारीरिक परिश्रम के लिए भिक्षा है। एक जगह बैठ जाने पर जिसने जो दिया, वही ग्रहण करना; उसनें दोष नहीं है। एक बात का स्मरण रखना– कामिनी-काँचन के विषय में सब समय सावधान रहना। आत्मीय हो या दूसरा ही हो, स्त्रियों को एकदम पास में आने मत देना। फिर अपने पास पैसे कभी नहीं रखना। इन कुछ बातों का विशेष रूप से स्मरण रखना। अर्थ और स्त्री बड़े ही भयानक हैं।

प्रश्न– स्त्रियों पर आसक्ति और पैसों पर आसक्ति– इनमें कौन-सा अनिष्टकर है?

ठाकुर ने थोड़ा रुककर कहा– **"आसक्ति सब स्थानों में अनिष्टकर है। फिर भी स्त्रियों पर आसक्ति की अपेक्षा पैसों पर आसक्ति अधिक अनिष्टकर है। सम्भोग से कई बार स्त्री पर आसक्ति कम हो जाती है। ऐसे ही सहज में कट सकती है, किन्तु पैसों पर आसक्ति उत्पन्न होने से कटना सहज नहीं है। पैसा कितना ही क्यों न पाओ, तृप्ति नहीं होती। जितना पाओगे, उतना ही और पाने की इच्छा होती है।"**

ब्रह्मचर्य की सफलता कब समझूँगा: तीर्थ-प्रयोजन कब तक ठाकुर के देहान्त के बाद किस प्रकार चलने से उनके दर्शन मिलेंगे

11 जून, शनिवार। आज भी ठाकुर मध्याह्न में भोजन के बाद पूर्व ओर के कमरे में अपने आसन पर ही रहे। मध्याह्न के समय ठाकुर के पास कोई नहीं रहता। कभी-कभी शान्ति, कुतु, नानीजी और गेण्डारिया की महिलाएँ आकर कुछ समय बैठकर चली जाती हैं। ठाकुर से पूछा– मेरा ब्रह्मचर्य सफल हुआ, कब समझूँगा।

ठाकुर– **स्त्रीसंग के विषय में जब बिल्कुल भी कल्पना न आए, स्त्रीसंग जब अत्यन्त घृणित कार्य लगे, तब ब्रह्मचर्य ठीक हुआ समझना।**

यह अवस्था यदि मुझे 10 वर्ष पहले ही प्राप्त हो जाती है, तो उस समय मैं संन्यास ग्रहण कर सकता हूँ या नहीं, ठाकुर से पूछने पर उन्होंने कहा– **"हाँ, वह ले सकते हो।"** मैंने कहा– भिक्षा में सभी जगह अरवा चावल ही मिलेगा, कहा नहीं जा सकता। कोई उसना चावल दे, तो ग्रहण कर सकते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"भिक्षान्न में दोष नहीं है। वह सर्वदा पवित्र है। उसना चावल ले लेना।"** मैंने पूछा– सर्वदा होम करने के लिए आपने कहा है; लेकिन कभी ऐसा भी तो हो सकता है, होम करने की व्यवस्था न हो; होम का घी, बेल पत्ता कुछ भी यदि न मिले?

ठाकुर ने कहा– **"होम करने की व्यवस्था नहीं होने से क्या करोगे? तब नहीं करने से कोई हानि नहीं होगी। घी, बेल पत्ता नहीं जुटता– तो मत जुटे! कोई भी फल, फूल, पत्ते या खाने की पवित्र वस्तु मन्त्रपूत करके अग्नि में आहुति देना। अग्नि प्रज्वलित करके कोई भी वस्तु द्वारा होम करना। प्रतिदिन अग्नि-सेवा होनी चाहिए।"**

मैंने पूछा– तीर्थ-भ्रमण से लाभ क्या है? तीर्थ-भ्रमण का प्रयोजन पूरा हुआ, कब समझूँगा?

ठाकुर ने कहा– **"जब तीर्थ-भ्रमण की कोई इच्छा ही नहीं रहेगी– जब स्वयं का हृदय ही पवित्र तीर्थ जैसा लगेगा, तब फिर तीर्थ-भ्रमण का प्रयोजन नहीं है। तब एक स्थान पर बैठ जाने से ही हो जाएगा।"**

मैं– तीर्थ-भ्रमण के बाद काशी में रहने को कहा है, यदि पहाड़ पर रहने की इच्छा हो?

ठाकुर– **तब तो बहुत अच्छा होगा। तुम्हारी जैसी आयु में यदि मुझे यह साधन मिलता, तो क्या मैं इन स्थानों पर रहता? तब तो अवश्य ही पहाड़ों में जाकर रहता। अब तो वह सम्भव नहीं है। पहाड़ में यदि रहो, तो फिर ग्रीष्मकाल में बदरिकाश्रम और शीतकाल में ऋषिकेश में रहना। उन स्थानों पर भोजन की कोई असुविधा नहीं है। पहाड़ में ही प्रचुर परिमाण में तुम्हारा भोजन जुट जाएगा। कई प्रकार के अच्छे फल हैं– उसे खाकर सहज में रहा जा सकता है। उसके अतिरिक्त बौद्ध लोगों के कई मठ हैं। वे लोग बहुत ही दयालु हैं; अच्छी अतिथि-सेवा करते हैं। उन सब स्थानों पर रहने की कोई असुविधा नहीं है।**

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर कहा– कई दिनों से एक बात आपसे पूछने की बड़ी इच्छा हो रही है, किन्तु साहस नहीं कर पाता।

ठाकुर ने मेरी बात पूरी होने के पहले ही कहा– **"क्यों? कहो न, कहो।"**

मैंने कहा– इसके बाद फिर किस प्रकार चलने से आपको देख पाऊँगा, किस प्रकार चलने से आपका अभाव मुझे भोगना नहीं पड़ेगा, यह सब जानने की इच्छा होती है। उस समय क्या करूँगा, सोच भी नहीं पाता।

ठाकुर– **देह छूट भी गई तो क्या होता है? जो तुम्हें कहा गया है, वह करना; फिर कोई अभाव नहीं रहेगा। उस समय तो सर्वदा जहाँ-तहाँ प्रायः बारम्बार देख सकोगे।**

ठाकुर से बड़ी व्याकुलता के साथ कहा– मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता। मुक्ति भी नहीं चाहता। मुक्ति क्या है, वह मैं नहीं जानता। उसके लिए मेरी कोई

व्यग्रता भी नहीं है। जिससे आपका अभाव मुझे सहना न पड़े, यही चाहता हूँ। आपके आदेशानुसार चल सकूँगा या नहीं, पता नहीं– उसके लिए प्रयास अवश्य करूँगा। जान-बूझकर या आलस्यवश आदेशानुसार न चलूँ, तो फिर जितने प्रकार का दण्ड आप देना चाहें दीजिए; परन्तु ठीक प्रकार से चल पाऊँ या न पाऊँ– यदि प्रयास करता हूँ, तब तो आप मुझ पर दया करेंगे?

ठाकुर ने कहा– **"हाँ, ठीक है। चल पाओ या न चल पाओ, प्रयास करने से ही हो जाएगा। फिर कोई अभाव नहीं रहेगा, अवश्य जान लो।"**

मैं– सुना है, मायिक रूप भी कभी देखे जाते हैं– तो फिर वास्तविक रूप और मायिक रूप को कैसे समझूँगा?

ठाकुर ने कहा– **"जब जिसका दर्शन होगा, तब उसका बड़ा सम्मान करना और भक्ति करना। दर्शन के समय वैसा कुछ भी मत सोचना। खूब भक्ति करना, किसी प्रकार का सन्देह मन में मत लाना। फिर किसी के समक्ष कोई प्रार्थना नहीं करना। स्वतः ही जो जैसा करते जाते हैं– वही अच्छा है। प्रार्थना करने से अनिष्ट हुआ करता है। इस बात का सदा स्मरण रखना।"**

मेरे पाप से ठाकुर की पीठ पर बेत का प्रहार

19 जून, रविवार तक। दुर्भाग्य से आज प्रातः बूढ़ी गंगा में स्नान नहीं हुआ। लगभग 8 बजे सनातन बाबू के बगीचे में स्नान करने गया। पक्के घाट के ऊपर कपड़े रखकर सीधे गले तक पानी में उतर गया। डुबकी लगाकर जब सिर उठाया, छोटे तालाब के दूसरे छोर पर परम सुन्दरी तीन स्त्रियाँ अचानक दिखाई पड़ीं। सभी एक ही आयु की नवयुवती हैं। उन्हें देखते ही मेरी विचित्र दशा हो गई। विस्मित होकर उस समय आँखें फेरना भूल गया। युवतियाँ चंचल भाव से अंग संचालनपूर्वक कपड़े बदलते हुए बार-बार मुझे देखने लगीं। उनके असाधारण रूप लावण्य और अंग-प्रत्यंग की सुन्दरता को देखकर मैं क्षणभर में ही मुग्ध हो गया। मेरा हृदय धड़कने लगा। मैं भटके हुए मन को बड़े कष्ट से संयत करके तीव्र गति से चलकर आश्रम में आ गया। नित्य-क्रिया सम्पन्न करके लगभग 10 बजे ठाकुर के कमरे में जाकर बैठ गया। ठाकुर ध्यानस्थ थे, धीरे-धीरे अपने-आप कहने लगे– **'गया के पहाड़ के पास चार ब्रह्मचारी हैं, सभी पहाड़ पर चढ़ रहे हैं। दृष्टि पैर के अँगूठे की ओर है। पीछे एक व्यक्ति हाथ में बेत लेकर है। ब्रह्मचारियों की दृष्टि पैर के अँगूठे से हटते ही तुरन्त बेत पड़ती है। पूछने पर कहा, वे चारों सनकादि ऋषि हैं, योग-पथ के प्रथम प्रवर्तक;**

योग-शिक्षा देते हैं। जो शिक्षा देते हैं, स्वयं न करें, तो बेत खाते हैं; शिष्य के न करने से भी बेत खाते हैं। पीछे से नारद बेत मारते हैं। गुरुगिरि कितनी भयानक है! बाप रे! मैं किसी का गुरु नहीं हूँ! परमहंसजी ही गुरु हैं। उनको फिर कौन बेत मारेगा? वे तो ब्रह्म से युक्त, स्वयं ब्रह्म हैं। वे ही सब कर रहे हैं, मैं कुछ नहीं करता। वे ही सब हैं। वे सब देख रहे हैं; कोई कुछ भी करे, सब देख रहे हैं। अच्छा-बुरा सब देख रहे हैं। धोखा देना सम्भव नहीं है। गुरु सब जानते हैं। सावधान!'

ठाकुर की बात सुनकर चुप रहा। लज्जा व भय से बड़ा उद्विग्न होने लगा। ध्यान भंग होने के बाद ठाकुर से पूछा– शिष्य के अपराध से क्या गुरु को बेत खाना पड़ता है? ठाकुर ने मेरी बात का कोई उत्तर न देकर इंगित करके अपनी पीठ देखने को कहा एवं ममतापूर्ण स्निग्ध दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे। मैं बैठे-बैठे ही पास से एक बार देखा; जो देखा– मुझसे रहा नहीं गया। ठाकुर ने मुझे कोई दण्ड नहीं दिया; एक शब्द भी नहीं कहा। यहाँ तक कि मेरे भयंकर अपराध के बारे में जानते है, इसका थोड़ा भी आभास नहीं होने दिया। शिष्य के अपराध का तीव्र भोग गुरु ने ग्रहण करके चुपचाप भुगत लिया, शिष्य के लिए यह कैसा दण्ड है– भुक्तभोगी ही समझ सकता है। मैंने सारा दिन यन्त्रणा से छटपटाते हुए बिताया।

शिष्य को अभय-दान: तुम्हारे बदले मैं भोगूँगा

ठाकुर की अद्‌भुत दया और असाधारण सहानुभूति के फलस्वरूप एक प्रतिष्ठित सम्पन्न गुरुभाई में अद्‌भुत परिवर्तन देखकर चकित हो गया। गुरुभाई सरल स्वभाव के बड़े ही निर्भीक एवं हठी हैं। एक दिन मन में कष्ट होने से अत्यन्त उत्तेजित अवस्था में आकर उन्होंने अभिमानपूर्वक ठाकुर से सबके सामने कहा– 'गोसाँईजी! आपका यह साधन वापस ले लीजिए। मैं यह साधन नहीं कर सकूँगा।'

ठाकुर ने थोड़ा मुस्कुराते हुए कहा– **"क्यों, क्या हुआ?"**

गुरुभाई– 'होगा क्या महाराज? यह साधन क्या हम कभी कर सकते हैं? हमारे लड़के-लड़कियाँ हैं, संसार है, समाज है– सब बड़े लोगों के साथ सद्‌भाव, आत्मीयता रखकर चलना पड़ता है। हम क्या इस साधन के नियम का पालन करके चल सकते हैं?'

ठाकुर– **केवल मांस, मदिरा और उच्छिष्ट खाना ही तो मना है। इसके सिवा बड़े नियम क्या हैं? मांस-मदिरा के बिना नहीं रह सकते?**

गुरुभाई– 'महाराज! मांस-मदिरा का चिरकाल से अभ्यस्त हूँ। वह सब नहीं खाने से फिर खाऊँगा क्या? आजकल सभ्य लोगों के साथ शिष्टाचार के लिए वह

सब खाना पड़ता है। हमारा समाज है, घर-घर में सदा निमन्त्रण खाना पड़ता है। घर में ही तो उच्छिष्ट का विचार नहीं चलता, समाज में उच्छिष्ट-विचार का पालन करना बिल्कुल ही असम्भव है।

ठाकुर– **अच्छा, थोड़ा प्रयास करना; उसके बाद भी नहीं हो पाता, तो और क्या करोगे?**

गुरुभाई– 'हाँ जी, यह बात मुझसे न कहें। मैं आपसे झूठ नहीं कह सकता। उस विषय में मेरी कोई इच्छा ही नहीं होती। करूँगा कहाँ से?'

ठाकुर– **ठीक है, नाम-जप तो कर सकते हो? तो भी हो जाएगा।**

गुरुभाई– 'गोसाँईजी! जप क्या करूँगा? उसका तो स्मरण ही नहीं रहता।'

ठाकुर– **अच्छा, एक काम करना। उस समय मेरा स्मरण करना। फिर यह जान लो, तुम जो कुछ भी अपराध करोगे, उसका सारा दण्ड मैं भोगूँगा। तुम्हारे अपराध के लिए तुमको कुछ भोगना नहीं पड़ेगा।**

ठाकुर गद्‌गद स्वर में ये कुछ बातें कहकर अश्रुपूर्ण नयनों से उनकी ओर स्नेहपूर्वक देखते रहे। उस समय गुरुभाई की अचानक विचित्र दशा हो गई। उनका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। वे चीखकर ठाकुर के पैरों पर गिर पड़े। फिर उन्होंने रोते-रोते कहा– 'प्रभु! मेरे अपराध का दण्ड आप भोगेंगे? मेरा प्राण भले ही चला जाए– आज से मैं आपके आदेश का कभी उल्लंघन नहीं करूँगा।' यह कहकर गुरुभाई व्याकुल भाव से रोते-रोते चले गए। अब देख रहा हूँ, उनमें अद्‌भुत परिवर्तन आ गया है। गुरुभाइयों के साथ ठाकुर के विषय में बातचीत करते समय वे आँसुओं से भीग जाते हैं एवं खेद प्रकट करते हुए प्रायः कहते हैं, ठाकुर ने छोड़े हुए साँड़ की भाँति मुझे छूट दे रखी है– फिर मेरे अपराध का सब दण्ड वे भोग रहे हैं; मेरे प्रति क्या उनकी दया की कोई सीमा है?

आँधी-पानी में आसन स्थिर

मध्याह्न में भोजन करने के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गए। कुछ क्षण बाद चारों ओर अन्धकार छा गया। आँधी-तूफान के साथ मूसलधार वर्षा होने लगी। ठाकुर ध्यानस्थ हैं। श्रीधर और अश्विनी को लेकर ठाकुर के दोनों ओर एवं ऊपर छाता पकड़ा रहा। किसी प्रकार से भी ठाकुर को वर्षा से बचा नहीं पाए। हम लोग भी भीग गए। लगभग एक घण्टे बाद ठाकुर आसन से उठे। वे पानी की धारा में कीचड़ पर आसन उलटाकर डाल दिए एवं पैर से उसको रगड़ने लगे। उसके बाद पूर्व ओर के कमरे में गए और शरीर पोंछकर कपड़े बदलने के बाद अपने आसन पर बैठ गए। मैंने कहा– वर्षा आरम्भ होने पर कमरे में आने से इस

प्रकार भीगना नहीं पड़ता। मृगचर्म का आसन भी नष्ट नहीं होता। ठाकुर ने कहा– **"आसन पर बैठने से फिर क्या सब समय उठा जा सकता है? कितनी अद्भुत-अद्भुत अवस्थाएँ आती हैं। कभी-कभी नये-नये तत्त्व प्रकाशित होते हैं। उस समय आसन से उठने पर वह अवस्था खोनी पड़ती है। इसलिए मृत्यु को स्वीकार करके भी महात्मा लोग आसन नहीं छोड़ते– आसन पर स्थिर रहते हैं।"**

कृष्णवर्ण के हिरण के उत्कृष्ट चर्मासन को ठाकुर ने आज नष्ट कर डाला– बड़ा दुःख हुआ। उसे बूढ़ी गंगा में डालने के लिए कहा। ठाकुर आज बहुत समय तक पानी में भीगे। आज दिनभर रह-रहकर पानी गिरा।

ठाकुर के भजन-स्थल, आम के वृक्ष से मधु-क्षरण

आज आकाश अच्छा स्वच्छ है, थोड़े भी बादल नहीं हैं, अच्छी धूप है। मध्याह्न में भोजन करने के बाद ठाकुर आम के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गए। महाभारत पाठ सुनने के बाद लगभग 2 बजे ठाकुर ने कहा– **"आम के पेड़ से आज मधु क्षरण हो रहा है-- देख रहे हो?"** मैं मस्तक झुकाकर रहता हूँ, इसलिए उस ओर दृष्टि नहीं गई। ठाकुर के कहते ही थोड़ा माथा उठाकर देखा, पेड से लगातार ओस की बूँद की भाँति कुछ गिर रहा है। पेड़ के नीचे सूखे पत्ते और तुलसी के पेड़ आदि तैलयुक्त हो गए हैं। मन्दिर के पूर्व एवं उत्तर की ओर के चबूतरे भी ओस की बूँद की भाँति मधु टपकने से भीग गए हैं। उस पर बहुत-से चींटें, चींटियाँ आदि आकर चिपक जा रहे हैं। पूरे पेड़ के पत्ते-पत्ते पर असंख्य मधु-मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। एक प्रकार की सुगन्ध से चित्त प्रफुल्लित हुआ जा रहा है। ठाकुर ने पुनः कहा– **"क्यों, मधु है, समझ में आ रहा है?"** इसी समय श्रीधर और अश्विनी आ पहुँचे; उन्होंने दो-तीन सूखे पत्ते को चाटते-चाटते कहा– 'वाह, यह तो बड़ा मीठा है; मधु है। मुझे वैसा विश्वास नहीं हुआ। मैंने वृक्ष के नीचे की शाखा के दो पत्ते तोड़े; ठाकुर ने सिहरते हुए कहा– **"ओह, क्या करते हो? इस प्रकार क्या पत्ता तोड़ा जाता है?"** मैंने दोनों पत्ते हाथ में लेकर देखा– ठीक जैसे तरल चिपचिपा पदार्थ लगा है। उसको चाटकर देखा, बहुत मीठा है। तब आश्रम के 10-12 लोगों को उन पत्तों के टुकड़े कर-करके दिया। सभी लोग आम के पत्ते पर मधु का स्वाद पाकर चकित हो गए।

मैंने ठाकुर से पूछा– आम के पेड़ से क्या इस प्रकार मधु गिरता है?

ठाकुर ने कहा– **"केवल आम का पेड़ क्यों? निष्ठापूर्वक बहुत दिनों तक जिन वृक्षों के नीचे होम, याग-यज्ञ, साधन-भजन, तपस्या होती है;**

अथवा जिन सब वृक्षों के नीचे महात्मा-महापुरुषों का आसन रहता है, सब वृक्ष मधुमय हो जाते हैं। बीच-बीच में उन वृक्षों से मधु गिरता है। खूब भक्ति के साथ पूजा करने से पानी भी मधुमय हो जाता है। शान्तिपुर में एक बार गंगाजल पर भौंरे भनभनाते देखकर सन्देह हुआ। थोड़ा जल पीकर देखा– मीठा है, मधु की सुगन्ध है। मैंने बहुत प्राचीन नीम व इमली का पेड़ भी देखा, उससे झरने के समान मधु गिर रहा है; कमण्डलु भरकर पिया। फिर खोज करने पर पता चला– उन वृक्षों के नीचे किसी सिद्ध पुरुष का अथवा महापुरुष का आसन था।" यह कहकर ठाकुर ने एक वेद का वाक्य कहा–

ॐमधुवाताऋतायते, मधु क्षरन्तु सिन्धवः।। माध्वीर्ण सन्त्वोषधिः।।
ॐमधुनक्तमुतोशसो मधुमत् पार्थिवं रजः।। मधुद्यौरस्तु नः पिता।।
ॐमधुमान्नो वनस्पतिर्म्मधुमां अस्तु सूर्यः।। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।
ॐमधु, ॐमधु, ॐमधु।।

(वायु मधु वहन करे। सब समुद्र मधु क्षरण करें। हमारे धानादि औषधियाँ मधुपूर्ण फसल प्रदान करें। सब रात्रि मधुरूप में हो। सब प्रातः मधुयुक्त हो। पृथ्वी की सारी धूल मधुपूर्ण हो। आकाश मधुमय हो। हमारे पितृगण मधुयुक्त हों। हमारी समस्त वनस्पतियाँ मधुफल पैदा करें। सूर्य मधुमय हो। हमारी गायें मधुमय दूध देने वाली हों।)

बहुत दिनों से सुनता आ रहा हूँ, आसन वाले वृक्ष पर अनेक देवी-देवताओं के चित्र उभरते हैं। सोचा था, वह सब भावुकता की बातें हैं; आज ठाकुर के पास खड़े होकर वृक्ष को अच्छे-से देखा। अच्छा गोलाकार मोटा प्राचीन वृक्ष आठ-नौ फीट ऊपर की ओर सीधा उठकर चारों ओर समान आयतन में फैला हुआ है। उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ, पत्ते-पत्तियाँ आदि सब देखने में बड़े सुन्दर, लहराते हुए और हरे-भरे हैं। वृक्ष की छोटी-बड़ी नाना प्रकार की छालें निकलने से जगह-जगह ॐकार एवं विविध प्रकार की मूर्तियाँ बन गई हैं। ग्रीष्मकाल की भरी-दोपहरी में भी वृक्ष-लता सूखते नहीं; प्रातः से संध्या तक शीतल छाया रहती है। थोड़ा बैठने से ही शरीर शीतल हो जाता है, मन प्रफुल्लित हो उठता है। आम के वृक्ष से संलग्न पूर्व की ओर ठाकुर का आसन है। उत्तर और दक्षिण दोनों ओर नयन को सुख प्रदान करने वाले सुन्दर-सुन्दर तुलसी के पेड़ हैं। सामने धूनी का कुण्ड है। आसन से 25-30 फीट की दूरी पर दक्षिण की ओर स्वच्छ सरोवर रहने से अच्छी हवा आती है। पूर्व दिशा के आँगन के पूर्व की ओर काँटेदार छोटे-छोटे पेड़ और लताओं की बेढ़ है; देखने में बड़ा ही मनोरम है। दिनभर यहाँ सुनसान रहता है, पक्षियों के कलरव के सिवा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता। अपराह्न में गुरुभाइयों एवं दर्शनार्थियों के आने से यहाँ ठाकुर के साथ मेल-मिलाप और धर्म-प्रसंग होते हैं।

जीवन में कभी मधुमय वृक्ष नहीं देखा; पेड़ के पत्तों को मानो पानी से धो डाले हैं– लगातार उससे कोहरे की भाँति मधु गिर रहा है। अद्‌भुत दृश्य है!

कु-स्वप्न: उसका कारण

21 जून, मंगलवार। कल रात्रि मेरी भयंकर रूप से बीती। कु-स्वप्न ने मुझे दो बार सताया और दूषित किया। शरीर आज निस्तेज एवं अवसन्न है– मन भी विषाद एवं उद्वेग से भर गया है। किसी प्रकार स्नान-तर्पण व नित्य-क्रिया सम्पन्न की। ठाकुर के पास जाने की इच्छा नहीं हुई। सिर की पीड़ा से बहुत बेचैन हो गया। आसन पर बैठकर सोचने लगा– इस समय के भीतर ऐसा क्या अनियम किया है, जिसके फलस्वरूप मेरी ऐसी दुर्दशा हो सकती है? मीठा खाना मेरे लिए मना है, फिर भी परसों के दिन लोभ में पड़कर कुछ आम और पका कटहल खाया था। कल आँधी-पानी के कारण समय का ठीक पता नहीं चल पाने से रात्रि में खाना बनाकर खाया। फिर इसके अतिरिक्त अज्ञात में और एक ज्यादती भी हुई है– ठाकुर का दर्शन करने कल अपराह्न में 3 बजे प्रतिष्ठित परिवार की कुछ सुशिक्षित महिलाएँ आश्रम में आई थीं। उनमें से दो-तीन मेरी पुरानी परिचित एवं घनिष्ठ थीं। उन दिनों की एक घनिष्ठ महिला ने कुछ दिन पहले 'मैंने कठोर वैराग्य के पथ का अवलम्बन कर लिया है; संसार-सुख को जलांजलि देकर संन्यासी हो गया हूँ' यह सुनते ही गले में फाँसी लगाकर देहत्याग का प्रयास भी किया था। सुना है, सम्भवतः वे ही बड़े ध्यान से बहुत समय तक मुझे एकटक देख रही थीं। मैं मस्तक झुकाकर रखा था, इस कारण कुछ जान नहीं पाया। लगता है, उनकी कुदृष्टि ने मेरे भीतर के दूषित भाव को जगा दिया; यह उसी का परिणाम है।

ठाकुर के श्रीअंग से कमल की सुगन्ध और मधु-क्षरण

आज ठाकुर की देह अस्वस्थ है; मध्याह्न में वे आम के पेड़ के नीचे नहीं गए। मैं माथे की यन्त्रणा से बेचैन दशा में ठाकुर के कमरे में गया। ठाकुर को ध्यानस्थ देखकर सोचा– आज महाभारत पाठ करने के लिए न कहें, तो छुटकारा मिलेगा। ठाकुर ने कुछ क्षण बाद सिर उठाकर कहा– **"मेरे सिर पर एक बार देखो तो! चींटियाँ बहुत काट रही हैं।"** महाभारत पाठ के बाद प्रायः प्रतिदिन ही कुछ समय ठाकुर की जटा देखा करता हूँ। जटा के भीतर से ढेरों खटमल और जुएँ निकालता हूँ। ठाकुर ने आज चींटियों की बात कही तो सोचा– सिर पर चींटियाँ क्यों रहेंगी? लगता है, जुएँ या खटमल काट रहे हैं। सिर पर हाथ लगाकर देखा, जटा की जड़ पूरी भीगी हुई है। जैसे किसी ने उनके सिर में तेल लगा रखा है।

गर्दन और दोनों कान के पास बहुत चींटियाँ हैं। प्रायः प्रतिदिन ही जटाएँ पृथक् करते समय ठाकुर का सिर थोड़ा भीगा हुआ देखता हूँ। गर्मी में पसीने से सिर भीग जाता है– मेरी ऐसी धारणा थी। आज अधिक भीगा देखकर ठाकुर से पूछा– आज पूरा सिर भीग जाने से जटा के भीतर आपके बाल चपचप क्यों कर रहे हैं? एक सुगन्ध भी आ रही है!

ठाकुर– **कैसी गन्ध है?**

मैं– कमल के समान गन्ध है।

ठाकुर– **हाँ, वही है। वही गन्ध पाकर चींटियाँ आई हैं।**

ठाकुर के मस्तक को स्पर्श करने पर दो मिनट के भीतर ही मेरे सिर की पीड़ा कम हो गई, शरीर अच्छा स्वस्थ लगने लगा, मन भी बड़ा प्रफुल्लित हो गया; सरस भाव से अपने-आप नाम-जप होने लगा। विस्मित होकर ठाकुर को छोड़कर थोड़े दूर में जाकर बैठ गया; नाना प्रकार की चिन्ता करने लगा। ठाकुर ने मुझे पुनः जटा पृथक् करने के लिए कहा। मैं जटा पृथक् करते-करते ठाकुर से कहा– सिर पर बालों की जड़ों में शुभ्र पतले मोम जैसा देख रहा हूँ, निकल नहीं रहा है– बाल उलझ जा रहे हैं, यह क्या है?

ठाकुर– **जो कहा वही है, मोम। जम-जमकर वैसा हो गया है।**

मैं– कुछ दिनों से देख रहा हूँ, आपका सिर पसीने से प्रायः सर्वदा ही भीगा रहता है।

ठाकुर– **पसीना नहीं है। पसीना तो सूख जाता है। पसीना जमकर क्या मोम हो जाता है? प्रतिदिन देखते हो, समझ नहीं पाए? मधु ही है!**

मैं– मनुष्य के शरीर से भी मधु झरता है?

ठाकुर– **'हाँ, पेड़ में जैसा देखे हो वैसा ही।'** कुछ क्षण बाद ठाकुर ने पुनः कहा– **पेड़ के नीचे बैठना अब सुविधाजनक नहीं है; कितने चींटें, चींटियाँ, मक्खियाँ सब सिर पर आते हैं। अब कमरे में रहना ही ठीक है।**

कुछ दिनों से ठाकुर के शरीर में सर्वदा पसीने की बूँदों जैसा देख रहा हूँ। जोर से हवा करने पर भी उसे सूखते न देखकर कभी-कभी मुझे सन्देह भी हुआ; किन्तु पूछने का साहस नहीं हुआ। ठाकुर बीच-बीच में गीले गमछे से स्वयं शरीर पोंछ लेते हैं। पीठ पर हाथ नहीं जाने से मैं पीठ पोंछ देता हूँ। अत्यधिक तेल मलकर स्नान करके आने से जिस प्रकार दिखते हैं, ठाकुर को कुछ दिनों से वैसा ही देख रहा हूँ। मनुष्य के शरीर से पसीने के समान मधु झरता है, कहीं सुना नहीं, किसी पुस्तक में भी नहीं पढ़ा। ठाकुर में ही मैं यह सब विचित्रता देख रहा हूँ।

कमल की तीव्र मीठी अच्छी सुगन्ध से कमरा सर्वदा महक रहा है। बर्रें, तितलियाँ व मधुमक्खियाँ कमरे में आकर ठाकुर के सिर के ऊपर दो-चार चक्कर घूमकर बाहर निकल जाती हैं; हाथ पंखे की हवा के झपट्टे से उन्हें ठाकुर के शरीर या सिर पर बैठने का अवसर नहीं मिल रहा है। कभी-कभी अनगिनत चींटियाँ ठाकुर के आसन के किनारे व ऊपर आ जाती हैं। देखते ही उन्हें झाड़कर हटा देता हूँ। ठाकुर आँखें बन्द करके नतमस्तक अवस्था में स्थिर भाव से बैठे हैं। तेल की धार जैसे लगातार अश्रु गिरने से उनका वक्ष एवं कौपीन, बहिर्वास भीगते जा रहे हैं। ध्यानमग्न अवस्था में ठाकुर का मस्तक प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ धीरे-धीरे झुककर बायें घुटने पर टिक जाता है। ठाकुर आठ-दस मिनट इस अवस्था में रहने के बाद सीधे होकर बैठ जाते हैं। बार-बार इसी प्रकार गिरते-उठते हुए अपराह्न 4 बजे तक का समय बिता देते हैं। इस समय ठाकुर की देह में जो सब अद्भुत अवस्थाएँ प्रकाशित होती हैं, उसे व्यक्त करने का मेरे पास उपाय नहीं है; ठाकुर की असीम कृपा से धन्य हो जाता हूँ।

स्वप्नदोष का कारण: उपदेश

ठाकुर बहुत समय तक ध्यानस्थ थे, सिर उठाते ही मैंने अपनी दुर्दशा की समस्त बातें बतलाई।

ठाकुर– **कितनी बार तुमसे कहा, उससे कोई हानि नहीं होती। अनर्थक संस्कार से वृथा कष्ट क्यों पाते हो? जानबूझकर वीर्य नष्ट करने से ही अपराध होता है। उससे हानि होती है।**

मैं– ब्रह्मचर्य में वीर्यधारण ही तो प्रमुख साधन है। जिस प्रकार से भी हो, वह नष्ट होने से कष्ट होता है।

ठाकुर– **स्वप्नदोष जिस प्रकार तुम्हारा होता है, उससे वीर्यधारण में कोई हानि नहीं होती। वीर्यधारण ठीक प्रकार से हो रहा है।**

मैं– फिर भी शरीर अस्वस्थ हो जाता है– निस्तेज व अवसन्न हो जाता है; मन में स्फूर्ति नहीं रहती, साधना कर नहीं पाता, आपके पास भी आने की इच्छा नहीं होती। मुझे स्वप्नदोष क्यों होता है?

ठाकुर ने कहा– **"वह कई कारणों से होता है। उसका उपाय सहज नहीं है। फिर भी साधारण नियम का पालन करके तो चल सकते हो? स्वादिष्ट खाने का लोभ छोड़ दो।"**

मैं– प्रयास तो कम नहीं करता, हैरान हो गया हूँ– अब मुझसे नहीं होता।

ठाकुर– **हैरान होने से कुछ नहीं होता। हैरान होने पर भी प्रयास करना होगा। यह क्या दो-एक दिन का काम है? यह ब्रह्मचर्य पहले ऋषिकुमार लोग 36 वर्ष तक करते थे! कोई-कोई 12 वर्ष भी करते थे। फिर भी छः वर्ष के पहले कभी ठीक नहीं होता। तुम खूब प्रयास करो– एकाएक हो जाएगा, वैसा नहीं है; धीरे-धीरे सब होगा। काम, क्रोध, लोभ आदि जब छूटेंगे– अपने-आप छूटेंगे; किन्तु उसका अर्थ चुपचाप बैठे रहना नहीं है। अभ्यास करना पड़ता है। अभी खूब अभ्यास करो।**

थोड़ा रुककर ठाकुर फिर कहने लगे– **'जिस पथ पर चल रहे हो, उसमें आहार का नियम पूर्णतः ठीक रखकर न चलने से हानि होगी। भोजन का परिमाण जिस प्रकार प्रतिदिन समान रहेगा, भोजन का समय भी असमान न हो। इन दोनों में किसी प्रकार का अनियम होने से शरीर अस्वस्थ हो जाएगा। अपने नियम के विरुद्ध किसी का कोई अनुरोध नहीं सुनना। किसी भी प्रकार का मीठा तुम्हारे लिए हानिकारक है– उसका विषवत् त्याग करना।'**

ठाकुर की बात सुनकर सब समझ गया। मेरी अपनी इच्छा से किए गये अनियम का उल्लेख करके यदि ये सब उपदेश देते तो मैं सहन नहीं कर पाता! मेरी त्रुटि के बारे में जैसे कुछ जानते नहीं– ऐसा भाव दिखाते हुए उन्होंने केवल प्रयोजनीय बातें कही, इससे मैं बड़ा लज्जित हुआ।

आत्म-दर्शन : छाया-दर्शन : ज्योति-दर्शन

23 जून, गुरुवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में तन्द्रावस्था में देखा, आज्ञाचक्र में मन को एकाग्र करके नाम जप रहा हूँ; एकाएक चमकता हुआ मेरा रूप प्रकट हुआ। ठीक जैसे दर्पण में अपना मुख देखने लगा। स्पष्ट देखा, शुभ्रवर्ण का मुण्डित-मस्तक शिखाधारी उज्ज्वल पवित्र मूर्ति ब्राह्मण मेरी ओर देख रहा है। देखते-देखते मैं आनन्द से विह्वल हो गया। कुछ समय बाद ही सचेत हो गया, नींद खुल गई। दिनभर चित्त सरस व प्रफुल्लित रहा। मध्याह्न में अवसर पाकर ठाकुर को बतलाया, तो उन्होंने कहा– **"इस प्रकार देखना अच्छा है। जागृत अवस्था में जब वैसा दर्शन होगा, तभी ठीक है। इसे ही आत्म-दर्शन कहते हैं। काम, क्रोधादि रिपु के रहने से जो आत्म-दर्शन होता है, वह स्थायी नहीं होता। केवल कभी-कभी दर्शन होता है। फिर समस्त रिपुओं के दमन हो जाने पर जो आत्म-दर्शन होता है, वह छूटता नहीं, स्थायी होता है।"**

मैंने पूछा– अस्पष्ट काली छाया की भाँति अँगूठे के परिमाण की जो

मनुष्याकृति सर्वदा इधर-उधर दिखलाई पड़ती है, क्या वह यही है।

ठाकुर– **नहीं, वह नहीं है। वह अन्य है। वह आत्म-दर्शन नहीं है।**

मैं– हवन के समय अग्नि के मध्य गेरुआ वस्त्र पहने अँगूठे के परिमाण की अस्पष्ट मनुष्याकृति दिखलाई पड़ती है।

ठाकुर– **हाँ, चित्त जितना शुद्ध होगा, वह उतना ही स्पष्ट दिखेगी।**

मैं– उज्ज्वल शुभ्र ज्योति जो सब समय आँखों में ही बसी रहती है, कभी-कभी वह अत्यन्त उज्ज्वल दिखलाई पड़ती है, फिर किसी-किसी समय मलिन क्यों हो जाती है?

ठाकुर– **चित्त जितना शुद्ध और पवित्र रहेगा, उस ज्योति का उतना ही उज्ज्वल दर्शन होगा। चित्त मलिन और अपवित्र रहने से ज्योति अस्पष्ट हो जाती है और धीरे-धीरे बिल्कुल अदृश्य हो जाती है; चित्त शुद्धि के साथ-साथ क्रमशः उज्ज्वल होती है और नाना प्रकार की सुन्दर-सुन्दर ज्योति दिखती है।**

मैं– कुछ दिनों से बात करते ही स्वतः मन में आता है– सत्य कह रहा हूँ या नहीं– तुरन्त बात करना बन्द हो जाता है; सोचकर बातें करने से बात करना कम भी हो गया है।

ठाकुर– **यही रीति है; एक दिन में ही क्या सब हो जाता है? प्रणाली के अनुसार चलते रहो, समय पर अवस्था प्राप्त होगी। रास्ते में चलते-चलते लक्ष्य स्थान के लिए उद्विग्न होने से क्या लाभ? सत्यवादी क्या एक दिन में ही हुआ जा सकता है? इतना सहज है? बात करते समय वैसा विचार आने से ही सत्य वाक्य कह पाते है। यही रीति है। किसी अवस्था प्राप्ति के लिए व्यग्र मत हो। प्रणाली के अनुसार चलने से ही तुम्हारा कर्त्तव्य-पालन हो जाएगा, अवस्था जब होने की है होगी; उसके लिए उद्विग्न होना निरर्थक है। कार्य करते जाने से ही हो गया।**

अवस्था प्राप्ति अथवा ठाकुर की सेवा ग्रहण– एक ही बात है

ठाकुर की बात सुनकर बड़ी उलझन में पड़ गया। ठाकुर प्राणपण से बड़े उत्साह के साथ प्रयास करते हुए साधन-भजन और नियम का प्रतिपालन करने के लिए कहते हैं। फिर उससे कोई अवस्था प्राप्त होगी– इस प्रकार कल्पना करने के लिए भी मना कर रहे हैं। फल की आशा किए बिना कर्म में उत्साह या प्रवृत्ति कैसे उत्पन्न होगी? फल के लिए ही तो कर्म करते हैं। ठाकुर ने बारम्बार कहा है– **'अवस्था प्राप्ति साधन-सापेक्ष नहीं है, कृपा-सापेक्ष है।'** समस्त अलौकिक

अवस्था गुरुदेव के हाथ में है— उनके दया करने से ही वह प्राप्त होगी, अन्यथा हजार साधन-भजन करने से भी वह प्राप्त नहीं होगी। ठाकुर स्वयं फलदाता हैं। वे जिस प्रकार परम दयालु हैं, उसी प्रकार बड़े सामर्थी भी हैं, अतएव किसी भी मुहूर्त में वे मुझ पर कृपा कर सकते हैं, ऐसी प्रत्याशा मैं सर्वदा ही कर सकता हूँ। ठाकुर के आदेशानुसार समस्त कार्य मैं करता जाऊँ, और फिर उनसे किसी प्रकार की अच्छी अवस्था की अभिलाषा न करूँ— यह कैसे सम्भव होगा? ठाकुर की इस बात का तात्पर्य क्या है, कुछ समझ नहीं आ रहा है। सोचता हूँ, ठाकुर के आदेश से साधन-भजन और नियम का प्रतिपालन करना ही जिस प्रकार मेरा कर्त्तव्य है, उसी प्रकार मुझे समस्त उत्कृष्ट अवस्था प्रदान करना भी ठाकुर का ही कार्य है। मेरे कर्त्तव्य पालन में पग-पग पर शिथिलता और अक्षमता उत्पन्न हो सकती है; लेकिन ठाकुर के कार्य में कभी थोड़ा भी वैसा होना सम्भव नहीं है; क्योंकि वे बड़े सामर्थी हैं। ठाकुर से कोई अवस्था प्राप्त करने की अभिलाषा करना एवं वे मेरे लिए कुछ करें, ऐसी अभिलाषा करना एक ही बात है। अपने ऊपर कृपा करवाने का अर्थ जब उनसे अपनी सेवा करवाना निकलता है, तो फिर 'ठाकुर मुझ पर कृपा करें, मुझे कोई अवस्था प्रदान करें'— ऐसी अभिलाषा मैं प्राण जाने पर भी नहीं करूँगा। वैसी अभिलाषा करने में मुझे भयंकर अपराध बोध होने लगा। इसीलिए लगता है, आश्रित भक्तगण किसी प्रकार के फल की आकांक्षा न करके केवल आदेश पालन एवं सेवा में ही परमानन्द प्राप्त करते हैं। उसी से परितृप्त रहते हैं।

स्वप्न में गुरुरूप में आदेश भी असत्य हो जाता है

कल ठाकुर की बात सुनने के बाद से भीतर-ही-भीतर थोड़ा उद्विग्न हो रहा हूँ। केवल साधन-भजन और नियम प्रतिपालन के साथ जब मेरा सम्बन्ध है, उसके फलाफल में जब मेरा कोई हाथ ही नहीं है, तब किसी अवस्था प्राप्ति के लोभ में पड़कर हो या अनुरागवश हो— कार्य होने से ही हो जाएगा, केवल कार्य के साथ मेरा सम्बन्ध है; पर किसी अवस्था प्राप्ति के लोभ से साधन-भजन करने में अनिष्ट की आशंका है— ठाकुर ने ऐसा क्यों कहा? पाठ के बाद ठाकुर से पूछा— अवस्था प्राप्ति का भरोसा तो केवल गुरु के ऊपर है, अतः अनिष्ट कैसे होगा?

ठाकुर— **वह क्या सहज है? तुम एक अवस्था को प्राप्त करने के लिए बहुत समय से प्राणपण से चेष्टा करते आ रहे हो, नहीं हो रही है। एक साधु ने आकर कहा— 'इस प्रकार करो, हो जाएगी।' तब वैसा न करना क्या सहज है? यह प्रलोभन कोई सहज में नहीं छोड़ सकता। उस प्रकार करके अनेक ही लोग विपत्ति में पड़ जाते हैं। स्वप्न में भी इस प्रकार का प्रलोभन आता है।**

मैं– स्वप्न देखा कि गुरु ने आकर आदेश दे दिया अथवा उपदेश दे गए; वह भी क्या असत्य होता है?

ठाकुर– **हाँ, वैसा भी होता है; गुरु के रूप में दूसरे भी आकर परीक्षा ले सकते हैं।**

मैं– तो फिर वह गुरु का ही आदेश है या नहीं, वह सत्य है या असत्य– किस प्रकार समझेंगे?

ठाकुर ने कहा– **"नाम जपने से यदि वह रूप अदृश्य हो जाता है, तो समझना ठीक नहीं है। फिर नाम जपने पर भी वह यदि रहता है, तो समझना सत्य है। नाम-जप से माया, असत्य कभी टिक नहीं पाते।"**

मैं– स्वप्न की दशा में यदि नाम जपने का स्मरण न रहे, तो क्या करेंगे? वास्तव में गुरु हैं या नहीं, वह फिर कैसे समझेंगे?

ठाकुर– **गुरु से पूछ लेना चाहिए; अन्यथा यदि सन्देह होता है, उस उपदेश के अनुसार मत चलना। फिर भी स्वप्न में सद्गुरु के कुछ आदेश देने पर या उपदेश देने पर उस विषय में किसी प्रकार का संशय मन में उदित नहीं होगा।**

बर्रे का काटना: हिंसाजनित अपराध का खण्डन

दो हिंसा का स्मरण: किसी के मन में आघात देना भी हिंसा है

मध्याह्न भोजन के समय ठाकुर को परोसकर दरवाजे के निकट खड़ा हूँ। अचानक एक बर्रा मेरे बायें हाथ में काटकर चला गया। विषाक्त छोटा-सा बर्रा– ऐसा लगा, मानो तप्त लोहे की कील हाथ में घुसा दी गई है। मैं यन्त्रणा से बेचैन हो गया। बरामदे में आकर दो-चार बार हाथ झटककर, दबाकर मलने पर बड़ी कठिनाई से कुछ ठीक हुआ। ठाकुर का भोजन हो जाने के बाद महाभारत लेकर जैसे ही उनके पास बैठा हूँ, अन्य एक बड़ा बर्रा आकर हाथ के ठीक उसी स्थान पर डंक मारकर चला गया। देखते-देखते मेरा हाथ फूल गया एवं सुन्न हो गया। कुछ समय बाद महाभारत पढ़ने का जैसे ही प्रयास किया, उसी समय अन्य एक बर्रा आकर उसी हाथ के पास भनभनाने लगा एवं बार-बार बैठने का प्रयास करने के बाद चला गया। इस घटना से विस्मित हो गया। मैंने ठाकुर को सब बतलाया।

ठाकुर ने कहा– **"बर्रे के साथ किसी प्रकार का अत्याचार किए हो?"**

मैं– नहीं।

ठाकुर– **भगवान् सर्वभूत में विद्यमान हैं। हिंसा नहीं करनी चाहिए,**

किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। मनुष्य वैसा नहीं कर पाता, ठीक है; फिर भी बहुत सावधान रहना चाहिए। आज तुमने किसी प्राणी पर हिंसा की है, कुछ प्राणियों को बहुत कष्ट दिया है, तभी भगवान् ने बर्रे के माध्यम से तुमको बतला दिया।

ठाकुर की बात सुनकर स्मरण हुआ, आज कुछ प्राणियों को मार डाला। ठाकुर से मैंने कहा– आज प्रातः आसन पर अनगिनत चींटियाँ चढ़ गई थीं, एक-एक करके निकाला नहीं जाएगा, अतः विरक्त होकर झाड़ू से झटकार दिया। उससे कई चींटियाँ मर गईं। आपके भोजन के समय भी चीनी चुनते-चुनते कुछ चींटियों के हाथ-पैर अलग हो गए थे।

ठाकुर– जो भी हो, भगवान् बड़े दयालु हैं। तुम्हारा दोष देखकर उन्होंने यह शिक्षा दी। बर्रों के बारम्बार एक ही स्थान पर न काटने से तुम्हारी स्मृति नहीं जागती; इससे तुम्हारे अब तक के हिंसाजनित समस्त अपराध कट गए।

मैंने ठाकुर से कहा– अपने बचपन में, जब मैं उलंग अवस्था में रहता था, एक दिन वर्षा के बाद घर से बाहर आकर देखा, छज्जे के नीचे पानी जमा है। एक केंचुआ पानी से बाहर आने का प्रयास कर रहा है, निकल नहीं पा रहा है। मैंने एक लकड़ी के द्वारा उसे पानी से बाहर निकाल दिया। कुछ क्षण बाद देखा, बहुत-सी बड़ी-बड़ी लाल चींटियाँ उसको जकड़ ली हैं, केंचुआ छटपटा रहा है। देखकर बहुत कष्ट हुआ; सोचा, मैं यदि पानी से केंचुए को नहीं निकालता तो उसकी यह दशा नहीं होती। केंचुए को बचाने के लिए कोई उपाय न देखकर उसको पुनः पानी में डाल दिया। तब कुछ चींटियाँ तो पानी में डूबकर मर गईं, कुछ पानी के ऊपर तैरती रहीं। पानी के ऊपर की चींटियों को बचाने के लिए पानी से एक-एक करके निकालने लगा। कुछ चींटियों ने अंगुलि में काट दिया, उसकी जलन से बेचैन होकर वहाँ से हट गया। केंचुए की यन्त्रणा का चित्र अभी भी समय-समय पर स्मृति में उभर आता है– भूल नहीं पाता। बचपन में अपने मित्रों के साथ मिलकर मैंने कितने ही कछुए, मछली आदि को पकड़ा है– मारा है। उसके बाद एक भयंकर अपराध किया था, अभी भी उसका सर्वदा स्मरण होता है– भूल नहीं पाता। एक दिन मेरी माताजी के भोजन के समय एक बिल्ली बहुत उपद्रव करने लगी। बिल्ली को भगाने का बहुत प्रयास करके भी भगा नहीं पाया। तब एक मोटी लकड़ी फेंककर बिल्ली को मारा। लकड़ी बिल्ली की गर्दन में लगी। वैसे ही वह गिर पड़ी, नाक-कान से रक्त निकलने लगा; बिल्ली तब गर्भवती थी– पेट के भीतर बच्चे हिलने लगे। बहुत ही कष्ट हुआ; तुरन्त पुरोहित को लाकर बिल्ली के वजन का नमक देकर प्रायश्चित्त किया। फिर जीवन में जानबूझकर

कभी जीवहत्या की है, स्मरण नहीं आता। ठाकुर सुनकर सिहर उठे एवं **'हो गया, हो गया!'** कहकर मुझे रोकते हुए कहने लगे–

'तुमने बड़ा अन्याय किया था। ओह, कितना भयानक है! जो हो, उसके लिए अब तुमको कोई दण्ड भोगना नहीं पड़ेगा। बर्रों के काटने से तुम्हारे सब अपराधों का दण्ड मिल गया। अभी तक जितने हिंसा-कर्म किए हो, सब उससे नष्ट हो गए हैं। अब तुम्हारा कोई पाप नहीं रहा। अब से खूब सावधान रहकर चलना। अब कभी कोई हिंसा मत करना। पेड़ का एक पत्ता भी वृथा नहीं तोड़ना। किसी के मन में कष्ट मत देना। कटु वाक्य द्वारा किसी के हृदय में भयंकर आघात देना भी प्राणी-हिंसा के तुल्य पाप है, यह स्मरण रखना।'

आवरण में रहकर ठाकुर की कृपा: प्रत्यक्ष अनुभूति

दैनिक पाप-खण्डन के लिए पंचसूना का उपदेश

अद्भुत देखा! ठाकुर के कहने के साथ-साथ मेरा शरीर हल्का लगने लगा। शरीर से मानो एक बोझ उतर गया। चित्त में प्रफुल्लता और भीतर एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगा। ठाकुर की असीम दया देखकर चकित रह गया। जानते हुए और अनजाने में प्रतिदिन असंख्य जीव-हिंसा की, असंख्य जीवों के क्लेश का कारण् बना। पूरे जीवन के सत्कार्य और पुण्य के फल से भी लगता है, एक दिन के दुष्कार्य और अपराध का खण्डन सम्भव नहीं है। दो-एक बर्रों के काटने से भी कितने पापों के दण्ड का प्रायश्चित हो सकता है? हजारों बिच्छू-दंशन की यातना की भी तो एक छोटे-से प्राणी के अंगभंग के क्लेश के साथ तुलना नहीं होती। ठाकुर ने स्वयं को आवरण में रखकर मुझ पर कृपा करने के लिए बर्रों के काटने को निमित्त बनाया– यह स्पष्ट रूप से समझ गया। बहुत समय हो गए बर्रों ने मुझे काटा, उस समय से भयंकर दैहिक यातना और बड़ा मानसिक क्लेश पा रहा था। ठाकुर के कहने के साथ-साथ ही वह एकाएक दूर हो गया। देह और मन में आनन्द की तरंग उठ गई। यह तो कल्पना नहीं है, किसी प्रकार की भावुकता भी नहीं है; मेरे सन्देहपूर्ण चित्त की प्रत्यक्ष अनुभूति है। जिस गुरु के वाक्य में इतना बल, भीतर इतनी दया है, उन्होंने मुझे आश्रय दिया! उनका आश्रय मुझे मिला! मेरे जैसा भाग्यवान् कौन है? मुझे अब क्या चिन्ता है? मैंने ठाकुर से पूछा– समस्त पापों के फल का यदि मनुष्य को भोग करना पड़े, तो एक दिन का भोग एक जन्म में भी पूरा नहीं होगा– इसका उपाय क्या है?

ठाकुर– **'ऋषि लोग सब उपाय कर गए हैं। प्रतिदिन पंचयज्ञ और**

पंचसूना करने से पंचसूनाजनित दैनिक पापों का प्रायश्चित्त होता है, शरीर पवित्र होता है, चित्त निर्मल हो जाता है।' पंचसूना किसे कहते हैं, पूछने पर ठाकुर ने कहा– **"चूल्हा, घड़ा, ओखली, झाड़ू और सिल-बट्टा; इन पाँचों के द्वारा जीवहत्या अवश्यंभावी होने के कारण, इनमें भगवान् की पूजा करनी होती है। प्रतिदिन प्रातः चूल्हा लीपकर, कलसी माँजकर, ओखली या ढेंकी स्वच्छ करके, झाड़ू और सिल-बट्टे को धोकर फूल, चन्दन, जल द्वारा पूजा करके प्रणाम करना होता है। ये सब गृहस्थ लोगों का नित्य कर्त्तव्य है। पंचयज्ञ भी प्रत्येक गृहस्थों को घर में प्रतिदिन करना चाहिए। इन सबका लोप हो जाने के कारण ही नाना प्रकार के अनर्थ हुआ करते हैं।"**

ठाकुर ने बहुत समय तक पंचसूना और पंचयज्ञ की प्रयोजनीयता के सम्बन्ध में कहा।

जुलाई, सन् 1892 ई॰

ठाकुर की दिनचर्या: दुर्दैव का खण्डन
कुतु द्वारा आरती: संकीर्तन

जून के द्वितीय सप्ताह से ही मेरे भीतर भयंकर डर समा गया है। कब किस दिन ठाकुर को क्या हो जाए! ठाकुर प्रातःकाल कुटिया में, मध्याह्न में आम के पेड़ के नीचे एवं संध्या के बाद, रात में पूर्व ओर के कमरे में अपने आसन पर रहते हैं। मध्याह्न में आँधी-पानी की सम्भावना देखकर ठाकुर आम के पेड़ के नीचे न जाकर पूर्व ओर के कमरे में ही रहते हैं। प्रातः चाय पीने के बाद श्रीचैतन्य-चरितामृत इत्यादि ग्रन्थ का पाठ होता है। प्रायः साढ़े 9 बजे तक अनेक गुरुभाई ठाकुर के पास बैठकर वह सुनते हैं। ग्रन्थसाहब और भागवत इत्यादि पाठ के बाद 11 बजे ठाकुर शौच के लिए जाते हैं। छोटे कुएँ के नीचे की ओर सब लोगों के लिए बने पक्के शौचालय में ही ठाकुर जाया करते हैं। श्रीधर उन्हें पानी निकालकर देते हैं और कौपीन आदि कपड़े धोकर ले आते हैं। श्रीधर के असमर्थ या अनुपस्थित रहने पर यह काम मुझे करना पड़ता है। पण्डित जी और नवकुमार बाबू के आश्रम छोड़ने के बाद से ठाकुर को फिर से पूर्व ओर के कमरे में ही भोजन दिया जा रहा है। 12 बजे तिलक लगाने के बाद ठाकुर भोजन करते हैं। अपराह्न 4 बजे तक ठाकुर के पास कोई नहीं रहता। अनेक गुरुभाई अपने-अपने काम पर चले जाते हैं। आश्रमवासी गुरुभाई लोग भोजन के बाद अपने-अपने आसन पर विश्राम करते हैं।

मोहल्ले की गुरुबहिनें और कभी-कभी शहर से महिलाएँ मध्याह्न में आकर ठाकुर का दर्शन करके चली जाती हैं। महाभारत पाठ 2 बजे के भीतर ही हो जाता है। फिर ठाकुर की जटा को ठीक किया करता हूँ या पंखा लेकर उन्हें हवा करता हूँ। अपराह्न में 5 बजे तक ठाकुर समाधिस्थ रहते हैं। आज नियमित रूप से यथासमय महाभारत पाठ होने लगा– ठाकुर समाधिस्थ हैं। 1 बजे उनका शरीर स्थिर, निश्चल है– श्वास-प्रश्वास का कोई लक्षण नहीं देखा। मैं पाठ बन्द करके पंखा लेकर ठाकुर को हवा करने लगा। 3 बजे ठाकुर मस्तक ऊपर करके कहने लगे– **"सब आकर मुझे बहुत दूर ले गए। परमहंसजी ने उन लोगों से कहा, 'इसको और भी कुछ समय देह में रहना होगा। अनेक कार्य करवाने हैं।' यह कहकर उन्होंने मुझे लाकर पुनः देह में प्रवेश करा दिया।"**

ठाकुर की बात सुनकर निश्चिन्त हुआ। बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई। ठाकुर से पूछा– कौन लोग आकर आपको ले गए थे; फिर कहाँ ले गए थे?

ठाकुर– **"कितने देवी-देवता, ऋषि-मुनि थे! किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर नहीं था। कितने पहाड़ों में, सुन्दर-सुन्दर स्थानों में घूमा!"**

संध्या के समय अनेक लोग आश्रम में आ गए। ठाकुर से फिर कुछ पूछने का अवसर नहीं मिला। ठाकुर संध्या के कुछ पहले आसन से उठकर शौच के लिए गए। उसके बाद अन्य दिनों की भाँति मन्दिर के सामने जाकर खड़े हो गए। कुतुबुड़ी ने शंख, घण्टा बजाकर, धूप-धूना व पंचप्रदीपादि लेकर प्रतिदिन की भाँति माता ठाकुरानी की आरती की। बड़ी धूमधाम के साथ संकीर्तन आरम्भ हो गया। प्रतिदिन के संकीर्तन में गुरुभाई-बहिनों का भावावेश होना एक विचित्र घटना है। उसे लिखने में संकोच होता है; कुछ प्रकाशित नहीं की जा सकती। कम आयु की अत्यन्त लज्जावती कुलवधुएँ भी गुरुजनों के समक्ष आत्मसंवरण नहीं कर पातीं। उनमें से अनेक भावोन्मत्त अवस्था में नृत्य करते-करते लोगों के बीच से होकर ठाकुर के सामने आ जातीं। सभी उन्मत्त रहते हैं, भेदभाव प्रायः ही नहीं रहता।

साधन की अवस्था: प्रत्यक्ष अनुभूति

अपनी उन्नति न देखना अकृतज्ञता है

ठाकुर की कृपा से जून व जुलाई के मध्य तक का समय अच्छे-से बीता। नाम-जप से भीतर जो शुष्कता एवं ज्वाला का अनुभव होता था, वह अब नहीं है। ठाकुर की कृपा से नाम-जप में अब आनन्द मिलता है। शान्त भाव से सुषुम्ना नाड़ी में नाम-जप आरम्भ करने से मन धीरे-धीरे भीतर की ओर खिंच जाता है। वाह्यज्ञान प्रायः विलुप्त हो जाता है। धीरे-धीरे नाम के आनन्द में निविष्ट होकर

मुग्ध हो जाता हूँ। समस्त स्मृति का विराम हो जाने से 'नाम ही मेरा अस्तित्व है'– इस प्रकार अनुभव हुआ करता है। अत्यन्त उज्ज्वल ज्योति-दर्शन की नवीनता में भी चित्त आकृष्ट नहीं होना चाहता। उससे प्रत्येक नाम में अपना अस्तित्व मिला देने में विघ्न लगता है, नाम के अतिरिक्त समस्त ही ध्यान के बाधक लगते हैं। नाम-जप करता हूँ– या अन्य शक्ति उसे कराती है, वह भी समझ में नहीं आता। स्वभाव से नाम-जप अपने-आप होता है, उसे मैं सुनता हूँ– इतना ही अनुभव हुआ करता है। जप के समय नाम के अर्थ-ध्यान या अर्थ-स्मरण की इच्छा नहीं होती। नाम केवल अक्षर या शब्द नहीं है; शक्तियुक्त सारवान् कुछ है– यह बोध होता है। बीज-संयुक्त पूरे मन्त्र का या उसके एक अक्षर का ध्यान करना कभी-कभी एक जैसा लगता है। ठाकुर ने गायत्री-जप की संख्या में वृद्धि करने के लिए कहा है। वह करने से लाभ हो रहा है। गायत्री और इष्ट-मन्त्र से प्रायः एक जैसा ही कार्य होते देख रहा हूँ। गीता और चण्डी-पाठ प्रतिदिन करता हूँ। संस्कृत न जानने से उसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आता। समझने की वैसी इच्छा भी नहीं होती। केवल पाठ करता जाता हूँ। ठाकुर ने कहा था– **'भागवत के द्वादश स्कन्ध भगवान् के द्वादश अंग हैं। ऋषि प्रणीत समस्त शास्त्र ही भगवान् के रूप की स्तुति है।'** ठाकुर की यह बात सुनने के बाद से पाठ करते समय लगता है– सभी सत्य भगवान् के रूप हैं, शास्त्र केवल सत्य का गुणगान है– ज्ञानमय सत्यस्वरूप भगवान् के रूप के ही किसी अंग का गुणगान कर रहा हूँ। इससे पाठ के साथ-साथ इष्ट की स्मृति जाग जाती है। कभी-कभी संचारित भाव के आधिक्य से समस्त श्लोक ही मन्त्र लगने लगते हैं। समझ में आए या न आए, ऋषिवाक्य सुनने से ही अन्तःकरण मानो शीतल हो जाता है; मन में निर्मल आनन्द का अनुभव करता हूँ। ऋषिवाक्य के अर्थ और आशय को लेकर नाना मतभेद और अशान्ति है; परन्तु दयालु ठाकुर मुझे भाषा के ज्ञान से वंचित रखकर केवल शब्दों के श्रवण से तृप्ति प्रदान कर रहे हैं। मेरे मलिन चित्त में शास्त्रोक्त सदाचार के प्रति यद्यपि आकर्षण उत्पन्न नहीं हो रहा है, तथापि इष्ट-मन्त्र के अंकुरण में वह अत्यन्त प्रयोजनीय लगता है। इतने समय से काम के उत्पात को साधन-पथ में बड़ा विघ्नकारी समझता था, लेकिन अब लोभ को उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक अनिष्टकर देख रहा हूँ। ठाकुर को अच्छा-बुरा सब कुछ बतलाया; ठाकुर ने कहा– **"अपने भीतर में दोष आदि को जिस प्रकार देखोगे, उसी प्रकार उन्नति कितनी हुई है, उसे भी देखना होगा। अपनी यथार्थ उन्नति को नहीं देखने का अर्थ भगवान् के उपकार की अवहेलना करना होता है। साधन-भजन में उत्साह नहीं रहता; क्रमशः अविश्वास उत्पन्न होता है। सर्वदा यह सब विचार करके चलना।"**

मैं— अपनी उन्नति देखना तो हानिकारक है?

ठाकुर— **नहीं, नहीं; वह नहीं देखने से कैसे होगा? अभिमान ही हानिकारक है। रिपुओं से मनुष्य एक दिन में ही छुटकारा पा सकता है; पर उससे क्या लाभ? वैसा कुछ अवलम्बन न मिले, तो कैसे रह पाओगे? पागल हो जाओगे।**

आज ठाकुर के साथ बहुत समय तक बातचीत हुई— बड़ी तृप्ति मिली।

अगस्त, सन् 1892 ई॰

ठाकुर की जटा उखाड़ने की चेष्टा: न्यास माँगने पर नस्य देना विचित्र घटना: 24 तत्त्वों के न्यास का आदेश

अगस्त। महाभारत पाठ के समय प्रतिदिन ही ठाकुर मानो एक अमृतपान के नशे में विभोर हो जाते हैं। आज ठाकुर को अत्यधिक अभिभूत देखकर संक्षेप में महाभारत का पाठ किया एवं धीरे-धीरे उनकी जटा को मैं ठीक करने लगा। उन्होंने कुछ क्षण बाद भावावेश में अचानक कहा— **'नहीं, नहीं, जटा खोलने की आवश्यकता नहीं है।'** मैंने कहा— आपने क्या कहा, समझा नहीं। ठाकुर ने मेरी बात सुनकर मस्तक ऊपर किया एवं कहा— **"देखते नहीं! कैसे दुष्ट हैं। मेरी जटा उखाड़ना चाहते हैं। बारम्बार मना करने पर भी नहीं सुनते। एक बार यदि छूट दी जाए, तो क्या बचाव है? सारी जटा उखाड़ देंगे।"**

मैं— कैसे उखाड़ेंगे? मैं तो यहीं हूँ।

ठाकुर— **'तुम्हारे द्वारा ही उखड़वाएँगे। जब भी मुझे नशा जैसा होता है, तभी ये लोग आकर मुझको पकड़कर खींचातानी करते हैं। थोड़ा छूट देते ही सब उखाड़ देंगे। क्या करते हैं!'** यह कहकर ठाकुर पुनः ऊँघने लगे। मैं कुछ क्षण जटा ठीक करके पास में ही अपने आसन पर बैठ गया। कुछ समय बाद ठाकुर ने थोड़ा मस्तक उठाकर ऊँघते-ऊँघते मेरे सामने हाथ फैलाकर अस्पष्ट स्वर में कहा— **"न्यास दो, न्यास दो।"** यह कहकर भावावेश में पुनः ढुलक गए। मैं आसन से उठकर वर्षा में ही दौड़कर समीप के लोहे के पुल पर जाकर मस्लिपट्टम नस्य की एक डिबिया खरीदकर ठाकुर के पास आ गया। देखा, ठाकुर उसी प्रकार ही मेरे आसन के सामने हाथ फैलाकर अचेत अवस्था में पड़े हैं। कुछ समय बाद उन्होंने मस्तक ऊपर करके पुनः कहा— **"दिए नहीं? दो, न्यास दो।"** मैंने तुरन्त थोड़ी नस्य उनके हाथ में देकर कहा— यह लीजिए नस्य।

ठाकुर उसे हाथ में लेकर पुनः ध्यानस्थ हो गए। कुछ क्षण बाद मस्तक ऊपर करते ही मैंने कहा– नस्य आपके हाथ में दे दिया। एक बार सूँघकर देखिए, कैसा है। ठाकुर अभिभूत अवस्था में ही मुट्ठी बन्द करके उसे सूँघने लगे। नाक के भीतर नस्य जाते ही छींक पर छींक आने लगी। लगा कि भाव का नशा छूट गया– 10-12 छींक के बाद वे सीधे बैठ गए। उन्होंने मुझसे कहा– **"ये क्या दे दिए?"**

मैं– आपने माँगा, इसलिए नस्य ला दिया। मेरी बात सुनकर ठाकुर हो-हो करके खूब हँसने लगे। हँसी क्रमशः बढ़ती ही गई। मैं भी मूर्ख के समान बिना समझे ठाकुर के साथ-साथ हँसने लगा। हँसते-हँसते मेरे पेट में पीड़ा होने लगी। बड़ी कठिनाई से हम लोग की हँसी कम हुई। फिर ठाकुर से पूछा– हँसे क्यों? ठाकुर प्रयास करके भी कुछ कह नहीं पाए, और भी हँसने लगे। थोड़ा सम्भलने के बाद उन्होंने कहा– **"तुमसे न्यास माँगा, तुमने नस्य लाकर दे दिया; अच्छा! क्यों, तुमने सुना नहीं? कह गए, कुलदा का न्यास है, माँग लो। तुम अच्छे बुद्धू हो!"**

मैं– आपने देख-सुनकर नस्य सूँघा और मैं बुद्धू हो गया? न्यास है क्या? मैं तो नस्य समझकर लोहे के पुल पर गया और नस्य ला दिया।

ठाकुर– **न्यास क्या है, नहीं जानते? अंग-न्यास, करांग-न्यास तुम्हारा तो है– माँगने के लिए कह गए।**

मैं– कौन कह गए? मेरा तो कुछ नहीं है।

ठाकुर– **'हाँ, तुम्हारा है। अभी तो परमहंसजी आए थे, कह गए हैं!'** केवल इतना कहकर ठाकुर ने मुझसे श्रीमद्भागवत ग्रन्थ लाने को कहा; मैं वह ठाकुर के पास ले आया। उन्होंने मुझसे एकादश स्कन्ध का तृतीय अध्याय पाठ करने के लिए कहा। मैंने पढ़ा। ठाकुर ने कहा– **"अर्पण को न्यास कहते हैं। तुम प्रतिदिन इस प्रकार न्यास करना।"**

मैंने कहा– पढ़कर कुछ तो समझा नहीं; इसे किस प्रकार करना होगा? ठाकुर ने तब उस अध्याय के अन्तिम भाग के कुछ श्लोकों का अर्थ समझाकर वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ; नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, कर्ण; क्षिति, अप्, तेजः, मरुत, व्योम; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द एवं मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त– समस्त 24 तत्त्वों का न्यास कैसे करना, स्पष्ट रूप से समझा दिया एवं कहा– **"न्यास के बाद स्वयं के तन्मयरूप का ध्यान करना एवं उसी प्रकार रहने का प्रयास करना।"** कल से ही इसी प्रकार न्यास करने का आदेश दिया। समस्त कार्य के पहले प्रतिदिन मुझे इसी प्रकार सारा जीवन न्यास करना होगा, ठाकुर ने ऐसा कहा।

मैंने ठाकुर से पूछा– यह न्यास करने से क्या होता है?

ठाकुर ने कहा– **"करने से ही धीरे-धीरे समझोगे।"**

ठाकुर की असाधारण कृपा से बड़ा आनन्द मिला। कुछ क्षण बाद ठाकुर स्वयं कहने लगे– **'यह सब आजकल कोई जानता नहीं, करता भी नहीं। फिर श्रद्धापूर्वक नहीं करते, इस कारण कोई जानकर भी सिखाता नहीं। यह सब करने से कितना उपकार होता है, करके ही समझ सकते हैं। सीखने के कितने ही विषय हैं। सब लुप्त हो गए। एक व्यक्ति भी श्रद्धापूर्वक यदि करता, तो कितने ही विषय थे– शिक्षा दे दी जाती। यह सब शिक्षा जिसे प्रदान की जाए, ऐसा कोई योग्य पात्र नहीं मिला; बड़ा दुःख होता है।'**

यह कहकर कुछ क्षण बाद ही ठाकुर आँखें बन्द करके ध्यानस्थ हो गए। मैंने मन-ही-मन ठाकुर के श्रीचरणों में प्रार्थना की– 'ठाकुर! तुम्हारी जो इच्छा हो, दया करके शिक्षा दो। मैं प्राणपण से प्रयास करता जाऊँगा।' श्रीमद्‌भागवत में जो पढ़ा एवं ठाकुर ने जो कहा, उससे समझ गया कि यह न्यास यथारीति कर पाने से हमारे मन्त्र का तात्पर्य और साधन का लक्ष्य बहुत सहज में पूर्ण हो जाता है।

इसके पहले और भी दो दिन ठाकुर ने महाभारत पाठ के बाद मुझे इस अध्याय का पाठ करने के लिए कहा था। एक ही अध्याय का दो दिन ठाकुर ने पाठ क्यों करवाया– उस समय कुछ समझा नहीं। अब मुझे समझ में आ रहा है, ठाकुर यह साधन मुझे देंगे– इसका उन्होंने पहले से ही निश्चय कर लिया था। उनकी कृपा, उनकी सहानुभूति मेरी किसी भी अवस्था की प्रतीक्षा नहीं करती। धन्य हैं गुरुदेव! तुम्हारा आश्रय मिलते ही कृतार्थ हो गया हूँ– इसे समझने के लिए यह सब साधन-प्रणाली है। इसके सिवा लगता है और कुछ नहीं है।

प्रणाम की विधि और निषेध

आज मध्याह्न में ठाकुर पूर्व ओर के कमरे में स्थिर बैठे हैं, एक गुरुभाई आकर ठाकुर के आसन के सामने साष्टांग प्रणाम करके चले गए। ठाकुर ने थोड़ा चौंककर कहा– **"ये क्या है? साष्टांग हो जाने से ही क्या प्रणाम हो गया? इन लोगों को थोड़ा भी ज्ञान नहीं है। प्रणाम यदि भाव के साथ करें, तो दोनों का उपकार होता है; अन्यथा जिन्होंने किया एवं जिन्हें किया, दोनों की ही हानि होती है।"**

मैंने कहा– प्रणाम मुझसे नहीं होता। मैं किसी को प्रणाम नहीं कर पाता;

लेकिन स्वप्न में देखा, बड़े भाव के साथ यहाँ प्रणाम कर रहा हूँ, आप आशीर्वाद दे रहे हैं।

ठाकुर– **वैसा देखना अच्छा है। श्रद्धा-भक्ति के साथ न कर सको, तो प्रणाम मत करना, उससे हानि होती है। भाव के साथ करने से उपकार होगा। नाम जपो, नाम-जप से ही सब होता है। नाम-जप सबसे श्रेष्ठ सेवा है; जो सर्वदा नाम-जप करते हैं, वे ही यथार्थ सेवा करते हैं।**

स्वप्न– संसार रूपी शिशु को दूर फेंकना होगा

ठाकुर से मैंने कहा– एक स्वप्न देखकर मन पता नहीं कैसा हो गया है, उसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आया।

ठाकुर ने कहा– **"क्यों, तुम तो बहुत अच्छे-अच्छे स्वप्न देखते हो। क्या देखा?"**

ठाकुर को मैं स्वप्न बतलाने लगा– किसी स्थान पर पहुँचने का संकल्प करके बाहर निकला। कुछ दूर जाकर देखा, आप चौराहे पर खड़े हैं। चार रास्तों में एक दिखलाकर आपने कहा– **'इस पथ को पकड़कर सीधे चले जाओ– ठीक स्थान पर पहुँच जाओगे।'** मैं चलने लगा। कुछ दूर अग्रसर होते ही बाघ का भयंकर गर्जन सुनकर रुक गया। कोई उपाय न देखकर रास्ते के पास ही एक दीवार पर चढ़ गया। बाघ अन्य शिकार को देखकर उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा; वह मुझे देख नहीं पाया। दीवार से उतरकर मैंने देखा कि आप मेरे पीछे ही थे; **'कोई डर नहीं, कोई डर नहीं'** कहकर चले गए। मैंने सामने अन्य एक स्वच्छ पक्का रास्ता देखकर उसी पर चलने का निश्चय किया। कुछ पग चलते ही देखा, एक सुन्दर शिशु दुरावस्था में पड़कर मेरी गोद में आने के लिए हाथ बढ़ा रहा है। मुझे बड़ी दया आई। शिशु को कन्धे पर उठा लिया। इसी समय देखा, अन्य एक विशाल बाघ मुझको लक्ष्य करके भयंकर गरजते हुए उछलते-उछलते आ रहा है। लड़के के लिए चिन्तित होकर उसे यत्नपूर्वक गले से लगा लिया। बाघ मेरे सामने आकर पंजा फैलाते हुए आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। मैं तब बड़ा संकट जानकर कन्धे से लड़के को पीछे फेंककर बाघ की ओर एकटक देखते हुए नाम-जप करने लगा। बाघ अत्यन्त क्रोधवश वहीं बैठकर भयंकर गरजने लगा एवं मुझ पर आक्रमण करने की चेष्टा करने लगा; पर मेरी दृष्टि पड़ने से वह धीरे-धीरे छोटा होने लगा। मैं मन-ही-मन ठाकुर को स्मरण करके दृढ़ता के साथ नाम-जप करने लगा। देखते-देखते बाघ बिल्ली हो गया। तब उस पर दो-एक बार प्रहार करने से वह मर गया; वैसे ही मैं भी जाग गया। इस स्वप्न का तात्पर्य क्या है,

कुछ समझ में नहीं आ रहा।

सुनकर ठाकुर ने कहा– **"ठीक देखे हो। सत्य है; ऐसा ही होता है। लिखकर रख लो। लड़के को नहीं फेंकने से वह बाघ तुमको खाता। लड़का संसार है। स्नेहमय शिशु का रूप धारण किया है। उसको ही कन्धे पर लेकर चले थे। वह बाघ संसारी लोगों का विनाश करता है। उस प्रकार बाघ की ओर देखने से ही वह बिल्ली के समान हो गया, वह भी सत्य है। बाघ भी बिल्ली हो जाता है। अत्यन्त तीव्र वैराग्य उत्पन्न न होने से संसार छूटता नहीं, सावधान।"**

महापुरुषों का कल्पनातीत भयंकर भोग

आज ठाकुर मग्न अवस्था में अचानक कह उठे– **'ओह, कितना कष्ट है! कितना कष्ट है! देखा नहीं जाता। माता-पिता के ऊपर कितना अत्याचार! यह कितना भयानक है! सारे संसार में ही धर्म की ग्लानि हो रही है। अब यहाँ रहना नहीं चाहता। भगवान्! इस बार सब समाप्त कर दो। हटा लो– अब देख नहीं सकता। ओह!'**

कुछ क्षण बाद ठाकुर की चेतना लौटी। आँख-मुँह पोंछकर सीधे बैठ गए। मैंने पूछा– संसार की दुरावस्था देखकर महात्मा लोग भी क्लेश पाते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"क्लेश महात्मा लोग नहीं तो और कौन पाता है? यह सब देखकर वे लोग जो कष्ट पाते हैं, कोई उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। संसारी लोग उसका एक आना भी नहीं पाते। फिर महात्मा लोग क्या स्वेच्छा से चले जाते हैं? ये सब देखकर सहन नहीं कर पाते। दृष्टि में पड़ ही जाता है, न देखने का भी उपाय नहीं है। पूरा संसार पाप से परिपूर्ण हो गया है। धर्म अब नहीं है।"**

मैं– यह संसार छोड़कर जाने से फिर क्या ये सब उन लोगों की दृष्टि में नहीं पड़ेगा?

ठाकुर– **यह संसार छोड़कर जाने के बाद ये सब देखने के लिए यहाँ वे लोग क्यों आएँगे? जहाँ पर रहते हैं, वहीं की स्थिति देखते हैं।**

सहानुभूतिवश महात्मा लोग संसारी लोगों के लिए ही कष्ट भोगते हैं, सुनकर चकित हो गया। सोचा, क्लेश यदि भोगना ही पड़ता है, तो महात्मा बनकर भी क्या लाभ? क्लेश की अधिकता को रोकने के लिए ही तो भगवान् का आश्रय लिया जाता है। वरन् हम लोग अधिक अच्छे हैं, अपना भोग ही स्वयं भोगते हैं।

महात्मा लोग तो असंख्य जीवों का भोग भुगतते हैं। हमारी अपेक्षा वे लोग सुखी कहाँ हैं? सोचा ठाकुर से पूछूँ, तभी स्मरण हुआ– ठाकुर ने एक दिन कहा था, **'आनन्द भी ताप है।'** ठाकुर के कहने पर तब इस बात का अर्थ समझा था– सुख-दुःख, आनन्द-निरानन्द परस्पर विरुद्ध होने पर भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसे जितना दुःख का अनुभव होता है, उसे उतनी सुख की अनुभूति होती है। वियोग से जिसे जितना क्लेश होता है, मिलन से उसे उतना आनन्द मिलता है। क्लेश की स्मृति अथवा संस्कार न रहने से आनन्द की अनुभूति किस प्रकार होगी? दृश्य वस्तु के विषय में संस्कारविहीन जन्म से अन्धा व्यक्ति कभी दर्शन का आनन्द अथवा दर्शन के अभाव का दुःख नहीं जानता। भगवत्-पदाश्रित जीवन्मुक्त लोग सुख-दुःख और आनन्द-निरानन्द के अतीत हैं। वे अपनी इच्छा से ही सुख-दुःख आदि को स्वीकार करते हैं। फिर अस्वीकार करना भी उनकी इच्छा के अधीन है, साधारण लोगों का वैसा नहीं है। साधारण लोग बद्ध हैं और महात्मा लोग मुक्त। जो लोग माया के अधीन हैं, प्रारब्ध के अधीन हैं, वे छोटे हों या बड़े, उन सभी का सुख-दुःख, आनन्द-निरानन्द औसतन ठीक एक ही प्रकार का है।

ठाकुर से कहा– इस बीच एक दिन स्वप्न में गुरु-गीता पाठ करने लगा। प्रणाम-मन्त्र जैसे ही पूरा हुआ, वैसे ही जाग गया। अन्य एक दिन भगवद्गीता पाठ करते-करते जागा। कभी-कभी निद्रावस्था में प्राणायाम-कुम्भक भी हुआ करता है।

ठाकुर ने कहा– **"यह सब होना अच्छा है। उसी प्रकार जब दिन के नित्यकर्मादि निद्रा में होंगे, तभी ठीक हुआ। वैसा होने से वासना-कामना समस्त ही नष्ट हो जाते हैं। धीरे-धीरे नाम-जप भी निद्रा में होता है। इन सबको प्रगट नहीं करते, नष्ट हो जाते हैं।**

तृतीय वर्ष में चार वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य प्रदान छः वर्ष में ही पूर्ण होगा

3 अगस्त, बुधवार (शुक्ल दशमी)। आज प्रातः स्नान करके नया जनेऊ और स्फटिक की माला लेकर मन्दिर के सामने ठाकुर के पास पहुँचा। ठाकुर से कहा– कल मेरे ब्रह्मचर्य का दो वर्ष पूरा हो गया।

ठाकुर ने कहा– **"अच्छा, अब क्या चाहते हो?"**

मैं– आप जैसा कहें। यदि ब्रह्मचर्य पुनः दें, तो वही करूँगा।

ठाकुर ने कहा– **"ब्रह्मचर्य जो दिया है, वही करो। ब्रह्मचर्य के जो नियम कहे गए हैं, अब से बड़े उत्साह के साथ उसी का पालन करना।**

ब्रह्मचर्य थोड़े लम्बे समय तक न करने से पूरा ठीक-ठीक नहीं होता। ब्रह्मचर्य सबका मूल है। ये ठीक होने से अन्यान्य साधन कठिन नहीं हैं। 12 वर्ष के पहले ब्रह्मचर्य प्रायः होता नहीं। नौ वर्ष करने से ही तुम्हारा ब्रह्मचर्य हो जाएगा, कहा था; परन्तु अब देख रहा हूँ, उतना नहीं लगेगा; इसी प्रकार चलते रहने से छः वर्ष में तुम्हारा ब्रह्मचर्य पूर्ण हो जाएगा। दो वर्ष हो गए— अब चार वर्ष के लिए लो। छः वर्ष पूर्ण होने पर कहना। तब इच्छा होने पर संन्यास ग्रहण कर सकोगे। छः वर्ष ठीक प्रकार से ब्रह्मचर्य कर लेने के बाद अन्यान्य साधन स्पर्श मात्र से हो जाएँगे। विशेष प्रयास नहीं करना पड़ेगा। ब्रह्मचर्य समस्त साधन की नींव है। यह ठीक प्रकार से हो जाए, तो फिर कोई उत्पात नहीं रहता। षड्-रिपुओं को संयत कर पाने से ही हो गया। काम, क्रोधादि रिपुओं को अच्छे-से वश में लाओ। इन्द्रिय-संयम ही ब्रह्मचर्य का मुख्य साधन है। किसी रिपु की उत्तेजना कम हो जाने पर उसे कहीं भी प्रगट नहीं करते, प्रकाशित करने से फिर वह अवस्था रहती नहीं— नष्ट हो जाती है। काम की अपेक्षा क्रोध भयानक है। काम रिपु सजन-निर्जन, स्थान-अस्थान, पात्र-अपात्र, स्वस्थता-अस्वस्थता समझकर कार्य करता है; लेकिन क्रोध वह सब विचार नहीं करता। जहाँ-तहाँ, किसी भी व्यक्ति के ऊपर, स्वस्थ-अस्वस्थ किसी भी अवस्था में वह प्रकट हो जाता है। इसीलिए क्रोध को चण्डाल कहा गया है। क्रोध के उदय होते ही साधक पतित हो जाता है। क्रोध को पूर्णतः दमन करने का प्रयास करो। लोभ के लिए चिन्ता न करना— वह ठीक हो जाएगा। एक बार में तो सब नहीं होता। नियम के अनुसार कार्य करते जाओ— धीरे-धीरे सब ठीक होने लगेगा। अब से पाठ कम कर दो। गुरु-गीता एवं एक अध्याय भगवद्गीता का नित्य पाठ करना। गीता के श्लोक रोज एक-एक करके कण्ठस्थ करना। सर्वदा नाम-जप करना। नाम में डूबे रहना। उसमें जब शिथिलता आए, तब कुछ समय पाठ कर लेना। अधिक पाठ करना मना है। अधिक पाठ से शुष्कता आती है। यह बात तुम्हें और पहले बताना चाह रहा था। नाम-जप में रुचि उत्पन्न हो जाए, तो कुछ न करने से भी हो जाता है। केवल नाम-जप को लेकर पड़े रहने से ही सब हो जाता है।"

"आहार का नियम जैसा पहले कहा है, वही है; किन्तु अब से दूसरों का बनाया कोई भी खाद्य ग्रहण मत करना। भिक्षा ब्राह्मण के घर के सिवा अन्यत्र नहीं करना। फिर यह साधन जिन्हें मिला है, वे किसी भी जाति के हों, उनसे भिक्षा ले सकोगे। पैसे किसी से नहीं माँगना।

पैसे रखना त्याग दो। अन्य लोग जैसे हैं, भाइयों को वैसा ही समझना; विशेष मत समझना। अपने लिए कोई वस्तु संचय करके नहीं रखना। ब्रह्मचर्य के नियम का यथारीति प्रतिपालन करना। और भी चार वर्ष ब्रह्मचर्य करो– तब फिर सब ठीक हो जाएगा। बाद में जो करना होगा, उसी समय कहा जाएगा।"

ठाकुर की बात पूरी होने पर स्फटिक की माला और जनेऊ उनको दिया। ठाकुर दो-तीन मिनट तक उसे पकड़े रहे; फिर मुझको देते हुए उन्होंने कहा– **"यह लो, धारण करो।"**

मैंने ठाकुर को प्रणाम करके स्फटिक की माला और जनेऊ धारण किया। अपने ऊपर ठाकुर की असाधारण कृपा देखकर विस्मित हो गया। प्रथम वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्ण होने पर ठाकुर ने सन्तुष्ट होकर मुझसे कहा था– **'ब्रह्मचर्य अन्ततः 12 वर्ष करना पड़ता है; किन्तु इसी प्रकार चलने से तुम्हें 12 वर्ष भी नहीं लगेंगे। नौ वर्ष में ही हो जाएगा। फिर अभी एक वर्ष के लिए लो।'** अब द्वितीय वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने कहा– **'तुम्हें नौ वर्ष नहीं करना पड़ेगा– छः वर्ष में ही हो जाएगा। इस बार चार वर्ष के लिए लो।'**

गुरु के प्रति एकनिष्ठा ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का एकमात्र प्रयोजन और सर्वप्रधान लक्षण है। एकाग्र मन से मैं ठाकुर के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि यदि वे मेरे ब्रह्मचर्य से सन्तुष्ट होते हैं और मुझ पर कृपा करते हैं– तो फिर ऐसा करें, जिससे उनके चरणों के सिवा मेरा अन्य किसी में भी आनन्द, आराम और भीतर का आकर्षण न रहे; जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ही मेरे इस जीवन का अवलम्बन हो। अब मुझे लग रहा है, सर्वगुणों के आधार सद्गुरु की उपासना करना ही सार है। अनुभवशील सीमाबद्ध जीव द्वारा अनन्त, असीम का ध्यान-धारणा करना केवल मिथ्या कल्पना है। अपने पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व बोध में ही मैं असीम अनन्त को अनुभव करता हूँ। फिर क्षुद्र मैं यदि चुल्लुभर पानी से अपनी प्यास बुझाकर पूर्णतः परितृप्त होता हूँ, तो सागर सुखाने के निरर्थक प्रयास की क्या आवश्यकता है? अन्तःकरण की पूर्ण तृप्ति ही जब जीव का लक्ष्य है, तब वह क्षुद्र को लेकर हो या वृहत् को, एक ही बात है। सब वासनाओं की निवृत्ति का अर्थ केवल अपने अस्तित्व की अनुभूति से परितृप्ति ही समझता हूँ। भगवान् किसको कहते हैं, नहीं जानता। केवल लोगों के मुख से सुनकर ही अज्ञात वस्तु के लिए लोभ उत्पन्न नहीं होता। गुरुदेव! दया करो, जिससे तुम्हारे शान्तिमय श्रीचरणों में चित्त को संलग्न करने हेतु समस्त वासनाओं की निवृत्ति से चिरशान्ति प्राप्त करूँ।

माता ठाकुरानी का झूलन-उत्सव: चण्डी-पाठ से पूजा

7 अगस्त, रविवार। आज मध्याह्न में भोजन के बाद ठाकुर ने कहा– **"आहा, कितना सुन्दर! झूले के सिंहासन पर बैठकर भगवती झूल रही हैं।"**

मैं– भगवती कहाँ झूल रही हैं?

ठाकुर– **वह क्या बतलाया जा सकता है? दृष्टि में पड़ा, तो देखा। लगता है, ढाका में ही है।**

मैं– ढाका में तो कभी वैसा झूलन महोत्सव मैंने देखा नहीं, सुना भी नहीं। माँ को झूले पर बैठाने से अच्छा नहीं होता? माँ तो हमारी आद्याशक्ति भगवती हैं! केवल चण्डी-पाठ कर लेने से उनकी पूजा नहीं हो सकती?

ठाकुर– **'हाँ, वैसा करने से अच्छा होता; लेकिन पाठ कौन करेगा? तुम प्रतिदिन मन्दिर में थोड़ा-थोड़ा करक चण्डी-पाठ कर सकते हो; परन्तु नित्यकर्म के पूर्व करना होगा। रोज एक अध्याय का पाठ करना।'** कल से प्रतिदिन नियमित रूप से माता ठाकुरानी के मन्दिर में चण्डी-पाठ करने का निश्चय किया।

8 अगस्त, सोमवार, झूलन (राखी) पूर्णिमा। आज प्रातःकाल से ही लड़कों के मन में बड़ा उत्साह है। झूला सजाकर माँ को उसमें बैठाने की सबकी बहुत इच्छा है। उन लोगों ने नाना प्रकार के सुन्दर-सुन्दर फूल-पत्तें जमा करके माता ठाकुरानी के मन्दिर और दक्षिण ओर के चौकोन छानी वाले बरामदे को अच्छे-से सजाया। फिर एक छोटी चौकी को अच्छे-से सजाकर उसके ऊपर राधाकृष्ण के विग्रह के साथ माता ठाकुरानी को बैठाकर झुलाने लगे। बहुत-ही सुन्दर सजावट हुई। ठाकुर ने देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की; लड़कों के सद्भाव और उत्साह की बड़ी प्रशंसा की। सभी गुरुभाई आनन्दपूर्वक लड़कों के इस समारोह में सम्मिलित हुए। अनेक लोगों के सम्मिलन से मन्दिर-प्रांगण परिपूर्ण हो गया। संध्या के पूर्व गुरुभाइयों ने झूलन-कीर्तन आरम्भ किया। लगभग तीन घण्टे तक संकीर्तन में सब लोग आनन्द करके हरि-लूट का बहुत-सा प्रसाद लेकर अपने-अपने घर चले गए।

आम के पेड़ का अभियोग: देह में कील ठोक दी

8 अगस्त, सोमवार। ठाकुर ने प्रातः आसन से उठने के पहले ही कहा– **ओह! आम के पेड़ को बड़ा कष्ट हुआ, मुझसे कहा, 'मेरे छाती में कील ठोक रखी है, यन्त्रणा से रातभर सो नहीं पाया।'** ठाकुर की यह बात सुनकर गुरुभाइयों ने आम के पेड़ के नीचे जाकर देखा, ठाकुर के आसन के ऊपर छोटा मण्डप लगाने के लिए लड़कों ने पेड़ पर कील लगा रखी है। रक्त के समान लाल

रस उस स्थान से गिरा है। ठाकुर के आदेश से तुरन्त उसे निकाल दिया गया। प्रतिदिन ठाकुर प्रातः आसन से उठकर जैसे पक्षियों के लिए चावल डालते हैं, उसी प्रकार आश्रम के वृक्ष-लतादि के पास जाकर सभी की खबर लिया करते हैं, ये सब सम्भवतः ठाकुर के साथ बात करते हैं। अपने-अपने क्षेत्र में वे भी ठीक मनुष्य की भाँति सभी विषयों में अपने-अपने प्रयोजन के प्रति अनुभवशील हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि के देह संरक्षण और पोषण के लिए पंचेन्द्रियों को भगवान् ने जिस प्रकार चैतन्ययुक्त कर दिया है– वृक्ष-लता, स्थावर-जंगमादि के भी पुष्टि-साधन के पक्ष में उन्होंने उसी प्रकार उनके प्रयोजन के अनुरूप इन्द्रियों को यथायोग्य चैतन्ययुक्त कर रखा है। भगवान् का अद्भुत सृष्टि-कौशल है!

भोजन आरम्भ के पूर्व ठाकुर का हस्त प्रसारण: मुझे एक ग्रास दो

आज आकाश में मेघ छा गए। ठाकुर भोजन के बाद पूर्व ओर के कमरे में ही रहे। अपराह्न 5 बजे तक उनके पास अन्यान्य दिनों की भाँति बिताकर भोजन बनाने गया। चावल, दाल, नमक, मिर्च व घी एक साथ मिलाकर चूल्हे पर चढ़ाकर मैंने खिचड़ी बनाई। ठाकुर ने मुझसे कहा था– **'भोजन जैसे ही बन जाएगा, तुरन्त थाली में निकालकर भोग निवेदन करके भोजन आरम्भ करना।'** मैंने चूल्हे से खिचड़ी उतारी और उसे केले के पत्ते में निकालकर ठाकुर को निवेदन करके प्रणाम किया। फिर गरम खिचड़ी को फैलाकर खाने के लिए जैसे ही ग्रास उठाने लगा, अचानक देखा, बाहर से टट्टे के खुले हुए स्थान से सरसर शब्द के साथ ठाकुर का हाथ पत्ते के सामने आ गया। ठाकुर ने धीरे-से कहा– **"ब्रह्मचारी! तुम्हारा बनाया भोजन मुझे एक ग्रास दो, मैं भी खाऊँगा।"** मैं तुरन्त वह ग्रास ठाकुर के हाथ में देकर, और देने के लिए प्रतीक्षा करने लगा। ठाकुर ने खाते-खाते कहा– **"कितना अच्छा स्वाद है! तुम्हारे समान इतना स्वादिष्ट भोजन यहाँ पर कोई नहीं खाता। अब प्रतीक्षा मत करो। प्रसाद खा लो।"** मैं ठाकुर के कहने पर भोजन करने लगा। ठाकुर के हाथ में थोड़ा पानी देने का भी स्मरण नहीं रहा। ठाकुर ने आंगन में खड़े होकर भोजन की प्रशंसा करते-करते शान्तिसुधा, कुतु आदि से कहा– **"तुम लोग एक-एक दिन एक-एक करके ब्रह्मचारी का भोजन एक ग्रास खाकर देखना। कितना अद्भुत स्वाद है, समझ पाओगे।"** मुझसे कहा– **"तुम्हारे भोजन का निर्दिष्ट परिमाण है। एक ग्रास से अधिक मत देना। प्रतिदिन एक-एक ग्रास देना।"**

आहार के समय ठाकुर की दया का स्मरण करके केवल अश्रु बहाता रहा। अचानक स्वयं ठाकुर आकर इस दुराचारी पाखण्डी पर क्यों इतनी कृपा की, समझ

में नहीं आया। चार-पाँच सेकेण्ड बाद यदि ठाकुर हाथ बढ़ाते, तब मैं क्या करता? किस समय मैं भोजन करता हूँ, किसी प्रकार से किसी के लिए भी यह जान पाना सम्भव नहीं हैं। ठाकुर का सब कुछ अद्‌भुत है! इतना सब देखकर भी मन आज तक गुरुमुखी नहीं हुआ। दुर्दशा और किसको कहते हैं?

मेरी परमायु : स्पष्ट दर्शन

9 अगस्त, मंगलवार। आज महाभारत पाठ के बाद ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ; मन नाम में बिल्कुल डूब गया। नेत्र बन्द की अवस्था में स्वप्न की भाँति देखा– चमकता हुआ काले रंग का एक चौकोन मार्बल के पत्थर का 'साइनबोर्ड' आकाश से घूमते-घूमते ठाकुर के सामने से मेरे पास आकर रुक गया। उसमें अंकित मुट्ठी बन्द तर्जनी से संकेत करता हुआ एक हाथ उज्ज्वल ज्योतिर्मय निम्नलिखित र्स्वणाक्षर को दर्शा रहा है–

"प्राणायाम और कुम्भक के संयोग से तुम्हारी परमायु ..... वर्ष है।"

मेरे देखने के बाद 'साइनबोर्ड' उड़कर अदृश्य हो गया। तुरन्त सचेत होकर मैंने ठाकुर को सब बताया। ठाकुर ने कहा– **"देख लिए तो अच्छा ही हुआ। फिर भी तुमने जो देखा है, ठीक वही होगा– वह कहा नहीं जा सकता। हो भी सकता है और किसी कारण से नहीं भी हो सकता। सदा प्रस्तुत रहना चाहिए।"** ठाकुर की बात से ऐसा लगा, मृत्यु का एक निर्दिष्ट समय है, उसे ही देखा; पर ठाकुर अपनी इच्छा से जब तक चाहें संसार में रख सकते हैं।

ठाकुर की जटा ठीक करना : प्राण-धारण हेतु जीव-हिंसा अनिवार्य

मध्याह्न में पाठ के बाद प्रतिदिन कुछ समय ठाकुर की जटा ठीक करता हूँ। सामने की जटा के गुच्छे में जगह-जगह अगण्य खटमलों ने घर बना लिया है, एक-एक स्थान पर लगभग 30-40 या उससे भी अधिक खटमल चिपके रहते हैं। एकं को निकालने पर अन्य सब भाग जाते हैं और जटा के भीतर छुप जाते हैं। इसलिए एक-एक स्थान के खटमलों को निकालने का वृथा प्रयास नहीं करता, अंगुलि से पूरा मसल देता हूँ। सिर में सर्वत्र जो जुएँ और खटमल घूमते रहते हैं उन्हें ही पकड़ पाता हूँ। रक्त पीकर खटमल इतने पुष्ट हो गए हैं कि स्पर्श करने से ही पिचक जाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन अगण्य प्राणी-वध करता हूँ। क्या करूँ? उपाय नहीं है। सोचा, शरीर नें नाना प्रकार के रोग असंख्य विजातीय हानिकारक कीटाणुओं के समावेश से ही उत्पन्न होते हैं और बढ़ते रहते हैं। औषधि के प्रयोग से उन सबके विनाश का उपाय न करने से रोग दूर नहीं होता। दैहिक उग्र व्याधि

को दूर करने के लिए प्राणी-वध अति आवश्यक है। हिंसा, विद्वेष अथवा अवज्ञा से प्रेरित न होने के कारण वह अन्तःकरण को स्पर्श नहीं करता, उसमें पाप का बोध नहीं होता; वरन् रोग ठीक होने से भीतर आनन्द का ही अनुभव होता है। खटमल निकालते समय ठाकुर ध्यानस्थ रहते हैं। मैं क्या करता, क्या नहीं करता, उस पर तो ठाकुर का ध्यान नहीं जाने की ही बात है; लेकिन गुच्छे को मसल देने से ठाकुर बीच-बीच में **'हरि बोल, हरि बोल'** कह उठते हैं। ठाकुर के सीधे बैठे रहने पर मैं पीछे की ओर घुटने के बल बैठकर खटमल निकालता हूँ, कभी-कभी बायीं ओर भी बैठना पड़ता है।

हुक्का तोड़ना– तम्बाखू-त्याग : ठाकुर का तम्बाखू-सेवन

कल ठाकुर ने मेरे मुख से गन्ध पाकर कहा– **'हुक्का पीकर आए हो? बड़ी दुर्गन्ध आ रही है!'** ठाकुर की बात सुनकर लज्जित एवं दुःखी होकर चुपचाप अपने आसन पर बैठ गया। निश्चय किया, कल से धूम्रपान छोड़ दूँगा; अन्यथा ठाकुर की अंग-सेवा नहीं करूँगा। आज प्रातः आसन से उठकर हुक्का-चिलम को अच्छे-से धोकर लाया। फिर फूल व जल चढ़ाकर उसकी पूजा करके प्रणाम किया। उसके बाद चिलम पर हुक्का के खप्पर से तीव्र प्रहार किया, दोनों को चूरा करके फेंक दिया। ठाकुर के चाय पीते समय गुरुभाइयों ने इस बात को लेकर खूब हँसी-मजाक किया। हुक्का नहीं पीने से मुझे बड़ा कष्ट होने लगा।

कुछ समय बाद ठाकुर ने मुझको बुलाकर कहा– **"क्या? तुमने हुक्का-चिलम तोड़कर फेंक दिया? क्यों? हुक्का पीने पर मुख से गन्ध आने के कारण? जटा के खटमल जब निकालोगे, मुँह धो लेना– फिर गन्ध नहीं रहेगी। सुगन्धित तम्बाखू का भी तो हुक्का पी सकते हो। उसमें तम्बाखू की गन्ध नहीं होती। हुक्का न पीने से कष्ट होता है, तो क्यों नहीं पिओगे? निषेध तो नहीं है! जाओ, अब जाकर एक चिलम हुक्का पी लो।"**

अन्यान्य गुरुभाइयों से ठाकुर ने कहा– **"एक हुक्का मिलने से मैं भी हुक्का पीता।"** ठाकुर की बात सुनते ही दो-तीन गुरुभाई बाहर निकल पड़े। पटुआटोली व इस्लामपुर घूमकर वे सुगन्धित तम्बाखू और एक हुक्का ले आए। ठाकुर को चिलम सजाकर दिया गया। ठाकुर हुक्के का एक कश लगाते ही खाँसते-खाँसते बेचैन हो गए। **'बाप रे। यह लो– इससे भगवान् ही बचाए!'** यह कहकर हुक्का सामने रख दिए। जगबन्धु बाबू उसे प्रसादी समझकर अपने उपयोग के लिए ले गए। उसे लेकर गुरुभाइयों के बीच थोड़ा मन-मुटाव हो गया।

ठाकुर से पूछा– आपने पहले कभी हुक्का पिया है?

ठाकुर– 'हाँ, मैं तो बड़ा हुक्काखोर था। किसी को हुक्का पीते देखते ही मेरी भी हुक्का पीने की इच्छा होती थी। एक दिन कोलकाता में रास्ते पर चलते-चलते एक धनी व्यक्ति के घर के दरवाजे पर दरबान को हुक्का पीते देखकर मेरी भी पीने की इच्छा हुई। उसका हुक्का पीना पूरा होते ही मैंने हुक्के के लिए हाथ बढ़ाया। हिन्दी भाषी दरबान ने मुझको खूब गालियाँ देकर भगा दिया। मुझे बड़ा अपमान लगा। सोचा, मैं अद्वैतवंश का गोस्वामी, थोड़ा हुक्का पीने के लिए एक साधारण दरबान ने मुझे इतनी गालियाँ दी? अब मैं कभी भी हुक्का नहीं पीऊँगा। तब से फिर हुक्का नहीं पिया। जाति का अभिमान, वंश का अभिमान, ये सब कई बार मनुष्य की रक्षा करते हैं।' फिर थोड़ा रुककर उन्होंने कहा– "जो शारीरिक परिश्रम करते हैं, उनमें अधिकांश लोगों को हुक्का पीने की आवश्यकता होती है। बहुतों का हुक्का पीने से उपकार भी होता है। 'रमता' योगी लोग भी थोड़ा ऐसा कुछ न मिले, तो फिर रह नहीं पाते; उनमें अधिकांश या तो गाँजा, या चरस अथवा हुक्का पिया करते हैं।"

पूर्वजन्म में निष्फल ब्रह्मचर्य: ठाकुर का सारभूत उपदेश– साधन-भजन जागृत रहने के लिए: कृपा ही सार है

आज मध्याह्न में अवसर देखकर ठाकुर से पूछा– मैंने क्या पूर्वजन्म में कभी सद्‌गुरु का आश्रय पाया था? ठाकुर ने कहा– **"हाँ, पिछली बार भी सद्‌गुरु का आश्रय पाए थे।"**

मैं– मुझे क्या पिछली बार भी ब्रह्मचर्य करना पड़ा था?

ठाकुर ने कहा– **"हाँ, किन्तु वह हुआ नहीं।"**

मैं– उस दिन स्वप्न में आपने मुझसे कहा था, 10 वर्ष ब्रह्मचर्य कर लेने से तुम संन्यास की अवस्था प्राप्त करोगे।

ठाकुर ने कहा– **"स्वप्न में जो कहा जाता है, उसका अर्थ क्या सब समय समझा जा सकता है? 10 वर्ष कहने का तात्पर्य कितना समय है, वह तो क़हा नहीं जा सकता।"**

ठाकुर की बात सुनकर मेरा सिर चकरा गया। सोचा, ये तो सर्वनाश है! पिछली बार सद्‌गुरु का आश्रय पाकर भी ब्रह्मचर्य ग्रहण करके भ्रष्ट हो गया था। क्या प्रवृत्ति के प्रतिकूल कोई साधन-भजन मैंने नहीं किया? या प्रारब्ध ही इतना बलवान् था कि ठाकुर मेरी रक्षा नहीं कर पाए? फिर इस बार ठाकुर ने मुझे पुनः ब्रह्मचर्य क्यों दिया? ऋषि-मुनियों के कलेजे का धन पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत इस बार

भी क्या मेरे द्वारा कलंकित होगा? दो वर्ष प्राणपण से ब्रह्मचर्य करने पर भी इन्द्रियों की चंचलता या दैहिक विकार में किसी एक की भी निवृत्ति अभी तक नहीं हुई। मन की मलिनता तो बहुत दूर की बात है! तीव्र वैराग्य या कठोर साधन-भजन करने का मेरा सामर्थ्य नहीं है– प्रारब्ध कटेगा भी कैसे? सुनता हूँ, ठाकुर की कृपा से सब होता है, पर ठाकुर की कृपा के ऊपर मेरी निर्भरता या विश्वास कहाँ है। मन में यथार्थ व्याकुलता न आने से निर्भरता या विश्वास का तो कोई अर्थ ही नहीं। भयंकर रोग से पीड़ित रोगी कोई उपाय न देखकर जिस प्रकार चिकित्सक से आरोग्य की आकांक्षा करता है, उस प्रकार से क्या मैं एक बार भी ठाकुर की ओर ताक सका हूँ? मेरे जो ठाकुर हैं– वे परम दयालु हैं, वे बड़े सामर्थी हैं, विशेषकर मेरे हिताकांक्षी हैं– ऐसा यदि थोड़ा भी विश्वास करता, तो फिर क्या चिन्ता थी? दुरावस्था में भी निश्चिन्त रहकर आनन्द मनाते हुए कहता, 'साँप-बाघ यदि खाए, मरण नहीं उसका आए; चिरजीवी गोसाँई बनाए'– यह सोचकर मन पता नहीं कैसा हो गया; बड़ा कष्ट होने लगा। रोने के वेग का मैं संवरण नहीं कर पाया। मन में प्रार्थना करने लगा– ठाकुर रक्षा करो, रक्षा करो।

ठाकुर समाधिस्थ थे; इसी समय सिर उठाते हुए अस्पष्ट स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे– '**भगवान् की कृपा ही सार है। अन्य सब कुछ नहीं है। साधन-भजन केवल जागृत रहने के लिए है– जिससे उनकी कृपा आए तो धारण कर सकें। किसका साध्य है जो साधन-भजन करके उनको प्राप्त कर सके? साधन-भजन करके ही उनको प्राप्त करना पड़ता है, ऐसी कोई बात नहीं है। वे स्वयं प्रकाशित होते हैं, उनकी कृपा होने से ही उनको प्राप्त किया जाता है।**' फिर थोड़ा रुककर पुनः कहने लगे– '**अपनी तृप्ति के लिए ही लोग साधन-भजन करते हैं। मनुष्य को जिस प्रकार भूख लगती है, प्यास लगती है, तब अन्न-जल न मिलने से शान्त नहीं रह पाता, अभाव से बहुत कष्ट होता है; भगवान् का नाम लेना, उनकी पूजा-अर्चना करना भी वैसा ही है। वह किए बिना नहीं रह पाते। कर्म समाप्त किए बिना उनको प्राप्त नहीं कर सकते– यह कहना भी ठीक नहीं है। कर्म समाप्त होने में फिर क्या लगता है? उनकी कृपा होने से एक मुहूर्त में समस्त प्रारब्ध समाप्त हो जाते हैं। महारानी जब एम्प्रेस (साम्राज्ञी) हो गई, उनके एक हुकुम से सैकड़ों-सैकड़ों लोगों की दीर्घकाल की मियाद बिल्कुल खलास हो गई। भगवान् की कृपा होने से, उनकी इच्छा होने से सारे कर्म, समस्त प्रारब्ध एक मुहूर्त में समाप्त हो जाते हैं। उनकी कृपा ही सब कुछ है। अन्य सब कुछ नहीं है। व्याकुल भाव से** उनकी ओर ताकते रहो। उनकी कृपा ही सार है।'

न्यास की उपकारिता: अनुभूति से परमानन्द

13 अगस्त, शनिवार। कुछ दिन पहले ठाकुर ने मुझसे 24 तत्त्वों का न्यास करने के लिए कहा। ठाकुर के आदेश व उपदेशानुसार न्यास करके देख रहा हूँ, वह एक अद्‌भुत वस्तु है। अपने शरीर में प्रत्येक तत्त्व के न्यास के समय उस-उस तत्त्व के आधार स्थान पर गुरुदेव के अंग-प्रत्यंग की स्मृति स्वतः उदित होती है। नाम के स्मरण के साथ-साथ वह स्पष्ट रूप से दीप्तिमान् होकर चित्त को उसमें एकाग्र कर देती है, तब नाम (इष्ट-मन्त्र) आधार में ही लय हो जाता है एवं ठाकुर की स्मृति के सिवा और कुछ नहीं रहता। एक तत्त्व में मन के एकाग्र हो जाने पर उसे छोड़कर अन्य में प्रवेश करने में अनिच्छा एवं बड़ा क्लेश का अनुभव होता है। वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ; चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्; अप्, तेज़ः, मरुत्, व्योम; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; मन, बुद्धि, अहंकार व चित्त– प्रत्येक में इष्ट-मन्त्र से इष्टदेव को न्यास करके उसमें इष्टदेव का ही दर्शन किया करता हूँ। इस समय दर्शन की अनुभूति ही अपना अस्तित्व लगता है; नाममय इष्टमूर्ति से संलग्न होने पर नाम, नामी और नामकारी एक हो जाते हैं, फिर पृथकता का बोध नहीं रहता; उससे परमानन्द प्राप्त हुआ करता है। दिनभर इसी न्यास को लेकर रहने की इच्छा होती है। कभी-कभी फूल, तुलसी, चन्दनादि लेकर समस्त अंग-प्रत्यंग की पूजा करने की इच्छा होती है। ठाकुर से इस विषय में पूछने पर उन्होंने कहा– **"जो करते हो, मन में करना अच्छा है। बाहर ये सब नहीं करना चाहिए। न्यास का एक निर्दिष्ट समय रखना। नित्य-क्रिया के आरम्भ में ही न्यास करना चाहिए। न्यास का भाव सर्वदा भीतर ही रखना चाहिए।"**

मनसा पूजा

इष्ट-मन्त्र से 33 करोड़ देवी-देवताओं की पूजा होती है

16 से 19 अगस्त। प्रातः नित्य-क्रिया सम्पन्न करके ठाकुर के पास बैठा हूँ, तभी कुंज बाबू की वृद्ध सास ने आकर ठाकुर से कहा– 'आज मनसा पूजा है। हमारे घर में मनसा पूजा होगी, पुरोहित कहाँ से लाऊँ?'

ठाकुर ने कहा– **'क्यों? ब्रह्मचारी पूजा कर आएँगे।'** बुढ़िया चली गई। फिर मैंने ठाकुर से कहा– मनसा पूजा मैं कर दूँगा– आपने तो कह दिया है; लेकिन मैं तो मनसा पूजा जानता ही नहीं।

ठाकुर ने कहा– **"इष्ट-मन्त्र से पूजा करना, उससे ही हो जाएगा। उस 'नाम' से 33 करोड़ देवी-देवताओं की पूजा कर सकते हो।"**

ठाकुर की अनुमति लेकर लगभग 1 बजे मनसा पूजा करने हेतु कुंज बाबू

के घर गया। पश्चिम ओर के कमरे में पूजा की विविध प्रकार की व्यवस्था देखकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा। मैं पूजा करने बैठा। कुंज बाबू ने कमरे में आकर पूजा का अनुष्ठान देखकर थोड़ी अप्रसन्नता प्रकट की एवं कहा कि वे इन सब पूजा को आवश्यक नहीं समझते; फिर जिस किसी के द्वारा ये सब पूजा ठीक से नहीं होती। कुंज बाबू की इस प्रकार अवज्ञासूचक बात सुनकर मेरे मन में थोड़ा कष्ट हुआ। जो हो, मैंने मनसा देवी का आह्वान करके इष्ट-मन्त्र से देवी की मूर्ति में अपने इष्टदेव की ही पूजा की। दक्षिणा लेने के लिए ठाकुर ने मुझको मना किया था, अतः पूजा के बाद वह लिए बिना मैं आश्रम आ गया एवं ठाकुर के पास बैठ गया। ठाकुर ने मुझसे पूजा के विषय में पूछा; मैंने सब बतला दिया।

ठाकुर ने कहा– **"गृहस्थों के घर में ये सब पूजा-अर्चना, व्रतादि बहुत आवश्यक है। इससे धर्म जागृत रहता है।"** अपराह्न में कुंज बाबू ने आकर थोड़ा लज्जित होते हुए मुझसे कहा– 'देखिए, आप पूजा करके तो आ गए, फिर कमरा अद्भुत सुगन्धमय हो गया; उस कमरे में जाते ही शरीर-मन शीतल हो गया। कितनी बार जाकर देखा– दिनभर उस कमरे में एक सुगन्ध आती रही; पहले कभी वैसी सुगन्ध मुझे नहीं मिली। मानो वहाँ मनसा देवी आविर्भूत हुई हैं, इस प्रकार स्पष्ट अनुभव हो रहा है। बड़ा आश्चर्य है!

कुंज बाबू की बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; मन में जो क्लेश पाया था, वह बिल्कुल मिट गया। ऐसा लगा, यह सब ठाकुर की ही कृपा है। ठाकुर की पूजा जिन स्थानों पर हुई है, लोगों को उसकी जानकारी न रहने पर भी ठाकुर के अनन्य भक्तजन उस स्थान के प्रति अवश्य अपने-आप आकृष्ट होंगे एवं अन्यान्य स्थानों की अपेक्षा उस स्थान की कुछ-न-कुछ विशेषता भी अवश्य अनुभव करेंगे। पूजा ठीक प्रकार से हुई– कुंज बाबू का यह परिवर्तन उसका एक प्रमाण लगा। ठाकुर ने दया करके मेरी पूजा को स्वीकार की, यह सोचकर बड़ा आनन्द मिला। ठाकुर दया करो; घट-घट में तुम्हारा ही अधिष्ठान समझकर और तुम्हारी पूजा करके जिससे धन्य हो जाऊँ।

ठाकुर का अभिमानपूर्ण कथन– जनेऊ नहीं है? सूक्ष्म शरीर में महापुरुष का कार्य

हमारे आश्रम से दक्षिण ओर दो-तीन मिनट की दूरी पर बड़े तालाब के किनारे पूर्व दिशा में आशानन्द बाउल ने एक अखाड़ा बनाया है। बीच-बीच में वे ठाकुर के पास आया करते हैं। ठाकुर के पास अनेक लोगों का समावेश देखने से साधारणतः वे अपनी अलौकिकता का प्रचार करने लगते हैं एवं अपनी इच्छा से

ही तत्त्व की विभिन्न बातों का उपदेश दिया करते हैं। जो लोग ठाकुर के मुख से दो-चार कथा सुनने की आकांक्षा से आश्रम आते हैं, वे उनके इस व्यवहार से चिढ़ जाते हैं। कल मध्याह्न में ठाकुर को एकान्त में पाकर आशानन्द ने कहा– 'गोसाँई! मुझे देखकर कुछ समझ पाए?'

ठाकुर– **क्या समझूँ?**

आशानन्द– 'आपकी दृष्टि-शक्ति है, कुछ तत्त्वज्ञान भी प्राप्त किए हैं। अच्छा, मेरी ओर एक बार सूक्ष्म दृष्टि से देखिए तो!'

ठाकुर ने कहा– **"कहाँ? कुछ भी तो समझ नहीं पा रहा हूँ।"**

आशानन्द ने थोड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा– 'कुछ समझ नहीं पाए? दृष्टि अभी भी उतनी स्पष्ट नहीं हुई है। सोचिए, मेरे आठ-दस हजार शिष्य हैं, सभी मुझे अवतार कहते हैं। वे लोग भावुकतावश ही कहते हैं, ऐसा नहीं है– वास्तव में वे ऐसी सब विभूतियाँ मेरे भीतर देखते हैं कि उनके लिए वैसा छोड़कर अन्य कुछ कहना सम्भव ही नहीं है। फिर देखिए, शास्त्र में कल्कि अवतार के जो सब लक्षण हैं, मेरे साथ उनका पूरा-पूरा मेल है।'

ठाकुर– **किस-किस लक्षण के साथ मेल है?**

आशानन्द– 'आप किसी से कहना नहीं, आपको प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता हूँ, यह देखिए।' यह कहकर नाक की एक ओर एक तिल दिखलाते हुए उन्होंने कहा– 'क्यों! अब प्रत्यक्ष प्रमाण मिला तो? लगता है, आपने इस पर ध्यान नहीं दिया।' मैं आशानन्द की अंग-भंगिमा देखकर किसी प्रकार भी हँसी को रोक नहीं पाया। ठाकुर ने कुछ कहे बिना आँखें बन्द कर लीं; आशानन्द अपने अखाड़े में चले गए। आजकल 'अवतार' की भरमार है। अनेक लोग अवतार का 'सर्टीफिकेट' लेने ठाकुर के पास आते हैं। फिर निराश होकर गालियाँ देते हुए चले जाते हैं। आज अपराह्न में लगभग 5 बजे आशानन्द के एक शिष्य ठाकुर के पास आए। पूर्व ओर के कमरे में लोगों के बीच से होकर वे ठाकुर के पास जाकर बैठ गए एवं आशानन्द की अद्भुत शक्ति की प्रशंसा करने लगे। फिर उन्होंने ठाकुर से कहा– 'शहर में क्या अब चलती नहीं? गुण तो सभी को पता चल ही गया है, इसलिए अब जंगल में आकर साधु बनकर बैठ गए हैं। अद्वैतवंश के कुल का गौरव नष्ट कर दिए हैं! जनेऊ फेंककर जाति-धर्म से भ्रष्ट होकर अब लोगों का सर्वनाश कर रहे हैं, हँ! फिर ब्राह्मणों को भी दीक्षा दे रहे हैं; किसी गोसाँई ने कभी कहीं जनेऊ फेंका है?' उनके इस प्रकार दुर्वचन सुनकर सब चुप हैं, ठाकुर आँखें बन्द करके बैठे हुए थे, एकाएक वे थोड़ा उग्र होकर उससे उच्च स्वर में कहने लगे– **'जनेऊ नहीं है? अभी दस-दस जनेऊ निकाल सकता हूँ। तू कैसे देखेगा? अन्धा जो है!'**

बात पूरी होते ही सुभड्या-निवासी साधु यदुबाबू चीखते हुए एकदम उछल पड़े। 'यह क्या है रे! यह क्या है रे!' इस प्रकार कहते-कहते वे तुरन्त मूर्च्छित हो गए। सब लोग इस समय यदुबाबू को ही लेकर व्यस्त रहे। इसी समय उस हलचल के बीच आशानन्द का शिष्य बाहर निकलकर सीधे दौड़ते हुए भाग गया। जो हो, कुछ क्षण बाद यदुबाबू धीरे-धीरे चैतन्य हुए एवं किसी के साथ कोई बातचीत न करके अपने घर चले गए।

आज मध्याह्न में महाभारत पाठ के बाद ठाकुर से कहा– वह व्यक्ति कल आपको गालियाँ देने के बाद फिर डरकर भाग गया; नहीं तो हम लोगों में से किसी के हाथ से वह अवश्य मार खाता। आपको लेकिन आज तक कभी ऐसे अभिमान के साथ इस प्रकार किसी को धमकाते देखा नहीं।

ठाकुर– **क्या धमकाया था? कहाँ? मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं है।**

मैं– 'अभी दस-दस जनेऊ निकाल सकता हूँ, तेरी आँखें नहीं हैं, अन्धा है; देखेगा कैसे?' ये सब बातें आपने खूब फटकारकर उसको सुना दी।

मेरी बातें सुनकर ठाकुर ने बड़े विस्मय के साथ कहा– **"क्या कहते हो? मैंने वैसा कहा? नहीं, मैंने तो नहीं कहा!"**

मैं– हाँ, आपने ही कहा; आपकी ही तो आवाज थी।

ठाकुर– **ये सब बातें मेरे मुख से निकली हैं, मुझे स्मरण नहीं आता; किन्तु एक ब्राह्मण मेरे पास खड़े रहकर वैसा ही कुछ-कुछ कर रहे थे। कहकर वे तुरन्त ही चले गए। तुम लोगों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया?** थोड़ा रुककर ठाकुर ने फिर कहा– **"आश्चर्य है! महात्माओं के द्वारा कितने प्रकार की घटनाएँ होती हैं। भगवान् के आश्रितों के प्रति किसी भी प्रकार का अत्याचार, अपमान होने से वे लोग उसे सहन नहीं करते। महापुरुष लोग जो शासन करते है, देखा जाता है, वह कई जगह प्रायः इसी प्रकार ही होता है। अनेक समय वे लोग स्वयं कुछ नहीं करते।"**

कल इस घटना के बाद अचानक जो अचेत हो गए थे, आज वही यदुबाबू आश्रम में आकर सबके सामने बोले– 'महापुरुषों का सब कुछ आश्चर्यजनक है! वह व्यक्ति जब गोसाँईजी को गालियाँ दे रहा था, एक गौरवर्ण के पवित्र मूर्ति तेजस्वी ब्राह्मण ने गोसाँईजी के ठीक दाहिनी ओर बेड़े के किनारे पर खड़े रहकर उसे खूब धमकाते हुए कहा– 'जनेऊ कैसे देखेगा? आँखें नहीं हैं, तू तो अन्धा है।' यह सब देख-सुनकर मेरी विचित्र दशा हो गई। ब्राह्मण तुरन्त वहाँ से चले गए।'

यदुबाबू की बात सुनकर मैं चकित हो गया। यदुबाबू के मुख से यह बात न सुनता तो मेरे भीतर की शंका दूर होती या नहीं, इसमें सन्देह है। हाय रे भाग्य!

ठाकुर के मुख से छोटे भैया की बातें: पिता का स्वभाव तान्त्रिक साधना बहुत कठिन है

आज महाभारत पाठ के बाद पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर के पास बैठा हूँ, ठाकुर ने स्वतः ही छोटे भैया की अस्वस्थता की बात पूछी। मैंने कहा– छोटे भैया स्कूल के दिनों में कफ और वायु-विकार के कारण पढ़ाई-लिखाई छोड़कर दो वर्ष घर में बैठे रहे। नाना प्रकार की चिकित्सा से भी विशेष कोई उपकार नहीं हुआ। अभी भी वे उस रोग से कभी-कभी बहुत कष्ट पाते हैं।

ठाकुर ने कहा– **"शारदा एक अन्य ही प्रकार का व्यक्ति है। आँहा! ऐसे लोग भी संसार में पुनः आते हैं, बड़ा आश्चर्य है! इस प्रकार का अन्तःकरण देखा नहीं जाता; कोई गड़बड़ नहीं, भीतर-बाहर एक है। उसमें सेवा-भाव बड़ा अद्भुत है– साधारण लोगों के समान नहीं है। उसका स्वभाव ही वैसा है, बहुत ही अच्छा है।"**

ठाकुर ने बातों-बातों में मेरे पिता के विषय में पूछा। कुछ जानता नहीं, इसलिए मैंने संक्षेप में कहा– मेरी चार-पाँच वर्ष की आयु में ही पिताजी ने पित्तशूल के रोग से कोलकाता में गंगा के किनारे देहत्याग किया। वे बड़े भले मानुष थे। साधन-भजन में ही दिन का अधिकांश समय बिताते थे। परिवार का भरण-पोषण करके सारे पैसे लोगों के हित के लिए व्यय करते थे। संचय कभी नहीं करते थे; वरन् देहत्याग के समय बहुत ऋण छोड़कर गए थे। रजनीकान्त भट्टाचार्य नामक बेलपुकुर के एक तान्त्रिक सिद्ध पुरुष पिताजी के गुरु थे। नियमानुसार साधन-भजन संसार में रहकर नहीं होता, सोचकर पिताजी संन्यासी होकर निकल गए थे। उनके गुरुदेव ने नाना स्थानों में बहुत ढूँढ़ा; मिलने पर वे उनको घर ले आए। तान्त्रिक साधना में सम्भवतः काली महिला की आवश्यकता होती है, इसलिए अधिक आयु में भी उन्होंने पुनः विवाह किया। मदिरापान उन्होंने कभी नहीं किया, पर महाशंख की माला के लिए वे मदिरा का व्यवहार करते थे। कई बार वे उस माला के जप में सारी रात बिता देते थे। बड़े चरित्रवान् थे। घर और मोहल्ले के वृद्धों से सुना है, उनको कभी किसी ने किसी भी अवस्था में क्रोध करते नहीं देखा; यह उनके जीवन की विशेषता थी।

ठाकुर– **तुम्हारी वह सौतेली माँ क्या अभी नहीं है?**

मैं– नहीं हैं; मेरे छोटे भाई रोहिणी को छः महीने की अवस्था में छोड़कर उन्होंने देह त्याग दी।

ठाकुर– **हाँ, लड़का होने के कारण वे मर गईं। ये तान्त्रिक साधना बड़ी ही कठिन है। आजकल उसमें सफल होते प्रायः देखा नहीं जाता।**

हठकारिता से रोग में वृद्धि : दुग्धपान की व्यवस्था

कुछ समय से मेरा शरीर पुनः अस्वस्थ हो गया है। रोग का ठीक कारण समझ में नहीं आ रहा है। आहार के प्रति अत्यधिक कठोरता ही इसका कारण है, ऐसा लगता है। प्रातः एक बार थोड़ी चाय ही पीता हूँ। फिर संध्या के समय केवल नमक डालकर पानी मिला हुआ भात खाया करता हूँ। चावल की मात्रा कम करके क्रमशः पानी की मात्रा बढ़ाने के प्रयास में हूँ; किन्तु शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। हाथ-पैर कुछ क्षण एक ही अवस्था में रखने से सुन्न हो जाते हैं और कष्ट का अनुभव होता है; फिर कभी-कभी अपने-आप विभिन्न जोड़ों में अकड़न आ जाती है। साधन-भजन में अब वैसा उत्साह नहीं रहा। सामान्य चलने-फिरने में भी कष्ट का अनुभव होता है। अब क्या करना है, कुछ निश्चय नहीं कर पाने से जाकर ठाकुर को सब बतलाया।

ठाकुर ने कहा— **"तुमसे पहले ही कहा था, अभ्यास खूब धीरे-धीरे करना। हड़बड़ी करने से कुछ अच्छे-से नहीं होता, विघ्न आ जाता है। जल-भात खाना छोड़ दो। अब से खिचड़ी या चावल और सब्जी को एक साथ उबालकर खाना; घी कुछ अधिक मात्रा में लो। अभी कुछ दिन एक पाव दूध लेकर पिओ, तब फिर अस्वस्थता दूर हो जाएगी।"**

बहुत दिनों से मैंने दूध पीना छोड दिया है, इस कारण दूध पीने में थोड़ी असम्मति व्यक्त की।

ठाकुर ने कहा— **"नहीं, कुछ दिन दूध पीना होगा। सोने के समय एक उबाल का दूध पी लेना।"**

ठाकुर द्वारा मेरे लिए दुग्धपान की इस व्यवस्था को अपनी हठकारिता का ही दण्ड समझकर चुप रहा। अब कहाँ दूध मिलेगा, यह सोचकर चिन्ता होने लगी। लाचार होकर दूध के अनुसन्धान में आश्रम से बाहर निकला। एक हिन्दी भाषी व्यक्ति को रास्ते में देखकर पूछा— यहाँ पर दूध कहाँ मिलता है, बतला सकते हैं? उसने कहा, 'आपको कितना दूध चाहिए? संध्या के समय लेने से आठ सेर के भाव से एक पाव दूध मैं दे सकता हूँ। आपके आश्रम के पास में ही मेरा ठिकाना है; आपके सामने दूध निकालकर दूँगा।' राधारमण बाबू के पश्चिम ओर के बगीचे में यह व्यक्ति रहता है, मैं देखकर आ गया। बहुत ही अद्‌भुत है ठाकुर की दया! उन्होंने हुकुम देने के पहले ही सब ठीक कर रखा है।

उच्छिष्ट बटलोई किसने माँजी

20 अगस्त, शनिवार। सूर्यास्त के पहले भोजन नहीं बन पाने से उस दिन मेरा भोजन नहीं होता। नाना कार्यों के चक्कर में भोजन का समय लगभग बीतता देखकर बड़ा चिन्तित हो गया। अत्यधिक भूख लगने पर मैं भोजन बनाने गया। तब अचानक स्मरण हुआ कि कल भोजन का बर्तन माँजकर रख नहीं पाया था। आज माँजूँगा, यह सोचकर मैंने बरामदे के एक कोने में जूठी बटलोई रख दी थी। संध्या होने को है, अब बर्तन माँजकर भोजन बनाने के बाद निर्दिष्ट समय के भीतर भोजन समाप्त करना असम्भव है, सोचकर अन्त में मैंने आज भोजन करने का विचार त्याग दिया। केवल बर्तन माँजकर ही रख दूँ, यह सोचकर उसे लाने गया, तो देखा, पता नहीं किसने बटलोई माँजकर रख दी-- देखकर मैं चकित हो गया। किसने मेरे जूठे बर्तन को माँजकर रखा, एक-एक करके मैंने सब लोगों से पूछा; किन्तु आश्रम के स्त्री-पुरुष सभी ने कहा कि उन्होंने नहीं रखा। भोजन बनाने का समय बीत जाने पर भी मेरा भोजन करना ठाकुर की इच्छा है– इस घटना से यह अनुमान लगाकर मैंने खिचड़ी बनाई एवं तृप्तिपूर्वक भोजन किया। बर्तन को इतने अच्छे-से किसने माँजकर रखा, इसी चिन्तन में मेरी सारी रात बीत गई। छोटी-छोटी घटना में बारम्बार ठाकुर की असीम कृपा प्रत्यक्ष करके भी क्रमशः चकित होकर मानो अनजान बन जाता हूँ; किन्तु इतना होने के बाद भी अविश्वासी मन ठाकुर के ऊपर किसी प्रकार विश्वास नहीं कर पाया।

इच्छा मात्र से वस्तु की प्राप्ति: अविश्वासी मन

आज प्रातःकाल से भयंकर वर्षा होने लगी। हवन, पाठ आदि सम्पन्न करके आसन पर बैठा हूँ। सोचा, इस समय घर पर रहने से भूना चावल खाता। पाँच-सात मिनट के भीतर ही देखा, विधु घोष जी की कन्या दामिनी ने एक कटोरी गरम भूना चावल, हरी मिर्च व कटहल का भूना हुआ बीज मेरे सामने रखकर कहा, 'माँ ने आपको खाने के लिए दिया है।' इसी प्रकार एक दिन भोजन के पहले केला खाने की इच्छा हुई; उसी समय फणिभूषण ने पाँच अच्छे केले लाकर देते हुए कहा, 'नानीजी ने आपको ये पाँच केले खाने के लिए दिए हैं।' इसमें ठाकुर की कृपा है, एक बार सोचा भी नहीं। बुढ़िया के ही असाधारण स्नेह की बात सोचने लगा। परसों प्रातःकाल मूसलधार वर्षा होने लगी; बाहर नहीं निकल पाएँगे। आसन पर बैठे-बैठे सोचने लगा– 'ठाकुर! अभी गरम चाय मिलने से कितना अच्छा होता।' पाँच-छः मिनट के बाद ही देखा, पानी में भीगते हुए श्री कुंज घोष जी ने मेरे लिए गरम-गरम चाय और मोहनभोग लाकर कहा, 'आपको क्या कोई रोग हुआ है?

गोस्वामीजी ने यह चाय और मोहनभोग आपके लिए भेजा है।' इसमें भी ठाकुर की दया की बात नहीं सोची। वर्षा होने के कारण लगता है, अधिक चाय बन गई थी, मुझे चाय अच्छी लगती है, इसलिए ठाकुर ने मेरे लिए भिजवाई है– यही सोचा। हाय रे भाग्य! विश्वास का थोड़ा संकेत पाने से कहाँ उसको प्राणपण से पकड़कर रखना तो दूर, कल्पना द्वारा उस सहज सत्य को भी मैं मिथ्या कारण बनाकर इस ढीठ और अविश्वासी मन को सान्त्वना देता हूँ।

बिहारीलालजी के विग्रह को प्रसाद के लिए कहना

21 अगस्त, रविवार। कल रात शान्तिसुधा ने बातों-बातों में ठाकुर से कहा– 'बाबा, सनातन बाबू के अखाड़े में बिहारीलालजी का विग्रह है; एक दिन उनका प्रसाद पाने की इच्छा है।'

ठाकुर ने कहा– **"प्रसाद में क्या खाने की इच्छा है, कहो।"**

शान्तिसुधा– अच्छा मालपुआ का प्रसाद।

ठाकुर– **ठीक है, बिहारीलालजी को मैंने तेरी बात बतला दी; जगबन्धु कल जाकर प्रसाद ले आए।**

आज दिन में लगभग साढ़े 10 बजे जगबन्धु बाबू ने अखाड़े में जाकर हमारे आश्रम के नाम से प्रसाद माँगा। सुना कि सेवक ने बड़े आग्रहपूर्वक श्रद्धा के साथ अधिक मात्रा में प्रसाद देकर कहा, 'हमारे यहाँ प्रतिदिन अन्न का भोग लगता है, आज प्रातः अचानक एक धनी व्यक्ति ने बड़े परिमाण में मालपुआ का भोग दिया।' आश्रम के हम सब लोगों ने वही मालपुआ का प्रसाद पाया। शान्तिसुधा ने कहा– 'ऐसा स्वादिष्ट मालपुआ पहले कभी मैंने खाया है, मुझे ऐसा स्मरण नहीं आता।' ठाकुर का सब कुछ अद्‌भुत है! इन सब घटनाओं का क्या कारण बतलाऊँ? विश्वास के अभाव से आकस्मिक घटना मानकर ही मन को सान्त्वना देता हूँ!

'हाँ! तुम्हारी भी लीला नित्य है': तपस्या का उपदेश

श्याम भाषा

22 अगस्त, सोमवार। आज बहुत धूप है, भयंकर गर्मी पड़ गई। मध्याह्न में ठाकुर ने कहा– **"कमरे का दरवाजा बन्द कर दो।"** मैंने आसन से उठकर दरवाजा बन्द करने के लिए जैसे ही उसको पकड़कर खींचा, ठाकुर कह उठे– **"थोड़ा रुको, देख लूँ। कितना सुन्दर पर्वत है! हिमालय दिख रहा है– सोने के जैसा शिखर, कितना आश्चर्यजनक है!"** देखते-देखते ठाकुर ने

आँखें बन्द कर ली। मैं भी दरवाजा बन्द करके आसन पर बैठकर पंखा लेकर ठाकुर को हवा करने लगा। कुछ समय के बाद ठाकुर भावावेश में कहने लगे– **'हाँ, हाँ, तुम्हारी भी, तुम्हारी भी लीला नित्य है!'** यह कहकर दुर्गा देवी की स्तुति करते-करते वे समाधिस्थ हो गए। बाह्यज्ञान होने पर उनसे पूछा– 'तुम्हारी भी लीला नित्य है', आपने किससे कहा?

ठाकुर ने कहा– **"भगवती दुर्गा आई थीं। बोलीं, 'तुम श्रीकृष्ण की लीला को ही नित्य कहते हो। क्यों? मेरी लीला क्या नित्य नहीं है? देखो न!' यह कहकर वे सब पुत्र-कन्याओं के साथ प्रकट होकर अद्‌भुत लीला का दर्शन कराने लगीं। बहुत ही आश्चर्यजनक है! इसलिए कहा, तुम्हारी भी लीला नित्य है।"**

इसके बाद ठाकुर अपने-आप कहने लगे– **"योग बड़ा कठिन विषय है। हम लोगों के इस पन्थ को वास्तव में योग नहीं कहते– योग की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। विष्णु के नाभि-पद्म से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने सर्वप्रथम जो साधना की थी– 'तप, तप' वाणी श्रवण करके उन्होंने जिस प्रकार तत्त्व को जानने का प्रयास किया था, हम लोगों की यह साधना वही है। हमारी साधना सम्पूर्णतः भीतर की क्रिया है, बाहर का कुछ नहीं है।"** क्षणभर बाद पुनः कहा– **'सदा शम, सन्तोष, विचार और सत्संग चाहिए।'**

1. मन की साम्य अवस्था को ही शम कहते हैं। निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, सुख-दुःख, इष्ट-अनिष्ट सभी अवस्था में मन एक जैसा अटल व अचल रहेगा। बाहर में यम-नियम का अभ्यास और भीतर में वैराग्य के द्वारा यह सफल होता है।

2. सब समय मन सन्तुष्ट रहेगा, किसी भी कारण से मन में उद्वेग-अशान्ति न आए। अतएव सदा बहुत सावधान रहना आवश्यक है। अशान्ति ही नरक है, चित्त प्रफुल्लित न रहने से कोई काम नहीं होता।

3. सभी अवस्था में अच्छे-बुरे, सत्-असत् का विचार करके चलो। बातचीत, कामकाज कुछ भी सदुद्देश्य के अतिरिक्त अकारण नहीं करना। भगवान् को लक्ष्य में रखकर जो कुछ भी किया जाता है, वही सत् है; उनको छोड़कर सब असत् है। प्रत्येक कार्य में इस प्रकार विचार करके चलने से फिर कोई चिन्ता नहीं रहती। इसी से सब प्राप्त हो जाता है।

4. प्रतिदिन अन्ततः कुछ समय के लिए सत्संग करना। भगवान् ही सत् हैं। भगवान् ही सत्संग हैं। भगवत् आश्रित साधु-सज्जनों का संग भी सत्संग है। वे लोग किस प्रकार समय बिताते हैं, उनके कार्य-कलाप,

आचार-व्यवहार कैसे हैं, उसे श्रद्धापूर्वक देखो। आवश्यक लगने पर उनके साथ सत्संग कर सकते हो। सद्ग्रन्थ, ऋषि प्रणीत शास्त्र-पुराणादि का पाठ भी सत्संग है। उससे ऋषियों का संग करना ही हो जाता है। प्रतिदिन कुछ समय धर्म-ग्रन्थ का पाठ करो। अब से ठीक-ठीक इन सब नियमों का पालन करके चलना।

कुछ समय बाद ठाकुर पुनः कहने लगे– 'इन चारों के साथ अन्य चार नियमों का पालन करना कर्त्तव्य है– स्वाध्याय, तपस्या, शौच एवं दान।'

1. स्वाध्याय केवल अध्ययन नहीं है। गुरु प्रदत्त इष्ट-मन्त्र का श्वास-प्रश्वास में जप करने को भी स्वाध्याय कहते हैं, यही यथार्थ स्वाध्याय है। नाम-जप करते-करते अवसाद लगने पर कुछ समय धर्म-ग्रन्थ का पाठ कर लेना।

2. तपस्या का अभी से खूब अभ्यास करो– शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जितने प्रकार के ताप हैं, किसी प्रकार भी चित्त को जिससे विचलित न करे। त्रिताप की ज्वाला भयानक ज्वाला है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा आदि में मन की अवस्था जिससे एक जैसी ही रहे– धीरे-धीरे यही अभ्यास करना। समस्त अवस्था में धैर्य रखना ही तपस्या है।

3. शुचि का अर्थ है, सभी अवस्था में बाहरी और भीतरी पवित्रता। मन को जिस प्रकार निर्मल रखने की चेष्टा करोगे, बाहर से भी उसी प्रकार पवित्र रहोगे। बाहरी पवित्रता अति आवश्यक है। शरीर शुद्ध नहीं होने से अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। अन्तःकरण शुद्ध न होने से नाम-जप में वास्तविक रुचि नहीं होती। भगवान् के प्रति श्रद्धा-भक्ति कुछ भी नहीं होती।

4. प्रतिदिन कुछ दान करना। दया, सहानुभूति होना ही यथार्थ दान है। प्रतिदिन किसी-न-किसी का कष्ट दूर करने का प्रयास करना। अन्य कुछ न कर सको, तो किसी को कम-से-कम दो मीठी बातें कहो– वह भी दान है। प्रतिदिन इन कुछ विषयों पर ध्यान रखकर चलने से फिर कोई चिन्ता नहीं रहती।

ठाकुर प्रायः ही मग्नावस्था में कितना कुछ कहते हैं, कुछ समझ नहीं पाता। वह न हिन्दी, न पारसी, न संस्कृत, न अँग्रेजी– कोई परिचित भाषा नहीं होती। ऐसी भाषा पहले कभी सुनी ही नहीं। कुछ तो जैसे संस्कृत के समान लगती है। समाधि भंग होने के बाद ठाकुर से पूछा– समाधि के समय आपके मुख से संस्कृत

के समान भाषा में कुछ-कुछ बातें बाहर निकल पड़ती हैं, सुनने में बहुत अच्छी है। वह कौन-सी भाषा है? कुछ समझ में नहीं आता।

ठाकुर ने कहा– **"ओह, तुमने उसे सुन लिया क्या? समझोगे कैसे? वह तो पृथ्वी की भाषा नहीं है– गोलोक की भाषा है, श्याम भाषा। उसी भाषा में वहाँ बातचीत होती है। संस्कृत देव भाषा है।"**

विवाह का प्रलोभन: सावधान, प्रार्थना करते ही वह मंजूर होगी

24 अगस्त, बुधवार। बड़ी कठिनाई में पड़ गया हूँ! अप्रैल महीने से योगजीवन मेरे पीछे लगे हुए हैं। कुतु से विवाह करने के लिए मुझसे बहुत जिद कर रहे हैं। उस दिन ठाकुर के सामने दादीजी ने भी मुझसे कहा, 'कुलदा, तुम कुतु से विवाह कर लो– मेरी बात सुनो, कल्याण होगा। विवाह करने से क्या धर्म-कर्म नहीं होता? गोसाँई ने भी तो विवाह किया हैं, उनका क्या धर्म-कर्म नहीं हुआ है?' इत्यादि। मैं कोई उत्तर न देकर लज्जा से सिर झुकाकर बैठा रहा। योगजीवन ने कहा– 'कुतु से तुम विवाह करो, माता ठाकुरानी की भी ऐसी इच्छा थी। उससे विवाह करने पर तुम्हारे धर्म-प्राप्ति में कोई हानि नहीं होगी, वरन् बड़ी सहायता मिलेगी। ऐसी असाधारण लड़की वर्तमान समय में संसार में अन्य कोई है, इसमें सन्देह है। उस पर भगवान् की विशेष कृपा है, यह देखकर चकित हो जाता हूँ। उससे विवाह करने से तुम्हारे ब्रह्मचर्य में कोई बाधा नहीं आएगी। तुम जिस प्रकार ब्रह्मचारी हो, कुतु भी उसी प्रकार ब्रह्मचारिणी रहकर तुम्हारी सहधर्मिणी होगी। उसको लेकर तुम्हें गृहस्थी नहीं करनी होगी। चिरकाल के लिए आश्रम में हमारे साथ रहना। उसके अतिरिक्त गोसाँईजी ने तुम्हें सदैव के लिए तो यह ब्रह्मचर्य नहीं दिया है! निर्दिष्ट समय में इस व्रत को सम्पन्न करके तुम कुतु से विवाह कर लो।'

अब देख रहा हूँ, आश्रम में रहना मेरे लिए कठिन हो गया है। कुतु बहुत छोटी लड़की नहीं है, विवाह की आयु हो गई है। अतः लोगों से बार-बार यह सब बातें सुनकर मेरे सम्बन्ध में उसका भी स्वभावतः थोड़ा संकोच भाव आ गया है। योगजीवन की बातें बारम्बार सुनते-सुनते मेरा चित्त कभी-कभी चंचल हो जाता है। मैंने ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है, सारा जीवन कुवाँरा रहते हुए एकमात्र भगवान् को ही लक्ष्य रखकर चलने का निश्चय किया है। अब यह क्या झमेला आरम्भ हो गया? ठीक है, कुतु के सद्‌गुणों की तुलना नहीं। मेरे जीवनभर के साधन-भजन, तपस्या से भी उसके स्वाभाविक सद्‌गुणों का अणुमात्र प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं है। जिनके भुक्तावशिष्ट को प्रसाद मानकर मैं कणमात्र ग्रहण करने से अपने को कृतार्थ समझता हूँ, कुतु उन्हीं ठाकुर के श्रीअंग के सारात्सार वीर्य से उत्पन्न हुई है।

उसके सत्संग से यह जीवन परम पवित्र और धन्य होगा, उसमें कोई सन्देह नहीं; किन्तु ठाकुर के प्रति मेरी एकनिष्ठता किस प्रकार टिकेगी? एकमात्र ठाकुर के सिवा अन्य किसी भी पवित्र श्रेष्ठ वस्तु में मेरा चित्त आकृष्ट होने से वह मेरी लक्षित वस्तु की प्राप्ति में बाधक है, अतः उसे बड़ा अनिष्टकर समझता हूँ। अखण्ड ब्रह्मचर्य को लक्ष्य करके दयालु ठाकुर की कृपा से यदि केवल उनके श्रीचरणों में चित्त को लगाए रख सकूँ, तो गंगा, यमुना, लक्ष्मी, सरस्वती आदि समस्त देवियाँ भी मेरे सान्निध्य और सम्पर्क के लिए आग्रही होंगी। ठाकुर ने कुछ दिन पहले कहा था– **'तुम्हारे भविष्य में विवाह का प्रलोभन है। तब उसे काकविष्ठावत् त्याग कर पाए, तो सब हो गया।'**

ठाकुर की इस भविष्यवाणी का उद्देश्य लगता है, मेरी यह वर्तमान दशा है। आहार, निद्रा, मैथुन का संयम भी केवल इस देह की अविकृत अवस्था की प्राप्ति के लिए है। मैथुन विहीन और अनासक्त रूप से यदि मेरा यह विवाह हो जाता है, तब तो सभी प्रकार से मैं लाभान्वित हुआ। अतएव सबसे पहले ठाकुर के चरणों में ऊर्ध्वरेता की अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करूँ। यह विचार करके आज दिन के साढ़े 9 बजे दक्षिण ओर के कमरे में अपने आसन पर बैठकर एकाग्र मन से नाम-जप करने लगा एवं साथ-साथ ठाकुर के चरणों में प्रार्थना की– गुरुदेव! मेरा यथार्थ हित किसमें है, अहित किसमें है, कुछ नहीं जानता; तथापि भयंकर क्लेश के समय तुम्हारी ओर ताकता हूँ। दया करके मुझको ऊर्ध्वरेता कर दो! अन्यथा मेरे लिए कोई उपाय नहीं है। काम के आकर्षण से यह चित्त यदि कामिनी में ही आसक्त रहता है, तो पूरा मन तुम पर किस प्रकार लगाऊँगा? दया करके मुझे ऊर्ध्वरेता करके अपने प्रति एकनिष्ठ कर दो! मेरी अन्य कोई आकांक्षा नहीं है।

इस प्रकार प्रार्थना करते-करते रोने लगा। इसी समय ठाकुर पूर्व ओर के कमरे से उच्च स्वर में मुझको पुकारने लगे। सुनते ही मैं दौड़कर उनके पास गया। दरवाजे के सामने पहुँचते ही ठाकुर ने मेरी ओर देखकर खूब धमकाते हुए कहा– **"ब्रह्मचारी, खूब सावधान! प्रार्थना करने से ही वह मंजूर हो जाएगी। किसमें अच्छा है, किसमें बुरा– जब कुछ नहीं जानते, तब प्रार्थना करने में खूब सावधान!"** यह कहकर ठाकुर ने पुनः भागवत पाठ आरम्भ कर दिया। मैं धीरे-धीरे अपने आसन पर आकर सोचने लगा– ये क्या हो गया? ठाकुर ने मुझे क्यों डाँटा? आत्मा का जिससे परम कल्याण हो, वही तो उनसे प्रार्थना की थी। मेरा तो सिर चकरा गया। फिर धीरे-धीरे थोड़ा शान्त होकर नाम-जप करने लगा। कुछ समय बाद सोचा– हाय रे भाग्य! ठाकुर के वाक्य में, व्यवहार में श्रद्धा और निर्भरता नहीं होने से ही तो मैंने ऐसी प्रार्थना की थी; माँ की गोद में रहकर लड़का दुग्धपान करते-करते हौआ के डर से चिल्लाता है, तो माँ थोड़ा डाँटेंगी भी नहीं?

ठाकुर! प्रार्थना करके मैंने वास्तव में अपराध किया है– दया करके क्षमा करो।

भैया के पास जाने हेतु अचानक बेचैनी: ठाकुर का आदेश

26 अगस्त, शुक्रवार। आज अन्यान्य दिनों की भाँति रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर न्यास आदि सम्पन्न करने के बाद स्नान-तर्पण करके आया। होम के बाद आसन पर बैठकर नाम-जप करते-करते अचानक बड़े भैया का स्मरण होने लगा। भैया को देखने के लिए मन बहुत बेचैन हो उठा; किन्तु इस बेचैनी का कारण कुछ समझ में नहीं आया। तथापि इतना व्याकुल हो उठा कि आज ही भैया के पास जाने की इच्छा होने लगी। भैया ने अपने पास आने के लिए मुझसे कभी कहा नहीं और न ही ठाकुर ने किसी प्रकार का कोई अभिप्राय अभी तक प्रकट किया है। ठाकुर के पास जिस प्रकार आराम और आनन्द से हूँ, उसका बिन्दुमात्र भी संसार में कहीं मिलने की सम्भावना नहीं है; फिर भी अकारण मेरी ऐसी दुर्मति क्यों हुई? सुना है, यथाविधि तीर्थवास से अथवा यम-नियम के दुर्भेद्य घेरे के भीतर रहकर भगवत्-भजन करने से या सर्वोपरि एकमात्र सद्गुरु के आविच्छेद संग से कठिन प्रारब्ध का भी क्षय हो जाता है। लगता है, मेरे प्रारब्ध के अधिष्ठात्री देवी-देवतागण अपने भोग क्षेत्र इस देह से गुरुसंग के कारण बेदखल होते देखकर डर गए हैं, इसीलिए भोग का समय समाप्त होने के पहले ही निर्विघ्न चलने वाली दुष्ट सरस्वती को मेरी राशि में लाकर सत्संग से दूर होने की दुर्मति कर दे रहे हैं; अथवा सम्पूर्ण नियन्त्रण करने वाले गुरुदेव ने ही मेरे किसी कल्याण के अभिप्राय से अचानक इस प्रकार का भाव मेरे भीतर संचारित कर दिया है; इसका कुछ निश्चय न कर पाने से मैं ठाकुर के पास जा पहुँचा। देखा, ठाकुर ध्यानस्थ हैं। कुछ क्षण बाद उन्होंने मेरी ओर देखा। मैंने कहा– आज आसन पर बैठकर अन्यान्य दिनों की भाँति नाम-जप करते-करते अचानक भैया का स्मरण हुआ। क्रमशः मन इतना बेचैन हो गया कि नित्यकर्म भी ठीक प्रकार से कर नहीं पाया। ऐसा क्यों हुआ? कई बार तो विपथ पर चलाने के लिए शैतान लोग ही दुर्मति उत्पन्न कर देते हैं। आपका संग छुड़ाने के लिए क्या यह उन लोगों का कार्य है या आपकी इच्छा से ही इस प्रकार हो रहा है?

ठाकुर– **हाँ, तुम्हारे भैया अयोध्या में प्रायः ही अच्छा संग पाते थे। अभी जहाँ गए हैं, वहाँ अच्छे संग का बड़ा अभाव है। अभी कुछ दिन तुम उनके पास जाकर रहते हो, तो उनके लिए बड़ा अच्छा हो जाता; फिर उनके प्रति तुम्हारा जो कर्त्तव्य है, वह भी हो जाता। कुछ दिन भैया के पास रहकर आ जाओ। शीघ्र ही तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है।**

गुरु की यह देह अनित्य है: छाया से काया मिल जाती है

भैया के पास शीघ्र जाने के लिए ठाकुर का आदेश सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। मैंने ठाकुर से कहा– आपने जैसा कहा, वैसा ही करूँगा। फिर भी आपको छोड़कर कहीं जाकर रहने की इच्छा नहीं होती, रह भी नहीं पाता। बहुत कष्ट होता है।

ठाकुर– **इस प्रकार होना ठीक नहीं है; यही माया है, बद्धता है। गुरु जो वस्तु है, वह तो यह देह नहीं है। इस देह के ही भीतर अन्य कुछ है, वह जड़ नहीं है।**

मैं– ये तो बड़ी विषम बात है! यह देह गुरु नहीं है, तो फिर गुरु कौन हैं? इस देह के भीतर क्या है, क्या नहीं है– उसे तो देखा नहीं और जानता भी नहीं। गुरु की देह जड़ नहीं है, नित्य है– यह तो मैंने सुना है; इसलिए इसी रूप का ध्यान करता हूँ। यह यदि कुछ नहीं है, तब तो सब व्यर्थ है!

ठाकुर– **व्यर्थ नहीं है; गुरु की जो देह नित्य है, वह यह देह नहीं है। इस देह के ही भीतर ठीक इसी प्रकार अन्य देह है। वह सच्चिदानन्द रूप है, इसलिए नित्य है; यह जो देह देख रहे हो, उसकी ही छाया है। जैसे आईने में मुख की छाया पड़ती है; छाया ठीक मुख के अनुरूप है, किन्तु कोई वस्तु नहीं है, केवल छाया है। यह देह भी उसी प्रकार है। उसकी इस छाया द्वारा ही उस रूप को पकड़ना पड़ता है, अन्य कोई उपाय नहीं है। इसी रूप के ध्यान से वह सच्चिदानन्द रूप दिखता है। छाया को पकड़े बिना उस काया को कैसे पाओगे?**

मैं– इस देह रूपी छाया का तो समय-समय में परिवर्तन हो जाता है; परिवर्तनशील इस चंचल छाया को पकड़ने से भीतर का वह अपरिवर्तनीय नित्य रूप कैसे मिलेगा? किस छाया का ध्यान करूँगा?

ठाकुर– **जो पहले देखे हो।**

मैं– मैं पहले व बाद कुछ नहीं जानता। जब जो रूप मुझे अच्छा लगता है, मैं उसी का ध्यान करता हूँ।

ठाकुर– **उससे भी होगा, वही करो। सभी नित्य है।**

मैं– आपका साथ छोड़कर जाने पर किस विषय में विपत्ति की आशंका है? किस-किस विषय में सावधान रहूँगा?

ठाकुर– **अपने नित्यकर्म को यदि नियम के अनुसार करते जाओ, तो कोई डर नहीं है– जहाँ कहीं भी जाओ, कोई अनिष्ट नहीं होगा। फिर नित्यकर्म बन्द होने से ही विपत्ति की सम्भावना है। और एक बात**

का ध्यान रखना, संग प्रायः ही हानि करता है; संग से कई बार भयानक प्रलोभन भी आ जाते हैं। हो सकता है कोई कहे, 'इस प्रकार से चलो, तुम्हें यह-यह अवस्था प्राप्त होगी; मुझसे दीक्षा ले लो, एक घण्टे में ही ऊर्ध्वरेता कर दूँगा।' ऊर्ध्वरेता होने की ओर तुम्हारा बड़ा झुकाव भी है। इन सब बातों में पड़ने से ही सर्वनाश हो जाएगा। इन समस्त प्रलोभनों के हाथ से छुटकारा पाना बहुत सहज नहीं है। अच्छे बड़े-बड़े लोग भी इन सब प्रलोभनों में पड़कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। एकाएक कुछ पाने के लिए अग्रसर होने से ही विपद् है। अपना कार्य धीरे-धीरे करते जाओ; अन्य किसी ओर ताकना नहीं पड़ेगा। प्रयोजन के अनुसार सब कुछ यहीं से मिलेगा। किसी से कुछ पाने की आशा से साधु-संग नहीं करना। और एक बात है, दृष्टि सदा नीचे की ओर रखना, साधना की कोई भी बात किसी से नहीं कहना। ब्रह्मचर्य के नियमों का बड़ी दृढ़ता के साथ पालन करके चलना– कभी आलस नहीं करना। तभी सुरक्षित रहोगे।

ठाकुर के समस्त आदेश कल्याणकारी: व्यर्थ प्रश्न से विपत्ति

31 अगस्त, बुधवार। कल ठाकुर की बात सुनने के बाद से बड़ी चिन्ता हो रही है। अपने दयालु ठाकुर का देवदुर्लभ संग छोड़कर इतनी दूर बस्ती जाने की मेरी ऐसी दुर्मति क्यों हुई? ठाकुर को छोड़कर अब किस प्रकार दिन बिताऊँगा? किन्तु मेरे लिए जो वास्तव में कल्याकारी है, ठाकुर तो वही व्यवस्था कर रहे हैं, अतः आपत्ति करूँ भी कैसे? पके फोड़े को चीरकर अच्छे चिकित्सक जिस प्रकार रोगी की कारतपूर्ण आपत्ति को सुनना नहीं चाहते, ज्यादा रोना-गाना करने पर अन्त में अधिक यन्त्रणादायक पुलटिस द्वारा ही उसे फाड़ने की व्यवस्था करते हैं; इस समय मेरे आपत्ति करने पर हो सकता है ठाकुर भी उसी प्रकार ही करें। व्यवस्था के अनुसार कड़वी औषधि के सेवन से रोग ठीक होगा, रोगी की इस निश्चित धारणा के बाद भी जिस प्रकार उसकी उसमें स्वाभाविक अरुचि होती है, मेरी दशा भी उसी प्रकार हो गई है। इस प्रकार से अनेक युक्ति-तर्क द्वारा मन को थोड़ा शान्त करके मैं ठाकुर के पास जाकर बैठ गया। ठाकुर स्वतः ही कहने लगे– **'घर जाकर माँ के साथ भेंट करके शीघ्र पश्चिम की ओर चले जाना। जहाँ भी रहो, चण्डी-पाठ और होम ठीक नियमानुसार करते जाना। ब्राह्मणों को प्रतिदिन ही अग्नि-सेवा करनी चाहिए। सत् संकल्प करके तुम यह होम करोगे तो तुम्हारा वह संकल्प पूर्ण होगा। आभिचारिक क्रिया के अनर्थ का भी इस शान्ति-स्वस्त्ययन से निवारण हो जाएगा।**

श्वेत कनेर, श्वेत सरसों, श्वेत कालीमिर्च द्वारा आहुति देनी चाहिए।

मैंने पूछा, भैया के पास रहते समय भी क्या मुझे भिक्षा करनी होगी।

ठाकुर– **केवल भिक्षा क्यों? सभी करना होगा। जहाँ कहीं भी रहो, किसी भी नियम का त्याग नहीं करना। सबका पालन करके चलना।**

भैया के पास से कितने दिनों के अन्तर में भिक्षा कर सकूँगा?

ठाकुर– **जिस दिन अन्य कहीं भिक्षा न मिले, उस दिन भैया के पास से लेना।**

मैं– भिक्षा क्या केवल ब्राह्मणों के घर से लूँगा? या किसी भी घर से ले सकता हूँ?

ठाकुर– **भिक्षान्न सर्वत्र पवित्र है। सभी जगह की जा सकती है; किन्तु वैसा तुम्हारे लिए ठीक नहीं होगा। तुम सर्वदा स्वपाक ही खाना। स्वयं का बनाया भोजन सर्वश्रेष्ठ है।**

मैं– मन्दिरों में देवताओं को जो भोग देते है, वह ग्रहण कर सकते हैं?

ठाकुर– **अच्छा ब्राह्मण रसोई करके भोग दे, तो प्रसाद लिया जा सकता है।**

ठाकुर से फिर कुछ पूछने की इच्छा नहीं हुई; डर लगा, किस विषय में किस बात पर फिर कौन-सा आदेश दे दें, बाद में बड़ी मुस्किल में पड़ जाऊँगा। उस दिन गुरुभाई सत्यकुमार गुह ठाकुरता ने ठाकुर से कहा, 'प्राणायाम नहीं कर पाता, बड़ा कष्ट होता है; क्या करूँ?'

ठाकुर ने कहा– **'कष्ट होने पर मत करना।'**

सत्यकुमार ने फिर अकारण ही पूछा– 'प्राणायाम न करने से क्या कोई हानि होती है?

ठाकुर ने थोड़ी विरक्ति प्रकट करते हुए कहा– **'लौटकर आना होगा।'** दुर्बुद्धिवशतः द्वितीय प्रश्न न करने से ठाकुर के मुख से दण्ड का यह विधान नहीं निकलता। मैं चुपचाप बैठकर नाम-जप करने लगा। आज ही भैया को लिख दिया, 'मैं शीघ्र ही बस्ती के लिए रवाना हो रहा हूँ। मेरा मार्ग-व्यय कोलकाता में छोटे भैया के पास भेज दें।'

———

सितम्बर, सन् 1892 ई॰

पद्मा नदी की भीषणता: रास्ते में ठाकुर की कृपा

1 से 8 सितम्बर। प्रातः ठाकुर के श्रीचरणों में प्रणाम करके घर रवाना हुआ। अपराह्न में घर पहुँचा। माताजी का दर्शन करके बड़ा आराम मिला। माँ के सन्तोष के लिए सात-आठ दिन घर में रहा। माँ के पास भोजन का कोई नियम नहीं रखा; जब जो देतीं, उनकी सन्तुष्टि के लिए खा लेता। उससे मुझे किसी प्रकार के अनिष्ट का बोध नहीं हुआ। वरन् साधना में उत्साह और स्फूर्ति बढ़ती ही गई। माँ ने सन्तोपूर्वक मुझे भैया के पास जाने की अनुमति दे दी। 8 सितम्बर, गुरुवार को पश्चिम की ओर जाने के लिए निकल पड़ा। स्टीमर से ग्वालन्द जाने के लिए घर से नौका द्वारा चार-पाँच कोस की दूरी पर स्थित भाग्यकुल स्टेशन पहुँचा। पद्मा नदी का भयंकर रूप देखकर भयभीत हो गया, ठीक जैसे रक्त की नदी है। ऊँची तरंग उठकर तीव्र स्रोत में भयंकर ध्वनि के साथ बढ़ती चली जा रही है। जीवन में पद्मा नदी का ऐसा भयंकर रूप पहले कभी नहीं देखा। नदी के इस पार से दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। नदी एवं आकाश मिले हुए दिखते हैं। यथासमय बिछौना और बस्ता लेकर स्टीमर पर चढ़ने में कठिनाई होने लगी; कुली-मजदूर नहीं मिले। इसी समय दो सज्जनों ने स्वतः ही मेरा बोझा उठा लिया एवं स्टीमर में चढ़ाकर टिकट ला दिया। स्टीमर में मैं आसन लगाकर बैठ गया एवं नाम-जप करने लगा। स्टीमर चलने के कुछ क्षण बाद ही हलचल मच गई। सुना कि तीन लोग नदी में बहे जा रहे हैं। स्टीमर के सदस्यों ने स्टीमर रोककर छोटी नौका द्वारा बहुत चेष्टा करके तीनों को उठा लिया। पता चला, उनके साथ और भी तीन लोग थे, किन्तु उनकी कोई खोज-खबर नहीं मिली। संध्या के समय स्टीमर ग्वालन्द पहुँचा। एक सज्जन ने 'आप ब्राह्मण हैं, मुझ कायस्थ के रहते आप कुली को पैसे क्यों देंगे'– यह कहकर मेरा सामान उठाकर ट्रेन में चढ़ा दिया। प्रातः सियालदह स्टेशन पहुँचा। छोटे भैया मछुआबाजार या झामापुकुर में रहते हैं, ठीक पता नहीं। 12 नं॰ मकान में रहते हैं, केवल यही स्मरण है।

कुली के सिर पर सामान रखवाकर शहर की ओर चल पड़ा। ऐसा लगा, ठाकुर आगे-आगे चल रहे हैं, मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा हूँ। थोड़ा चलने के बाद हम लोग मछुआबाजार और आमहर्ष्ट स्ट्रीट के संगम स्थल पर पहुँचे। कुली कुछ आगे था; उसने चौराहे पर पहुँचते ही मुझसे पूछा– 'बाबू! किस ओर जाना है?' मैं चौंक उठा; देखा, सामने तीन रास्ते हैं। किस ओर जाना है, सोच ही रहा हूँ कि रास्ते के दूसरी ओर से छोटे भैया ने मुझको पुकारकर कहा, 'अरे? कुलदा? चल घर चल।' मैं भैया के साथ झामापुकुर के 12 नं॰ मकान में पहुँचा। तब तक

कोई उठा नहीं, सभी सो रहे हैं। अनजान स्थान में चौराहे पर चलते-चलते सामने अचानक इस प्रकार छोटे भैया को पाकर चकित हो गया। कुंजबिहारी गुह, महेन्द्रनाथ मित्र, अचिन्त्य बाबू इत्यादि गुरुभाइयों से मिलकर बड़ा अच्छा लगा।

बड़ी अद्भुत अनुभूति एवं नाम के प्रति आकर्षण
वियोग में ही निरन्तर सान्निध्य

9 से 15 सितम्बर। प्रातःकाल गंगा-स्नान करके आ गया। नीचे एक निर्जन कमरा पाकर वहाँ मैंने आसन लगा लिया। न्यास, होम, पाठ, गायत्री-जप में 11 बजे तक का समय बीत जाता है। फिर कुछ जलपान करके पुनः आसन पर बैठता हूँ। अपराह्न 4 बजे तक का समय किस प्रकार बीत जाता है, व्यक्त नहीं कर सकता। नाम-जप करते-करते बाह्यज्ञान प्रायः विलुप्त हो जाता है। ठाकुर सामने ही हैं– इतना स्पष्ट रूप से अनुभव हुआ करता है कि मैं उसी में तल्लीन हो जाता हूँ; उनका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, उनका हाथ हिलाना, मुँह हिलाना, दृष्टि संचालन आदि भी स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष किया करता हूँ। अविरल अश्रुधारा से छाती, यहाँ तक कि कपड़े भी भीग जाते हैं। कोई गुरुभाई आकर पुकारता है, तो तुरन्त जवाब देने की क्षमता नहीं रहती; नाम के साथ चित्त जैसे ही संलग्न होता है, देह के भीतर किस स्थान पर ठाकुर मुझे पहुँचा देते हैं, समझ नहीं पाता; वहाँ से उठकर आने में बड़े कष्ट का अनुभव होता है, उत्तर देने में विलम्ब हो जाता है। चलने-फिरने में, बातचीत में सदा सर्वत्र ठाकुर के अनुपम रूप की स्मृति एक-सी बनी रहती है। यह इतनी स्वाभाविक हो गई है कि उसे भुला नहीं पाता। अब मुझे लग रहा है, ठाकुर के सर्वदा पास में रहने की अपेक्षा दूर रहकर इस प्रकार से उनका संग अधिक आनन्ददायक है। सर्वदा ठाकुर के सामने रहने से सान्निध्य के कारण मन शीतल रहता है, उनके प्रभाव से चित्त उद्वेगरहित होने से अविच्छिन्न संग की उत्सुकता भी क्रमशः शान्त हो जाती है। तब मन स्वभाववश उनमें ही निविष्ट न रहकर अन्यत्र विचरण करता है। अतः साथ रहकर भी वियोग भोगना पड़ता है। ठाकुर के रूप, गुण एवं कार्य में चित्त संलग्न रहने से उनका यथार्थ संग होता है। वह संग उनकी स्मृति में, वियोग की दशा में ही अधिक होता है। और तो और, ठाकुर के पास में रहने से बाह्य अनुभूति की तुलना में उनकी मधुरता अधिक है; पर अलगाव से उनमें ही चित्त निविष्ट रहने से मधुरता की अनुभूति अतुलनीय है। गुरुदेव! तुम्हारा संग छोड़कर आना नहीं चाह रहा था, इसीलिए क्या अपने इस विरह की अपूर्व मधुरता समझा दिए?

पुरुषकार में भरोसा: कृपा का दान अग्राह्य करने का परिणाम

तीन दिन, तीन रात्रि इसी भाव में विभोर रहा। चौथे दिन सोचा, मेरी यह अवस्था तो स्वाभाविक हो गई है। अब इसके आनन्द में सर्वदा विभोर न रहकर पुरुषकार द्वारा उसकी और भी उन्नति करनी होगी। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही क्रमशः उन्नति का एकमात्र उपाय है। अतएव मन लगाकर अब वही करूँ। ऐसा करने से ठाकुर के श्रीअंग के स्पर्श का अनुभव सहज होगा। इस प्रकार निश्चय करके मैं रूप में निविष्ट चित्त को चेष्टा द्वारा खींचकर श्वास-प्रश्वास में संलग्न करके केवल नाम-जप करने लगा। इससे रूप क्रमशः मलिन होकर अदृश्य हो गया। तब शुष्क नाम में श्वास-प्रश्वास के चंचल होने से मन बेचैन हो उठा। श्वास या नाम के साथ चित्त को किसी भी प्रकार से संयुक्त नहीं कर सका। साधना से विलग होने के कारण चारों ओर अन्धकार देखने लगा। भीतर की असह्य ज्वाला से बेचैन हो उठा। आह! बहुत साधन-भजन व तपस्या के फल जिसके समीप भी नहीं पहुँच सकते, ठाकुर की उस दुर्लभ कृपा के दान को पाकर मैंने खो दिया! ठाकुर ने कहा है– **'भगवान् की कृपा अवतीर्ण होने पर कृतज्ञता के साथ व्याकुलतापूर्वक उनकी ओर ताकते रहना पड़ता है– तब वह टिकती है।'** हाय, हाय! कुबुद्धिवशतः इस सहज पथ को न पकड़कर मैंने यह क्या किया? पुरुषकार द्वारा उनकी कृपा के स्रोत को बढ़ाने की चेष्टा करके मैं संकट में पड़ गया। अब तो मेरा सब कुछ ही चला गया। दयालु ठाकुर! मुझे दग्ध करके पुनः अपने चरणों में स्थान दो।

श्रद्धा का भिक्षान्न अमृत है: खिचड़ी में नारियल के टुकड़े

मैं कोलकाता आ गया हूँ। प्रथम दिन कुंज और छोटे भैया ने भोजन बनाने का जुगाड़ कर दिया। दूसरे दिन अचिन्त्य भैया के घर में भिक्षा हुई। मूँग दाल की खिचड़ी चूल्हे पर चढ़ाकर अचिन्त्य भैया के साथ ठाकुर की बातें कहने लगा। इधर खिचड़ी के जलने की गन्ध आने लगी। धुएँ से कमरे में अन्धकार छा गया। खिचड़ी से भी चटचट शब्द होने लगा। अचिन्त्य भैया 'सर्वनाश हो गया, सर्वनाश हो गया' कहकर माथा पीटने लगे। मैंने खिचड़ी उतारकर ठाकुर को भोग लगाया। उसके बाद होम सम्पन्न करके अचिन्त्य भैया को दो ग्रास प्रसाद लेने हेतु कहा। अन्य कुछ लोगों ने भी थोड़ा-थोड़ा प्रसाद लिया। आश्चर्य यह है कि भोजन के पात्र से खिचड़ी ढालते ही उससे अपूर्व सुगन्ध निकलने लगी। पूरा घर उस सुगन्ध से महकने लगा। खिचड़ी का अद्‌भुत स्वाद पाकर अचिन्त्य भैया रोने लगे। श्रद्धा का दान कभी नष्ट नहीं होता; श्रद्धा की भिक्षा अमृत है– इस घटना से स्पष्ट

रूप से जानकर बड़ा आनन्दित हुआ। भोजन से बड़ी तृप्ति मिली।

एक दिन महेन्द्र भैया के यहाँ भिक्षा ली। वे बड़े प्रसन्न हुए। चावल, दाल, नमक, मिर्च, घी, आलू लाकर उन्होंने बड़े उत्साह के साथ मेरे भोजन बनाने का प्रबन्ध कर दिया। चूल्हा जलाकर उसमें खिचड़ी चढ़ा दी। महेन्द्र भैया ने पूछा– 'तुम्हें और क्या चाहिए?' मैंने कहा– जो चाहता हूँ, उसका अब जुगाड़ नहीं होगा। खिचड़ी में नारियल के टुकड़े डालने से बड़ा अच्छा होता। महेन्द्र भैया ने कहा– 'पहले कह सकते थे, अब लाएँगे, तब तक तो खिचड़ी बन जाएगी।' कुछ क्षण बाद ही खिचड़ी बन गई। ठाकुर को वह निवेदन करके होम करने के बाद खाने बैठा। महेन्द्र भैया को थोड़ा दिया। अद्भुत है ठाकुर की लीला! अद्भुत है उनकी महिमा! खिचड़ी के प्रत्येक ग्रास में नारियल के टुकड़े पाने लगा। मैं तो चकित रह गया– महेन्द्र भैया भी चकित हो गए! कैसे क्या हुआ, कुछ भी समझ में नहीं आया। दुर्बोध्य विषय को समझने की इच्छा भी नहीं हुई। खिचड़ी के प्रत्येक ग्रास में आनन्द की उमंग बढ़ने लगी– नाम-जप बड़ी सरसता से अपने-आप होने लगा। ऐसा लगा, मानो ठाकुर ही मेरे मुख द्वारा भोजन कर रहे हैं। भोजन समाप्त करने में लगभग एक घण्टा लग गया। धन्य हैं गुरुदेव!

बस्ती जाने की बात बतलाते हुए भैया को मेरा मार्ग-व्यय कोलकाता भेज देने के लिए लिखा था। भैया ने मुझे सजनी के साथ बस्ती आने के लिए लिखा। सजनी के स्कूल की छुट्टी लगने में विलम्ब है; यहाँ मुझे रहने की भी असुविधा है। भागलपुर जाने के लिए मन बेचैन हो उठा; इस बेचैनी का कारण जानता नहीं। कल ही भागलपुर जाने का निश्चय किया।

प्रेत की करुण पुकार: फकीर का वाहन अद्भुत वृक्ष अँग्रेज साहब द्वारा प्रतिष्ठित काली की मूर्ति

16 से 19 सितम्बर। हावड़ा से ट्रेन में चढ़कर मैं रात्रि में लगभग 1 बजे भागलपुर स्टेशन पहुँचा। एक कुली को साथ लेकर खंजरपुर में पुलिनपुरी गया। आज भयंकर अन्धकार है। कुछ दूर अग्रसर होने पर ही 'मशाई चौक' पहुँचा। विशाल मैदान के बीच से रास्ता है, दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष हैं। अस्पताल के सामने एक विशाल आम के वृक्ष के नीचे पहुँचते ही बड़ी क्लेशसूचक ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे सुनते ही चौंककर चारों ओर देखने लगा; सर्वत्र ही अन्धकार व सन्नाटा है। वह ध्वनि 15-20 फीट दूर स्थित पेड़ के ऊपर से आई। जैसे कोई भयंकर पीड़ित मरणासन्न रोगी कराह रहा है। बीच-बीच में कराहने की आवाज स्पष्ट आ रही है। कुली सुनते ही दौड़कर भागा। मैं नाम जपते हुए स्वाभाविक गति से चलता रहा।

वह ध्वनि मेरे पीछे-पीछे दो मिनट तक आती रही, फिर अचानक बन्द हो गई।

कुली ने कहा, 'बाबा! इन पेड़ों पर एक समय बहुत लोगों को फाँसी हुई थी। यह स्थान बड़ा भयानक है। यहाँ से जाते समय कई बार मैंने यह ध्वनि सुनी है।' मैंने सोचा, अस्पताल के किसी रोगी ने मरणोपरान्त वृक्ष का आश्रय लिया होगा। इस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रेत की करुण पुकार इससे पहले मैंने कभी नहीं सुनी।

भागलपुर पहुँचकर महाविष्णु बाबू के साथ बड़े ही आनन्द में दिन बिताया। एक दिन उनके साथ मेला देखने 'कर्णगढ़' गया। यह कर्णगढ़ कभी कलिंगाधिपति दाता कर्ण की राजधानी थी। अत्यन्त विस्तृत ऊँचा स्थल खाई से घिरा हुआ है। इस स्थान को देखकर मन कुछ उदास जैसा हो गया। कुछ क्षण वहाँ बैठा रहा। फिर सरकारी बगीचे में गया। वहाँ एक पुराना विशाल वृक्ष देखा। वृक्ष का नाम कोई नहीं जानता। परिधि 15-20 फीट है– बहुत मोटा। आश्चर्य की बात यह है कि उसकी एक पतली डाल को हिलाने से आँधी के समान पूरा वृक्ष हिलता है। जन-प्रवाद है, एक सिद्ध नामी फकीर पहाड़ से इस वृक्ष पर चढ़कर यहाँ आए थे। तब से यह वृक्ष यहीं है। घर आते समय रास्ते के किनारे एक काली मन्दिर देखा। सुना कि किसी एक साहब ने काली की अलौकिक महिमा प्रत्यक्ष करके इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी। देवी की सेवा-पूजा की व्यवस्था करके वे विलायत चले गए। उस समय से अभी तक वह सेवा-पूजा नियमित रूप से चलती आ रही है। चार-पाँच दिन भागलपुर में रहने के बाद मैं बस्ती जाने के लिए अधीर हो उठा। भैया की इच्छा हो या न हो, ठाकुर के आदेशानुसार मुझे बस्ती जाना ही होगा। भागलपुर आकर मैंने प्रतिदिन ही भिक्षा की। नित्य-क्रिया में कोई बाधा नहीं आई।

कुसमय में यात्रा का दुर्भोग: पग-पग पर ठाकुर की कृपा परवर्ती आदेश ही बलवान् है

20 सितम्बर, मंगलवार। घोर अमावस्या की रात्रि में भागलपुर से बस्ती के लिए रवाना हुआ। कुसमय में यात्रा का कुफल मिलने में अधिक समय नहीं लगा। स्टेशन जाते समय आधे रास्ते में ही गाड़ी बिगड़ गई। सुनसान मैदान में घोर अन्धकार रात्रि के समय बड़े संकट में पड़ गया। ठाकुर की कृपा के सिवा इस संकट में और कोई उपाय नहीं है, यह सोचकर उलटी-सीधी कल्पना करने लगा। कुछ क्षण बाद एक खाली गाड़ी स्टेशन की ओर जाते हुए देखा; उसी में चढ़कर ट्रेन छूटने के चार-पाँच मिनट पहले स्टेशन पहुँचा। शीघ्र दौड़कर गाड़ी में चढ़ा। रास्तेभर कभी खड़े रहकर तो कभी बैठकर दूसरे दिन प्रायः 9 बजे बाँकीपुर स्टेशन में उतरा। गुरुभाई ब्रजेन्द्र बाबू के घर आकर कुंज ठाकुरता मेरे लिए प्रतीक्षा करेंगे,

ऐसी बात हुई थी। उनकी खोज में अनजान पथ पर प्रचण्ड धूप में तीन-चार मील घूमते-घूमते ब्रजेन्द्र बाबू के घर पहुँचा। भाग्य का चक्कर– कुंज बाबू मिले नहीं; सुना, ब्रजेन्द्र बाबू जगन्नाथपुरी गए हैं। अतएव तुरन्त ही दोपहर की धूप में पुनः स्टेशन आ गया। भूख और प्यास से शरीर अवसन्न हो गया। यात्री-गृह के एक कोने में पड़ा रहा; इसी समय एक हिन्दी भाषी ब्राह्मण ने आकर मुझसे कहा– 'बाबा! थोड़ा अच्छा दूध हम लाए हैं। गरम-गरम पी लीजिए, ठण्डा पानी भी है।' यह कहकर उन्होंने मेरे हाथ में एक सन्देश खाने के लिए दिया। अच्छा ठण्डा पानी और लगभग आधा सेर दूध पीकर मैं बच गया। यथासमय बस्ती का टिकट लेकर ट्रेन पर चढ़ा। दीघा घाट में उतरकर स्टीमर पर चढ़ा; फिर संध्या के समय पालिजा घाट पहुँचा। कुछ अधिक रात्रि में बस्ती की गाड़ी आई– यथासमय उसमें निश्चिन्त होकर बैठ गया। एक व्यक्ति ने साधु वेश देखकर मुझे कुछ देना चाहा। मैं रुपया-पैसा नहीं लेता– कहने पर उसकी और भी भक्ति बढ़ गई। उसने एक मुट्ठी पैसा मेरे पास बेंच के ऊपर रखते हुए कहा– 'रास्ते में भूख लगने पर कुछ क्रय करके खा लेना। ये रहे आपके पैसे।' कुछ स्टेशन जाने के बाद मुझे बहुत भूख लगने लगी। इच्छानुसार अच्छी-अच्छी वस्तुएँ क्रय करके खाया। थोड़ा दिन चढ़ने पर बस्ती पहुँचा। कुली के सिर पर सामान रखवाकर भैया के घर पहुँचा। भैया मुझे देखते ही सर्वप्रथम कहा– 'तुम क्या भिक्षा करके खाते हो? लेकिन यहाँ वह सब नहीं चलेगा। इसीलिए तुम्हारा मार्ग-व्यय नहीं भेजा।' भैया दो-एक मिनट बातचीत करने के बाद अस्पताल चले गए। मैं बड़ी चिन्ता में पड़कर सोचने लगा– अब मैं क्या करूँ? भिक्षा में प्राप्त वस्तु द्वारा स्वपाक आहार करने का मेरे लिए ठाकुर का आदेश है। फिर भैया के पास मेरा रहना– साथ-साथ यह भी ठाकुर का विशेष आदेश है; किन्तु भिक्षा करने से मुझे भैया अपने पास रहने नहीं देंगे। अब एक आदेश का पालन करने जाओ, तो दूसरे का उल्लंघन करना ही होगा। इस परिस्थिति में मेरे लिए कौन-सा उचित है? भैया का संग छोड़कर जाने से मेरा पथ का दुर्भोग, नाना प्रकार के अनियम और ठाकुर का दुर्लभ संग त्याग करके इतनी दूर आना, सब व्यर्थ हो जाता है। दूसरी ओर, भैया के साथ रहने से सब सार्थक हो जाएगा। विशेष रूप से पहले की अपेक्षा बाद का आदेश बलवान् है। अतएव भिक्षावृत्ति त्यागकर भैया के साथ रहने का निश्चय किया।

भैया का पाँच पैसा घूस लेने वाला स्वप्न सत्य: प्रायश्चित्त

बस्ती का अस्पताल मुख्य मार्ग के किनारे विशाल मैदान पर है। पास में कोई लोकालय नहीं है, शहर बहुत दूर है। भैया के रहने का स्थान भी उतना सुविधाजनक नहीं है। बाहर खपरैल वाला एक लम्बा कमरा है। उससे संलग्न एक

छोटी कोठरी है। भीतर तीन-चार पक्के कमरे हैं, वे भी वैसे स्वास्थ्यकर नहीं हैं। मैंने बाहर के छोटे कमरे में ही आसन लगाया। मेरे बस्ती आने का कारण जानकर भैया बड़े सन्तुष्ट हुए। अस्पताल के कामकाज के बाद बाकी समय वे मेरे ही साथ बिताने लगे। देख रहा हूँ, ठाकुर की बातें सुनने में उनको बड़ा आनन्द मिलता है। एक दिन भैया ने कहा– 'अपने एक स्वप्न के विषय में गोसाँईजी से पूछने के लिए कहा था; स्वप्न सुनकर उन्होंने क्या कहा?'

मैं– आपने स्वप्न तो विस्तृत रूप से लिखा नहीं था।

भैया– विस्तृत और क्या? रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखा, एक ब्राह्मण ने आकर मुझसे कहा, 'पाँच पैसा तुमने घूस में लिया है।' स्वप्न देखते ही मेरी नींद टूट गई, सारा दिन मैंने बेचैनी से काटा। मैंने घूस ली है– यह कैसी बात है? जीवन में कभी किसी से एक कौड़ी नहीं ली। घूस लेने से राजा हो सकता था; उस दिन भी एक राजा ने 40 हजार रुपये पैर के पास रखकर रोना-गाना किया। सत्य को छिपाकर यदि रिपोर्ट बनाता, तो एक लड़की भी आत्महत्या नहीं करती; परन्तु जानकर भी मैं वह नहीं कर पाया। एक पैसे का पान तक कोई मेरे घर में दे नहीं पाता; और मैंने घूस ली है?

मैं– ठाकुर ने आपकी चिट्ठी सुनकर कहा, **'स्वप्न सत्य है। किस दिन किस समय घूस लिए हैं– तिथि-नक्षत्र देखकर बतलाया जा सकता है। भैया को लिख दो– किसी मन्दिर में भोग के लिए अथवा साधु व निर्धनों की सेवा के लिए कुछ दान करें। तभी उस अपराध का प्रायश्चित्त होगा।'** आपको तो ये सब बातें लिखी गई थी– क्या आपने वैसा किया नहीं?

भैया– नहीं, अभी तक नहीं किया। यहाँ मन्दिर नहीं है– नानकशाहियों का एक अखाड़ा है, वहाँ पाँच रुपये दे आऊँगा।

महात्मा गोविन्ददासजी का आश्चर्यजनक कार्य

दूसरे का भयंकर भोग ग्रहण करना

मैं– साधु गोविन्ददासजी की बात आपने लिखी थी, वे कौन हैं?

भैया– वे एक उदासीन महात्मा हैं। मेरी रक्षा करने ही यहाँ पर आए थे। लोगों का समागम यहाँ नहीं होता, सर्वदा अकेले ही रहना पड़ता है। इसलिए एक साधु को रख लिया था। साधु बड़े शक्तिशाली थे। काम-काज के बाद सारा दिन मैं उनके पास रहता था। हाथ-पैर दबा देता, हवा कर देता था। घर का खर्च भेजकर बाकी रुपये उनके हाथ में दे देता। वे जैसा कहते, वैसा ही खर्च करता।

दिनो-दिन उन पर इतना आकृष्ट हो गया कि उनको छोड़कर रहने की इच्छा ही नहीं होती थी। साधन-भजन भी लगभग छोड़ दिया। उससे कोई उपकार अनुभव नहीं करता था, फिर भी वे अच्छे लगते थे। मुझे मानो उन्होंने मुग्ध कर रखा था। इसी समय एक दिन गोविन्ददासजी आए। उनके आते ही वे साधु चले गए। लगता है, गोविन्ददास ने ही उन्हें हटाया। गोविन्ददास के साथ मैं आनन्द से था। गुरु एवं साधन-भजन के प्रति जिससे निष्ठा-भक्ति हो, वे वैसा ही उपदेश देते थे। बड़े दयालु थे। किसी का कष्ट देखते ही बेचैन हो उठते थे। एकदिन एक लंगड़े वृद्ध ब्राह्मण को भिक्षा के लिए आते देखकर उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा– 'ओह! इस गरीब ब्राह्मण के सामने प्रारब्ध का भयंकर भोग है। इस भोग में पड़ने से कष्ट सहते-सहते ही इसका जीवन समाप्त हो जाएगा। जीवन में आत्मा के कल्याण के लिए अब वह कोई कर्म ही नहीं कर पाएगा।' ये सब बातें हो रही हैं, इसी समय उस भिखारी ब्राह्मण ने मुझसे कुछ भिक्षा माँगी। गोविन्ददास ने मुझे कुछ समय के लिए भीतर जाने को कहा। ब्राह्मण भिक्षा के लिए चिल्लाने लगा।

गोविन्ददास ने भिखारी को गाली देते हुए कहा– 'अरे साला! भीख माँगने क्यों आया है? मजदूरी नहीं कर सकता।

ब्राह्मण ने कहा– 'तुमसे नहीं माँग रहा हूँ।'

गोविन्ददास ने कहा– 'अरे साला, लुच्चा। तो अपने बाप से माँग रहा है?'

ब्राह्मण ने कहा– 'तू तो बड़ा साधु बनकर बैठा है! चुप रह। गाली मत दे।'

गोविन्ददास ने तुरन्त 'निकल साला, निकल साला' कहते-कहते मोटी लाठी से भिखारी को इतना मारा कि उसका एक हाथ टूट गया। गोविन्ददास ने मुझको बुलाया और उसको अस्पताल ले जाकर औषधि देने के लिए कहा। भयानक चोट लगी थी, मैंने प्राण-घातक कहकर रिपोर्ट दी। मुकदमा आरम्भ हुआ। गोविन्ददास ने मुझसे कहा– 'बाबू साब! अब दो-तीन वर्ष के लिए हम जाते हैं जेलखाना; उसमें क्या है? ब्राह्मण तो बच गया!' गोविन्ददास को दो वर्ष के लिए सश्रम जेल हो गई।

मैंने भैया से कहा– ठाकुर ने गोविन्ददासजी के विषय में सुनकर ढाका के कुछ प्रतिष्ठित लोगों से उन्हें मुक्त कराने हेतु प्रयास करने का अनुरोध किया था। उस प्रकार से काम भी हुआ। गोविन्ददास कुछ दिन पहले काशी के जेल में थे। उनकी चर्चा करते हुए ठाकुर ने कहा था, **'गोविन्ददास ही यथार्थ महात्मा हैं। भिखारी ब्राह्मण के भयंकर प्रारब्ध के भोग को काटने के लिए ही उन्होंने उस पर प्रहार किया एवं उसका भोग ग्रहण करके वे जेल गए। महात्माओं के कार्य का गूढ़ रहस्य समझना कठिन है।'**

अलौकिक आरती की सुगन्ध

30 सितम्बर, शुक्रवार। कल महाष्टमी तिथि में निर्जला उपवास करके जप, होम और चण्डी-पाठ में सारा दिन बीत गया। आज नवमीं का दिन भी बड़े आनन्द से साधन-भजन में बीत गया। भोजन करके संध्या के बाद बाहर आँगन में बैठकर भैया के साथ ठाकुर की बातें कर रहा हूँ, अचानक दिव्य आरती की सुगन्ध आई। धूप, धूना, चन्दन, गुग्गुल आदि जलाकर मानो बड़े समारोह के साथ निकट में ही कहीं माँ की आरती हो रही है। ऐसी अद्भुत सुगन्ध कहाँ से आ रही है, जानने के लिए व्यग्र हो गया; लेकिन भैया और मैं पता करके भी कुछ समझ नहीं पाए। अस्पताल के तीन ओर सुनसान मैदान है, एक ओर चौड़ा रास्ता है; उसके निकट भी कोई लोकालय नहीं है। सुगन्ध लगातार बढ़ने लगी। परम पवित्र सुगन्ध को माँ का अलौकिक प्रसाद मानकर तृप्तिपूर्वक उसकी महक लेने लगा। अन्ततः डेढ घण्टे तक यह सुगन्ध मानो हम लोग को मुग्ध करती रही। ऐसा बोध होने लगा, जैसे ठाकुर के पास ही बैठे हैं। भैया भी यह सुगन्ध पाकर विस्मय के साथ दो घण्टे तक चुपचाप एक ही प्रकार से बैठे रहे।

अक्टूबर, सन् 1892 ई॰

भिक्षा करने के लिए भैया की अनुमति

3 अक्टूबर, सोमवार। बस्ती आकर कुछ दिन भिक्षा बन्द रही। प्रतिदिन ही भोजन के समय रोना आ जाता है। ठाकुर को बड़ी व्याकुलता के साथ मन-ही-मन अपनी अवस्था बतलाने लगा। भिक्षान्न बन्द होने से भोजन में तृप्ति नहीं मिल रही, भजन में उत्साह नहीं, मन में भी शान्ति नहीं है। बड़े कष्ट से समय कट रहा है। आज भैया ने बातों-बातों में मुझसे कहा– 'अच्छा, तुम भिक्षा करके क्यों खाते हो? भिक्षा से लाभ क्या है?' मैंने कहा– लाभ-हानि ठाकुर जानते हैं; लेकिन मैं तो देखता हूँ, भिक्षान्न से मुझे जो तृप्ति मिलती है, घर के अन्न से वह नहीं मिलती। घर का अन्न खाने से मानो उत्साह-उद्यम ठण्डा होता जा रहा है, मन सब समय उद्विग्न रहता है। भैया ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद कहा– 'तो फिर आज से ही भिक्षा आरम्भ कर दो। गुरु का जब आदेश है, तब तो वह करना ही होगा; लेकिन शहर में तुम भिक्षा मत करना।'

सद्ब्राह्मण के हाथ से प्रथम भिक्षा

4 अक्टूबर, मंगलवार। मैंने शहर के बाहर लगभग तीन-चार मील दूर स्थित गाँव में जाकर भिक्षा करने का निश्चय किया। इसमें मुझे कोई कष्ट नहीं होगा; वरन् वह सोचकर मुझे आनन्द ही हो रहा है। एकादशी में निर्जला उपवास करके कल द्वादशी में भी भात नहीं खाया– पूरी खाई। आज त्रयोदशी के दिन ठाकुर का नाम लेते-लेते लोटा लेकर घर से निकला। जीवन में अपरिचित के पास से कभी भिक्षा नहीं ली, आज यह पहला अवसर है। रास्ते में चलते-चलते बुद्धदेव का स्मरण हुआ। भगवान् गुरुदेव मानो बुद्धदेव के रूप में मेरे आगे-आगे चल रहे हैं– मन में इस प्रकार का भाव आ गया। मैं बारम्बार बुद्धदेव को प्रणाम करने लगा। एक समय बुद्धदेव के रूप में गुरुदेव इस स्थान पर वैराग्य का कैसा दृष्टान्त दिखला गए हैं– सोचकर मन उदास हो गया। भिक्षा के लिए घूमते-घूमते एक गृहस्थ के घर पहुँचा। उन लोगों ने मुझसे पूछा– 'बाबा! क्या चाहिए?' मैंने कहा– आप सब लोगों का भोजन हो गया है? उन्होंने कहा– 'मध्याह्न के समय सबने भोजन कर लिया है।'

मैं– तब मुझे भिक्षा दीजिए।

उन्होंने बडी भक्ति के साथ पूछा– 'आप कितने लोग हैं?'

मैं– मैं अकेला हूँ।

वृद्ध ब्राह्मण ने बड़ी श्रद्धा के साथ अत्यधिक परिमाण में चावल, आलू और नमक लाकर मुझे दिया। मैं अपने प्रयोजन के अनुसार ग्रहण करके चला आया। भिक्षान्न भोजन से आज बड़ी तृप्ति मिली। यदि चावल को चुनता तो कुछ न बचता, तथापि बनने के बाद उसका स्वाद बहुत अच्छा लगा। मन में विश्वास जागा– आज प्रथम दिन भिक्षा में अनजान स्थान पर जब सद्ब्राह्मण के हाथ से श्रद्धापूर्वक अन्न मिला है, तब प्रतिदिन ही इसी प्रकार मिलेगा।

भिक्षा में फटकार और विशेष सम्मान

5 अक्टूबर, बुधवार। ठाकुर की इच्छा कुछ समझ में नहीं आई; आज दो कोस चलकर भिक्षा के लिए एक कसाई के घर पहुँच गया। वहाँ से हटकर घूमते-घूमते दूसरी बार एक मेहतर के घर पहुँच गया। परिचय मिलने पर वहाँ से भी लौट गया एवं गाँव के छोर में जाकर एक गृहस्थ के घर में भिक्षा माँगी। हाथ में डण्डा लेकर वे मुझे भगाने आए, मैं दौड़कर भागा। तीन घर भिक्षा की चेष्टा करके घर आ गया। भैया के घर में भिक्षा ली। भिक्षा करने में मेरी दुर्दशा की बात सुनकर भैया ने मुझे पुरानी बस्ती के बाजार में जाकर भिक्षा करने के लिए कहा। बाजार में प्रतिदिन

ही भिक्षा में अच्छी-अच्छी वस्तुएँ मिलने लगीं। आवश्यकता से अधिक ग्रहण न करने के कारण सबने मुझको महात्मा मान लिया। वे लोग मुझे मिठाई, दूध, रबड़ी, शाक-सब्जी अधिक मात्रा में देने लगे। प्रतिदिन ही आवश्यकता के अनुसार थोड़ा लेकर बाकी सब लौटा देने लगा। इससे मेरे प्रति लोगों की श्रद्धा और भी बढ़ गई। मैं कब आऊँगा, यह सोचकर कई लोग मुझे भिक्षा देने के लिए प्रस्तुत रहा करते। यह सब देखकर बीच-बीच में मैं ग्राम में भी भिक्षा करने लगा। बस्ती आकर भिक्षान्न भोजन से आनन्द, स्फूर्ति और जिस प्रकार तृप्ति मिली, वह पहले कभी नहीं मिली। जय गुरुदेव!

भ्रमण के समय साधना में एकाग्रता

7 से 10 अक्टूबर। भिक्षा के माध्यम से ठाकुर ने भ्रमण की एक आश्चर्यजनक उपकारिता मुझे स्पष्ट रूप से समझा दी। भ्रमण के समय श्वास-प्रश्वास की गति स्वभावतः ही दीर्घ होने से उस पर मन को एकाग्र रखना सुविधाजनक होता है; पर आसन पर स्थिर बैठकर स्वाभाविक सूक्ष्म श्वास का अनुसरण बड़ा कठिन है, क्योंकि शरीर अपने अभ्यास के गुण से मन को विचलित करके प्रति क्षण विषयों में आकर्षित करता है; किन्तु भ्रमण के समय सर्वांग की चेष्टा चलने में ही नियुक्त रहने से चित्त मुख्य रूप से श्वास-प्रश्वास से संयुक्त हो जाता है। उस समय एकाग्र मन से नाम को श्वास-प्रश्वास से जोड़ने में बड़ी सहायता मिलती है। लगता है, परिव्राजक साधु-संन्यासी, परमहंस लोग इस असाधारण सहायता को पाने के लिए ही सर्वदा भ्रमण करते हैं। आहार-निद्रा के अतिरिक्त वे लोग कभी भी एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरते। इतने दिनों तक सोचता था, जो लोग सारा दिन घूमते-फिरते हैं, वे लोग फिर साधन-भजन क्या करते हैं? ठाकुर ने मेरी यह भूल स्पष्ट रूप से समझा दी।

बाहरी शक्ति का अनुभव: प्रेत का उपद्रव

रात्रि में नाम जपते-जपते सो जाता हूँ। जब भी नींद खुलती है, लगता है कि कोई खाट सहित मेरे सारे शरीर को हिलाता है। फिर कभी-कभी इसी प्रकार हिलाए जाने से ही मेरी नींद खुलती है। हिलने की क्रिया प्रायः एक मिनट तक या कभी-कभी अधिक समय तक भी रहती है। शरीर सिर से पैर तक इस प्रकार काँपने लगता है कि प्रयास करके भी स्थिर नहीं रह पाता। इस समय अपने-आप खूब नाम-जप हुआ करता है। हिलने से अचानक नींद खुलने पर भी देखता हूँ, भीतर-ही-भीतर तीव्र गति से नाम-जप चल रहा है। इस प्रकार क्यों होता है,

अनुसन्धान करने के बाद भी कुछ समझ में नहीं आया। लगता है, शक्तिशाली कोई फकीर ही मेरे हित के उद्देश्य से इस प्रकार करते हैं। गेण्डारिया में ठाकुर के निकट बैठकर नाम-जप करते समय भी कभी-कभी इस प्रकार हिलाए जाने से आसन सहित पूरा शरीर काँप जाता था। ठाकुर को बतलाने पर उन्होंने कहा था– **'वैसा होना बहुत अच्छा है।'** इस प्रकार हिलाए जाने से मैं भयभीत नहीं होता, वरन् आनन्द का ही अनुभव करता हूँ। यह बातें भैया से कहने पर उन्होंने कहा– अस्पताल में रहते समय कई बार मुझे प्रेत का उपद्रव देखने को मिलता है। फैजाबाद अस्पताल में एक रोगी बहुत दिनों तक कष्ट भोगने के बाद मर गया। उसके स्थान पर एक रोगी को रखा गया, वह दो दिन रहने के बाद ही चला गया। क्रमशः तीन-चार रोगियों को उस स्थान पर रखा, लेकिन सभी नाना प्रकार के कार्यों का बहाना बताकर चले जाने लगे। इसका कारण क्या है, जानने के लिए मैं उत्सुक हो गया। वार्ड के अन्यान्य रोगियों से सब पूछने पर उन लोगों ने कहा, 'उस बिछौने पर जो रहता है, रात में प्रेत आकर उसी के ऊपर उपद्रव करता है। प्रेत कहता है, तू मेरे बिछौने पर क्यों लेटा है, तेरी जान ले लूँगा। यह कहकर प्रेत उसकी छाती पर चढ़ जाता है और गला दबाने लगता है। जागते रहने पर वह कुछ नहीं करता; लेकिन निद्रित होने पर ही वह इस प्रकार से उपद्रव करता है।' मैंने सबसे कह दिया– अच्छा, मैं एक बार परखकर देखूँगा। नये रोगी को रखूँगा, उसको इस सम्बन्ध में कोई कुछ मत कहना। फिर एक जवान मर्द रोगी को उस खाट में रखा एवं रोग ठीक न होने तक जा नहीं सकेगा, इस व्यवस्था पर उसको राजी कर लिया। दूसरे दिन अस्पताल जाकर उससे पूछा, कैसे थे? रोगी ने कहा, 'बाबू साहब! यहाँ माथा बड़ा गरम हो जाता है, रात में नींद नहीं होती।' मैंने कहा– अच्छा आज नींद की औषधि दूँगा। दूसरे दिन प्रातः जाकर पूछा, कैसे थे रात में? रोगी ने कहा, 'बाबू साब! आप कृपा करके हमें छोड़ दीजिए। हम यहाँ नहीं रहेंगे।' मैंने उसकी बात का कोई उत्तर न देकर, जो लोग रोगियों को खाना देते एवं सेवा-शुश्रूषा करते, उनको डाँटते हुए कहा– तुम लोग मेरे रोगी को कष्ट देते हो, अच्छा खाना नहीं देते, सेवा-शुश्रूषा नहीं करते हो, इसलिए वह जाना चाहता है। यह रोगी अब ऐसा कहेगा, तो तुम लोगों को भगा दूँगा। यह कहकर रोगी के भोजन की अच्छी व्यवस्था कर दी। रोगी चुप रहा। तीसरे दिन दूर से ही देखा, वह रोगी खाट से उतरकर नीचे बैठा हुआ है। उसके एक हाथ में मोटी लाठी है, लाठी के ऊपर लोटा बंधा है और एक हाथ से घुटने पर रखे बस्ते को पकड़ा है– ठीक जैसे जाने के लिए प्रस्तुत है। मैं जैसे ही उसके पास पहुँचा, 'बाबू साब! सलाम! अब तो हम चलते हैं' कहकर वह उठ गया। मैंने धमकाते हुए कहा– नहीं, तुमको रहना होगा। रोगी ने खूब उत्तेजित होकर मुझसे कहा, 'जान देना है क्या?

रोज रात में साला जिन्न आकर हमारी छाती पर बैठ जाता है, मारपीट करता है; कहता है, तुम्हारी जान ले लेंगे; खाट छोड़। हम रातभर यहाँ नीचे बैठे रहते हैं। मैं तो कभी नहीं रहूँगा।'

डॉ॰ ओब्राएन (O' Brien) उस समय थे, उन्होंने उस खाट को सरयू नदी में डाल देने के लिए कहा।

एक स्वप्न देखने के बाद से ठाकुर के पास जाने हेतु मन अधीर हो उठा; किन्तु भैया से यह कहने का साहस नहीं हो रहा है। छुट्टी के समय भैया एक क्षण के लिए भी मुझे छोड़कर रहना नहीं चाहते। मेरे चले जाने से भैया एकदम अकेले पड़ जाएँगे। वे स्वयं मुझसे अन्यत्र जाने के लिए कभी कहेंगे, ऐसा लगता नहीं। इस संकट में ठाकुर यदि किसी प्रकार व्यवस्था करें, तभी होगा– अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

बस्ती से प्रस्थान: अयोध्या में– 'हे राम!' उदास भाव

भाँजे श्री सुरेन्द्र के पत्र से ज्ञात हुआ कि भागलपुर में उनके घर में पुनः आभिचारिक क्रिया के विविध उत्पात होने लगे हैं। मेरे बहनोई मथुर बाबू ने भैया को टेलिग्राम करके मुझे शीघ्र भागलपुर भेजने को कहा है। उनका विश्वास है, भागलपुर में मेरे रहने से तान्त्रिक कोई हानि नहीं पहुँचा सकेगा। भैया भी मुझे भागलपुर भेजने हेतु व्यग्र हो गए। इस आकस्मिक घटना से मुझे बस्ती से जाने की सुविधा हो गई। मैं जाने के लिए तैयार हो गया।

16 अक्टूबर, रविवार। बस्ती में भैया के साथ बड़े आनन्द से रहा। साधन-भजन में दीर्घकालव्यापी ऐसी अच्छी अवस्था इतने कम समय में पहले कभी नहीं हुई। ठाकुर सर्वदा मेरे साथ-साथ हैं– यह भाव एक प्रकार से निरन्तर जागृत रहा। ठाकुर को स्मरण करते ही आँखों में आँसू आ जाते। नाम-जप उनकी स्मृति को उज्ज्वल कर देता है। पास रहने की अपेक्षा दूर रहकर ही ठाकुर के ध्यान में अधिक आनन्द मिलता है, इसे इस बार स्पष्ट रूप से अनुभव किया। श्रीरामचन्द्रजी की लीला-भूमि अयोध्या का दर्शन करते हुए भागलपुर जाने का निश्चय किया। भैया को अकेला छोड़कर जाऊँगा, यह सोचकर मन में कष्ट हुआ। इसी समय परलोकगत माधोदास बाबाजी के शिष्य साधु कन्हैयालालजी॰फैजाबाद से भैया को देखने आए। उनके साथ भैया बड़े आनन्द से रहेंगे। मैं भी सुयोग समझकर निश्चिन्त होकर भागलपुर के लिए निकल पड़ा। बस्ती से साढ़े 9 बजे ट्रेन में चढ़कर अपराह्न में सरयू के किनारे 'लकरमण्डी' घाट पर उतरा। रास्ते में भूख-प्यास से बहुत सुस्त हो गया था। एक हिन्दी भाषी ब्राह्मण ने आकर मुझसे

कहा– 'बाबाजी! कुछ खाएँगे? पूरी, कचौड़ी, लड्डू कुछ ला दूँ?' मैंने कहा– नहीं, बाजार का वह सब मैं नहीं खाता। अयोध्या जाकर हनुमानजी का प्रसाद लूँगा। सज्जन ने मिट्टी की हँडी से अच्छी बरफियाँ निकाली एवं सामने रखते हुए कहा– 'यह प्रसाद हनुमानजी आपके लिए भेजे हैं। हनुमानजी को ही भोग चढ़ाकर मैं यह प्रसाद लेकर घर जा रहा हूँ– आप अपनी इच्छानुसार खाइए।' हनुमानजी को प्रणाम करके मन भरकर अच्छी बरफियाँ खाई और सरयू का ठण्डा पानी पिया। भक्तराज महावीर की इतनी दया! यह सोचकर आँखों में आँसू आ गए। पवित्र नदी सरयू के विशाल वक्ष पर रेतीला टापू हो गया है, देखकर मन में बड़ा कष्ट होने लगा। सरयू को प्रणाम करके टापू के ऊपर चलने लगा। ठाकुर ने कहा था– **'श्रीरामचन्द्रजी की अयोध्या अब सरयू के गर्भ में है।'** चलते-चलते लगा– इस स्थान पर ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की लीला-भूमि अप्राकृत अयोध्या धाम है। राम आज कहाँ हैं! राम की बात का स्मरण होने से मन उदास हो गया, शोक में डूब गया; भीतर से अपने-आप ही 'हे राम! हे राम!' शब्द बारम्बार उठने लगा। मैं रोते-रोते चलने लगा। सरयू की रेत को शरीर में मलकर बारम्बार राम को प्रणाम करने लगा। तब उस स्वच्छ अभ्रक कण के समान सरयू की श्वेतवर्ण की रेत में नये दूर्वादल जैसे श्रीरामचन्द्रजी के अंग की ज्योति प्रकाशित हुई। टापू में सर्वत्र वही स्निग्ध हरी ज्योति खण्ड-खण्ड में जगमगाने लगीं। ऐसी ज्योति पहले कभी नहीं देखी। यह देखकर भीतर की जो दशा हुई, उसे व्यक्त नहीं कर सकता। 'हे राम! हे लक्ष्मण! आज तुम लोग कहाँ हो?' इस प्रकार की भावना मन में आने से हृदय विदीर्ण होने लगा। इस समय एक हिन्दी भाषी अचानक इसी अभिप्राय से गाने लगे– 'श्रीराम अभी भी अयोध्या के वनों में सरयू के किनारे-किनारे हाथ में धनुष-बाण लेकर सीता और लक्ष्मण के साथ आनन्द से विचरण कर रहे हैं।' गाना सुनकर मन मानो शीतल हो गया। टापू से नौका पर चढ़कर सरयू पार करके अयोध्या पहुँचा। देखा कि अयोध्या बिल्कुल सुनसान है; इतने बड़े शहर में थोड़ी भी हलचल नहीं! मानो सभी राम के विरह में उदास हैं, सुस्त हो गए हैं!

काशी में पण्डों का उपद्रव: ठाकुर के शासन-वाक्य का स्मरण ताराकान्त भैया का घर

अयोध्या के विभिन्न रास्तों पर कुछ समय तक घूमा। मन में उदासी छा गई। तब काशी जाने का निश्चय करके राणुपाली स्टेशन में आ आया। स्टेशन मास्टर भैया के एक मित्र हैं। उनके साथ भेंट करने पर उन्होंने मुझको आदरपूर्वक अपने घर ले जाकर नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों द्वारा तृप्तिपूर्वक भोजन कराया। फिर यथासमय में काशी की गाड़ी पर चढ़ा दिया। गाड़ी में लोगों की भीड़ न रहने

से बड़े आराम से रात्रि बिताकर प्रातःकाल राजघाट स्टेशन पर उतरा। गंगा में स्नान-तर्पण करने के उद्देश्य से मणिकर्णिका घाट पर पहुँचा। स्नान-तर्पण सम्पन्न होने पर गंगापुत्र और पण्डे लोग श्राद्ध करने के लिए मुझसे बड़ी जिद करने लगे। मैं नहीं करूँगा समझकर, वे लोग मेरा झोला-कम्बलादि खींचकर तंग करने लगे। उनके अत्याचार और दुर्वचन से मैं धैर्य खो बैठा। सोचा, ठाकुर यदि मुझे कोई शक्ति देते, तो इस अत्याचार का उचित जवाब देता। ठाकुर ने मुझसे कहा था– **'अभी तुमको यदि योगैश्वर्य प्राप्त हो जाता है, तो संसार को नष्ट-भ्रष्ट कर दोगे।'** तब उनकी बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ; वरन् सोचने लगा था, ठाकुर क्या मुझे इतना तुच्छ विचार वाला हीन समझते हैं? आज दयालु ठाकुर ने मेरा वह संशय दूर कर दिया– मेरा अभिमान चूर्ण हो गया। मैं भयंकर क्रोधवशतः पण्डों की ओर एकटक देखता रहा। तब अचानक एक पण्डे ने भयभीत होकर मुझसे कहा– 'बाबाजी, क्रोध मत कीजिए। तीर्थ के कार्य का रक्षण आप लोग ही तो करेंगे। आप लोग यह सब करके हम लोगों की मर्यादा नहीं करेंगे, तो साधारण लोग क्यों करेंगे?' सुनकर मैं बड़ा लज्जित हुआ। पण्डे को प्रणाम करके मैंने चरण-धूलि ली। फिर कुली न मिलने से हाथ में झोला एवं कन्धे में बस्ता उठाकर केदार घाट गया। रास्ते में कुली मिल गया। ताराकान्त भैया का घर बहुत ढूँढ़ने के बाद भी नहीं मिला; निराश हो गया। थककर एक घर के दरवाजे के किनारे बैठ गया। सामान रखवाकर कुली को छोड़ दिया। अद्भुत है गुरुदेव की दया! उस घर की लड़की मुझे देखकर भीतर खबर दी। घर ताराकान्त भैया का ही है, उनकी पत्नी आकर यत्नपूर्वक मुझे भीतर ले गईं। घर पर कोई पुरुष नहीं हैं। ताराकान्त भैया कुछ दिन पहले ही गयाधाम गए हैं। मैं तिमँजिले पर निर्जन कमरे में आसन लगाकर बैठ गया। नित्यकर्म सम्पन्न करके सोचने लगा– अब क्या करूँ? इस निर्जन घर में युवती स्त्री के साथ कैसे रहूँगा? यदि ताराकान्त भैया 4-5 बजे के भीतर न आए, तो आज ही मैं भागलपुर चला जाऊँगा। ठाकुर की व्यवस्था अद्भुत है! ठीक 11 बजे ताराकान्त भैया आ गए। उनके आदर एवं स्नेह से काशी में कुछ दिन बड़े आनन्द से बिताया।

पूर्णानन्द स्वामी: केदारेश्वर का दर्शन
साधु का आदेश– 'चले जाइए भागलपुर'

सुना कि ब्राह्म-समाज के उपाचार्य श्री रामकुमार विद्यारत्न जी पूर्व संस्कार त्यागकर अब तान्त्रिक साधना कर रहे हैं। उनका नाम अब ब्रह्मानन्द स्वामी है। काकिनिया सत्र में उनका दर्शन करने गया। उन्होंने बड़े आदर के साथ मुझे अपने

आसन पर बैठाया। उनके शिष्यगणों की उपस्थिति देखकर मैं उस आसन को प्रणाम करके पृथक् आसन पर बैठ गया। देखा, स्वामीजी यथारीति निःशब्द प्राणायाम कर रहे हैं। महात्मा पूर्णानन्द स्वामी को भी देखने की मेरी इच्छा हुई। उनके घर के द्वार पर पहुँचकर देखा, उस समय वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक व्यक्ति को बहुत गालियाँ दे रहे हैं। मैं दूर से ही दर्शन और प्रणाम करके चला आया। महात्माओं के कार्य-कलापों का तात्पर्य कुछ समझ नहीं आता। अपने संस्कार के अनुसार उन लोगों की आलोचना करके अपराधी होना पड़ता है। निश्चय किया, काशी में अब मैं साधु-दर्शन नहीं करूँगा। ठाकुर की निर्विकार मूर्ति को ही मन भरकर देखूँगा। प्रातः गंगा-स्नान करके केदार के मन्दिर गया। मन्दिर में प्रवेश करते ही मेरा सारा शरीर अवश हो गया। केदार को स्पर्श करने से ऐसा लगा, मानो ठाकुर को ही स्पर्श कर रहा हूँ। उस समय मेरे भीतर की जो अवस्था हुई, उसे व्यक्त नहीं कर सकता। परम दयालु ठाकुर ही मेरे चिरकाल के प्रेमपात्र हैं। भक्तगण इन सब स्थानों पर उनकी ही यथार्थ भक्ति कर रहे हैं। वे पतित दुराचारियों की भी सामान्य पुष्पांजलि ग्रहण करके प्रसन्न होकर उन्हें दुर्लभ मुक्ति प्रदान कर रहे हैं। जय शिव-केदार! जय ठाकुर! भक्तजनों के आदर-सत्कार, सेवा-पूजा से तुम चिरकाल सुख से रहो; मैं दुर्जन दूर से ही वैसा दर्शन करके कृतार्थ हो जाऊँ।

आज एक अच्छे उदासीन साधु ने मुझे देखकर कहा– 'आप काहे रुके हो अब तक काशी में? तुरन्त चले जाइए भागलपुर।' श्वेत सरसों, श्वेत काली-मिर्च इन्होंने ही यहाँ से लेने के लिए कहा। मैं वह सब लेकर भागलपुर जाने के लिए प्रस्तुत हो गया।

दानापुर में मुझे गिरफ्तार करने का प्रयास

अपराह्न में राजघाट स्टेशन आकर ट्रेन पर चढ़ गया। मुगलसराय स्टेशन में गाड़ी बदलनी पड़ी। बहुत भीड़ है, बड़े कष्ट से एक गाड़ी में थोड़ी जगह मिली। रेलवे के बड़े साहब की मुझ पर दृष्टि पड़ने से वे कुछ क्षण मेरी ओर देखते रहे। फिर पास आकर उन्होंने कहा– 'तुम साधु हो, यहाँ पर तुमको कष्ट हो रहा है; मेरे साथ आओ, अच्छी जगह दिला देता हूँ। मैं उनके साथ चला गया। साहब ने मुझे द्वितीय श्रेणी की एक निर्जन बोगी में बैठा दिया। वे बहुत समय तक मेरे साथ बातचीत करते रहे। मैं कब से साधु हुआ हूँ, अभी कहाँ से आ रहा हूँ, कहाँ जाऊँगा, सब खबर ली। दो-तीन स्टेशन के अन्तर-अन्तर में साहब मुझे आकर देखने लगे; किन्तु दानापुर पहुँचने के कुछ स्टेशन पहले से उनको फिर देखा नहीं, मेरी बोगी

भी बाहर से बन्द है। मन में थोड़ा सन्देह हुआ। दानापुर स्टेशन में गाड़ी रुकने पर देखा, प्लेटफार्म पर कुछ अस्त्रधारी गोरे सैनिक खड़े हैं। कुछ क्षण बाद सैनिक मेरी बोगी के सामने लाइन से खड़े हो गए। मिलिट्री के एक साहब मेरा नाम-धाम परिचय पूछकर डायरी में लिखने लगे। बड़ी भीड़ जमा हो गई। कोई कहने लगा, मुझे पकड़कर ले जाएँगे। मैं घबराकर मन-ही-मन ठाकुर को स्मरण करने लगा। इसी समय एक चपरासी ने दौड़ते हुए आकर मिलिट्री के उस साहब के हाथ में एक टेलिग्राम दिया। साहब ने उसे पढ़कर मुझको सलाम किया और दलबल को लेकर चले गए। किसलिए यह सब काण्ड हुआ, कुछ समझ नहीं पाया।

इसके बाद भैया के साथ भेंट होने पर उन्होंने कहा था– 'तुम्हारे जाने के बाद एक दिन अचानक रात्रि में 8 बजे सिविल सर्जन ने आकर रोगियों की बात कहते-कहते हमारे परिवार की बात उठाई। हम कितने भाई हैं, सब कहाँ रहते हैं– तुम क्या करते हो, साधु क्यों हुए, हमारे यहाँ से कब गए– वे सब खबर ले गए। लगता है, तुम्हारे बारे में जानकारी लेने के लिए रेलवे के साहब ने सिविल सर्जन को टेलिग्राम किया था; फिर सिविल सर्जन का टेलिग्राम पाकर तुमको छोड़ा गया। 'रशियन लोग भारत पर आक्रमण करेंगे'– ऐसी खबर फैल गई थी। हो सकता है, उन लोगों ने तुम्हारे 'रशियन स्पाई' (जासूस) होने का अनुमान किया था।

पुनः उसी प्रेत की करुण पुकार
प्रत्यक्षता पर भी विश्वास उत्पन्न नहीं होता

20 अक्टूबर, गुरुवार, अमावस्या। मध्य रात्रि में मैं भागलपुर स्टेशन पहुँचा। पिछली बार जिस कुली को लेकर घर गया था, भाग्यक्रम से मुझे इस बार वही कुली मिला। खंजरपुर जाने के लिए एक वृद्ध ब्राह्मण का साथ भी मिल गया। पिछली बार जिस स्थान पर प्रेत की चीख सुनी थी, क्रमशः हम वहीं पर पहुँचे। कुली ने कहा– 'बाबा, पिछली बार की बात याद है तो?' मैंने कहा– हाँ, याद है; कोई डर नहीं, चलो। यह कहकर उस पेड़ के नीचे हम जैसे ही आए, प्रेत का हृदय-विदारक क्रन्दन आरम्भ हो गया। क्लेशसूचक उस भयंकर चीख को सुनकर कुली और ब्राह्मण ने दौड़ लगा दी और उस अन्धकार में वे बीच-बीच में ठोकर खाकर गिरने-पड़ने लगे। 'कौन हो भाई? कौन हो भाई? क्यों इतना चीख रहे हो?' कहकर मैं ऊपर एवं आसपास देखने लगा। भयंकर अन्धकार है– कुछ दिखलाई नहीं पड़ा। ठीक जैसे 20-22 फीट की दूरी पर कोई भयंकर रोग से पीड़ित रोगी असह्य यन्त्रणा से चीख रहा है। मेरे पीछे-पीछे थोड़ी दूर तक यह ध्वनि आती रही; फिर कुछ क्षण बाद वह अचानक बन्द हो गई। ब्राह्मण ने मुझसे कहा– 'महाराज!

मैं राजा सूर्यनारायण सिंह का प्रतिनिधि हूँ। गहन रात्रि में इस मार्ग से जाते समय कई बार मैंने यह चीख सुनी है। यह प्रेत किसी को भी कोई हानि नहीं पहुँचाता; किन्तु बहुत लोग इस स्थान पर यह चीख सुनते हैं।' यह सुनकर मैं सोचने लगा– ओह! प्रेत की यन्त्रणा कितनी भयानक है! परलोक के मध्यवर्ती आवरण को भेदकर उसकी करुण पुकार यहाँ पर हम लोगों को सुनाई पड़ रही है। ठाकुर से इसकी शान्ति के लिए स्वतः प्रार्थना होने लगी। इस विषय में अपने भीतर का संस्कार देखकर चकित हो गया। प्रेत की चीख कानों से सुनकर भी परलोक के सम्बन्ध में निश्चित धारणा उत्पन्न नहीं हुई। देख रहा हूँ, प्रत्यक्षता का कोई मूल्य नहीं है। सत्य विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर भी भीतर का भ्रान्तियुक्त संस्कार जाता नहीं– ठीक मानो दिग्भ्रम की भाँति। पूर्व दिशा से सूर्य उदित होता देखकर भी सोचूँ कि वह पश्चिम दिशा से हो रहा है, तो फिर इसका उपाय क्या है? रात्रि में लगभग 1 बजे पुलिनपुरी पहुँचा।

यथार्थ संवेदनशील सेवा: पाठ रोककर ठाकुर का हवा करना

घर में महाविष्णु बाबू, अश्विनी बाबू एवं छोटे भैया को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। घोर अन्धकार में इतनी दूर चलकर आने से बड़ी थकावट लग रही थी। हाथ-मुँह धोकर जैसे ही बरामदे में गया, छोटे भैया मेरे हुक्के में तम्बाखू सजाकर मेरे आसन के किनारे रखकर चले गए। प्रयोजन के अनुसार आसक्ति की वस्तु तैयार पाकर बड़ा आराम मिला। छोटे भैया के इस कार्य को देखकर मैं चकित एवं मुग्ध हो गया। मैं छोटा भाई, आज तक कभी भी उनके सामने हुक्का नहीं पिया; मुझे आराम होगा, यह सोचकर बिना किसी कठिनाई के निःसंकोच सबके सामने मुझे हुक्का सजाकर दिए। छोटे-छोटे कार्यों में भी मनुष्य की यथार्थ प्रकृति प्रकट हो जाती है। अहा! कब ठाकुर मुझे छोटे भैया की भाँति असाधारण दया और सहानुभूति देकर कृतार्थ करेंगे।

उस दिन गुरुभाई महेन्द्रनाथ मित्र जी ने कहा– 'एक बार ग्रीष्मकाल में गोसाँईजी के साथ शान्तिपुर में था। मध्याह्न में भोजन के बाद गोसाँईजी भागवत पाठ करते थे, मैं पास में बैठकर सुनता था। एक दिन अधिक गर्मी पड़ने से भागवत सुनते-सुनते मैं सो गया। मेरा पूरा शरीर पसीने से लथपथ हो गया था। गोसाँईजी भागवत पाठ बन्द करके एक पंखा लेकर मुझे हवा करने लगे। मैं अचानक जागकर देखा, गोसाँईजी हवा कर रहे हैं। बिना कोई बात किए मैंने सोने का बहाना करके करवट बदल ली। सोचा, भागवत पाठ बन्द करके गोसाँईजी मुझे हवा कर रहे हैं– करते रहें, जब तक भाग्य में है, भोग लूँ। ऐसा भाग्य किसका होता है? पसीना सूख

जाने पर शरीर शीतल हो गया। तब गोसॉईजी धीरे-से पंखा रखकर पुनः भागवत पाठ आरम्भ कर दिए। मैं भी उठकर बैठ गया। गोसाँईजी की मेरे ऊपर कितनी ममता है– इस साधारण कार्य से ही समझ लो!' अब लग रहा है, निर्दिष्ट नियम के अनुसार ठाकुर की जो सेवा है, वह प्रायः प्राणहीन केवल अभ्यस्त क्रिया ही है। दया एवं सहानुभूति के साथ जो सेवा है, वही यथार्थ सेवा, संवेदनशील सेवा है। ठाकुर दया करो! भीतर सहानुभूति, स्नेह-भाव देकर यथार्थ सेवक बना लो।

नाम का अर्थ है– रूप: नाम-जप से उज्ज्वल कृष्ण-ज्योति

भागलपुर में ठाकुर ने मुझे बड़े आनन्द में रखा है। प्रातः गंगा-स्नान करके आसन पर बैठता हूँ। 11 बजे तक का समय इसी प्रकार बीत जाता है। फिर 12 से 5 बजे तक आसन पर रहता हूँ। रात्रि में नींद न आने तक नाम-जप, गान एवं सत्प्रसंग में समय बीतता है। श्वास-प्रश्वास में नाम जपना बड़ा कठिन लगता है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में मन को लगाए रखने से श्वास रुद्ध होने लगती है। कई बार अपने-आप कुम्भक हो जाता है। कुम्भक में श्वास-प्रश्वास के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क न रहने से मन भी नाम में एकाग्र हो जाता है। तब लगता है, नाम एक जीवन्त शक्ति है। नाम-जप करते-करते अन्तःकरण में अपने-आप ठाकुर का रूप उदित होने लगता है। अब देख रहा हूँ, नाम के साथ रूप जुड़ा हुआ है। नाम केवल रूप को प्रकाशित करता है। लोटा कहने पर जिस प्रकार 'लो' एवं 'टा' पर ध्यान नहीं जाता, 'लोटा' शब्द पर भी ध्यान नहीं जाता; वह शब्द कहते ही जिस प्रकार लोटा नामक वस्तु मन में आ जाती है– नाम के स्मरण से उसी प्रकार ठाकुर ही दिखलाई पड़ते हैं। रूप को छोड़कर अब नाम-जप नहीं होता। श्वास-प्रश्वास पर ध्यान रखकर भी नाम-जप नहीं होता। श्वास-प्रश्वास ही नाम की शक्ति का अनुसरण करते हैं। नाम-जप से जिस प्रकार रूप प्रकाशित होता है, उसी प्रकार रूप की सुन्दरता और उज्ज्वलता में भी नाम-जप ही वृद्धि करता है। नाम के स्मरण से अन्तःकरण में सर्वदा ठाकुर का संग मिलते रहने से घनिष्टता और प्रेम में वृद्धि होने लगी। दैहिक संस्कारवश यह प्रेम धीरे-धीरे अटूट सम्बन्ध में परिणत हो गया। दयालु ठाकुर ने अपनी असाधारण कृपा के गुण से शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर, सभी भाव को एक-एक करके इस अन्तःकरण में संचारित करके अपने माधुर्य का उपभोग करा दिया। अब सर्वशक्तिमान, सर्वनियन्ता ठाकुर के अनन्त गुणराशि का एक बिन्दु भी एक बार के लिए मन में नहीं आता। अब केवल लगता है, वे मुझे स्नेह करते हैं; मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं। कुछ दिनों से अत्यन्त उज्ज्वल घनी कृष्ण ज्योति क्षण-क्षण में प्रकाशित होने से मन जैसे उसमें

ही एकाग्र एवं मुग्ध रहता है। सब ज्योतियों की अपेक्षा इस ज्योति की मोहिनी शक्ति अधिक है। शीघ्र ठाकुर के पास जाने के लिए मन बड़ा अधीर हो गया।

जह्नु मुनि का आश्रम: फकीर का दर्शन

महाविष्णु बाबू ने कहा– 'यहाँ से पश्चिम की ओर कुछ स्टेशन जाने के बाद सुल्तानगंज आता है। इस सुल्तानगंज में ही जह्नु मुनि का आश्रम था। यह जाह्नवी का उत्पत्ति स्थान है। महाविष्णु बाबू की बात सुनकर सुल्तानगंज जाने की बड़ी इच्छा हुई। घर के हम सब लोग सुल्तानगंज के लिए निकल पड़े। स्कूल विभाग के एक सब-इंस्पेक्टर का घर सुल्तानगंज में है। वे बड़े आदर के साथ हम लोगों को वहाँ ले गए। उनके घर जाकर कुछ क्षण विश्राम करके गंगा के किनारे पहुँचे। बहती गंगा के वक्षःस्थल पर मन्दिर के आकार का एक सुन्दर गोल पहाड़ देखा। छोटी नौका से जाकर पहाड़ पर चढ़ा। आसपास चारों ओर, यहाँ तक कि चट्टान के नीचे भी ध्यान से देखा, प्रत्येक चट्टान पर देवी-देवताओं की मूर्ति अंकित है! पूरा पहाड़ मानो क्रम से देवी-देवताओं की मूर्तियों द्वारा बना है। युग-युगान्तर की होने पर भी मूर्तियाँ इतनी स्पष्ट और सुन्दर हैं कि एक की ओर देखने पर अन्य की ओर देखने का अवसर नहीं मिलता। स्वाभाविक धारा में बहती हुई गंगा इस स्थान पर फैली हुई है; आगे जाकर पुनः स्वाभाविक धारा में प्रवाहित हो रही है। सुना है, पुराण में है कि भगीरथ की व्याकुल प्रार्थना से दया के वशीभूत होकर जब गंगा सूर्यवंशीय सगर-कुल का उद्धार करने के लिए सागर-संगम में जाने लगीं, तब इस स्थान पर पहुँचने के समय जह्नु मुनि ने कहा– 'माँ! तुम दया करके इस आश्रम के एक ओर से होकर चली जाओ– मेरे आश्रम को मत डुबाओ।' किन्तु मुनि की बात अनसुनी करके गंगा गर्व के साथ सीधे पथ से आश्रम की ओर आने लगीं। तब महायोगी जह्नु मुनि गंगा को चुल्लू में लेकर पी गए। गंगा की शक्ति का हरण होने से धारा भी तुरन्त बन्द हो गई। भगीरथ इस भयंकर संकट को देखकर मुनि के चरणों में शरणागत हो गए एवं पितृ-पुरुषों के उद्धार के लिए गंगा को छोड़ देने हेतु व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगे। भगीरथ की स्तुति से सन्तुष्ट होकर योगीवर ने अपने घुटने में छेद करके गंगा के बाहर निकलने का पथ बना दिया। इस प्रकार गंगा जह्नु मुनि के घुटने से निकलकर जह्नु-पुत्री जाह्नवी के नाम से प्रसिद्ध हुई एवं श्रद्धा के साथ ऋषि के आश्रम की परिक्रमा करके भगीरथ की शंख-ध्वनि का अनुसरण करने लगीं। यह स्थान भजन के लिए इतना अनुकूल और ऐसा मनोरम है कि इसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं हुई। यहीं आकर अवशिष्ट जीवन व्यतीत करने की इच्छा मन में जागने लगी। गंगा-स्नान करके

जह्नु मुनि के चरणों के उद्देश्य से उस पुण्य भूमि पर ही साष्टांग प्रणाम किया। पहाड़ के ऊपर गुफा की भाँति छोटी-छोटी भजन कुटीर हैं, उनमें से एक के सामने बैठकर नाम-जप करने लगा। बहुत अच्छा लगा। अपराह्न में लगभग 4 बजे पुनः गंगा पार करके तट पर आ गया। घर लौटते समय गंगा के किनारे जंगल में एक बहुत पुरानी टूटी हुई मस्जिद दिखाई पड़ी। मस्जिद में किसी समय भगवान् का कितना नाम-गान हुआ था– मन में ऐसा विचार आने से उसे देखने की इच्छा हुई। द्वार पर जाकर देखा, दीर्घाकृति के दुबले-पतले दीन-हीन कंगाल की भाँति केवल लंगोटी पहने एक फकीर कमरे के एक कोने में चुपचाप बैठे हुए हैं। मन में आशंका हुई कि वहाँ हम इतने लोगों के पहुँचने से फकीर साहब के भजन में बाधा पड़ेगी। फकीर साहब अपनी साधना में मग्न हैं, हम लोगों की ओर उन्होंने ताका भी नहीं। वृद्ध फकीर साहब क्या लेकर इस निर्जन घने जंगल में कूड़े-करकट से भरी टूटी मस्जिद के कोने में इस प्रकार अकेले पड़े हैं– सोचकर मन कैसा हो गया। ठाकुर! कब मैं भी एकान्त में इसी प्रकार तुम्हें लेकर रात-दिन आनन्द से बिताऊँगा? सब-इंस्पेक्टर बाबू के आदर-सत्कार से तृप्त होकर रात्रि में भागलपुर पहुँच गया।

नवम्बर, सन् 1892 ई०

मनोरमा की अद्‌भुत गुरुनिष्ठा

गुरुभाई श्री मनोरंजन गुह ठाकुरता कुछ दिन पहले भागलपुर आ गए हैं। मनोरंजन बाबू की पत्नी श्रीमती मनोरमा के साथ भेंट करने गया। भगवान् गुरुदेव मनोरमा के द्वारा गुरुभक्ति व गुरुनिष्ठा का जो असाधारण दृष्टान्त दिखला रहे हैं, वैसा वर्तमान समय में कहीं सुना नहीं। मनोरंजन बाबू एक प्रसिद्ध उत्साही ब्राह्मधर्म प्रचारक थे। ठाकुर से दीक्षा लेने के बाद उनका वह उत्साह मानो दिनो-दिन मन्द होता गया। अब एकान्त में मन लगाकर साधन-भजन करके समय काट रहे हैं। परिवार में पाँच-सात छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ, पत्नी और स्वयं हैं, इसके अतिरिक्त दो-चार बाहरी लोग प्रायः ही रहते हैं। किस प्रकार इन लोगों का खर्चादि चलता है, कुछ समझ में नहीं आता। मनोरंजन बाबू के मुख से सुना कि ठाकुर ने आदेश दिया– **'भागलपुर चले जाओ, वहाँ जाकर कुछ दिन रहो।'** मनोरमादेवी तुरन्त भागलपुर जाने के लिए प्रस्तुत हो गईं। हाथ में रुपये-पैसे नहीं, रेल का किराया कहाँ से मिलेगा, यह सोचकर मनोरंजन बाबू चिन्तित हो गए। मनोरमा ने कहा– 'ठाकुर ने मुझे भागलपुर जाने के लिए कहा है– मैं जाऊँगी। हावड़ा स्टेशन जाकर गाड़ी छूटने तक देखूँगी, ठाकुर यदि रेल से जाने का प्रबन्ध

करते हैं, तो रेल से जाऊँगी; अन्यथा रेल लाइन पकड़कर चलती जाऊँगी। लड़के-बच्चों को लेकर तुम साथ में चल सकोगे, तो चलना, अन्यथा यहीं रहना।'

दाता कालीकुमार की कन्या सती मनोरमा ने तो कभी भी मिथ्या नहीं कहा; मिथ्या संकल्प भी उनके मन में उदित नहीं होता। वे निश्चय ही पैदल जाएँगी– यह सोचकर लाचार मनोरंजन बाबू लड़की के कंगन गिरवी रखकर कुछ रुपये जमा किए एवं कोलकाता की गृहस्थी समेटकर सबको लेकर हावड़ा स्टेशन पहुँचे। जो पैसे थे, उससे सामान और बाल-बच्चों को लेकर भागलपुर तक जाना सम्भव नहीं होगा। मनोरंजन बाबू बहुत चिन्तित हो गए। ट्रेन छूटने के कुछ ही समय पहले एक सज्जन ने आकर किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाम का उल्लेख करके मनोरंजन बाबू से कहा कि उन्होंने वस्त्र खरीदने के लिए आपको ये रुपये भेजे हैं। मनोरंजन बाबू उन रुपयों की सहायता से भागलपुर आए। भागलपुर में पूर्वपरिचित ब्रह्मसमाजी वामनदास बाबू के घर पर ठहरे थे। अब नया घर किराये पर लिए हैं। हाथ में रुपया-पैसा नहीं, खाने का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। ऐसे अनजान स्थान में इतने बच्चों-कच्चों को लेकर किस प्रकार से हैं, कल्पना भी नहीं कर सकते। कभी अर्धाहार तो कभी निराहार रहकर दिन काट रहे हैं। सुना है, इस बीच एक दिन घर में कुछ नहीं था, बच्चों ने भूख से बेचैन होकर पेट पर हाथ फेरते हुए माँ से कहा, 'माँ! बड़ी भूख लगी है।' माँ ने तुरन्त ठाकुर की फोटो दिखाकर कहा, 'बेटे! गोसाँईजी तुम लोगों को बहुत स्नेह करते हैं। तुम लोग उनसे खाना माँगो।' बच्चे भी बड़े अद्‌भुत हैं– माता-पिता की प्रकृति के ही जैसे। एक ने अन्य से कहा, 'ठीक है, चलो, हम गोसाँईजी को गाना सुनाते हैं, उन्हें संकीर्तन अच्छा लगता है।' यह कहकर वे ताली बजाते हुए गाना आरम्भ कर दिए। कुछ ही क्षण बाद कोई दरवाजा खटखटाकर बाहर से चिल्लाने लगा– 'बाबूजी! दरवाजा खोलिए!' दरवाजा खोलने पर देखा गया, दो कुली दो बड़ी-बड़ी टोकरी भरकर अत्यधिक परिमाण में चावल, दाल, आटा, घी, साक-सब्जी और मसाला आदि लेकर आए हैं। वे लोग सब सामान को रखकर चले गए। किसने भेजा, पूछने पर उन्होंने कहा– 'बाबू आ रहे हैं।' परन्तु किस बाबू ने ये सब भेजा है, उसकी फिर कोई खोज-खबर नहीं मिली। इस प्रकार की घटना मनोरंजन बाबू के घर प्रतिदिन किसी के निमित्त हुआ करती है। शीघ्र ही मेरे ढाका जाने की बात सुनकर मनोरमा ने मुझसे कहा– 'गोसाँईजी से कहना, वे जैसा रखें, सन्तुष्ट होकर उनकी ओर ताकते हुए रह सकूँ, उनको कभी भूलूँ नहीं– यही आशीर्वाद दें।' मैं इन लोगों की बातें सुनकर चकित रह गया। गुरु के प्रति किस प्रकार विश्वास और निर्भरता आने से मनुष्य छोटे-छोटे बच्चों को लेकर इस अवस्था में भी ऐसा निश्चिन्त रह सकता है, उसकी मैं कल्पना नहीं कर पा रहा हूँ। इन लोगों से मिलकर मैं धन्य हो गया।

आभिचारिक क्रिया के कष्ट से मुक्ति के लिए शान्ति-होम का संकल्प

18–19 नवम्बर, शुक्रवार–शनिवार। मेरे बहनोई मथुर बाबू गाँव से आ गए हैं। मुझे घर में देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। उनके मुख से एक दुःखद घटना सुनकर मन में बड़ा कष्ट हुआ। वे स्कूल विभाग के एक उच्च पदस्थ कर्मचारी हैं; बहुत ही सरल विश्वासी एवं सीधे-साधे व्यक्ति हैं। वृहत् परिवार की देख-रेख एवं बाल-बच्चों के प्रतिपालन के लिए उन्होंने घनिष्ट आत्मीय एक महिला को अपने घर में लाकर रखा था। वह महिला आरम्भ में तो मेरी बहिन की बड़ी भक्त थी; किन्तु कुछ दिन बाद उसका वह भाव नहीं रहा। उसके बिना गृहस्थी नहीं चलेगी, यह सोचकर वह बहिन के साथ बराबरी करके चलने लगी और पग-पग पर बहिन का विरोध भी करने लगी। बहिन ने उसको शीघ्र वहाँ से हटाने का विचार किया। उस महिला की धारणा थी– बहिन न रहे, तो वह घर की मालकिन हो जाएगी। अतएव उसने गुप्त रूप से निपुण तान्त्रिक द्वारा आभिचारिक क्रिया करवाकर बहिन के प्राण लेने का साहस किया। इस क्रिया के एक सप्ताह के भीतर ही अकारण रक्त-स्राव से बहिन की मृत्यु हो गई। कुछ दिन पहले मेरे भाँजे ने आकर गृहस्थी का सारा भार ले लिया है। अब महिला के करने योग्य कुछ भी नहीं रहा। इससे वह भाँजे को भी हटाने के लिए उसी क्रिया का अनुष्ठान करवा रही है। कुछ समय पहले एक दिन प्रातः घर से बाहर निकलते समय मथुर बाबू ने दरवाजे के सामने देखा– एक कलश के ऊपर आम के पत्तों के साथ नारियल रखा है। कलश पर सिन्दूर से अंकित यन्त्र एवं देवी मूर्ति है। कलश के सामने मिट्टी के पात्र में कुछ राख एवं जला हुआ झाडू है और आसपास पान व सुपारी बिखेरे हुए हैं। मथुर बाबू ने ऐसा दृश्य मेरी बहिन के मृत्यु के पाँच-सात दिन पहले भी देखा था। अतएव यह सब देखकर वे बहुत डर गए एवं शीघ्र मुझे भेजने के लिए भैया को टेलिग्राम दिया। यह सब सुनकर मैं सोचने लगा कि अब क्या करना उचित है।

बस्ती में भाँजे सुरेन्द्र ने भी पत्र द्वारा भैया को इसकी जानकारी दी थी। भैया से यह सुनकर मैंने तभी संकल्प कर लिया था कि भागलपुर जाकर होम व चण्डी-पाठ द्वारा शान्ति-स्वस्त्ययन करके कष्ट का निवारण करूँगा। मथुर बाबू को निश्चिन्त रहने के लिए कहा। आगामी चतुर्दशी को होम करने का निश्चय किया। एक कमरे को गोबर द्वारा अच्छे-से स्वच्छ करके उसमें यज्ञ-कुण्ड बना लिया है। वट, पीपल और बेल की लकड़ियाँ पर्याप्त परिमाण में एकत्रित कर ली गई। उत्सुकता के साथ मैं शुभ क्षण की प्रतीक्षा में दिन बिताने लगा।

इस विषय पर पुनः विचार आने लगा– मथुर बाबू के कष्ट निवारण के लिए

संकल्पपूर्वक शान्ति-स्वस्त्ययन करना उचित है या नहीं। ठाकुर ने मुझे अपने लिए संकल्प करके कार्य करने हेतु मना किया है, ठीक है; पर उन्होंने पीड़ित व्यक्ति के कष्ट से मुक्ति के लिए सत्संकल्प से शास्त्रानुसार कार्य करने हेतु मना नहीं किया, वरन् प्रोत्साहन दिया है। संसारियों में अनेक लोग भगवान् को तो भूल ही गए हैं; ठाकुर के शरणागत हुए बिना फिर किस उपाय से उन लोगों का कल्याण होगा? लगता है, इसी कारण से मंगलमय परमेश्वर जीव के उद्धार के लिए उन लोगों को नाना प्रकार के आपद्-विपद् में डालकर स्वयं को पुकारने हेतु बाध्य करते हैं। धर्म और मोक्ष प्राप्ति के लिए यदि भगवान् को पुकारना पड़ता है, तो फिर अर्थ और काम के लिए उन्हें क्यों नहीं पुकारेंगे? प्रार्थना ही यदि करनी है, तो जिस वस्तु के अभाव से हमें क्लेश होता है, उन सबके प्रतिकार की कामना से ही वह सब भगवान् को निवेदन करेंगे! महापुरुषों के मुख से सुना है कि किसी भी प्रकार से भगवान् का नाम लेना कल्याणकारी है– 'हेलया श्रद्धया वा।' शास्त्र में प्रमाण है कि शत्रु भाव से भी भगवान् के साथ सम्बन्ध रखने पर जीव का उद्धार हुआ है। उसके बाद देखता हूँ, संकल्पित कार्य में सफलता मिलने पर पीड़ित व्यक्ति के भीतर स्वतः ही सहज में श्रद्धा जाग जाती है। स्वार्थ के लिए आश्रय लेकर भी जीव उनकी कृपा से परमार्थ प्राप्त करता है। अतएव मेरे किसी कार्य से ठाकुर के प्रति कोई श्रद्धावान अथवा आकृष्ट होता है, तो सोचता हूँ, उससे मैं भी कृतार्थ हुआ। यह सब विवेचना करके मैंने शान्ति-स्वस्त्ययन करने का निश्चय किया।

सर्वसंकट निवारण हेतु हवन: अपराधी का हृदय कम्पन

आज प्रातः गंगा-स्नान करके पूर्व ओर के कमरे में प्रवेश किया। घर के सभी लोग होम देखने के लिए वहाँ आकर बैठ गए। मैंने अपने आसन पर बैठकर एकाग्र मन से न्यास सम्पन्न किया। इस बीच फूल, चन्दन, दूब, तुलसी और भोग आदि पूजा की सब सामग्री आ गई। एक हजार त्रिदल विल्वपत्र, श्वेत करवी, श्वेत सरसों आदि आहुति की सामग्री हवन-कुण्ड के सामने रखा। चण्डी-पाठ के पहले मथुर बाबू से पूछा– किस संकल्प से होम करूँगा? उन्होंने कहा– 'मैंने तो किसी का कोई अनिष्ट किया नहीं; बिना दोष के ही मेरे सर्वनाश का प्रयास कर रहा है, उसका सर्वनाश हो जाए।'

मैंने कहा– वैसा संकल्प मैं नहीं कर सकूँगा; 'सर्वसंकट शान्ति' संकल्प से केवल आत्मरक्षा के लिए यह कार्य कर सकता हूँ। मथुर बाबू इसमें सहमत हो गए। मैंने 'अर्गला स्तोत्र' से आरम्भ करके चण्डी का आदि से अन्त तक पूरा पाठ किया। उसके बाद विशाल हवन-कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करके उसमें व्याकुलता के साथ

ठाकुर का आह्वान करने लगा। फिर यथाविधि मन्त्र से शुद्ध करके उस अग्नि में गाय के विशुद्ध घी से मैंने सहस्र विल्वपत्र की आहुति दी। अन्त में आभिचारिक उपद्रव की शान्ति के लिए श्वेत करवी आदि द्वारा एक सौ आठ बार आहुति दी एवं पूर्णाहुति देकर अपराह्न 5 बजे मैं आसन से उठ गया। चतुर्दशी एवं अमावस्या दोनों तिथि में ही मैंने इस प्रकार हवन, चण्डी-पाठ और शान्ति-स्वस्त्ययन किया। यह एक आश्चर्य की बात है कि इन दोनों दिन ही कार्य के आरम्भ से अन्त तक वह अनिष्टकारी महिला घर में रह नहीं पाई। पास में हरिदास बाबू के घर में ही प्रातः से संध्या तक रही। कुछ लोगों ने उसका कारण पूछा तो उसने कहा– 'ब्रह्मचारी क्या कर रहे हैं, समझ नहीं आता। क्यों कर रहे हैं, वह भी नहीं जानती। उस काम के समय घर में रहने से पता नहीं कैसा डर लगा। होम के धुएँ की गन्ध को मैं सहन नहीं कर पाई।' यह सुनकर मैंने सोचा, संकट अब उसके निकट है, अतएव मैं शीघ्र ही भागलपुर छोड़ने के लिए व्यग्र हो गया। मंगलमय ठाकुर! तुम्हारी इच्छा की जय हो।

हवन का परिणाम सार्थक: अपराधी की अद्भुत मृत्यु

21 नवम्बर, सोमवार। शान्ति-स्वस्त्ययन के बाद भागलपुर में रहने की इच्छा नहीं हुई। कोलकाता आकर कुछ दिन गुरुभाइयों के साथ परमानन्द से बिताया। इसी बीच भागलपुर से एक पत्र आया। उसमें लिखा है, मथुर बाबू के घर की एक महिला अचानक हैजा से दो दिन पीड़ित रहकर मर गई। उसे मध्यरात्रि के समय शौचालय जाने पर विशाल आकृति का एक भयानक कालपुरुष दिखाई दिया था। वह दोनों हाथ सामने बढ़ाकर 'मैं तुमको लेने आया हूँ' कहते-कहते उसकी ओर बढ़ने लगा। महिला 'मर गई रे' चीखती हुई भागते-भागते अचेत होकर गिर पड़ी। उसके बाद उसे भयंकर ज्वर के साथ दस्त होता रहा। दो दिन असह्य यन्त्रणा भोगने के बाद वह तीसरे दिन मर गई। खबर पाकर मेरा हृदय धड़कने लगा। सोचने लगा– तो क्या मैं ही उसकी इस अकाल मृत्यु का कारण हूँ? कुछ अच्छा न लगा; बेचैन हो उठा।

ठाकुर के पास उपस्थिति

25 नवम्बर, शुक्रवार। दिन ढलने पर गेण्डारिया आश्रम में पहुँचा। आम के पेड़ के नीचे ठाकुर को देखकर साष्टांग प्रणाम किया। मुझे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने थोड़ा विश्राम करके भण्डार से सामान लेकर भोजन बनाने के लिए कहा। मैंने दक्षिण ओर के कमरे में जिस स्थान पर था, वहीं पर आसन लगा लिया।

श्रीधर, श्यामाकान्त पण्डित, योगजीवन, जगबन्धु, विधु घोष और अश्विनी इत्यादि को देखकर बड़ा अच्छा लगा। संध्या के समय चावल, सब्जी एक साथ उबालकर बड़ी तृप्ति के साथ भोजन किया। मन्दिर में शंख बजाकर कुतुबुड़ी ने आरती की। आरती का दर्शन करने के बाद ठाकुर पूर्व ओर के कमरे में आ गए। गुरुभाई लोग संकीर्तन करने लगे। मैं थकावट के कारण अधिक समय तक वहाँ रह नहीं सका; अपने आसन पर आकर विश्राम करने लगा।

आत्मरक्षा का प्रयास– उस मृत्यु में तुम्हारा क्या दोष? संकेत से बात स्पष्ट समझ आना

26 से 28 नवम्बर। प्रातः बूढ़ी गंगा में स्नान-तर्पण आदि सम्पन्न करके आसन पर आ गया। न्यास, प्राणायाम, हवन और चण्डी-पाठ पूरा करके ठाकुर के पास जाकर बैठ गया। 4 नवम्बर, शुक्रवार, रासपूर्णिमा (चन्द्रग्रहण) की रात्रि से ठाकुर ने मौन व्रत धारण किया है। ठाकुर ने मौन क्यों धारण किया, जानने की इच्छा हुई। ठाकुर ने बतलाया कि उन्होंने परमहंसजी के आदेश से मौन धारण किया है। परमहंसजी ने अभी ठाकुर को छः महीने मौन रहने के लिए कहा है, सुनकर बड़ा कष्ट होने लगा। ये छः महीने ठाकुर की वाणी सुने बिना कैसे रहूँगा, सोचने लगा। ठाकुर 11 बजे तक शास्त्र का पाठ करके शौच के लिए गए। मैं भी अपने आसन पर चला आया। ठाकुर के भोजन के बाद लगभग साढ़े 12 बजे उनके पास जाकर बैठ गया। उन्होंने प्रतिदिन अपने पास भागवत पाठ करने के लिए मुझसे कहा। प्रायः दो घण्टे तक भागवत पाठ करके ठाकुर के पास ही बैठा रहा। इन कुछ महिनों में मैं भागलपुर और बस्ती में किस प्रकार था, ठाकुर ने वह जानना चाहा। मैंने भागलपुर की घटना का विवरण विस्तार से बतलाकर पूछा– तो क्या महिला की मृत्यु मेरे कारण हुई? इसमें क्या मेरा दोष है? ठाकुर ने अस्फुट स्वर में कहा– **"तुम्हारा क्या दोष? तुमने वह सब किसी का कुछ अनिष्ट करने के लिए कोई बुरे उद्देश्य से तो किया नहीं! आत्मरक्षा के लिए ही 'सर्वसंकट शान्ति' के संकल्प से शास्त्रोक्त व्यवस्था के अनुरूप कार्य किया है। तुम्हारी क्रिया की शक्ति अचूक है; आभिचारिक शक्ति की क्षमता क्या है, जो उसको विफल करे? इसलिए वह शक्ति पलटकर प्रयोगकारी के ऊपर ही पड़ी। अब तुम उसमें क्या करोगे?"**

ठाकुर ने मुझको दोनों हाथों की अनामिका (छोटी अंगुलि) में कुश की अँगूठी पहनने एवं जनेऊ पहनकर दाहिने हाथ के ऊपर बायाँ हाथ रखकर हवन करने के लिए कहा।

यह बड़े आश्चर्य की बात है, देख रहा हूँ कि ठाकुर बड़े ही अद्‌भुत उपाय, आकार, इंगित और कण्ठतालु की सहायता से एक प्रकार के अस्फुट स्वर में मन के जो सब भाव को व्यक्त करते हैं, उसे मैं बहुत स्पष्ट रूप से समझ पा रहा हूँ। इसे मैं उनकी ही विशेष कृपा समझता हूँ। ठाकुर कभी-कभी आवश्यक बातें हथेली, मिट्टी या स्लेट पर लिखकर बतलाया करते हैं। प्रश्नों के उत्तर भी इसी प्रकार दिया करते हैं।

इस बार आकर दादीजी को बहुत दुर्बल देख रहा हूँ। अत्यन्त पीड़ित हैं। प्रतिदिन ही ज्वर हो रहा है, खाँसी से भी वे कष्ट पा रही हैं। दादीजी रात्रि में ठाकुर के कमरे में ही रहती हैं। थोड़ा रात्रि होते ही खाँसी आरम्भ हो जाती है। प्रायः रातभर थक्का-थक्का पीले रंग का कफ निकला करता है। मानसिक रूप से भी बड़ी असन्तुलित हैं– अधिकांश समय विक्षिप्त अवस्था में ही बिताती हैं। रातभर कभी चिल्लातीं, कभी गालियाँ देतीं, तो कभी गाने लगतीं। अपने मन में अनाप-शनाप कितना कुछ बक़तीं, कुछ समझ नहीं आता। इस अवस्था में रात्रि व्यतीत करतीं हैं, ठीक है; लेकिन सारा दिन ही कहाँ किस अवस्था में रहती हैं, कोई ठिकाना नहीं रहता। कभी गेण्डारिया के जंगल में, कभी मुसलमानों के घर में, तो कभी तालाब के किनारे चुपचाप बैठी हुई देखी जाती हैं। कभी-कभी तो दिन और रात में भी ठिकाना नहीं मिलता। ठाकुर के कमरे में रात्रि के समय योगजीवन ही रहते हैं; इच्छा होने पर श्रीधर बीच-बीच में जाकर धूनी तापने बैठ जाते हैं। ठाकुर इस अवस्था में दादीजी को लेकर कैसे रात काटते हैं, समझ नहीं आता। खबर लेने वाला भी कोई नहीं है। ठाकुर ने मुझे रात्रि में अपने पास रहने को कहा। मैं भोजन के बाद रात्रि में प्रायः 10 बजे तक विश्राम करके ठाकुर के कमरे में जाता एवं प्रातःकाल तक पगली दादीमाँ के मनमाने हुकुम के अनुसार चला करता हूँ। रातभर धूनी जलाकर रखनी पड़ती है; रात्रि में 12 एवं साढ़े 3 बजे ठाकुर हाथ-मुँह धोने के लिए बाहर जाया करते हैं। तब एक व्यक्ति का रहना आवश्यक होता है।

ठाकुर के मस्तक पर सर्प का फन: विषधर का अमृत-दान सर्प पर दादी का शासन

29 नवम्बर, मंगलवार, शुक्ल दशमी। दादी रात्रि में ठाकुर के कमरे में रहती हैं; परन्तु आज दो दिन हो गए, वे ठाकुर के आसन-कुटीर में रात बिता रही हैं। दादीजी की अस्वस्थता पहले की अपेक्षा और भी बढ़ गई है। कुटिया में उनके प्रवेश करने पर बाहर से साँकल बन्द करके रखना पड़ता है। नानीजी आज कोलकाता से आई हैं। जगबन्धु बाबू के साथ उनका भयंकर झगड़ा चल रहा है।

रात्रि में साढ़े 9 बज गए, झगड़ा नहीं रुका। कुंज घोष जी अपने घर से ठाकुर के लिए भोजन ले आए, ठाकुर ने हाथ हिलाते हुए बतलाया कि वे नहीं खाएँगे। हम लोगों ने अनुमान लगाया, आश्रम में झगड़ा-अशान्ति के कारण ही सम्भवतः ठाकुर ने भोजन नहीं किया। आश्रम में रहने वाले सभी गुरुभाई भोजन के बाद अपने-अपने स्थान पर विश्राम करने लगे। ठाकुर ने मुझे बिछौना लगाने को कहा। रात्रि में लगभग 10 बजे ठाकुर अचानक खड़े हो गए एवं आसन-कम्बल बगल में लेकर शीघ्र कमरे से बाहर निकल पड़े। मुझको आम के पेड़ के नीचे धूनी जलाने के लिए उन्होंने इंगित किया। मैं कमरे की धूनी को आम के पेड़ के नीचे ले गया। इस कड़कती ठण्ड में आम के पेड़ के नीचे ठाकुर ने आसन लगाया है, यह सुनकर गुरुभाई लोग घबरा गए; सभी ने सोच लिया कि आश्रम में झगड़ा-अशान्ति ही इसका कारण है। ठाकुर ने कुछ समय बाद सबको बतलाया– **'आज माताजी का भयंकर दुर्योग है। श्यामसुन्दर आकर कह गए हैं, आज रात्रि टिक जाने से फिर और कुछ दिन रहेंगी।'** ठाकुर को श्यामसुन्दर ने दादीजी के निकट ही आम के पेड़ के नीचे रहने को कहा है, इसलिए ठाकुर आम के पेड़ के नीचे आए हैं। श्रीधर, योगजीवन, विधु बाबू आदि ठाकुर के पास रहना चाहते थे; ठाकुर ने उन लोगों को मना करके कहा– **"नहीं, यहाँ ब्रह्मचारी ही रहेगा।"** मैं अपना आसन लाकर ठाकुर के पास धूनी के किनारे बैठ गया एवं बड़े आनन्द से नाम-जप करके समय काटने लगा। रात्रि में 12 बजे ठाकुर ने खाना माँगा। कमरे में जो रखा गया था, लाकर दे दिया। रात्रि 2 बजे के बाद दादीजी किस अवस्था में हैं, एक बार खबर लेने के लिए कहा। मैं आसन-कुटीर में जाकर देखा– दादीजी अचेत अवस्था में पड़ी हैं। कुछ समय तक उनका हाथ-पैर दबाने के बाद अपने आसन पर आकर बैठ गया। 3 बजे एक भयंकर दृश्य देखकर मैं चौंक उठा। देखा, एक काला साँप ठाकुर के बायीं ओर से शरीर के सहारे मस्तक पर चढ़कर कुछ क्षण फन फैलाकर रहा, फिर धीरे-धीरे दाहिनी ओर से होते हुए उतर गया। ठाकुर ने मुझसे कहा– **"यह आसन का जात-साँप है। सुविधा मिलते ही ये आ जाते हैं। जटा के सहारे सिर पर चढ़कर मस्तक के ऊपर कुछ क्षण फन फैलाकर रहने के बाद चले जाते हैं।"** यह कहकर ठाकुर कमण्डलु से पानी लेकर पीने लगे। मैंने कहा– ओह! उस पानी को पी रहे हैं? अभी-अभी उसमें साँप मुँह लगाकर चला गया।

ठाकुर– **'सर्पराज कमण्डलु के जल में अमृत डाल गए हैं। तुम थोड़ा पिओगे?'** यह कहकर ठाकुर ने मेरे हाथ में कमण्डलु से एक चुल्लू पानी डाला। मैंने पीकर देखा, वह नारियल पानी के जैसा मीठा एवं सुगन्धित है। पीने से चित्त इतना प्रफुल्लित हो उठा कि भीतर सरस भाव से अपने-आप नाम-जप होने लगा।

ठाकुर ने कहा– **"साँप माँ के पास भी गया था। माँ इस बार बच गई, दुर्योग कट गया।"** मैंने पूछा– साँप ने तो जटा के ऊपर फन फैलाकर कई बार फुफकारा भी। साँप उस प्रकार से आपके मस्तक पर क्यों चढ़ा?

ठाकुर– **सुषुम्ना नाड़ी में स्वाभाविक रूप से प्राणायाम होने पर एक बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है। साँप को वह स्वर बहुत अच्छा लगता है। घर में साँप कहीं भी क्यों न रहे, दूर से भी उस स्वर को सुन लेता है और उससे आकर्षित हो जाता है। वह धीरे-धीरे आकर उस सुर को पकड़ने के लिए शरीर, कन्धे व मस्तक पर चढ़ जाता है। नाक के पास, कपाल पर फन फैलाकर शान्त भाव से उस सुर को सुना करता है। कभी-कभी अपनी फुफकार को उससे मिलाकर आनन्द प्राप्त करता है। महादेव के मस्तक पर भी साँप रहता है, यह कोई अस्वाभाविक नहीं है! उस प्रकार साधना चलने से तुम लोगों के शरीर पर भी साँप चढ़ सकता है। ये साँप कभी भी हानि नहीं पहुँचाते, वरन् इनके द्वारा बड़ी सहायता ही मिलती है। ये लोग फुफकार नहीं मारते, सीटी बजाते हैं। फिर प्राणायाम बन्द होते ही चले जाते हैं।**

अपने प्रति ठाकुर की विशेष कृपा देखा; मौन व मग्नावस्था में रहने पर भी उनके श्रीमुख से आज दो-चार बातें सुनी। विषधर सर्प– उसके मुख से भी अमृत! इसे प्रत्यक्ष न देखने से कभी विश्वास नहीं करता। जो स्वाभाविक है, ज्ञान या अभिज्ञता के अभाव से ही वह अद्‌भुत, आश्चर्यजनक या असम्भव लगता है।

प्रातः दादी ने ठाकुर से कहा– 'तेरे आसन का साँप रात में बहुत सताया। पास आकर फन फैलाकर फुफकारने लगा। मैंने जाने के लिए कहा, तो गया नहीं। तब एक चाँटा जमा दी; तुरन्त चला गया।' दादी की बात सुनकर चकित हो गया।

दिसम्बर, सन् 1892 ई॰

कोई गुरुनिष्ठा नष्ट करे, तो प्रतिकार करना उचित है

1 दिसम्बर, गुरुवार। श्री महेन्द्र मित्र जी ने बातों-बातों में ठाकुर से कहा– 'ब्रह्मचारी इस बार काशी में मानिकतला की माताजी के साथ खूब झगड़ा करके आया है।' झगड़ा कैसे और क्यों हुआ– ठाकुर ने मुझसे पूछा। मैंने बहुत संक्षेप में कहा– माताजी की अवस्था असाधारण है, दिन-रात वे समाधिस्थ रहती हैं। अनेक नये-नये तत्त्वों की बातें कहती हैं, यह सुनकर उनको देखने की इच्छा हुई।

मैं अपने दो मित्रों को लेकर उनका दर्शन करने गया। जाकर सुना, माताजी समाधिस्थ हैं। लगभग एक घण्टे तक हम बैठे रहे। फिर एक प्रकार का क्लेशसूचक शब्द करते-करते माताजी चैतन्य हुईं। खबर या परिचय किसी के न देने पर भी माताजी ने हम लोगों को बुलवाया। हम उनके पास जाकर बैठ गए। फिर वे हमारे परिवार की बातें उठाकर नाना प्रश्न करने लगीं। लगभग 10-15 मिनट बातचीत करने के बाद मैं विरक्त होने लगा। मैंने माताजी से कहा– ये सब बातें कहने या सुनने के लिए मैं आपके पास नहीं आया। तब उन्होंने धर्म का उपदेश आरम्भ किया। प्रथम उपदेश में कहा– 'धर्म की वेशभूषा का त्याग करो।' मैंने नीलकण्ठवेश, माला-तिलक आदि अपने गुरुदेव के आदेशानुसार ही धारण किया है– उनसे कहने के बाद भी उन्होंने मुझे वह सब त्याग देने के लिए कहा। धर्म के ये सब वेश कुछ नहीं हैं, इससे कोई उपकार नहीं होता; वरन् अभिमान होता है, हानि होती है; ऐसा बार-बार कहने लगीं। तब गुरु द्वारा प्रदत्त अपनी वस्तु की अवज्ञा होते देखकर मैंने फिर धैर्य खो दिया। जो मुँह में आया, वह कह डाला। तब उन्होंने कहा– 'मैं तेरी माँ ही हूँ, लड़का होकर माँ से ऐसा कहना चाहिए?' मैंने कहा– मेरी माँ के समान होने में अभी आपको बहुत समय लगेगा। मुख से लड़का कहने से माँ नहीं बना जा सकता। उन्होंने कहा– "तेरा गुरु 'बिजली' है, मुझे माँ ही कहता है।"

मैंने कहा– वे तो सियार, कुत्ते, बिल्ली को भी माँ कहकर स्तुति करते हैं; लेकिन हम लोग उन्हें सियार, कुत्ता ही कहते हैं। इस प्रकार क्रुद्ध होकर मैंने माताजी को बहुत अप्रिय बातें कह दी थी। क्या करता? अन्त में उन्होंने कहा– 'अरे! मैंने तेरी परीक्षा लेने के लिए ही ये सब बातें कही।' मैंने कहा, आपमें उद्दण्डता और साहस तो कम नहीं है? सद्‌गुरु के आश्रितों की परीक्षा लेने लगीं? आपका सामर्थ्य कितना है, आपने वह सोचा नहीं?

ठाकुर ने कहा– **"सबके सामने विनयी होना। सबकी बड़ी श्रद्धा-भक्ति करना। किन्तु तुमने जो कहा है– माताजी के लिए वह सब सुनना आवश्यक था। भगवान् ने ही तुम्हारे भीतर से वह सब बातें कही है। गुरु-प्रदत्त वस्तु की, साधन-भजन की कोई अवज्ञा करे, माला-तिलक को लेकर कोई आपत्ति करे, कोई गुरुनिष्ठा नष्ट करने की चेष्टा करे तो वहाँ वज्र के जैसा कठोर होना चाहिए– उसका प्रतिकार करना चाहिए। फिर इसके विपरीत, व्यवहार में सर्वदा ही पुष्प की भाँति कोमल होना– यह ऋषि-वाक्य है।"**

श्रीधर की गुरुनिष्ठा– अलौकिक घटना
ब्रह्मचारी पर शासन: कुत्ते की उलटी खाना

ठाकुर के पास कुछ समय रुकने के बाद अपने आसन पर आकर बैठ गया। श्रीधर ने मुझसे कहा– 'भाई ब्रह्मचारी! तुमने तो माताजी से सभ्यता के साथ झगड़ा किया! मैं तो भाई गँवार किसान श्रेणी का व्यक्ति हूँ; क्रोध आने पर इतनी अच्छी सभ्य भाषा मेरे मुख में नहीं आती। इस बार बारदी के ब्रह्मचारी को मनमाना अभद्र गालियाँ बककर आया हूँ।

मैं– क्यों, किसलिए? क्या हुआ था?

श्रीधर ने कहा– अरे भाई! इस बार किस अशुभ मुहूर्त में उनके पास गया! वहाँ दिनभर बस्ती में घूमा करता, संध्या के समय ब्रह्मचारी के पास जा बैठता। वे मुझे बहुत स्नेह करते थे। एक दिन वहाँ पर बहुत लोग थे, उन्होंने मुझसे कहा– 'अरे इतने दिन गोसाँई के पास रहने से तेरे को क्या मिला? जो स्वयं अन्धा है, वह दूसरों को क्या पथ दिखलाएगा? अन्धे गुरु का संग छोड़ दे। छः मास तू मेरे पास रह। तेरे को मैं ब्रह्मज्ञान दूँगा और ऊर्ध्वरेता कर दूँगा।' उस दिन पहले से ही मेरा माथा थोड़ा गरम था। ऊपर से उनकी बात सुनकर मानो शरीर जल उठा, मेरा स्वर सप्तम में चढ़ गया। फिर मैं शान्त न रह सका। चीखते हुए उछलकर उनके दरवाजे के पास पहुँच गया और चिल्लाकर कहने लगा– अरे साला ब्रह्मचारी! साले का बेटा साला! तुम महापुरुष हो? मेरे गुरु को अन्धा कहते हो? वे कुछ नहीं कर सकते? तुम मुझको ब्रह्मज्ञान दोगे? ऊर्ध्वरेता कर दोगे? अरे साले! यह देख, तुम्हारे समान कितने ही ब्रह्मचारी मेरे एक-एक बाल में लटक रहे हैं। इस प्रकार अनाप-शनाप बकते-बकते कपड़ा, लंगोटी सब खोलकर ब्रह्मचारी के शरीर पर जोर से फेंककर मारा। ब्रह्मचारी ने तुरन्त आसन से उठकर मुझे दोनों हाथों से पकड़कर सीधे छाती से लगा लिया; फिर कहने लगे– 'ठीक कहता है, ठीक कहता है। तेरी अवस्था देखकर आज मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। शान्त हो जा।' इसी समय एक कुत्ता वहाँ ब्रह्मचारी के दरवाजे के पास उलटी कर रहा था। ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा– 'अच्छा, तेरे को ब्रह्मज्ञान हुआ है न? अब इसे खा तो!' मैं तुरन्त उस उलटी को खाने लगा। तब ब्रह्मचारी ने मुझको स्नेहपूर्वक आसन के पास बैठाकर, भजलेराम (सेविका) को खाना लाने के लिए कहा। भजलेराम एक थाली में अच्छा स्वादिष्ट भोजन लेकर आई। ब्रह्मचारी ने कहा– 'आ! तू भी खा, मैं भी खाऊँ। आज मैं तेरे साथ खाऊँगा। तुझे ही यथार्थ ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है। गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने पर फिर क्या कुछ बाकी रहता है?'

मैंने पूछा– भाई, तुम्हारे कुत्ते की उलटी खाने की बात तो सबसे सुनता हूँ।

अच्छा, तुमने उलटी को कैसे खा लिया? श्रीधर ने कहा– 'अरे राम! उलटी क्या कोई खा सकता है? मैंने देखा, खीर मिला हुआ बहुत अच्छा चिवड़ा है, खाते समय भी ठीक वैसा ही स्वाद मिला। ऐसा क्या गोसाँईजी की कृपा के बिना कभी होता?' श्रीधर की इन सब बातों को सुनकर मैं तो चकित रह गया। धन्य हैं गुरुदेव! तुम्हारे आश्रितजनों की सर्वत्र जय जयकार हो!

ब्रह्मदैत्य द्वारा माला की चोरी
आँगन में माला का मिलना– बड़ा आश्चर्यजनक

4 से 9 दिसम्बर। इस बार गेण्डारिया आने के बाद से मध्याह्न में ठाकुर के शौच और स्नान के लिए पानी मैं ही देता आ रहा हूँ। आज भी शौच के लिए पानी देने के बाद स्नान के लिए पानी निकालने लगा। ठाकुर शौच के लिए गए। दो-तीन मिनट के बाद ही शौचालय से अचानक आकर मेरे हाथ में मूँगे की माला के दाने देकर इंगित करते हुए कहा– **'माला खींचकर तोड़ डाला। कुछ दाने तो ले भी गया।'**

मैं– आपकी माला फिर किसने तोड़ दी?

ठाकुर ने ऊपर की ओर हाथ करके क्या दिखलाया, मैं समझ नहीं पाया। संकेत द्वारा कहा– **'बाहु की रुद्राक्ष की माला भी एक बार ले लिया था।'** तब समझा, इस बार भी उसी ब्रह्मदैत्य का काम है। ठाकुर पुनः शौच के लिए गए। मैंने सोचा– लगता है, जटा में फँसकर पतली माला टूट गई; ठाकुर अनुमान से ब्रह्मदैत्य की बात कह रहे हैं। ढूँढ़ने से सम्भवतः सब दाने शौचालय में मिल जाएँ। ठाकुर शौच से आ गए। मैंने कहा-- बाकी दाने लगता है कि शौचालय में ही हैं; एक बार देखूँ? ठाकुर ने संकेत द्वारा कहा– **'हाँ, हाँ, वहाँ देख सकते हो। दो-एक मिल भी सकते हैं। अन्य सब ले गया।'** शौचालय में खोजने के बाद मुझे केवल एक दाना मिला। ठाकुर के कहे अनुसार मैंने माला के दाने गिनकर नानीजी के हाथ में दे दिया। कहीं ऐसा न हो कि कोई उसे ठाकुर से माँग ले, इस डर से नानी ने तुरन्त उसे कमरे में सन्दूक के भीतर बन्द करके रख लिया।

आज तीन चार दिन हो गए, ठाकुर के गले की माला को ब्रह्मदैत्य तोडकर ले गया। आज मध्याह्न में स्नान के बाद लगभग 12 बजे ठाकुर अपने कमरे में आते समय आँगन के ठीक बीच में अचानक रुक गए एवं मिट्टी पर पैर के खड़ाऊ से बार-बार ठोकर मारते हुए उन्होंने संकेत द्वारा कहा– **'उस दिन ब्रह्मदैत्य माला के दाने लाकर यहाँ रख गया है। खोदने से मिल जाएँगे।'** मैं तुरन्त उस स्थान को चिन्हित करके कटार लाने गया। ठाकुर अपने कमरे में चले गए।

ठाकुर की बात सुनकर सभी ने उसे देखना चाहा। मैं मिट्टी खोदने लगा। मिट्टी बहुत कड़ी है; पाँच-छः मिनट में आठ-नौ इंच खोदने के बाद देखा, मूँगे के सारे दाने एक साथ रखे हुए हैं। मिट्टी के अन्दर जिस स्थान पर ये दाने मिले, उस स्थान की मिट्टी ढीली नहीं है, वह स्वाभाविक रूप से बहुत ही कड़ी है। तथापि नानीजी के हाथ में उस दिन माला के जो दाने दिया था, उसे देखने की इच्छा हुई। देखा गया, नानीजी के सन्दूक के भीतर दाने ठीक रखे हुए हैं। मिनट-मिनट में जिस आँगन पर लोगों का प्रतिदिन आवागमन होता है, चार कमरों के बीच उस खुले आँगन में कठोर भूमि के इतने नीचे माला के दाने कैसे आए, सोचकर कुछ समझ नहीं पाया। चार-पाँच दिन पहले ही ब्रह्मदैत्य ने माला रखी; फिर दाने इतनी कड़ी मिट्टी के अन्दर कैसे रखे हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। मन तो अविश्वासी है! फिर ठाकुर से इस विषय में कुछ पूछने की इच्छा नहीं हुई। यह सब देख-सुनकर ठाकुर के प्रति विश्वास-भक्ति में थोड़ी भी वृद्धि हो रही है, ऐसा लगता नहीं। प्रत्यक्ष के ऊपर भी विश्वास निर्भर नहीं करता, यह स्पष्ट समझ में आ गया। मिट्टी से निकले मूँगे के उन दानों को भी नानीजी के हाथ में दे दिया; केवल पाँच दानों को रुद्राक्ष और स्फटिक के साथ गूँथकर धारण करने के उद्देश्य से मैंने अपने पास रख लिया। उसके बाद ठाकुर ने बतलाया कि वे मूँगे की माला पुनः धारण नहीं करेंगे।

स्वप्न– ठाकुर की गोद में नीला कौआ
शक्ति-संचार की अवस्था: पैर छूने से देह अमृतमय

11 दिसम्बर, रविवार। आज श्रीमद्भागवत पाठ के बाद ठाकुर ने मुझसे अस्फुट स्वर में पूछा– **"तुम तो प्रायः ही बड़े अच्छे-अच्छे स्वप्न देखते हो। यहाँ से जाने के बाद कुछ देखे थे?"**

मैं– कुछ बड़े अच्छे-अच्छे स्वप्न देखा। बस्ती में रहते समय एक दिन देखा, कई स्थानों का भ्रमण करने के बाद गेण्डारिया पहुँचा। एक साधु ने मुझसे कहा– 'भाई, ऐसी मति क्यों हुई? क्यों निरर्थक काशी, वृन्दावन में घूम-घूमकर मर रहे हो? गेण्डारिया में ही क्यों नहीं रहते? जहाँ गुरु हैं, वहीं तो सब तीर्थ है!' मैंने कहा– केवल अनुमान से तो सन्तोष नहीं होता; प्रत्यक्ष रूप से अनुभव होना चाहिए न! समस्त तीर्थों का एक स्थान-माहात्म्य तो है ही। गेण्डारिया में क्या वैसा कुछ है? हमारे ठाकुर सर्वशक्तिमान् सद्‌गुरु भगवान् हैं, यह भी तो अनुमान से कहते हैं; प्रत्यक्ष प्रमाण तो कुछ मिला नहीं। साधु ने कहा– 'अच्छा, तुम भूमि की ओर देखते-देखते अपने ठाकुर के पास जाओ न!' मैं उनके कहे अनुसार गेण्डारिया की

मिट्टी की ओर देखते हुए आपके पास जाने लगा। देखा, सर्वत्र बहुत सुन्दर स्पष्ट नीली छोटी-छोटी ज्योति धरती से निकल रही हैं। भूमि पर असंख्य तारों के समान छोटे-छोटे ज्योतिर्बिम्ब फटकर नीली किरण बिखेरते हुए मिल जा रहे हैं। यह देखकर गेण्डारिया आश्रम सब तीर्थों से श्रेष्ठ लगा। आपके पास आकर देखा, आप इसी कमरे में ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। मैं आपके पास अपने आसन पर बैठ गया। आप बीच-बीच में माथा उठाकर स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखने लगे। इसी समय एक कौआ उड़ता हुआ आपके पास आकर गिरा। आपने उसको उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। देखते-देखते कौआ उज्ज्वल नीले रंग का हो गया। तब आपने उसको गोद में बिठाकर उसके पिछले भाग पर फूँकना आरम्भ किया। इस समय आपके भीतर की अवस्था एवं भाव समस्त ही पक्षी के भीतर संचारित होने लगे, पक्षी मधुर ध्वनि करते हुए उसे व्यक्त करने लगा। कुछ समय बाद आपने पक्षी को गोद से उतारकर कहा– **'अब ठीक हो गए। जहाँ इच्छा हो, चले जाओ।'** तब पक्षी दो-तीन फीट दूर रहकर आपकी ओर देखने लगा। आपने मुझसे कहा– 'एक संवाद-पत्र सामने के बेड़े पर लटका दो तो।' मैं एक बड़ा अखबार बेड़े के ऊपर लगाकर पकड़े रहा। आप उस अखबार की ओर अंगुलि द्वारा संकेत करते हुए पक्षी से कहने लगे– **'वह देखो ब्रह्मा! वह देखो विष्णु! वह देखो शिव! वह देखो काली! वह देखो दुर्गा!'** आप इस प्रकार **'वह देखो! वह देखो!'** कहकर असंख्य देवी-देवताओं के नाम लेने लगे। आपके कहने के साथ-साथ पक्षी भी उन सब देवी-देवताओं के दर्शन करके नृत्य करने लगा। पक्षी का यह अपूर्व नृत्य देखते-देखते जाग गया। जागने के बाद भी मैं जाग रहा हूँ या सो रहा हूँ, कुछ समझ में नहीं आया। दिनभर ही उस स्वप्न का दृश्य आँखों में बसा रहा। स्वप्न सुनते-सुनते ठाकुर सिर हिलाकर आनन्द व्यक्त करते-करते हँसने लगे। फिर उन्होंने कहा– **"बड़ा अच्छा स्वप्न है, लिखकर रख लो!"**

द्वितीय स्वप्न– समस्त गुरुभाइयों ने आपको लेकर संकीर्तन आरम्भ किया। सैकड़ों मृदंग-मंजीरे एक साथ बज उठे। हजारों-हजारों लोगों के उच्च संकीर्तन की ध्वनि एवं हुंकार-गर्जन से चारों दिशाएँ मानो कम्पित होने लगीं। आप भाव में उन्मत्त होकर संकीर्तन के बीच दौड़ने लगे। आपको देखकर सब दिग्भ्रान्त हो गए। उन्मत्त अवस्था में आपको पकड़ने हेतु गुरुभाई लोग अग्रसर होते ही गिरने लगे; किन्तु मैं नीरस हृदय से शुष्क लकडी की भाँति संकीर्तन के बाहर खड़ा रहा एवं अपनी दुरावस्था के बारे में सोचकर विलाप करने लगा। सबको महाभाव में विह्वल देखकर मुझे अपने ऊपर ग्लानि होने लगी। मेरे जैसा घृणित और कोई नहीं है, यह सोचकर रोने लगा। तब निरुपाय होकर निताई! निताई! पतित-पावन निताई! कहाँ हो– कहकर व्याकुलता के साथ पुकारने लगा। मेरी पुकार आपने सुनी।

आपने उन्मत्त अवस्था में दौड़ते हुए आकर मुझको पकड़ा एवं दोनों हाथों से ऊपर उठाकर जोर से पटक दिया। मेरी हड्डी-पसली सब टूट फुटकर चूर-चूर हो गई। तब आप उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करते हुए नृत्य करते-करते मेरे उस क्षत-विक्षत शरीर के ऊपर चढ़कर एक बार दाहिने पैर से, एक बार बायें पैर से दबा-दबाकर मेरे सर्वांग को बार-बार कुचलने लगे। मेरे शरीर के रोम-रोम से पिच्-पिच् करके साबुन के पानी की भाँति सादा-सादा फेन उठने लगा। तब आप उसे चुल्लू में ले-लेकर अमृत-अमृत कहते हुए चारों ओर छींटने लगे। चारों ओर आनन्द से क्रन्दन का कोलाहल होने लगा। तब उस क्रन्दन के कोलाहल से मैं जाग गया। यह स्वप्न सुनते-सुनते ठाकुर सिर नीचे करके सिसक-सिसककर रोने लगे। ठाकुर के उस क्रन्दन का स्मरण करते हुए स्वप्न को मैंने लिखकर रख लिया।

तृतीय स्वप्न– तीन-चार दिन पहले देखा, कई गुरुभाई इस कमरे में आए। वे लोग आपके साथ रात्रि बिताने के अभिप्राय से अपना-अपना आसन बिछाकर बैठ गए। जगह कम है, मैं कहाँ जाऊँ सोचकर आपको साष्टांग प्रणाम किया। आपने मेरे सिर से पैर तक हाथ फेरकर आशीर्वाद देते हुए कहा– **'तुम्हारा स्थान मेरे पैरों के नीचे है। किसी के कहने पर तुम यह स्थान छोड़कर कभी अन्यत्र मत जाना।'** इस समय दादीजी के कुछ काम के लिए आपने ताली बजाकर मुझे जगा दिया। ये स्वप्न क्या सत्य हैं? इन स्वप्नों का तात्पर्य क्या है? ठाकुर ने संकेत में कहा– **'उसे कहते नहीं। लिखकर रख लेना चाहिए– बाद में समझोगे।'**

और भी कई स्वप्न ठाकुर को सुनाया, उसे यहाँ देने की इच्छा नहीं हुई।

दादीजी की सेवा

14 दिसम्बर, बुधवार। दादीजी को लेकर हम लोग बड़े संकट में पड़ गए हैं। दिनो-दिन उनका पागलपन बढ़ता जा रहा है। ज्वर भी उन्हें सब समय रहता है। संध्या होते ही भयंकर खाँसी आरम्भ हो जाती है। शरीर के सभी जोड़ों में असह्य यन्त्रणा है। सेवा-शुश्रुषा करने के लिए लोग नहीं हैं। परिवार में रहने वाला या मोहल्ले का कोई भी डर के मारे दादीजी के पास फटकता नहीं। योगजीवन तो कभी सेवा कर ही नहीं सकते। वे रोगी को देखते ही उस स्थान से हट जाते हैं। श्रीधर वातज्वर से प्रायः ही बिछौने पर पड़े रहते हैं। ठाकुर मौन रहते हुए भी दादीजी को अपने कमरे में रखकर इतना उत्पात प्रत्येक रात्रि में कैसे सहते हैं, समझ में नहीं आता। ठाकुर ने दया करके मुझको कुछ दिनों से दादीजी की सेवा के लिए नियुक्त किया है। संध्या के बाद दो घण्टे विश्राम करके आसन लेकर

ठाकुर के कमरे में जाता हूँ। ठाकुर की असीम कृपा से प्रसन्नतापूर्वक सारी रात दादीजी की सेवा में काटता हूँ। रात्रि 9 बजे के बाद दादीजी के ज्वर, खाँसी और वेदना में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। प्रायः रातभर उनके शरीर में, पैर में, सिर में तेल और पुराने घी से मालिश करनी पड़ती है। दादीजी कभी गालियाँ देतीं, कभी चिल्लातीं, तो कभी गाना गाते-गाते रात बिताती हैं। रातभर धूनी जलती है, घण्टे-घण्टे में सेंक देना पड़ता है। अदरक का रस और शहद तीन-चार बार खाया करती हैं। वायु बढ़ने से घण्टे-घण्टे में नाना प्रकार के मनमाने हुकुम देने लगतीं। तुरन्त उसका प्रतिपालन न करें, तो फिर बचाव नहीं है; खरी-खोटी सुनाती हैं। तब मैं कोई उपाय न देखकर वहाँ से भाग जाता हूँ; जाकर बरामदे में कुछ क्षण बैठा रहता हूँ। थक्के-थक्के पीले कफ को उठाकर कनरे में सर्वत्र फेंका करती हैं; रात्रि में दो-तीन बार स्वच्छ करना पड़ता है। रात बीती नहीं कि 'खाना बनाने जा' कहकर मुझे कमरे से बाहर निकाल देती हैं। सब सामान जुगाड़ करके दाल, सब्जी और गरम-गरम भात सूर्योदय होने के साथ-ही-साथ प्रस्तुत कर देना पड़ता है। दो-तीन लोगों के भोजन के बराबर का खाना न बना, तो फिर बचाव नहीं है। उनकी रुचि का खाना न बने, तो 'ये क्या है? अपने बाप का सिर बनाया है?' कहकर गालियाँ देतीं। भोर होते ही दादीजी भोजन करने उठती हैं। तब मोहल्ले की लड़कियाँ आ जाती हैं। दादीजी खाते-खाते सभी को प्रसाद दिया करती हैं। ठण्ड के समय गरम-गरम प्रसाद पाकर उन सभी को बड़ी तृप्ति मिलती है। दादीजी का भोजन पूरा न होने तक मैं कहीं जा नहीं सकता। दादीजी के शरीर में ठाकुर स्वयं अवस्थान करके मेरी सेवा ग्रहण कर रहे हैं– यह भाव मेरे भीतर सर्वदा जागृत रहने के कारण मैं शान्त हूँ। मेरा यह भाव ठीक है, इसे ठाकुर दया करके आश्चर्यजनक रूप से मुझे स्पष्ट समझा देते हैं। ठाकुर की कृपा प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने के कारण इस सेवा में मेरा उत्साह व आनन्द क्रमशः बढ़ रहा है। दिनभर में एक बार संध्या को एक साथ सब मिलाकर बनाया भोजन करता हूँ, इसलिए दादीजी मेरे से बहुत चिढ़ी हुई हैं। कई बार मुझको डाँटते हुए कहती हैं– 'जैसे पेट भरकर नहीं खाता, अच्छा खाना नहीं खाता, आत्मा को कष्ट देता है, मृत्यु के समय आत्मा तेरे मुँह पर लात मारकर जाएगी। ब्राह्मण का बच्चा दिनभर उपवास करके रहता है? मेरे लड़के का अमंगल होगा। जा! आश्रम से चला जा!' इस प्रकार कहकर प्रायः मुझ पर दबाव डालती हैं। दादीजी की गालियाँ कभी-कभी बड़ी मधुर लगती हैं। सिर व शरीर पर हाथ फेरकर कभी-कभी आशीर्वाद भी दिया करती हैं।

नानीजी के साथ दादीमाँ का अद्‌भुत झगड़ा: तुरन्त ही प्रेम

नानीजी के साथ दादी का 'साँप और नेवले' का सम्बन्ध है। नानीजी को देखते ही दादी कुछ भी बात उठाकर झगड़ा करने लगती हैं। 'लड़की मर गई है, अब यहाँ क्यों हो? जमाई के साथ अब क्या नाता? तुम्हारा अब इतना मालकिनपना नहीं चलेगा; अपने लड़के का मैं फिर से विवाह कराऊँगी।' नानीजी काम से इस कमरे से उस कमरे में आना-जाना करती हैं और दादीजी यह सब बातें कहते-कहते उनके पीछे लगी रहती हैं। फिर जब झगड़ा बहुत बढ़ जाता है, नानीजी के साथ फिर विवाद नहीं कर पातीं, तब थोड़ा हटकर कान में अंगुलि देकर आँखें बन्द करके बैठ जाया करती हैं। नानीजी के चुप हो जाने पर तुरन्त जाकर पुनः दो-चार बातें सुनाकर आ जाती हैं। बार-बार इस प्रकार करने से नानीजी और भी क्रुद्ध हो जाती हैं; लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि नानीजी के भोजन करने के कुछ समय पहले दादीजी आश्रम से बाहर निकल पड़ती हैं। मोहल्ले में घर-घर जाकर दही, खीर, मिठाई, केला संग्रह करके ले आती हैं और नानीजी के भोजन के समय वह सब देकर बड़े स्नेह के साथ कहती हैं– 'समधन! झगड़े के समय झगड़ा, उसका खाने के साथ क्या सम्बन्ध? लो ये सब खा लो। ओह! तुम्हारा दुःख-कष्ट कौन समझेगा? रहने के बाद भी तुम्हारा कोई नहीं है। मैं पगली हूँ, मेरी बात का तुम बुरा मत मानना।' इत्यादि।

नीलकण्ठ वेश की मर्यादा

आज 10 बजे अपना नित्यकर्म सम्पन्न करके कमरे से बाहर निकला। दादीजी मुझे दूर से ही देखकर आग-बबूला हो गई और हाथ में झाड़ू लेकर 'लड़का होकर बाप का रूप! दुर्गा पीछे-पीछे चलती हैं! निकल, बाहर निकल, आश्रम से बाहर निकल, आज तुझे झाड़ू मारकर भगाऊँगी' कहकर मुझे दौड़ाई। मैं कोई उपाय न देखकर भागा। इधर-उधर के घरों में जाकर उनसे बच पाया। मध्याह्न में ठाकुर से पूछा– दादीमाँ जो कहती हैं, वह ठीक है या पागलपन है? 'लड़का होकर बाप का रूप, दुर्गा पीछ-पीछे चलती हैं, आश्रम से बाहर निकल' कहकर उन्होंने आज मुझे भगाया।

ठाकुर– **माँ ने ठीक कहा है। भगवती तुम्हारे पीछे-पीछे चलती हैं।**

मैं– क्यों? कोई दोष देखने पर गर्दन मरोड़ने के लिए?

ठाकुर– **नहीं, नीलकण्ठ वेश की मर्यादा रखने के लिए।**

ठाकुर की बात सुनकर मैं रो पड़ा। माँ को स्मरण करके बारम्बार प्रणाम

करने लगा। अहा! ऋषि-मुनि जिनकी वन्दना करते हैं, सर्वशक्ति को नियन्त्रित करने वाली भगवती योगमाया दया करके इस दुराचारी के पीछे-पीछे घूमती हैं! यह सोचकर मन की क्या अवस्था हो गई, बता नहीं सकता। माँ के सर्वश्रेष्ठ चरित श्रीचण्डी-पाठ के सिवा प्रातः से संध्या तक माँ को एक बार भी स्मरण नहीं करता, फिर भी माँ की कितनी दया है!

दादीजी के अनाचार-अत्याचार की बात को लेकर कहीं आलोचना होने पर दादीजी वहाँ जाकर शान्त भाव से उसे सुनती हैं एवं उन लोगों के सामने अपने दोष को स्वीकार करके स्वयं को गालियाँ दिया करती हैं। सब लोग सुनकर चकित हो जाते हैं! निन्दा-प्रशंसा कुछ भी दादीजी के मन को स्पर्श करते हैं– ऐसा सोच भी नहीं सकते। पागलपन को छोड़कर वास्तव में दादी का मधुर स्वभाव लोकालय में दुर्लभ है। बडे अपराधी का भी कष्ट देखकर बेचैन हो जाती हैं। सहानुभूति ही उनके जीवन की अद्‌भुत विशेषता है!

विविध चक्र-दर्शन: उसमें ज्योतिर्मय त्रिभंग की आकृति शालग्राम-पूजा का आदेश

15 दिसम्बर, गुरुवार। कुछ दिन से ठाकुर भोजन के बाद आम के पेड़ के नीचे ही बैठ रहे हैं। आसन के सामने धूनी जला देता हूँ। वे लगभग साढ़े 4 बजे तक वहीं एकान्त में रहते हैं। उसी समय मैं ठाकुर के पास एक घण्टा श्रीमद्‌भागवत का पाठ किया करता हूँ। फिर स्वाभाविक प्राणायाम के साथ नाम-जप करता हूँ, इससे बड़ा आराम मिलता है! कुछ दिनों से नाम-जप करते समय विविध प्रकार के चक्र-दर्शन हो रहे हैं। इन सब चक्रों अथवा यन्त्रों को शुभ्र चमकीली रेखा द्वारा चतुष्कोण, षट्‌कोण, अष्टकोण और कभी-कभी द्वादश कोण में अंकित देखता हूँ। इन सबका मध्य स्थल काला है, उसमें बीच-बीच में एक प्रकार की अद्‌भुत ज्योति पलभर के लिए प्रकाशित होकर तुरन्त ही विलुप्त हो जाती है। ऐसा लगता है, इन चक्रों अथवा यन्त्रों के केन्द्र स्थल पर दृष्टि स्थिर होने से यह अस्पष्ट चंचल ज्योति भी स्वरूप विस्तार करके स्थिर दिखलाई पड़ेगी। ठाकुर ने कहा था– 'प्रत्येक चक्र के बीच उसके अधिष्ठात्री देवी-देवता अवस्थान करते हैं।' लगता है, इस ज्योति के ही बीच में देवी-देवता प्रकाशित होंगे। ये सब कल्पनातीत, अज्ञात, विलक्षण वस्तुएँ जब इस प्रकार से अपने-आप ही अचानक प्रकाशित हो रही हैं, तो फिर चेष्टा द्वारा मूल के अनुसन्धान का प्रयोजन ही क्या है? जो होने का है, ठाकुर की कृपा से होगा।

नाम-जप करते-करते देखा– ठाकुर के मस्तक के थोड़ा ऊपर शून्य में काले

चक्र से घिरी हल्के नीले रंग की सुन्दर ॐकार मूर्ति है। उसके आरम्भ, मध्य और अन्त के ज्योतिर्मय तीन बिन्दुओं से उज्ज्वल शुभ्र छटा तिर्यक स्थिति में निकलकर एक मनोरम त्रिभंग की आकृति बन गई। देखते-देखते वह आकाश में मिल गई। उसे पुनः देखने की इच्छा होने लगी; किन्तु ठाकुर का दर्शन करते ही वह आकांक्षा दूर हो गई। ठाकुर से पूछा— यह सब क्या देखा? इस प्रकार का दर्शन क्यों हुआ?

ठाकुर ने इंगित करते हुए अस्फुट स्वर में कहा— **'तुम शालग्राम की पूजा करो, बड़ा उपकार होगा।'** मैं यह सुनकर चुप हो गया। सोचा— ये क्या हुआ? अब यह नया कर्म-भोग किसलिए?

मैंने पूछा— आपने शालग्राम-पूजा करने को कहा, वह किस प्रकार करूँगा?

ठाकुर ने कहा— **"शास्त्र के नियमानुसार शालग्राम की पूजा करना।"**

मैंने कहा— मैं भगवान् का द्विभुज, मुरलीधर, चतुर्भुज अथवा अष्ठभुज रूप समझ नहीं पाता। उन सबके प्रति मेरा कोई आकर्षण भी नहीं है; मैं भगवान् का जो रूप प्रत्यक्ष करता हूँ, शालग्राम में या कहीं भी उसी का ध्यान कर सकता हूँ।

ठाकुर ने **'तुम वही करो'** कहकर श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध से तृतीय अध्याय के अन्तिम कुछ श्लोक पढ़ने के लिए कहा एवं 24 तत्त्वों के न्यास के बाद शालग्राम-पूजा किस प्रकार करनी होगी, उसका नियम भी बतला दिया। उन कुछ श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार है—

47. जो व्यक्ति एकाएक अपनी हृदय ग्रन्थि का भेदन करने के अभिलाषी हैं, वे वैदिक और तान्त्रिक दोनों ही पद्धतियों से भगवान् की अराधना करें।

48. गुरु की कृपा प्राप्त करके उनसे अनुष्ठान की विधि सीखकर अपने मत के अनुसार विशिष्ट महापुरुष की मूर्ति की पूजा करना।

49. स्नान, सन्तोष आदि द्वारा शरीर व चित्त शुद्ध करके विशिष्ट मूर्ति के सामने बैठकर प्राणायाम द्वारा भूत-शुद्धि, नाड़ी-शोधन करें, फिर न्यास आदि द्वारा अंग-रक्षा करके हरि की पूजा करना।

50. पूजा के पूर्व उपलब्ध पूजा की सामग्री के साथ यन्त्रादि शोधन द्वारा पुष्पादि द्रव्य को, सम्मार्जन द्वारा भूमि को, सन्तोष द्वारा आत्मा को, अनुलेपनादि द्वारा अपने शरीर को उपासना कार्य के योग्य करके आसन पर जल छिड़कना।

51. सामने कल्पना द्वारा पाद्य, अर्घ्य आदि स्थापन करते हुए एकाग्र चित्त होकर अंग-न्यास, कर-न्यास के साथ मूल मन्त्र द्वारा उपासना करना।

52. अंग-उपांगों और पार्षदों के साथ सोची हुई अपनी-अपनी मूर्ति को अपने मन्त्र द्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण—

53. गन्ध, माला, दूब, पुष्प, धूप, दीप और नाना उपहार प्रदान करते हुए पूजा करके, विधिवत् स्तुति करके हरि को प्रणाम करना।

54. अपने तन्मय रूप का ध्यान करते हुए हरि की मूर्ति की पूजा करना। फिर निर्माल्य को मस्तक से लगाकर आदरपूर्वक देवता की मूर्ति को हृदय में स्थापित करते हुए पूजा सम्पन्न करना।

55. इस प्रकार जो व्यक्ति तान्त्रिक कर्मयोग के अनुसार अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और अपने हृदय में आत्मरूप श्रीहरि की उपासना करते हैं, वे शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करते हैं।

तापने के लिए धूनी नहीं है: धूनी बुझाना

17–18 दिसम्बर, शनिवार–रविवार। ठाकुर रात 3 बजे एक बार बाहर जाते हैं। धूनी के किनारे कलसी भरकर पानी रख देता हूँ। वह पानी गरम होते रहता है, ठाकुर को हाथ-मुँह धोने के लिए देना पड़ता है। आज दादीजी के रोग में वृद्धि होने से रात्रि ढाई बजे तक उनको लेकर व्यस्त रहा। छाती की यन्त्रणा बढ़ गई और थकावट लगने लगी; मैं धूनी के पास ही सो गया। श्रीधर भी आकर धूनी के पास बैठ गए। रात 3 बजे ठाकुर आसन से उठे। लेटे-लेटे ही ठाकुर के खड़ाऊ को उनके आसन के किनारे रख दिया। श्रीधर को कलसी से एक लोटा पानी देने के लिए कहा। श्रीधर ने मेरी बात नहीं मानी। ठाकुर ने भी इंगित करके श्रीधर से पानी माँगा। श्रीधर एक बार कलसी से लोटा लगाकर उसमें थोड़ा पानी ढाल दिए और पुनः धूनी तापने लगे। ठाकुर हाथ में लोटा न पाकर खड़े रहे। श्रीधर के माथा गरम होने पर भी ठाकुर के कार्य में इस प्रकार उनका अवहेलना का भाव देखकर मैं सहन नहीं कर पाया। मैंने बड़ी विरक्ति के साथ श्रीधर को कहा– हटकर बैठो; धूनी तापो और भजन करो। यह सब छोटा काम तुम्हारा नहीं है। उसके बाद कोई उपाय न देखकर मैं स्वयं ही लोटे में पानी भरकर ठाकुर के हाथ में दे दिया। ठाकुर ने लोटा लेकर तुरन्त ही जलती धूनी में पानी डाल दिया, धूनी बुझ गई। पुनः एक लोटा पानी दिया, ठाकुर उसे लेकर बाहर गए। मुझे बहुत खराब लगा। सोचा, लगता है कि श्रीधर के ऊपर असन्तुष्ट होकर अथवा मेरे ही व्यवहार से कष्ट पाकर ठाकुर ने धूनी में पानी डाल दिया। ठाकुर ने कमरे में आकर कहा– **"उस समय एक महात्मा मेरे पास में खड़े होकर बोले, 'तापने के लिए यहाँ पर धूनी रखना ठीक नहीं है। धूनी को बुझा दो'– यह सुनते ही मैंने धूनी में पानी डाल दिया। पहले भी मुझसे एक बार वैसा कहा था, लेकिन मुझे ख्याल नहीं था। अब धूनी के कुण्ड को तोड़कर हटा दो।**

ठाकुर के कहे अनुसार मैंने कुण्ड को तुरन्त तोड़कर हटा दिया।

धूनी का साधन बहुत ही श्रेष्ठ है
चिमटा, कमण्डलु, त्रिशूल रखने का अधिकार

मध्याह्न में अन्यान्य दिनों की भाँति आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के आसन के सामने धूनी जला दी। भागवत पाठ के बाद ठाकुर से पूछा– साधु-संन्यासी लोग आसन के सामने धूनी क्यों रखते हैं? सोचा था, गाँजा, चरस और हुक्का पीने की सुविधा के लिए एवं ठण्ड न लगने के उद्देश्य से साधु लोग अग्नि रखते हैं। कल रात्रि में जो आपने कहा, उससे तो लगा कि धूनी रखने का अन्य तात्पर्य है। साधु लोग किसलिए धूनी रखते हैं?

ठाकुर ने कभी लिखकर तो कभी अस्फुट स्वर में कहा– **"धूनी की भी साधना है। अग्नि का इष्ट-मन्त्र के रूप में ध्यान करते हुए उसमें काम-क्रोध आदि की आहुति देते हैं। धूनी की अग्नि पर दृष्टि स्थिर रखकर बड़ी दृढ़ता के साथ नाम-जप करते-करते इच्छा-शक्ति द्वारा अग्नि के तेज में वृद्धि किया करते हैं और सब लकड़ियों को कभी काम, कभी क्रोध इत्यादि की कल्पना करके नाम की अग्नि द्वारा जलाते हैं। जब तक एक-एक लकड़ी भस्म नहीं हो जाती, आसन नहीं छोड़ते– अविराम नाम जपते हैं। एक-एक लकड़ी इसी प्रकार से जला लेने पर उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। स्पर्द्धा करके एक अन्य से कहते हैं, 'हमने दो मन कुन्दा फूँक दिया', कोई कहते, 'हम तीन मन भस्म किए।' केवल अग्नि तापना ही साधु लोग का धूनी रखने का उद्देश्य नहीं है। धूनी की साधना बहुत ही श्रेष्ठ है।**

मैं– साधु लोग जो चिमटा, कमण्डलु, त्रिशूल धारण करते हैं, क्या उसकी भी साधना है? धूनी को झड़ाने के लिए चिमटा, पानी पीने के लिए कमण्डलु एवं हिंसक पशुओं के आक्रमण से बचने के लिए त्रिशूल है– मैं तो यही सोचता हूँ।

ठाकुर– **साधु लोग एक-एक परीक्षा पास करके ये सब ग्रहण किया करते हैं। जिह्वा संयत होने पर चिमटा धारण का अधिकार होता है। चिमटा धारण करने के लिए सर्वप्रथम वाक् संयत करना पड़ता है। कमण्डलु धारण करने की भी योग्यता होती है। कमण्डलु भरकर निर्मल ठण्डा पानी सामने रखकर साधक उसकी शीतलता, स्थिरता और साम्य भाव के साथ मन का योग रखते हुए भगवान् का नाम जपते हैं। उनका अन्तःकरण सर्वदा शीतल जल की भाँति ठण्डा रहेगा, वे किसी**

प्रकार भी उत्तेजित नहीं होते। उनका चित्त सर्वदा अविकृत और साम्य भाव से पूर्ण रहेगा। सत्त्व, रजः, तमः, ये तीनों गुण जिनके अधीन हैं, केवल वे ही त्रिशूल रखने के यथार्थ अधिकारी हैं।

स्वप्न– ठाकुर की कटी हुई जटा को लेकर क्रन्दन

रात्रि अधिक होने पर दादीजी का रोग बहुत बढ़ गया था। दो बार उनको शौच के लिए ले जाना पड़ा। बहुत समय तक पुराने घी से मालिश की। मेरा शरीर बहुत अवसन्न हो गया। दादीजी को सेंक देने के लिए जो अग्नि रखी जाती है, उसे सामने रखकर ठाकुर के पैर के पास सो गया। ठाकुर ने मुझे मानो छाती से लगा रखा है– इस भाव में तन्मय रहते हुए सो गया। रात्रि में लगभग 3 बजे रोते-रोते जाग गया। क्या स्वप्न देखा, ठाकुर ने जानना चाहा।

मैंने कहा– सध्या के पहले इस कमरे में आकर देखा, यहाँ कोई नहीं है। आपने सिर पर केवल तीन जटा रखकर बाकी काट डालीं। मैंने उसको नित्य पूजा करने के उद्देश्य से रख लिया। इसी समय कुंज घोष आ गए। उन्होंने मुझसे वह जटा माँगी। मैंने उनको एक जटा दे दी। जटा को स्पर्श करके हम लोग को क्या हो गया, बतला नहीं सकता। जटा की ओर देखकर हमें सिसकियाँ आने लगीं। हम लोग एक-दूसरे को जकड़कर नृत्य करते-करते एक-एक बार भीतर जाते हैं और बाहर आ जाते हैं। फिर व्याकुलता के साथ रोते-रोते उच्च स्वर में गाने लगे– 'जानते हो हमें क्या हो गया है! गौरांग कहते-कहते आँखों में आँसू आ जा रहे हैं।' इसी समय ताली बजाकर आपने मुझे जगा दिया। ठाकुर स्वप्न सुनकर थोड़ा हँसे, कुछ बोले नहीं।

ग्वालिनी का छाछ प्रदान: आकांक्षा पूर्ण होने से ही तो सर्वनाश

न्यास करने के बाद ठाकुर के आदेशानुसार मैं होमाग्नि में ही पूजा किया करता हूँ। पूजा का उपकरण संग्रह करने में और नियमानुसार पूजा करने से बड़ा आराम मिलता है। आज एक बेल मिला। उसका रस बनाकर पूजा के समय भोग लगाने की इच्छा हुई। छाछ मिला हुआ बेल का रस ठाकुर को अच्छा लगता है; लेकिन छाछ कहाँ मिलेगा, सोचने लगा। कुछ क्षण बाद ही एक ग्वालिनी ने 'दही लोगे जी' कहकर आवाज दी। मैंने तुरन्त जाकर ग्वालिनी से पूछा– छाछ है? ग्वालिनी ने कहा– 'कितना चाहिए?' मैंने कहा– आधा सेर। ग्वालिनी ने मुझसे बर्तन माँगा। बर्तन लेने आया तो मुझे स्मरण हुआ कि पैसे नहीं हैं। तब ग्वालिनी से कहा– छोड़ो, छाछ नहीं लूँगा। मेरे पास पैसे नहीं हैं। ग्वालिनी चली गई।

दो-तीन मिनट घूमने के बाद क्या सोचकर वह ग्वालिनी पुनः आ गई एवं बोली– 'प्रभु बर्तन दीजिए, आपसे पैसे नहीं लूँगी; जितनी इच्छा हो, आप छाछ ले लें।' मुझे थोड़ी दुविधा में देखकर उसने कहा– 'आप यह छाछ नहीं लेंगे तो मैं सारा छाछ अभी फेंक दूँगी।' मैंने कोई उपाय न देखकर बर्तन दिया। लगभग डेढ़ सेर छाछ ग्वालिनी ने अपने मन से दे दिया। मैंने सोचा, मन में जो इच्छा हुई थी, ठाकुर ने ठीक वही जुटा दिया। ठाकुर की इस कृपा के दान को मैं आग्रह के साथ ग्रहण न करके अग्राह्य करता हूँ, तो बड़ा अपराधी होऊँगा। अधिक परिमाण में बेल का रस बनाकर ठाकुर को निवेदन किया। प्रसाद पाकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

ठाकुर ने मुझ पर अनुशासन करते हुए कहा था– **'ब्रह्मचारी! समझ लो, प्रार्थना करने से ही वह मंजूर होगी! सावधान!'** तब से अच्छी-बुरी कोई भी प्रार्थना मैं नहीं करता; किन्तु अब देख रहा हूँ, मन में थोड़ी आकांक्षा होने से ही ठाकुर उसे पूर्ण कर देते हैं। प्रार्थना करूँ या न करूँ, उसकी प्रतीक्षा नहीं करते। इससे एक ओर मुझे जैसे आनन्द होता हैं, वैसे ही दूसरी ओर उद्वेग भी होता है। मन तो सदा बहिर्मुखी है। उसे नित्य नए विषय की प्राप्ति में ही आनन्द आता है। ठाकुर यदि मुझको केवल यही आनन्द देने के लिए आकांक्षित विषय जुटा देते हैं, तब तो सर्वनाश के लिए फिर बाकी क्या रहेगा? दिनो-दिन परमार्थ को भूलकर विषय में ही तो फँसता जाऊँगा। मंगलमय ठाकुर! तुम किसमें क्या करते हो, तुम्हारा अभिप्राय क्या है– कुछ पता नहीं। अब लगता है, सर्वत्र तुम्हारी ही इच्छा, तुम्हारा ही हाथ है– यह स्पष्ट रूप से देख लूँगा, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। ऐसा न होने तक कामना-वासना से छुटकारा नहीं मिलेगा; परम शान्ति प्राप्त करने का फिर अन्य उपाय भी नहीं है।

•

मानस पूजा– ठाकुर की सहानुभूति: ठाकुर का खेल उपदेश– अर्थ में अनर्थ: खीष्ट और कृष्ण एक हैं

पूजा में आज बड़ा आनन्द मिला। ठाकुर के पास भागवत पाठ के समय रोने का संवरण नहीं कर पाया। रुक-रुककर पाठ समाप्त किया। नाम-जप में बहुत अच्छा भाव आया। नाम केवल अक्षर नहीं है। नाम सर्वशक्ति-सम्पन्न बीज है। श्रद्धा-भक्ति के साथ इस नाम की उपासना करने से नाम को इच्छा के अनुरूप किसी भी रूप, गुण, आकार में परिणत किया जा सकता है। मैं नाम को तुलसी, चन्दन एवं पुष्प की कल्पना से ठाकुर के श्रीचरणों में बारम्बार अर्पण करने लगा। उसी प्रकार बड़ी दृढ़ता के साथ नाम जपते-जपते ठाकुर को चन्दन मिश्रित तुलसी से ढक दिया। ठाकुर ध्यानस्थ हैं। बीच-बीच में चौंककर मेरी ओर तिरछी मनोहर

दृष्टि से ताकने लगे एवं मुस्कुराकर सिर हिलाते हुए मेरे आनन्द को बढ़ाने लगे। इसी भाव में मेरा बहुत समय बीता। भोजन करके संध्या होने के बाद ठाकुर के कमरे में अपने आसन पर बैठकर नाम-जप करने लगा। ठाकुर को आज बहुत प्रसन्न देखा। आसन-गृह में प्रवेश करते ही वे नाना प्रकार के अभिनय करने लगे। लाठी के सहारे लंगड़े बूढ़े की भाँति चलने लगे। कुछ समय बाद लाठी रखकर आसन पर बैठ गए, फिर छोटे बच्चे के जैसे पूरे कमरे में घुटने के बल घूमने लगे। बीच-बीच में हाथ फैलाकर खाना माँगते। नाना प्रकार से इंगित करके बच्चों की भाँति कितना कुछ अनुरोध करने लगे! ठाकुर का ये सब बच्चों के समान नृत्य और खेल देखकर बड़ा आनन्द आया। ठाकुर आसन पर बैठ गए। फिर बातों-बातों में मैंने ग्वालिनी के छाछ देने की बात उन्हें बतलाई। सुनकर ठाकुर अस्फुट स्वर में कहने लगे– **'पैसों का संचय न करने से कभी भी अभाव नहीं होगा, भगवान् सब चला लेंगे। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थ-संचय तो दूर की बात– स्पर्श भी नहीं करते। यदि ऐसा कर सको, तो कभी अभाव नहीं होगा। जब जो आवश्यक होगा, अपने-आप ही जुट जाएगा। पैसे जमा रहने से धर्म-कर्म नहीं होता। पैसों से बिल्कुल बन्ध जाते हैं, ध्यान-धारणा के समय उसी की चिन्ता होती है। इससे सब बिल्कुल नष्ट हो जाता है। हाथ में जो आएगा, उसे तुरन्त खर्च कर दो; तो ऊपर से फिर मिलेगा। जो मिलेगा, उसे तुरन्त दोनों हाथों से बाँट देना; फिर देखोगे निरन्तर आ रहा है। पैसे हाथ में रहने से भगवान् पर निर्भरता नहीं आ पाती। 50 रुपयों ने तुम्हें बांध रखा है। आवश्यक वस्तुओं में और दीन-दुःखियों को देकर उसे खर्च कर दो। ब्रह्मचर्य आश्रम में अर्थ का संचय निषेध है।'** ठाकुर कुछ क्षण ध्यानस्थ रहकर कहने लगे– **'खीष्ट और कृष्ण दोनों एक हैं। थोड़ी भी भिन्नता नहीं है। जिनके समक्ष यह तत्त्व प्रकाशित नहीं हुआ, वे ही उनमें भिन्नता देखते हैं। वास्तव में एक ही अस्तित्व है, दो नहीं। खीष्ट के क्रॉस, कृष्ण के चूड़े और महादेव के त्रिशूल, इन तीनों से ॐकार हुआ है।'**

सेवा के अभिमान से नरक भोग

19 दिसम्बर, मंगलवार। दादीजी की सेवा में आनन्द से कुछ दिन बिताया; किन्तु अब डर लगता है, कहीं ऐसा न हो कि सेवा के ही अपराध में पड़ जाऊँ। कल रात 10 बजे दादीजी एक बार शौच के लिए गई। रात 3 बजे कड़कती ठण्ड में उनको फिर शौच के लिए ले जाना पड़ा। शरीर बहुत दुर्बल है, चल नहीं पातीं।

वात का भयंकर कष्ट है; सारी रात कभी घी की मालिश करके, तो कभी सेंक देकर बितानी पड़ी। सेंक देने के लिए अग्नि जलाते समय अचानक एक चिंगारी उड़कर दादीजी के पैर पर गिरी। दादीजी तुरन्त 'मार डाला, जलाकर मार डाला' कहकर चीख उठीं। ठाकुर ने भी साथ-साथ 'उँह, उँह' करके क्लेश व्यक्त किया। मेरा हृदय काँप उठा। चिंगारी तो पैर पर लगते ही बुझ गई थी, फिर भी दादीजी अस्वाभाविक रूप से चीख उठीं! मन में बड़ा कष्ट हुआ। मैं अब सेंक नहीं दूँगा, यह निश्चय करके चुपचाप बैठा रहा। महेन्द्र बाबू मुझसे पुनः सेंक देने के लिए बार-बार कहने लगे; किन्तु ठाकुर ने इंगित करके कहा– **'आवश्यकता नहीं है।'** मैं बहुत लज्जित हुआ। सोचा, लगता है कि ठाकुर ने मेरे भीतर का भाव जानकर ही मना कर दिया। ठाकुर ने कहा था कि **'श्रद्धा-भक्ति के साथ अनुगत होकर सेवा करने से जीवन का जो वृहत् कल्याण बहुत ही सहज में होता है, साधन-भजन व तपस्या से लम्बे समय में भी वैसा होना बड़ा कठिन है।'** अभिमान नष्ट करके 'तृणादपि सुनीचेन' (अपने को तृण से भी छोटा समझने का) भाव अन्तःकरण में लाना ही सेवा का मुख्य उद्देश्य है; लेकिन मैं तो देख रहा हूँ, सेवा से दिनो-दिन मेरा अभिमान ही बढ़ रहा है। डर लगता है, रन्तिदेव के समान मेरी सेवा का परिणाम न हो जाए। ठाकुर ने एक दिन कहा था– **रन्तिदेव यौवन में राज्य प्राप्त करके वृद्धावस्था तक प्रतिदिन विविध सामग्रियों से राज-भोग द्वारा एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराते थे। एक दिन दुर्वासा ऋषि अचानक उपस्थित हो गए। उन्होंने भोजन करना चाहा। राजा ने उनको आसन प्रदान करके भोजन कराने के लिए बैठाया। आसन पर बैठकर आचमन करके ऋषि भोजन करने के लिए प्रवृत्त हुए। अन्न के भीतर तब बाल का टुकड़ा देखकर उन्होंने भोजन छोड़ दिया एवं क्रुद्ध होकर रन्तिदेव को कहा– 'नित्य लाखों ब्राह्मण को भोजन कराने से अभिमान हो गया है! ब्राह्मण क्या खा रहे हैं, एक बार देखते नहीं– इतनी अश्रद्धा और उदासीनता! नरक में जाओ।'** जिस सेवा से जीव का अभिमान नष्ट होता है और वह परम पद प्राप्त करता है, उसी सेवा से रन्तिदेव के अभिमान में वृद्धि होने से उनको नरक भोगना पड़ा। ठाकुर बड़े ही दयालु हैं; कभी सेवा-अपराध नहीं लेते, तभी बचे हुए हैं; अन्यथा क्या-क्या दुर्गति नहीं होती!

प्रातः भोजन के बाद दादीजी ने खूब स्नेह करके मुझसे कहा– 'तुमको कई बार कितना कुछ कहती हूँ। बुरा मत मानना। जानते तो हो, सब रोग-वोग से मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है!' दादीजी के स्नेहपूर्ण वाक्य से हृदय पुनः सरस हो उठा।

ठाकुर साक्षात् सदाशिव: सर्वांग में भस्म लगाना

धूनी की विभूति का अद्‌भुत गुण: सूक्ष्म रूप के दर्शन का उपाय

20 दिसम्बर, बुधवार। दादीजी के भोजन के बाद दिन में 8 बजे स्नान किया। फिर दूब, चन्दन, तुलसी और पुष्प आदि लाकर आसन पर बैठ गया। न्यास, होम, पूजा और पाठ सम्पन्न करने में दिन के लगभग 2 बज गए। उसके बाद भागवत लेकर ठाकुर के पास पहुँच गया। ठाकुर आज सारे शरीर में भस्म लगाकर आम के पेड़ के नीचे बैठे हैं– सामने धूनी जल रही है। देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ठाकुर को भस्म लगी अवस्था में देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। मैंने यह बात नानीजी से पहले कही भी थी। भागवत पाठ समाप्त करके नाम-जप करने लगा। हमारे ठाकुर साक्षात् सदाशिव हैं, प्रत्यक्ष देखने लगा। करोड़ों विश्व-ब्रह्माण्ड के विपुल ऐश्वर्य ठाकुर के श्रीअंगों पर विभूति के रूप में रोमकूप का आश्रय लिए हैं– सोचने लगा। इष्ट-मन्त्र का जप करते-करते, मन्त्र ही गंगाजल और विल्वपत्र है– ऐसा ध्यान करके ठाकुर के श्रीचरणों में अंजलि देने लगा। आनन्द से इतने आँसू गिरने लगे कि ठाकुर की ओर अधिक समय तक देख नहीं पाया। एकाग्र मन से शरीर के भीतर मणिपुर चक्र में ठाकुर को बैठाकर इच्छानुसार पूजा करने लगा। ठाकुर थोड़ा मुस्कुराते हुए तिरछे नयनों से क्षण-क्षण में मेरी ओर ताकने लगे। कितने आनन्द से ये कुछ घण्टे बीत गए, बतला नहीं सकता।

भोजन बनाने के लिए जाते समय ठाकुर से पूछा– साधु लोग शरीर पर भस्म क्यों लगाते हैं?

ठाकुर– **धूनी में साधु लोग होम करते हैं। प्रसाद के रूप में विभूति लेकर सर्वांग में लगाते हैं– उसी भाव में अभिभूत रहते हैं। शरीर में अच्छे-से भस्म लगाने से सब रोपकूप बन्द हो जाते हैं। शीत-ग्रीष्म, वर्षा, बादल में शरीर का उत्ताप समान रहता है, उससे कोई रोग नहीं होते। पहाड़-जंगलों में ऐसे पेड़ हैं, जिसकी राख देह में मलने से साधु लोग आँख से दिखलाई नहीं पड़ते। वे इच्छानुसार हिंसक जीवों के बीच भी चलना-फिरना करते हैं।**

मैं– मनुष्य पास में रहने से आँख से दिखेगा नहीं, ऐसा क्या कभी होता है?

ठाकुर– **होगा क्यों नहीं? अवश्य होता है। वस्तु का प्रतिबिम्ब आँखों में पड़ने से ही तो उसे देख पाओगे! उस भस्म को शरीर में मलने से आँखें उसके प्रतिबिम्ब को ग्रहण नहीं कर पातीं। मनुष्य की आँखों में क्या सभी वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ता है? क्या प्रेत का रूप देख पाते हो?**

किन्तु कुत्ते उसे देखते हैं। रात्रि में कभी-कभी आकाश की ओर देखकर कुत्ते उछल पड़ते हैं, निर्जन स्थान में भी दौड़ते हुए भौंका करते हैं। तुमने यह सब लक्ष्य करके देखा है?

मैं— हमारी आँखों की दृष्टि-शक्ति क्या वैसी हो नहीं सकती?

ठाकुर— **हाँ, अवश्य हो सकती है। छः महीने बिना रुकावट के संध्या से प्रातः तक प्रकाश देखे बिना यदि जागते रह सको, तो फिर आँखें धीरे-धीरे ऐसी हो जाएँगी कि सूक्ष्म शरीर को स्वतः देख सकोगे। प्रणाली के अनुसार दृष्टि-साधना से भी यह होता है।**

ठाकुर की बात समझ गया; लेकिन स्थूल वस्तु आँखों के सामने है, फिर भी उसे देख नहीं सकेंगे, यह तो बहुत आश्चर्यजनक है! सोच भी नहीं सकता। ठाकुर की बात से थोड़ा असमंजस में पड़ गया। मन-ही-मन दृष्टान्त खोजने लगा। यह ठीक है कि वायु वस्तु है, फिर भी उसके रूप को हम आँखों से देख नहीं पाते; इसी प्रकार बिना आधार के अत्यन्त स्वच्छ जल का रूप भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ता; किन्तु स्थूल वस्तु आँखों के सामने है, फिर भी उसे देख नहीं सकते, इस प्रकार का दृष्टान्त तो खोज नहीं पा रहा हूँ। ठाकुर की कृपा से इस समय चण्डी का एक श्लोक स्मृति में आ गया— 'दिवान्धाः प्राणिनः केचिद् रात्राबन्धास्तथापरे। केचिद् दिवा तथा रात्रो प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।।' (कोई प्राणी दिन में नहीं देख पाते, रात में देखते हैं; कोई दिन में देखते हैं, रात में नहीं देख पाते। फिर कोई-कोई प्राणी दिन और रात में एक ही समान देखते हैं।) मैंने सोचा, यद्यपि समस्त जीवों की दर्शन-क्रिया एकमात्र नेत्र द्वारा ही निष्पादित होती है, फिर भी भगवान् ने ऐसे उपादानों और अद्‌भुत कौशल से इन नेत्रों को गठित किया है कि तेज सूर्य के प्रकाश को भी किसी-किसी की दृष्टि-शक्ति पूर्ण रूप से रोक लेती है; दिन का प्रकाश उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। फिर किसी-किसी प्राणियों की दृष्टि-शक्ति प्रकाश या अन्धकार का कोई विचार ही नहीं करती, दिन एवं रात में एक समान देखती है। प्रकाश या अन्धकार के रूप को हमारे नेत्रों की भाँति उनके नेत्र देख नहीं पाते। ये सब दृष्टान्त जब विद्यमान हैं तब विशिष्ट वस्तु के प्रतिबिम्ब को हमारे नेत्र ग्रहण करने में असमर्थ होंगे, इसमें फिर आश्चर्य क्या है? इस प्रकार युक्ति से मन को सान्त्वना देकर ठाकुर की बात पर निःसंशय हुआ।

ठाकुर से कहा— लकड़ी का ऐसा गुण है कि उसकी राख को शरीर में मलने से शरीर दिखाई नहीं पड़ेगा, यह कभी सुना नहीं।

ठाकुर— **सुनोगे कैसे? दर्शन-विज्ञान में कितना मिला है— कितना जानते हैं? देखो, यह लकड़ी जब पुरानी होती है, घुन लग जाते हैं,**

इसमें एक प्रकार के कीट उत्पन्न होते हैं। पूरी लकड़ी छोटे-छोटे छिद्र होने से झारे के समान हो जाती है। उस लकड़ी में आग लगाने से जब धप्-धप् करके जलने लगती है, लकड़ी के भीतर से वे कीट बाहर निकलकर आग को खाने लगते हैं। वैसी लकड़ी मिलने पर दिखलाऊँगा। तुम स्वयं ही परखकर देखना। अग्नि भक्षण करने वाले जीव भी हैं। आधुनिक विज्ञान क्या उसे स्वीकार करता है?

ठाकुर की बात सुनकर मैंने सोचा– ऐसी लकड़ी बहुत दुर्लभ नहीं है, परीक्षण करके देखना होगा।

गुरु-सेवा में विघ्न: गुरुभाइयों के साथ झगड़ा

25 दिसम्बर, रविवार। देख रहा हूँ, जो लोग गुरु की सेवा में लगे रहते हैं, उनके दुर्भोग की सीमा नहीं है। गुरु शिष्यों की साधारण सम्पदा है। गुरु के लिए सभी शिष्य समान हैं– यह भाव सबके भीतर मूल रूप से विद्यमान है; पर जो गुरु की सेवा में रहता है, गुरु के साथ कुछ अधिक घनिष्ठता होने से अन्य गुरुभाई उसे सहन नहीं कर पाते, उससे ईर्ष्या होने लगती है। वे लोग उस सेवक गुरुभाई की थोड़ी भी त्रुटि देखते हैं, तो उसे बढ़ा-चढ़ाकर गुरु के समक्ष बखान् करते हैं। गुरु उस सेवक पर थोड़ा असन्तुष्ट होते हैं, तो वे लोग मानो कृतार्थ हो जाते हैं। रात्रि जागने व अत्यधिक परिश्रम से मेरा शरीर दिनो-दिन दुर्बल होता जा रहा है। कल वेदना के कारण संध्या के समय ही सो गया था, दादीजी की सेवा ठीक से नहीं कर सका। ठाकुर ने मुझसे कुछ दिन घर जाकर माँ के पास रहने को कहा। शीघ्र ही मैंने घर जाने का निश्चय किया। मैं अस्वस्थ हो गया हूँ, घर जाऊँगा– यह बात सुनकर कुछ गुरुभाइयों ने ठाकुर के सामने ही मुझसे कहा– 'महाशय! ब्रह्मचर्य पालन करते हो, फिर रोग क्यों हो जाता है? ब्रह्मचर्य व्रत के नियम का पालन करके चलने से क्या कभी रोग हो सकता है? ठीक से नहीं चल पाते तो ब्रह्मचर्य छोड़ क्यों नहीं देते? उससे ठाकुर का दुर्नाम होता है। हमारे जैसे रहिए।' व्यर्थ ही हस्तक्षेप करके गुरुभाइयों के इस आक्रमण से मुझे बड़ा कष्ट हुआ। सोचा, सीधे स्पष्ट रूप से सच बात सुनाकर उन लोगों का मुँह आज ऐसा बन्द कर दूँगा, जिससे मेरे विरुद्ध ठाकुर के सामने फिर कभी कोई ऐसा कुछ भी न कह सके। ऐसा सोचकर मैंने कहा– ठाकुर यदि ब्रह्मचर्य देकर मुझको अटल रख सकते हैं, तो ब्रह्मचर्य दें– ठाकुर के साथ स्पष्टतः इसी शर्त पर मैंने यह ब्रह्मचर्य लिया है। यदि व्रत भंग हुआ करता है, तो उसमें त्रुटि स्वयं ठाकुर की ही हुई, अतएव इसके लिए उन पर शासन कीजिए। यह सुनकर ठाकुर तुरन्त मेरी बात के समर्थन में

थोड़ा मुस्कुराते हुए मेरी ओर देखकर सिर हिलाने लगे। गुरुभाई लोग लज्जित होकर चुप रह गए।

कुछ क्षण बाद उन लोगों ने मुझसे फिर कहा– 'प्रातःकाल आप इतने सुन्दर-सुन्दर फूल तोड़कर पेड़ की शोभा क्यों नष्ट करते हैं? उससे क्या पेड़ को कष्ट नहीं होता?'

मैंने कहा– अपने लिए तोड़ने से पेड़ को वास्तव में कष्ट होता; लेकिन ठाकुर के चरणों में देने के लिए तोड़ता हूँ– इससे पेड़ को आनन्द ही होता है। फूल तोड़ने के लिए पेड़ के पास खड़े होते ही लगता है, पेड़ अपने फूल तुड़वाकर ठाकुर के चरणों में देने की इच्छा से मानो मेरी ओर आग्रह के साथ ताक रहे हैं! जिन फूलों को नहीं तोड़ता, ऐसा लगता है कि वे निराश होकर दुःखी हो गए हैं। एक गुरुभाई ने कहा– 'महाशय! यह सब भाव की बातें छोड़ो। हिंसा द्वारा क्या पूजा होती है?'

मैं– हिंसा कार्य में नहीं, भाव में है। फूल तोड़ने की क्या बात कहते हैं? अहिंसक होकर अनायास आनन्द के साथ सिर काटकर ठाकुर के चरणों में दे सकता हूँ– यदि पता चले कि उससे उनको आनन्द मिलता है। ठाकुर फूल पाकर प्रसन्न होंगे, पेड़ भी कृतार्थ होगा; फूल तोड़ते समय मेरे मन में यही भाव रहता है। फूल, दूब, तुलसी द्वारा पूजा करना, यह ऋषियों की ही व्यवस्था है, हम लोगों की प्रकृति नहीं है। गुरुभाइयों के साथ इन सब चर्चा के समय ठाकुर ध्यानस्थ रहे।

शालग्राम के प्रति आकर्षण

ठाकुर ने मुझको 'लक्षणयुक्त' शालग्राम की पूजा करने के लिए कहा है। ऐसा शालग्राम कहाँ कैसे मिलेगा, समझ में नहीं आता है। ठाकुर ने कहा है, अयोध्या के मन्दिरों में हजारों-हजारों शालग्राम हैं। चेष्टा करने से मिल सकता है। मैंने भैया को लिखा था, लेकिन उन्हें लक्ष्मीनारायण चक्र अभी तक नहीं मिला। ठाकुर के आदेश के बाद से दिनो-दिन मेरी शालग्राम-पूजा की इच्छा बढ़ रही है। फूल, चन्दन इत्यादि द्वारा अग्नि में पूजा करके अब मुझे सन्तुष्टि नहीं मिलती। फूल, चन्दन, तुलसी, विल्व-पत्र देकर साक्षात् ठाकुर के श्रीचरणों की पूजा करूँ– वैसा सौभाग्य लगता है कि मेरा कभी नहीं होगा। ठाकुर स्वयं ही उसमें बाधा देंगे। फिर अपने मन में स्वाधीन रूप से उनके अभिन्नस्वरूप सुलक्षणयुक्त सुन्दर शालग्राम की उनके आदेशानुसार पूजा करके मैं कब कृतार्थ हो पाऊँगा, पता नहीं! ठाकुर कब कृपा करके मेरे लिए सुन्दर शिला जुटाएँगे?

ठाकुर की पूजा: पाना चाहते हो या देना चाहते हो?

आज दिन में लगभग 10 बजे एक श्रद्धावान् गुरुभाई पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर को एकान्त में पाकर पूजा करने के लिए पहुँच गए। ठाकुर ध्यानस्थ थे; अचानक आँखें खोलकर उनकी ओर देखे। भाग्यवान् गुरुभाई ने तब फूल, चन्दन, तुलसी लेकर आग्रह के साथ ठाकुर के श्रीचरणों में अर्पित करके उनको साष्टांग प्रणाम किया। मैंने सोचा– यह सुयोग क्यों छोड़ूँ? मैं शीघ्र तुलसी, दूब, पुष्प आदि लेकर ठाकुर के पास पहुँच गया एवं ठाकुर के बायीं ओर दीन भाव से खड़ा रहा। मुझे रोना आ गया; सोचा, ऐसा क्या पुण्य किया है, जो आज ठाकुर की चरण-पूजा करूँ! ठाकुर ने इस समय स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर अस्फुट स्वर में कहा– **"क्या बात है? पूजा करोगे? ठीक है, करो। यदि कुछ पाना चाहते हो, तो चरणों में दो; यदि मुझे कुछ देना चाहते हो, तो मेरे मस्तक पर दो।"** यह कहकर सिर थोड़ा आगे कर दिए। सोचा– ठाकुर से और क्या चाहूँगा? जिसकी अपेक्षा उत्कृष्ट वस्तु भगवान् के भण्डार में ही नहीं है, जो अतुलनीय है, सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ एवं मनोरम है, वह दयालु ठाकुर ने तो स्वयं ही मुझे दी है। अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड के अधिपति मेरे प्रभु ने आज मुझसे कुछ पाने के लिए अपना सिर आगे बढ़ा दिया– हाय! हाय! दीन-हीन अधम मैं, मेरा अपना ऐसा क्या है, जो उनको दूँगा? मन में प्रार्थना होने लगी– ठाकुर! जन्म-जन्मान्तर में यदि कभी मेरी कोई सुकृति हो, तो वह एवं तुम्हारे संग प्राप्ति व साधन-भजन या सेवा-पूजा से जो कुछ भी फल मुझे मिले हैं और मिलेंगे, वह सब मैंने तुमको प्रदान किया; कृपा करके तुम ग्रहण करो। यह कहकर अपने हाथों की पुष्पांजलि वक्ष में रखकर ठाकुर के मस्तक पर अर्पण कर दिया। फिर ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके वहीं बैठा रहा। ठाकुर ने स्नेहपूर्वक दो-एक बार मेरी ओर देखकर आँखें बन्द कर ली। जय गुरुदेव!

भोग के पहले प्रसाद: मँझले भैया के सम्बन्ध में ठाकुर की बातें

28 से 31 दिसम्बर। मँझले भैया ढाका में आए हुए हैं, आज वे घर लौटेंगे। मुझे भी अपने साथ घर चलने के लिए उन्होंने कहा है। मैं प्रातः दादीजी के लिए भोजन बनाकर तैयार हो गया। मँझले भैया ठाकुर के दर्शन हेतु आश्रम में आए; पूर्व ओर के कमरे में जाकर ठाकुर को प्रणाम करके एक ओर बैठ गए। इसी समय ठाकुर के लिए चाय आ गई। ठाकुर ने मँझले भैया को भी चाय देने के लिए कहा। मँझले भैया ठाकुर का प्रसाद लेकर चाय पीने की प्रत्याशा से प्रतीक्षा करने लगे। ठाकुर चाय का भोग लगाकर उसे पीने के लिए छोटी कटोरी में डालकर जैसे ही

मुख के पास लाए, वैसे ही मँझले भैया ने प्रसाद के लिए अपनी कटोरी ठाकुर के सामने रख दी; ठाकुर ने चाय को मुख से लगाए बिना ही तुरन्त उनकी कटोरी में डाल दिया। मँझले भैया थोड़ा संकोच करते हुए लज्जित भाव से बैठे रहे। ठाकुर ने उन्हें चाय पीने के लिए कहा एवं बातों-बातों में कहा– **"मुम्बई में छपी एक योगवाशिष्ठ रामायण लाकर पढ़िएगा।"** मँझले भैया चले गए। बाद में ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारे मँझले भैया बड़े छिपे रुस्तम हैं, बुद्धिमान हैं। वैराग्य प्रधान प्रकृति है, केवल विश्वास के अभाव से अटके हुए हैं। विश्वास का थोड़ा अंश मिल जाने से ही कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाएँगे, पता नहीं चलेगा। अभी विश्वास आने से कैसे चलेगा? कर्म तो क्षय होना चाहिए। तुम चारों भाई इस बार परस्पर परामर्श करके आए हो। प्रत्येक की प्रकृति भिन्न-भिन्न है; लेकिन औसतन सभी एक जैसे ही हैं।**

अयाचित दान: कचौड़ी, अदरक, चने

ठाकुर की अनुमति लेकर मँझले भैया के साथ घर के लिए निकल पड़ा। नदी के तट पर पहुँचकर मँझले भैया ने नाव किराये पर ली एवं मुझको वहाँ छोड़कर किसी काम से शहर गए। मुझे अपनी बहिन की बात का स्मरण हुआ। उसने मुझसे खस्ता-कचौड़ी खाने के लिए माँगा था। मेरे पास केवल दो पैसे हैं, मैं बँगला बाजार में खाने की दुकान पर पहुँचा। हलवाई को दो पैसे देकर कहा– इससे जितना भी मिले, मुझे खस्ता-कचौड़ी दे दो। हलवाई ने कुछ क्षण मेरी ओर देखकर फिर कहा– 'मिठाई कुंछ नहीं लोगे?' मैंने कहा– नहीं; पैसे नहीं हैं। हलवाई ने फिर कुछ न कहकर एक डलिया में इमरती, रसगुल्लादि कुछ स्वादिष्ट मिठाइयाँ एवं ऊपर से दस खस्ता-कचौड़ी देकर कहा– 'इसे दया करके ले जाइए, मैं आपसे पैसे नहीं लूँगा।' अयाचित रूप से जो मिला, उसे ठाकुर की ही इच्छा से उनका प्रसाद समझकर ले लिया। नौका में आकर स्नान-तर्पण करके बैठ गया। बहुत प्यास लगी। आश्रम से कुछ चने व अदरक खाकर आने से अच्छा होता– बार-बार इस प्रकार विचार आने लगा। इसी समय अचानक मेरे बचपन का मित्र ललित मोहन गांगुली वहीं पर स्नान करने आया। उसने मुझे देखते ही कहा– 'भाई, घर जा रहे हो? अच्छा, तुम एक बार चलकर मेरी भजन-कुटीर देख लो।' यह कहकर वह नदी के किनारे स्थित अपने घर चलने के लिए मुझसे बड़ी जिद करने लगा। मैं उसके घर गया। तब उसने कुछ भीगे हुए चने, अदरक एवं गुड़ मेरे सामने रखकर कहा– 'भाई, घर पहुँचने में संध्या हो जाएगी। दया करके थोड़ा यह जलपान करके जाओ।' बड़ी तृप्ति के साथ उसकी श्रद्धा का दान ग्रहण करके नौका पर आ गया। मैं सोचने लगा– भविष्य में मुझे जो लगेगा एवं मेरी कब क्या

इच्छा होगी, मैं कुछ नहीं जानता; पर ठाकुर उसे समझकर मेरे समस्त अभाव एवं मेरी इच्छा को पूर्ण करने की व्यवस्था करके रखते हैं; कितने आश्चर्य की बात है! संध्या के पहले मैं घर पहुँच गया। माँ की इच्छा से उनके ही निर्देश के अनुसार खाना बनाकर मैंने प्रसाद पाया। बहुत दिनों के बाद आज मोहल्ले के वृद्धजनों की चरण-धूलि लेने से मुझे बड़ा आनन्द मिला। सबने प्रसन्नचित्त से आशीर्वाद दिया। सुना था, चित्त को प्रफुल्लित रखना हो, तो वृद्धजनों की चरण-धूलि लेनी चाहिए। यह बात सत्य ही है, इसे स्पष्ट अनुभव किया।

स्वप्न में शालग्राम और गोपाल की पूजा

घर में आकर दो अच्छे स्वप्न देखे। 29 दिसम्बर को रात ढाई बजे देखा, एक अति सुन्दर गोल शालग्राम भगवान् को ध्यानपूर्वक बड़े आनन्द के साथ फूल, तुलसी, दूब, चन्दन आदि द्वारा रीति के अनुसार सजा रहा हूँ। पूजा समाप्त होते ही जाग गया। निद्रा भंग होने के बाद भी कुछ क्षण उसी प्रकार अभिभूत रहा। इसके दूसरे दिन देखा, घर के गोपाल भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा कर रहा हूँ, इसी समय भगवान् का सिंहासन हिलने लगा। देखते-देखते ही एक-एक करके सिंहासन के तीन पायें हवा में उठ गए; केवल एक पाया भूमि पर लगा रहा। सोचा– लगता है, भगवान् इस बार गोलोक जा रहे हैं। उसी समय देखा कि दो-तीन महीने के शिशु की भाँति भगवान् अपने सिंहासन में चित् होकर हाथ-पैर हिलाते हुए खेल रहे हैं। मेरी दृष्टि पड़ते ही एकाएक वे नीचे उतरकर दौड़ने लगे। तब मैं भी भगवान् के पीछे-पीछे दौड़ा; दौड़ते ही जाग गया। इस गोपाल की आकृति बहुत कुछ दाऊजी के समान थी।

मनोमुखी होकर चलने का फल: गुरु के संग का प्रभाव

ठाकुर का साथ छोड़कर घर आने से प्रत्येक बार ही देखता हूँ कि साधन-भजन का उत्साह और आनन्द धीरे-धीरे ठण्डा पड़ जाता है, नित्यकर्म के नियम-बन्धन में आबद्ध रहने के कारण बाहर से तो बचा रहता हूँ, लेकिन भीतर-ही-भीतर अन्य प्रकार का हो जाता हूँ। घर पर सत्संग का बड़ा अभाव है। विषयी लोगों एवं स्त्रियों का साथ छोड़ने का उपाय नहीं है। नाना प्रकार की बातचीत, कल्पना व सम्भोग की वासना से चित्त कलुषित न हो, इसलिए सर्वदा ही सतर्क रहना पड़ता है। यद्यपि अपना भाव ही अपनी रक्षा करता है एवं अपना भाव ही अपना विनाश करता है– यह सत्य है, तथापि देख रहा हूँ, कई बार अन्य का भाव भी चित्त को प्रेरित एवं विचलित कर देता है। सर्वदा सब ओर दृष्टि

रखकर सतर्क रहना भी सहज में नहीं हो पाता। इतने दिन सद्‌गुरु का संग एवं साधन-भजन करके भी यदि इतना डर-डरकर रहना पड़े, तो मेरा हुआ ही क्या? भेड़-बकरियों के डर से सब समय यदि हाथ में लाठी लेकर ही खड़ा रहना पड़े, तो फिर ठाकुर ने किया ही क्या? ठाकुर के आदेश पालन की ओर ध्यान न रखकर केवल अपनी प्रकृति के वश में रहकर चलने से क्या होता है और कब तक चला जा सकता है, एक बार देखने की इच्छा हुई। अतः आहार का नियम तोड़ दिया; कोई कुछ भी खाद्य देता है, तो उसे खा लेता हूँ। अधिक मिर्च, मीठा और घी की वस्तु कुछ भी नहीं छोड़ा। फिर स्त्रियों के साथ हिल-मिलकर समय बिताने लगा। इस प्रकार चलने के फलस्वरूप इन कुछ दिनों में ही मेरा कितना अधःपतन हुआ, उसे अच्छे-से समझ पा रहा हूँ। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में सद्‌गुरु अथवा साधु सज्जनों के संग के बिना चित्त किसी प्रकार भी स्थिर और निर्मल नहीं रहता, इसे अब बड़े ही स्पष्ट रूप से समझ गया। घर में अब चार-पाँच दिन किसी प्रकार से बिताकर शीघ्र ही ढाका के लिए निकल पड़ा। उत्तप्त, शुष्क और मल-मूत्र जड़ित अपवित्र देह जिस प्रकार गंगा-स्नान से शुद्ध, शीतल और निर्मल होती है, ठाकुर के दर्शन से मुझे वैसा ही अनुभव होने लगा। ठाकुर! दया करके इस प्रकार उठा-पटककर अपना असीम माहात्म्य न समझाओ, तो कौन तुमको समझ पाएगा?

आश्रम में आते ही पुनः दादीजी की सेवा में लग गया। घर में चार-पाँच दिन रहकर कितने प्रकार के दुर्भोग भोगा; उसे अवसर मिलने पर ठाकुर को बतलाने के लिए व्यग्र हो गया। बड़े दिन की छुट्टी में इस समय विभिन्न स्थानों से अनेक गुरुभाई ठाकुर का दर्शन करने आए हैं। भक्त गुरुभाइयों के शुभ सम्मिलन से आश्रम में मानो सब समय उत्सव चल रहा है। शहर से भी सैकड़ों सज्जन आकर ठाकुर के साथ सत्संग में बड़े तृप्त हो रहे हैं। आश्रम जैसे सदा जगमगा रहा है।

जनवरी, सन् 1893 ई०

वीर्यधारण का उपाय और उपकारिता

ऊर्ध्वरेता होने का उपाय और फलाफल: नास्ति प्राणायामात् बलम्

1 जनवरी, रविवार। मध्याह्न में भोजन के बाद गुरुभाई लोग ठाकुर के पास आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। वीर्यधारण न करने से इस साधन की उपकारिता सहज में समझ नहीं आती– इस बात को लेकर उनके बीच बहुत आलोचना हुई। उन्होंने इस सम्बन्ध में ठाकुर से पूछा कि गृहस्थ के पक्ष में वीर्यधारण का सहज उपाय क्या है एवं उसकी क्या उपकारिता है? फिर ऊर्ध्वरेता न होने से क्या जीव

का उद्धार नहीं होता? ठाकुर लिखकर एवं बीच-बीच में अस्फुट स्वर में उनके प्रश्न का उत्तर देने लगे– वीर्य की रक्षा की ओर ध्यान रखकर चलना होगा। अब एकदम से रोक लगाना उचित नहीं होगा; क्योंकि गृहस्थों के लिए पृथक् व्यवस्था है। जो विवाहित हैं, उनके लिए दो-तीन सन्तान होने से ही वीर्य की रक्षा का प्रयास करना उचित है; किन्तु केवल पुरुष की इच्छा होने से नहीं होगा। इस कार्य में स्त्री एवं पुरुष दोनों का ही सहयोग चाहिए। स्त्री की इच्छा के बिना पुरुष इसमें सक्षम नहीं होगा। वीर्य की रक्षा द्वारा शरीर निरोग एवं मन स्वस्थ होता है। यदि किसी कारण से वीर्य की रक्षा नहीं होती, तो उससे मुक्ति में अड़चन नहीं होती; लेकिन साधना के पथ में विघ्न होता है। इसलिए वीर्य की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। प्राणायाम एवं वीर्य की रक्षा से देह-मन सबल और सुस्थिर होते हैं। वीर्य की रक्षा का प्रयास करना होगा; किन्तु अपनी शक्ति से समर्थ न होने पर कभी किसी प्रकार की बाहरी औषधि आदि उपायों द्वारा निवारण करना ठीक नहीं है। पृथक् शयन की व्यवस्था है। वीर्य की गति ऊर्ध्व की ओर करने के लिए एक प्रकार की प्रक्रिया है। उसमें मेरुदण्ड के दोनों ओर आरी से काटने की भाँति कट-कटकर पथ बनता है। वह बड़ा कष्टदायक है। इस कारण वह प्रणाली ठीक नहीं है। असह्य पीड़ा होती है, सहन नहीं कर पाते। एक बार उस प्रणाली को पकड़ लेने पर फिर उसे छोड़ नहीं सकते। इसलिए अधिकांश साधक उस 'बज्रोली' प्रणाली के पक्षपाती नहीं हैं। सहज उपाय है– मूत्र त्याग एक बार में नहीं करना; धीरे-धीरे रोक-रोककर करना। थोड़ा मूत्र त्याग होते ही खींचकर रोकते हुए पुनः त्यागना– फिर रोक लेना। स्त्री-सहवास के समय भी वीर्य त्याग न करके रोककर रखने का प्रयास करना। गृहस्थ आश्रम में स्त्री-सहवास के जो नियम हैं, उसके अनुसार ही चलना उचित है। ऋतु-स्नान के बाद 15 दिन तक प्रशस्त समय है। उसमें भी अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी और अमावस्या-पूर्णिमा तिथि में संयम रखने का नियम है। शेष जो दिन रहेंगे, उसमें किसी कारणवश असमर्थ रहने से अन्य समय में तीन-चार दिन स्त्रीसंग कर सकते हैं। संगम के समय धैर्य के साथ वीर्य का गतिरोध करना चाहिए। दोनों की सहमति से दोनों को एक ही समय में रोकने की चेष्टा करके कुम्भक करना चाहिए। ऐसा करने से दोनों के ही रेतः एक नाड़ी के भीतर से होकर ऊर्ध्व की ओर गमन करते हैं। यह बहुत सावधानी के साथ करना चाहिए। इस 'सहजोली' मत को अपनाने से सहज में ही

सफल हो सकते हैं। गुरु के उपदेश के अनुसार यह सब करना चाहिए, अन्यथा संकट में पड़ जाओगे। वीर्यधारण एवं सत्य की रक्षा ठीक से कोई छः महीने कर लेता है, तो वह निश्चय ही वाक्‌सिद्ध हो सकता है। प्रकृति के भीतर जो निहित है, उसे बलपूर्वक कोई दूर नहीं कर सकता। कितने इन्द्र, चन्द्र, यहाँ तक कि ब्रह्मा भी परास्त हुए हैं। केवल भगवान् के शरणागत होकर नाम-जप करने से सहज में प्रवृत्ति दमित होती है। बाहरी उपाय से कुछ नहीं होता, नाम-जप करते-करते अपने-आप सब दूर हो जाएगा। वास्तविक साधना श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना है। उसका अभ्यास होने से प्राणायाम भी स्वाभाविक हो जाता है, वीर्य भी स्थिर होता है। प्राणायाम के तीन अंग हैं– पूरक, रेचक और कुम्भक। कुम्भक सर्वश्रेष्ठ अंग है। प्रतिदिन नियमित रूप से कुम्भक करने से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, सभी प्रकार के शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। प्रतिदिन कुम्भक और उसके साथ यदि वीर्यधारण होता है, तो शरीर वास्तव में देव-मन्दिर हो जाता है, रोग-शोक दूर हो जाते हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। उसके साथ प्राणायाम आदि साधन भी करना चाहिए। श्वास-प्रश्वास में नाम-साधना करने के लिए पहले-पहले प्रत्येक श्वास में ध्यान रखकर नाम-जप करना पड़ता है। क्रमशः मेरुदण्ड से होकर जो श्वास बहती है, उसका परिचय मिलता है। उसके साथ नाम-जप करने से सहज में सब आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं। प्राणायाम कम-से-कम आधे घण्टे तक करना चाहिए। सोकर, खड़े होकर या चलते-चलते प्राणायाम नहीं करते। प्राणायाम आसन लगाकर बैठे-बैठे ही करना चाहिए। प्राणायाम का एक निश्चित समय रहना अच्छा है। रात्रि का अन्तिम प्रहर प्राणायाम के लिए प्रशस्त समय है। पहले-पहले आधे घण्टे से अधिक समय तक करने की आवश्यकता नहीं है। धीरे-धीरे समय बढ़ाना चाहिए। एक बार में आधे घण्टे लगातार न कर सको, तो रुक-रुककर करना। करते-करते बाधा आए, तो अवसर मिलने पर पुनः करके वह समय पूरा कर लेना चाहिए। मुख खोलकर या बन्द करके प्राणायाम कर सकते हैं। प्राणायाम के समय खूब नाम-जप करना, नाम-जप कभी बन्द नहीं रखना। प्राणायाम की थोड़ी बहुत ध्वनि कोई सुन ले तो हानि नहीं है। फिर भी न सुने, तो अच्छा है। उच्च ध्वनि कोई सुन ले, तो उसको हानि हो सकती है। शिशु व बालकों के निकट प्राणायाम नहीं करते। गुरु के उपदेश के बिना कोई देखकर या सुनकर उस प्रकार करने जाता है, तो संकट में पड़ जाएगा। जन्म या मृत्यु के

अशौच में प्राणायाम करना निषेध नहीं है। खाली पेट में, भूख लगने पर प्राणायाम करने से हानि होती है। पेट फूलने पर, सिर की पीड़ा या किसी रोग के कारण प्राणायाम करने में कष्ट होता है, तो प्राणायाम नहीं करना चाहिए। कुम्भक न होने तक योनिमुद्रा करने से हानि होती है। प्राणायाम से शरीर निरोग होता है, इन्द्रिय की चंचलता दूर होती है, मन स्थिर होता है, अन्तरिक्ष में विचरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है, परमार्थ शक्ति जागती है। ऋषियों ने कहा है– 'नास्ति प्राणायामात् बलम्।' पातंजल-दर्शन में व्यास-भाष्य में लिखा है– 'तथाचोक्तमं, तपो न परं प्राणायामात्, ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।' इसीलिए शास्त्र में कहा गया है, प्राणायाम से श्रेष्ठतम् तपस्या अन्य नहीं है; उसके द्वारा चित्त की सब मलिनता धुल जाती है एवं ज्ञान प्रकाशित होता है।

जिन्हें स्वप्नदोष होता है, वे शयन के समय भगवान् का मातृवाचक नाम बेल या तुलसी के पत्ते में लिखकर तकिए के नीचे रखकर सोवें। जब तक नींद न आए, नाम-जप करें। अपनी इच्छा से कुछ न करके गुरु ने जो कहा है, जितना हो सके, वही करना उचित है।

योग का एक अंग है– प्रत्याहार। इसका अर्थ है– मन अन्यत्र जाए, तो उसे वापस लाना। नाम-जप करते-करते जो अवस्था प्राप्त होती है अथवा जो दर्शन होते हैं, उसको पकड़े रहने का नाम है– धारणा। एकाएक अवस्था नहीं खुल जाती। सब धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। दृष्टि-साधन करने से मन स्थिर होता है। वृक्ष, आकाश, जल, अग्नि इन सबकी ओर प्रणाली के अनुसार देखते हुए दृष्टि-साधन करना होता है। आत्मा प्रस्तुत होने के बाद भगवत् दर्शन होने लगते हैं। तब फिर कोई संशय नहीं रहता। काम-क्रोध, कामना-वासना ये सब भी नहीं रहते। ईश्वर दर्शन के पहले महापुरुष और देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं; किन्तु उससे हृदय का विशेष परिवर्तन नहीं होता। कुल देवता या जो जिस देवता को मानते हैं, वे ही उनके समक्ष पहले-पहले प्रकट होते हैं। वेद, पुराण आदि सब शास्त्र किस प्रकार हुए, सृष्टि किस प्रकार से हुई, ये सब प्रगट होने से माया चली जाती है। तब सब ब्रह्ममय हो जाता है। क्रमशः भगवत् लीला दिखलाई पड़ती है। भगवान् ही चरम लक्ष्य हैं।

ऊर्ध्वरेता होने से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। ऊर्ध्वरेता होने से एक अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द साधारण नहीं है।

स्त्रीसंग से प्राप्त आनन्द की अपेक्षा वह आनन्द हज़ार गुणा अधिक है; परन्तु वह शारीरिक है, उसे प्राप्त करके लोग लक्ष्य भूल जाते हैं। सोचते है कि यही ब्रह्मानन्द है। अनेक लोग यहीं बद्ध हो जाते हैं। दुर्वासा ऊर्ध्वरेता थे। उनकी बड़ी अलौकिक शक्ति थी। किसी को भी मानते नहीं थे। अन्त में इतने अधिक अपराधी हो गए कि उससे उनका सब नष्ट हो गया। ऊर्ध्वरेता न होना ही अच्छा है। ऊर्ध्वरेता होने से ही भगवान् को प्राप्त किया जाता है, वैसा नहीं है; एक व्यक्ति दिन में कई बार स्त्रीसंग करके भी यदि वैसी श्रद्धा-भक्ति करता है, तो वह भगवान् को प्राप्त कर सकता है। उससे कोई हानि नहीं होती। किन्तु एक व्यक्ति ऊर्ध्वरेता होकर यदि अहंकारी होता है, तो उसका कुछ भी नहीं होगा।

धर्म के रूप में मनोमुखी कुबुद्धि– उसका परिणाम

5 जनवरी, गुरुवार। कुछ दिनों से मैं यन्त्रणा से छटपटा रहा हूँ। अब ठाकुर का उपदेश सुनकर अन्तःकरण जल उठा। मैं यन्त्रणा से बेचैन हो गया। सोचा, हाय! हाय! कैसा सर्वनाश कर डाला! भ्रमित बुद्धि से ठाकुर का आदेश ठीक-ठीक न समझ पाने से कुपथ पर चल पड़ा। अब देख रहा हूँ– इन अभ्यस्त दोषों को सुधारना बड़ा कठिन है। विचार बुद्धि से समझ लिया था– नियमानुसार चलने की चेष्टा ही 'साधना' है। इस साधना से हम लोगों को क्या लाभ? लाभ-हानि सब तो हमारे गुरु के हाथ में है। चेष्टा करने से जब कुछ नहीं होता, केवल गुरु की कृपा से ही जब सब कुछ होता है, तो व्यर्थ साधन-भजन में इतनी कठोरता करके कष्ट क्यों पाएँ? दूसरी ओर देखता हूँ– तीव्र साधना से वरन् हानि ही होती है; ठाकुर की कृपा से यदि कोई अच्छी अवस्था प्राप्त होती है, तो निष्ठाचारी कठोर साधक सोचेगा कि वह उसके प्रयास के फलस्वरूप हुई है। भगवान् की कृपा का दान प्राप्त करके भी वह उसे कृतज्ञता के साथ हृदय में ग्रहण नहीं कर पाएगा। फलस्वरूप उसे गुरुस्थान में भयंकर अपराधी ही होना पड़ेगा। अतएव बिना परिश्रम के, बिना साधन-भजन के यदि मुझे कोई अवस्था प्राप्त होती है, तो उसे मैं गुरु की कृपा कहकर सहज में ग्रहण कर सकूँगा– इस प्रकार धर्म के रूप में स्वेच्छाचारी और मनोमुखी कुबुद्धि ने आकर मेरे चित्त को उथल-पुथल कर डाला। मैं पुरुषकारमूलक कष्टकर संयम के अभ्यास को छोड़ने के लिए प्रवृत्त हो गया।

अब देख रहा हूँ, हित के विपरीत कर बैठा हूँ। आहार का नियम न मानने से बड़ा लोभी एवं रोगी हो गया हूँ। पैर के अँगूठे पर दृष्टि स्थिर न रखने से बीच-बीच में स्त्रियों को देखता हूँ; उससे निस्तेज काम रिपु पुनः जागृत हो गया।

वाक्-संयम का अभ्यास छोड़ देने से अब अधिक वाचाल एवं अभिमानी हो गया हूँ। साधन-भजन में लगाव न रहने से प्रत्येक श्वास में कुम्भक और श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने का प्रयास भी नहीं होता। इससे मन की स्थिरता और चित्त की प्रफुल्लता बिल्कुल खो बैठा हूँ। सोचा था, वाक्-संयम और वीर्य की रक्षा द्वारा ऊर्ध्वरेता या वाक्सिद्ध होने से भी क्या होगा? श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करके भी जब कामना पूर्ण नहीं होती, वह जब गुरुकृपा से ही होती है, तब अनर्थक कठोर साधना करके क्यों वृथा कष्ट भोग करूँ? ठाकुर के प्रति ममता, उनके ऊपर वास्तविक स्नेह एवं उनका निरन्तर संग प्राप्त करने को ही प्राण की आकांक्षा और जीवन का एकमात्र लक्ष्य माना; फिर कुग्रह के बुरे संयोग से मेरी बुद्धि इस प्रकार प्रतिकूल क्यों हो गई? जिन्हें स्नेह करना चाहता हूँ, जिन्हें अपना लेना चाहता हूँ, उनकी आज्ञा के विरुद्ध क्यों हो गया? वास्तव में जिनको चाहता हूँ, उनकी प्रसन्नता के लिए क्या नहीं कर सकता? आनन्दपूर्वक ठाकुर के आदेश पालन की उत्सुकता ही तो उनके प्रति प्रेम का दृष्टान्त है। ठाकुर के आदेश का तात्पर्य समझने का कोई प्रयास न करके अविचारित चित्त से उसके प्रतिपालन के आनन्द को अनुभव करना ही मेरा कर्त्तव्य है। कुबुद्धिवशतः उनका आदेश उल्लंघन करके मैंने यह कैसा सर्वनाश कर लिया! अब क्या उपाय करूँ, सोचकर बेचैन हो गया।

धर्म बुद्धि से अधर्म में क्यों पड़ा: अब उपाय क्या है

आज कुछ गुरुभाइयों के साथ बातचीत से पता चला, उनकी भी मेरी जैसी दशा है। ठाकुर के पास जाकर सबने भीतर की अवस्था बतलाकर उनसे पूछा, 'धर्म के अतिरिक्त कुछ तो नहीं चाहते, फिर भी बुद्धि में प्रतिकूलता क्यों आती है? धर्म बुद्धि से अधर्म करके जो ज्वाला भोग रहे हैं, वह अब कैसे जाएगी?'

ठाकुर ने उत्तर में बतलाया– **'बाहर जिस प्रकार ग्रह आदि का प्रभाव पड़ता है, वैसे ही भीतर भी पड़ता है। जो लोग साधन-भजन करते हैं, वे बीच-बीच में उसका अनुभव करते हैं। पहले के साधकों ने इसे इन्द्रदेव का अत्याचार कहा है। मुसलमान और ईसाई साधकगण इसे शैतान कहा करते हैं। इसके हाथ से प्रायः कोई भी बच नहीं पाता। केवल महादेव, शुकदेव, बुद्धदेव और हरिदास ठाकुर ही बच पाए थे। सर्वप्रथम काम-क्रोध के रूप में, फिर कामना-वासना के रूप में, उस पर भी यदि न हो तो धर्म के रूप में आकर साधक का सर्वनाश करता है। इसकी एकमात्र औषधि है, धैर्यपूर्वक पड़े रहकर श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना। औषधि खाते-खाते रोगी की औषधि में रुचि नहीं रहती।**

यन्त्रणा से वह बेचैन हो जाता है, फिर भी उसे औषधि खानी पड़ती है; क्योंकि कोई उपाय नहीं है। साधक को उसी प्रकार करना पड़ता है। पूर्व के जन्मों में जो सब कर्म किए गए हैं, उसका फल भोगकर मुक्ति पाने के लिए कई जन्म चक्कर लगाते हुए उसे समाप्त करना होता है। भगवत् नाम के गुण से सहज में मुक्ति मिलती है; पर बाधा यह है कि नाम में रुचि नहीं होती। चारों ओर दुःख-कष्ट हैं। अग्निकुण्ड में गिरने से भी नाम-जप करना होगा। प्रह्लाद-चरित्र इसका जीवन्त दृष्टान्त है। खाने की वस्तु में विष, अग्नि में डालना, हाथी के पैरों के नीचे डालना, समुद्र में फेंकना; चारों ओर विरोधी, अस्त्राघात; सहायक केवल हरिनाम! अन्त में प्रह्लाद की ही विजय हुई। भगवान् ने नरसिंह के रूप में प्रकट होकर उनकी रक्षा की। यह साधन-पथ भी उसी प्रकार है; ज्वाला-यन्त्रणा के बीच से जाना होगा। ये सब अग्नि-परीक्षाएँ हैं; इसमें जितना तपोगे, उतना ही विशुद्ध होते जाओगे। ये नाना प्रकार से साधक की प्रवृत्ति और संस्कार के अनुसार उस पर अधिकार जमाती हैं। इस यन्त्रणा से मैं आत्महत्या करने गया था। परमहंसजी ने रक्षा की। जन्म-जन्मान्तर के संचित पाप को दग्ध करने के लिए बहुत अग्नि की आवश्यकता है। यह यन्त्रणा ही मुक्ति का हेतु है। यह जिसे होती है, वह कल्पित धर्म का ढोंग नहीं कर सकता। पाप के बाद भी यदि धर्म में आनन्द मिलता है, तो वह विडम्बना है। जैसे रोगी कुपथ्य खाकर सुखी हो। पहले यन्त्रणा से सूख-सूखकर रसहीन हो जाओगे। विषय रस का एक बूँद भी रहने से ब्रह्मानन्द नहीं आता। इस यन्त्रणा के भीतर अनेक सूक्ष्म तत्त्व हैं। समय पर समस्त प्रकाशित हो जाएँगे; तब समझोगे। अभी श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करो, उसी से समस्त यन्त्रणाओं का अन्त हो जाएगा।'

प्रश्न– कब तक हम लोगों को ये यन्त्रणाएँ भुगतनी होंगी?

ठाकुर– वह कह नहीं सकते। अभी भी मेरी परीक्षा लेने आते हैं। उस दिन अचानक देखा, कमरे के भीतर चार अत्यन्त सुन्दर स्त्रियाँ हैं। वे नाना प्रकार से मुझे परखने लगीं। जब किसी प्रकार भी सफल न हुईं, तब दो कलसी मुहरें मेरे सामने रखकर बोलीं– 'तुम ये सब ग्रहण करो।' मैंने कहा– उसकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। तब उन सबने कहा– 'तुम हमें शिष्य बना लो।' मैंने कहा– तुम लोग कौन हो? उन्होंने कहा– 'हम सभी पतित नारी हैं, तुम हम लोगों का उद्धार करो।' मैंने कहा– सिर मुड़ाकर, अलंकार और सुन्दर वस्त्र त्यागकर फटे-पुराने वस्त्र पहन कर आओ। यह सुनकर उन लोगों ने हँसकर कहा– 'हमें नहीं पहचाने?

हम माया की दासी हैं! कितने दिनों तक हमारी चरण-सेवा किए हो। दिन फिर जाने से अब पहचान नहीं रहे हो? ठीक है, तुम्हारा मंगल हो— हम लोगों को आशीर्वाद दो!' यह कहकर वे सब चली गई।

ठाकुर द्वारा अल्पवयस्क गुरुभाई नरेन्द्र के प्रश्नों के प्रत्युत्तर

वानरीपाड़ा निवासी जमींदार श्री नारायण घोष जी के अद्‌भुत प्रतिभाशाली अल्पवयस्क पुत्र हमारे गुरुभाई श्री नरेन्द्रनाथ घोष के कुछेक जटिल प्रश्नों के प्रत्युत्तर ठाकुर ने इस प्रकार दिया—

प्रश्न— क्या हम लोगों का उद्धार होगा?

उत्तर— **हाँ, हाँ होगा।**

प्रश्न— आपको यदि हम लोग स्मरण करते हैं, तो उसे समझ पाते हैं?

उत्तर— **हाँ, हाँ।**

प्रश्न— पहले जितनी बार स्मरण किया, उसे आपने सुना था?

उत्तर— **हाँ, हाँ।**

प्रश्न— गुरु क्या सर्वत्र हैं?

उत्तर— **हाँ।**

प्रश्न— तब तो आप सर्वदा हम लोगों निकट रहते हैं?

उत्तर— **हाँ।** (थोड़ा हँसकर) **नाम-जप करते रहो; दृष्टि खुल जाएगी, तब सब समझ जाओगे।**

प्रश्न— आपसे दीक्षा लेने पर तो रिपु की उत्तेजना बढ़ जाती है?

उत्तर— **हाँ, दीक्षा लेने से रिपु की उत्तेजना बढ़ती है; जिस प्रकार बुझने के पहले दीपक की लौ बढ़ जाती है, बढ़कर फिर चिरकाल के लिए बुझ जाती है।**

प्रश्न— रिपु उत्तेजित होने पर क्या उपाय है?

उत्तर— **रिपु की उत्तेजना बढ़ने से नाम-जप की उत्तेजना भी बढ़ानी पड़ती है।**

प्रश्न— भगवत्-भक्त और जो लोग 'उनके' शरीर में विलीन हो जाते हैं, दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर— **जो विलीन हो जाते हैं, उनकी अपेक्षा भक्त श्रेष्ठ हैं; अतुलनीय आनन्द के अधिकारी हैं।**

प्रश्न– महाप्रभु के सभी भक्तगण क्या सिद्ध पुरुष थे?

उत्तर– **हाँ।**

प्रश्न– उनके तो हजारों भक्त थे, सभी सिद्ध कैसे होंगे?

उत्तर– **हाँ, वे भगवान् के प्रत्येक अवतार के समय साथ में आते हैं। समस्त काल में इसी प्रकार चलेगा।**

प्रश्न– (अभय बाबू द्वारा) नरोत्तम ठाकुर ने उन सबको नित्यसिद्ध कहा है, यह सत्य है?

उत्तर– **हाँ, उसे बिल्कुल सत्य समझना।**

प्रश्न– महाप्रभु क्या स्वयं अवतीर्ण भगवान् हैं?

उत्तर– **हाँ।**

प्रश्न– अनन्त ब्रह्माण्ड के जो एकमात्र ईश्वर हैं, वे स्वयं इस पृथ्वी में नवद्वीप में मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुए?

उत्तर– **हाँ, योगमाया का अनुसरण करके वे अवतीर्ण हुए थे। भगवान् तो स्वयं एक समय में करोड़ों ब्रह्माण्ड में अवतरित होकर लीला किया करते हैं, उसे जीव क्या समझेगा!**

प्रश्न– नित्यानन्द क्या हैं?

उत्तर– **अंशावतार, बलराम।**

प्रश्न– अद्वैतप्रभु?

उत्तर– **अंशावतार, महाविष्णु।**

प्रश्न– बुद्धदेव क्या स्वयं अवतीर्ण भगवान् हैं?

उत्तर– **हाँ।**

प्रश्न– ईसा मसीह मांस-मछली क्यों खाते थे?

उत्तर– **उस समय के लोगों का मांस-मछली खाना प्रकृतिगत था, इस कारण वे भी उस सम्बन्ध में नासमझ बनकर खाते थे।**

प्रश्न– वे क्या थे?

उत्तर– **स्वयं ईश्वर अवतरित हुए थे।**

प्रश्न– लेकिन सब तो यह विश्वास नहीं करते?

उत्तर– **विश्वास नहीं करने के कारण क्या जो वास्तविक बात है, उसे न कहूँ।** (ऐसा भाव उन्होंने व्यक्त किया)

प्रश्न– आप क्या सबके सामने कह सकते हैं कि स्वयं भगवान् बुद्ध, यीशु,

चैतन्य महाप्रभु का रूप धारण करके अवतीर्ण हुए थे?

उत्तर– **बेधड़क।**

प्रश्न– राम, कृष्ण के रूप आदि जिस प्रकार से पुस्तकों में बतलाए गए है, वह ठीक है या रूपक है?

उत्तर– **नहीं, नहीं सब ठीक-ठीक है।**

प्रश्न– भगवान् जितनी बार अवतीर्ण हुए, उनमें चैतन्य-लीला लगता है श्रेष्ठ है, क्योंकि उस समय दो अंशावतार और स्वयं भगवान् अवतरित हुए थे?

उत्तर– **हाँ, ऐसी लीला कभी नहीं हुई।**

प्रश्न– अधिक हुआ ही क्या, केवल इस क्षुद्र भारत के कुछ ही स्थानों में उन्होंने प्रेम-भक्ति वितरित की?

उत्तर– **नहीं, उस लीला का तो अन्त हुआ नहीं। वे कुछ दिन रहकर केवल झाँककर अन्तर्धान हुए हैं। देखे नहीं, अब ईसाई आदि समस्त सम्प्रदायों में किस प्रकार मृदंग बज रहा है। ऐसा दिन आएगा, जब सारा विश्व मृदंगमय हो जाएगा।**

प्रश्न– कलियुग में भगवान् जितनी बार अवतीर्ण हुए, अन्यान्य युग में तो इतना नहीं हुए?

उत्तर– **कलियुग में अनेक अवतार हुए। और भी अवतरित होंगे।**

प्रश्न– वर्तमान समय क्या कलियुग है?

उत्तर– **हाँ।**

प्रश्न– कलियुग के अवतार का क्या कोई वर्ण निश्चित है?

उत्तर– **नहीं, वैसा कुछ नहीं है।**

प्रश्न– कलियुग तो धन्य हो गया?

उत्तर– **हाँ, हाँ।**

ठाकुर ने कहा– **अवतार तीन प्रकार के हैं– पूर्णावतार (अवतीर्ण), अंशावतार और शक्त्यावतार।**

प्रश्न– जिनमें ईश्वरीय शक्ति का प्रकाश होता है, वे क्या शक्त्यावतार हैं?

उत्तर– **हाँ।**

प्रश्न– हम लोगों के हृदय में ईश्वर की शक्ति की अनुभूति होती है, तो क्या हम लोग भी शक्त्यावतार हो गए?

उत्तर– हाँ, (उपहास करते हुए कहा) **अवतार ही तो हो।**

प्रश्न— सौभाग्यवश किसी साधु के अन्तःकरण में भगवान् प्रकाशित हो गए, तब उन्हें क्या अंशावतार कहा जाएगा?

उत्तर— **हाँ, वह हो सकता है।**

प्रश्न— वे श्रेष्ठ हैं या निताई व अद्वैत श्रेष्ठ हैं?

उत्तर— **निताई-अद्वैत भगवान् के अंग हैं। ये पहले से ही उनमें हैं।**

ठाकुर ने कहा— **नानक अंशावतार हैं।**

प्रश्न— मोहम्मद क्या थे?

उत्तर— **वे एक महापुरुष थे।**

प्रश्न— वे क्या खुदा के दोस्त थे?

उत्तर— **हाँ, थे; उससे क्या होता है।**

प्रश्न— काली, दुर्गा क्या रूपक हैं या वैसा रूप आदि है?

उत्तर— **नहीं, नहीं। वे ठीक-ठीक हैं।**

प्रश्न— वे लोग क्या हैं?

उत्तर— **वे लोग वही हैं।**

प्रश्न— वह कैसे?

उत्तर— **ईश्वर के अनन्त भाव हैं।**

प्रश्न— (अभय बाबू द्वारा) आपने कहा था, हजारों कृष्ण दिखलाई पड़े थे, वह क्या सत्य है?

उत्तर— **हाँ, हाँ उसे सत्य समझना।**

प्रश्न— कई लोग कहते हैं, अन्य साधु-महात्माओं की सेवा करने की अथवा उनका संग करने की आवश्यकता क्या है? गुरु की भक्ति करने से ही सब हो गया, यह कैसे?

उत्तर— **जो अन्यान्य साधु-महात्माओं की भक्ति करना नहीं जानते, वे गुरु की भी भक्ति करना नहीं जानते।**

प्रश्न— आप तो जिसका जैसा विश्वास है, उसको वैसा ही कहा करते हैं?

उत्तर— **नहीं, वैसा नहीं है; ज्वर के रोग में कुनैन सेवनीय है, लेकिन पेट के रोग में वह विषवत् है।**

प्रश्न— जो बातें यथार्थ हैं, वही कहते हैं?

उत्तर— **हाँ।**

प्रश्न– गोसाँईजी! प्रेम-भक्ति कैसे प्राप्त होगी?

उत्तर– **प्रेम-भक्ति सहज नहीं है। कोई किसी को यह प्रदान नहीं कर सकता। किसी-किसी को ही यह सौभाग्यवश प्राप्त हुआ करती है। अभी पढ़ाई करो, विवाह करो, पैसे कमाओ, उसके बाद सौभाग्य होने से तुम्हें प्रेम-भक्ति प्राप्त होगी।**

फिर कहा– **पितृ-पूजा, पितृ-आज्ञा का पालन करने से ही तुम्हारा सब हो जाएगा।**

प्रश्न– प्रेम-भक्ति कोई किसी को दे नहीं सकता?

उत्तर– **नहीं।**

प्रश्न– नित्यानन्द प्रभु ने कभी प्रेम-भक्ति वितरण की थी?

उत्तर– **हाँ, वे समर्थ थे।**

प्रश्न– वे अभी कहाँ हैं?

उत्तर– **सर्वत्र हैं।**

प्रश्न– अद्वैतप्रभु?

उत्तर– **सर्वत्र हैं।**

प्रश्न– महाप्रभु?

उत्तर– **सर्वमय हैं।**

प्रश्न– शंकराचार्य क्या मुक्त पुरुष थे?

उत्तर– **हाँ, शिव के अंशावतार थे।**

प्रश्न– वे भगवान् में विलीन हो गए?

उत्तर– **नहीं।**

प्रश्न– भगवान् जब अवतीर्ण होते हैं, तब लगता है कि मानो कितना कष्ट-क्लेश भोग रहे हैं; फिर मनुष्य की भाँति आचरण देखा जाता है, यह कैसे?

उत्तर– **मनुष्य की प्रकृति के अनुसार न चलने से मनुष्य पकड़ में कैसे आएँगे?**

प्रश्न– निताई व अद्वैत दोनों में कौन श्रेष्ठ हैं?

उत्तर– **कोई छोटा-बड़ा नहीं है, दोनों समान हैं।**

प्रश्न– शंकराचार्य को तो पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा?

उत्तर– **कौन जानता है, भगवान् का आदेश होने पर हो सकता है।**

प्रश्न– गोसाँईजी! मैं एक वर चाहता हूँ?

उत्तर– **क्या वर चाहिए?**

प्रश्न– आपके ऊपर विश्वास-भक्ति जिससे सर्वदा बनी रहे और वास्तव में आप जो हैं, वह समझ पाऊँ।

उत्तर– **हाँ; तथास्तु।**

प्रश्न– विश्वास-भक्ति टलेगी तो नहीं?

उत्तर– **नहीं।**

प्रश्न– मछली खाऊँ या नहीं?

उत्तर– **अपराध बोध होने से मत खाना।**

प्रश्न– मछली खाने के विषय में मुझे क्या करना चाहिए?

उत्तर– **तुम्हारी जैसी इच्छा।**

प्रश्न– मेरी तो खाने की इच्छा नहीं है, परन्तु गुरुजन असन्तुष्ट होंगे, इसलिए वह छोड़ नहीं पा रहा हूँ।

उत्तर– **उन लोगों के सामने बड़ी नम्रता के साथ प्रार्थना करना, पैर पकड़कर कहना, जिससे मछली त्याग करने की अनुमति दे।**

प्रश्न– आप हमारे गाँव जाएँगे नहीं?

उत्तर– **भगवान् ले जाएँगे तो जाऊँगा।**

ठाकुर ने कहा– **"भजन गाओ।"** –गान होने लगा।

ठाकुर के **'हरि बोल! हरि बोल!'** कहने पर सभी 'हरि बोल' कहने लगे। ठाकुर नृत्य करने लगे। 'प्रभु! तुम पर मेरी श्रद्धा-भक्ति हो। प्रभु! अधम को क्या अपने चरणों में स्थान दोगे? इस जघन्य को अपने भक्तवृन्द का दास बना दो और अपने प्रेम का पात्र बना लो। जय प्रभु! परम दयालु अवतार।'

जय जय श्रीगुरु प्रेम कल्पतरु,
अद्भुत जिनका कृपा विधान।
तिमिरोन्मुख अन्तर को ज्योतित कर दो
चिद्‌विधु कृपा निधान।

ठाकुर ने कहा– **"नाम-जप करते रहो। नाम-जप करते-करते कितना कुछ देखोगे, सुनोगे; उस पर ध्यान न देकर नाम-जप ही करते रहना।"**

प्रश्न– गोसाँईजी, क्या मेरा अहंकार नष्ट करने के लिए ही पहले आपने दीक्षा न मिलने की बात कही थी?

उत्तर– **हाँ।**

ठाकुर ने कहा– **'ॐ हरि' भावावेश में अचेत होने पर यह नाम सुनाना चाहिए।**

दादीमाँ का उलंग अवस्था में नृत्य: गोसाँईजी की प्रसन्नता

पूज्य गुरुभाई श्री अभयनारायण राय जी के छोटे भाई श्री हरिनारायण बाबू छुट्टी के समय गेण्डारिया आश्रम में आए। उन्होंने कोलकाता में अनेक लोगों से ठाकुर के असाधारण गुण और अलौकिक अवस्था की बातें सुनी थी। उससे उन्हें ठाकुर को थोड़ा परखकर देखने का कौतूहल हुआ। वे आश्रम पहुँचकर आम के पेड़ के नीचे ठाकुर के पास आकर बैठ गए। धीरे-धीरे शहर के प्रतिष्ठित उच्च पदस्थ अनेक लोगों का समागम होने से आम के पेड़ के नीचे का स्थान परिपूर्ण हो गया। ठाकुर कभी अस्फुट स्वर में, तो कभी लिखकर उन लोगों के साथ धर्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चा करने लगे। ठाकुर के पास वहाँ पर अनेक लोगों को एक साथ देखकर आज अचानक क्या सोचकर पगली दादीजी अत्यन्त हर्षित हो उठीं। वे सीधे दौड़कर ठाकुर के पास आ गईं एवं पहने वस्त्र को सिर पर बाँधकर सम्पूर्ण नग्नावस्था में गाना गाते-गाते नृत्य करने लगीं। यह देखकर ठाकुर हर्षोल्लास से अश्रुपूरित होकर बड़े आनन्द के साथ हँसते-हँसते उनके नृत्य के प्रत्येक ताल में चुटकी बजाकर **'आहा, आहा'** कहने लगे। दादीजी जब तक नृत्य करती रहीं, उतने समय तक ठाकुर भक्तिभाव से गद्‌गद होकर उनके नृत्य के ताल-ताल में चुटकी बजा-बजाकर उनके आनन्द में वृद्धि करते रहे। दादीजी इस प्रकार कुछ क्षण नृत्य करके आश्रम के दक्षिण में स्थित तालाब के दूसरे छोर पर चली गईं। यह दृश्य देखकर सब लोग चकित हो गए। बाद में हरिनारायण बाबू ने कहा– 'इस एक घटना को देखकर मैंने गोसाँईजी को पहचान लिया। अब कोई संशय नहीं रहा, परखने की प्रवृत्ति भी नहीं रही। मनुष्य क्या कभी ऐसा कर सकता है!'

श्रद्धा और गुरुकरण के विषय में प्रश्न: धर्म का बाधक

श्रद्धा, गुरुकरण और धर्म-जीवन की प्राप्ति में सबसे बड़ी अड़चन क्या है– गुरुभाइयों ने ठाकुर से ये सब बातें पूछी। ठाकुर कभी लिखकर, तो कभी अस्फुट स्वर में उसका उत्तर देने लगे।

ठाकुर– **मुक्त पुरुषों को सहज में पहचान नहीं सकते। उनके भाव, उनकी भाषा दोनों ही अत्यन्त जटिल होते हैं। अश्लील भाषा कहते हैं; व्यवहार भी कई बार ऐसा करते हैं कि साधारण लोग समझ नहीं पाते।**

इसलिए श्रद्धा नहीं होती। शास्त्र में है– जिन लोगों में श्रद्धा का विकास नहीं होता, धर्म के लिए वे लोग विविध गुरुओं का आश्रय ले सकते हैं; जैसे भौंरा एक पुष्प से अन्य पुष्प में जाता है; किन्तु उससे यथार्थ धर्म प्राप्त नहीं होता। समय होने पर श्रद्धा स्वतः विकसित हुआ करती है, तब एक ही स्थान पर मन स्थिर होता है। यह तन्त्र का मत है। उपनिषद् का मत है, जब तक श्रद्धा उत्पन्न न हो, गुरुकरण नहीं करना।

श्रद्धा होने से पैतृक गुरु से दीक्षा ले सकते हैं; पर पैतृक गुरु से दीक्षा लेनी होगी, शास्त्र में ऐसा कुछ नहीं है। कुलगुरु से दीक्षा लेना– ऐसी व्यवस्था है; किन्तु 'कुलगुरु' शब्द का अर्थ पैतृक गुरु नहीं है। कुल-कुण्डलिनी शक्ति जिनकी जागृत हो गई है, वे ही कुलगुरु हैं। शास्त्र में है, शिष्य गुरु को व गुरु शिष्य को एक वर्ष परखकर देख लें। यदि दोनों में शास्त्र के अनुसार लक्षण मिलते हैं, तो फिर दीक्षा होगी। अपात्र से दीक्षा लेने या अपात्र को दीक्षा देने से कोई फल नहीं मिलता। मनु ने मन्त्रदाता गुरु के विषय में कुछ नहीं कहा है; जो वेद पढ़ाते है, उन आचार्य गुरु के बारे में ही कहा है। वेद-उपनिषद् में भी आचार्य गुरु के विषय में है। वेद-उपनिषद् में जो है, वह केवल ब्राह्मणों के लिए है। मन्त्रदाता गुरु के विषय में तन्त्र, सनत्कुमार संहिता, गौतम संहिता और नारद पंचरात्र आदि ग्रन्थ में दिया है।

यदि स्त्री के पास से दीक्षा लेनी पड़ती है, तो फिर उस गुरुवंश के किसी को उपगुरु मानकर उनसे समस्त पूजा-पद्धति सीखकर पुरश्चरण करने से उपकार होता है। यह देश की प्रचलित व्यवस्था है, शास्त्र का कथन नहीं है। आजकल शास्त्र के अनुसार दीक्षा नहीं होती। सद्‌गुरु से दीक्षा लेने में कोई विचार नहीं है। दिन-क्षण कुछ देखना नहीं पड़ता। किसी भी लक्षण द्वारा सद्‌गुरु को पहचान नहीं सकते। अनेक जन्म साधन-भजन करने से उपयुक्त समय पर भगवत्कृपा से सद्‌गुरु को पहचाना जा सकता है। गुरु नहीं मिलने पर भी नियमानुसार चलना चाहिए। शास्त्र के अनुसार चलने से धोखा नहीं खाना पड़ता।

गुरु पर विश्वास होने से ही धर्म की प्राप्ति होती है; किन्तु वह तो सहज में नहीं होता। धर्म-साधना करने से अर्थात् गुरु जैसा कहते हैं, वैसा करने से धीरे-धीरे विश्वास उत्पन्न होता है। जब तक संशय रहेगा, तब तक उसका कार्य चलता ही रहेगा। जिस प्रकार भीतर काम, क्रोध, लोभादि रहने से किसी प्रकार भी उसका लंघन नहीं किया जा सकता, संशय भी ठीक उसी प्रकार है। यह आत्मा की ही एक अवस्था है।

एकमात्र नाम-जप द्वारा आत्मा के समस्त पाप व संशय नष्ट हो जाएँगे। तब विश्वास स्वतः आएगा। प्रत्येक श्वास में नाम जपना ही उपाय है।

जो जिस प्रकार धर्माचरण कर रहे हैं– करें। मैं किसी की भी निन्दा नहीं करूँगा; वरन् यदि कुछ प्रशंसनीय रहे, तो वही कहूँगा। भगवान् कर्त्ता हैं, वे किसका किस प्रकार से उद्धार करेंगे, मुझे उसका क्या पता? यह सोचकर चुप रहना ही अच्छा है। धर्मार्थियों के लिए कभी किसी विषय को लेकर किसी का परिहास करना ठीक नहीं है। परनिन्दा सर्वदा ही वर्जनीय है। प्रत्येक के भीतर कुछ-न-कुछ गुण है। दोष के अंश को त्यागकर गुण के अंश को ग्रहण करना। उससे हृदय शुद्ध होता है। दोष की आलोचना करने से आत्मा मलिन हो जाती है। किसी के दोष की आलोचना करने से धीरे-धीरे वह दोष अपने भीतर आ जाता है। विद्वेषपूर्वक किसी को अन्य के सामने नगण्य करने के लिए कोई भी बात कही जाती है अथवा कोई भी भाव प्रकट किया जाता है, वही परनिन्दा है। विद्वेषपूर्वक सत्य बात कहने से भी परनिन्दा होती है। किसी के उपकार के लिए जो कहा जाता है, वह परनिन्दा नहीं है। जैसे, पिता दोष की बात कहते हैं। किसी का दोष कहना है, तो केवल उसके हित की ओर लक्ष्य रखकर कहना होगा; किसी के मन में ठेस न लगे, इस प्रकार से कहना होगा। धर्म-जीवन प्राप्ति के पक्ष में परनिन्दा जितनी हानि करती है, काम-क्रोधादि कोई भी उतनी हानि नहीं करते।

शराबी के आनन्द में ठाकुर की प्रसन्नता

भागवत पाठ के बाद अपराह्न में लगभग साढ़े 3 बजे एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति शराब पीकर नशे में झूमते-झूमते आश्रम में आया। उसने अस्पष्ट स्वर में कहा– 'साधु का दर्शन करने आया हूँ– साधु कहाँ है?' बारम्बार वह यही कहने लगा। कहीं ऐसा न हो कि हम लोग उसको आश्रम से भगा दें, लगता है कि इसीलिए उसकी बात सुनते ही ठाकुर ने उसको कमरे में लाने के लिए कहा। हम लोग उसको पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर के पास ले आए। ठाकुर को देखकर शराबी में बड़ी स्फूर्ति आ गई। वह सहज रूप से ठाकुर से सामने बैठकर हाथ-मुख हिलाते हुए कितनी ही बातें कहने लगा। ठाकुर की सहानुभूतिसूचक मुस्कुराहट एवं धीरे-धीरे सिर हिलाकर समर्थन देते देखकर शराबी का उत्साह व आनन्द क्रमशः बढ़ने लगा। वह बारम्बार ठाकुर की गोद में गिर जाने लगा एवं हँसते-हँसते ठाकुर के आसन से सटते हुए बैठकर कितना कुछ कहने लगा। ठाकुर उसके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरने लगे। यह सब काण्ड देखकर हम लोग बहुत चिढ़ गए।

हम लोगों के भीतर विरक्ति और क्रोध की ज्वाला भड़क उठी; किन्तु हम क्या करें? ठाकुर उसको लेकर आनन्दित हो रहे हैं, कुछ कहने का उपाय नहीं है। अन्त में शराबी ने हँसते-हँसते ठाकुर की जाँघ और आसन के ऊपर उलटी कर डाला। तब ठाकुर की अनुमति की प्रतीक्षा न करके उसको खींचकर सीधे बाहर ले गया एवं रास्ते में छोड़कर आ गया।

ठाकुर से कहा– शराबी को तो दण्ड ही देना चाहिए। उसको लेकर आप इतने आनन्दित क्यों हुए?

ठाकुर मेरी ओर कुछ क्षण सजल नेत्रों से देखते रहे। फिर अस्फुट स्वर में उन्होंने कहा– **"संसार दग्ध हुआ जा रहा है। सभी का मुख उदास है। किसी के मुख में थोड़ी भी हँसी नहीं, मन में आनन्द नहीं। शराबी को यदि हृदय खोलकर हँसते हुए देखता हूँ, आनन्दित होते हुए देखता हूँ, तो बड़ा आराम मिलता है, प्रसन्नता होती है।"**

एक गुरुभाई ने पूछा– 'शराबी को बढ़ावा देना या किसी नशाखोर को दान देना क्या उचित है?

ठाकुर– **जो लोग नशाखोर हैं, वे पिये बिना कभी नहीं रह सकते, असह्य यन्त्रणा पाते हैं; उन्हें यदि कोई कुछ भी न दें, तो चोरी करेंगे। भगवान् क्या करते हैं? वे शराबी के लिए शराब एवं वेश्या के लिए उपपति जुटा देते हैं।**

भक्ति कैसे होती है: ज्ञान द्वारा क्या भगवान् को पा सकते हैं?

कुछ सज्जनों ने ठाकुर से पूछा– 'भक्ति कैसे होती है? हमें भक्ति क्यों नहीं होती?

ठाकुर– **स्वयं को अभक्त, दीन-हीन, कंगाल समझकर यदि भगवान् के चरणों में पड़े रहें, तो भक्तिदेवी अवश्य कृपा करेंगी। फिर, मैं भक्त हूँ– यह अभिमान जहाँ रहेगा, भक्तिदेवी वहाँ नहीं जाएँगी। जिसके द्वारा भगवान् की उपासना की जाती है, वही भक्ति है। साधकगण इस भक्ति के दो भाग किए हैं– वैधी और अहैतुकी। वैधी भक्ति के चार प्रकार हैं– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। अभक्ति, शुष्कता, पाप, ताप ये जब हृदय को व्याकुल कर डालेंगे, भगवान् का नाम लेने में अविश्वास होगा, तब दीन-हीन कंगाल की भाँति हाथ जोड़कर उनकी ओर ताकते रहना, उनका नाम जपना– यही यथार्थ आर्त उपासना है। शुष्कता और अविश्वास में भी नाम जपने से वह व्यर्थ नहीं होता। कड़वी औषधि का**

विरक्ति के साथ सेवन करने से भी रोग दूर होता है। भगवान् के नाम से पापी का उद्धार हो जाता है, यह वस्तु का गुण है। वस्तु का गुण किसी का विचार नहीं करता। अग्नि में हाथ देने से वह जलेगा ही। अनन्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके भगवान् किस प्रकार नियमानुसार व्यवस्थित रूप से चला रहे हैं, सोचकर आश्चर्य होता है। प्रत्येक पदार्थ को देखने से सभी के तत्त्व अनन्त जैसे लगते हैं। सबके ही नियम हैं, सबकी व्यवस्था है, आवश्यकता भी है। हम थोड़े आँधी-तूफान, ग्रीष्म-वर्षा की अधिकता को देखते ही सृष्टिकर्त्ता को लाँघकर विचार करते हैं। असन्तुष्ट होते हैं। इसके मूल में अविश्वास है; अविश्वास के मूल में स्वार्थ, परनिन्दा, हिंसा-द्वेष है; जितनी दुर्दशा है, इसी से होती है। अतएव धार्मिकों का एक प्रधान लक्षण है— वे कभी परनिन्दा नहीं करते, आत्मप्रशंसा को विषतुल्य समझते हैं। उनके हृदय में हिंसा का स्थान नहीं है। भगवान् के कार्य में अविश्वास होने से तृप्ति नहीं मिलती। मनुष्य के ज्ञान से सृष्ट वस्तुओं का ही विचार किया जा सकता है; भगवत् तत्त्व मानवीय ज्ञान के अधीन नहीं है। ऋषियों ने इसलिए ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया है— पराविद्या और अपराविद्या।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते।।

वाक्य, मन अथवा चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा उस आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल आत्मनिष्ठ गुरु से ही उनको प्राप्त किया जा सकता है; इसके सिवा कहीं से उनको प्राप्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य क्षुद्र कीट है, उसको इतना अभिमान है कि वह सर्वव्यापी ईश्वर को जान लेगा! कभी नहीं! मनुष्य के ज्ञान से ईश्वर को जानना तो दूर की बात, वह अपने शरीर के अतिरिक्त आत्मा को भी नहीं जान सकता।

माताजी के पोथी-पाठ का श्रोता मैं

9 से 12 जनवरी। माताजी आँवला द्वादशी का व्रत करेंगी। उनके आदेशानुसार ठाकुर की अनुमति लेकर घर गया। मँझले भैया व छोटे भैया भी शीघ्र घर आएँगे। इस व्रत का अनुष्ठान साधारण नहीं है। बड़ा आयोजन चल रहा है। बाहर के हमारे अनेक कुटुम्बी बन्धु-बान्धव भी आ गए हैं। घर लोगों से परिपूर्ण है। स्त्रियों की संख्या अधिक है। पौष में मकर संक्रान्ति के दिन से पोथी का पाठ आरम्भ होगा। श्रोता कौन होगा, वह अभी निश्चित नहीं हुआ है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध,

रामायण अथवा महाभारत के विशेष अंश के पाठ की अपेक्षा एक समग्र ग्रन्थ का पाठ करना अच्छा होगा; यह सोचकर मैंने अध्यात्म रामायण पाठ का प्रस्ताव रखा। माँ एवं अन्यान्य सब लोगों ने वही ठीक समझा। श्रोता कौन होगा, उसे लेकर चर्चा होने लगी। ताऊजी अत्यन्त वृद्ध हो गए हैं। वे श्रोता हों, माँ की ऐसी इच्छा थी; लेकिन मैंने उसमें आपत्ति की। श्रोता जो होंगे, वे व्रत करने वाले के प्रतिनिधि के रूप में संयम के साथ पोथी सुनेंगे। श्रवण का उनको कोई फल प्राप्त नहीं होगा; व्रत करने वाले को ही होगा। अतएव माँ का प्रतिनिधि करके उनको श्रवण के फल से वंचित करने की मेरी इच्छा नहीं हुई। सभी की सम्मति से मैं ही श्रोता होऊँगा, यह निश्चय हुआ।

धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि: स्वप्न– भयंकर दुर्दशा

कुछ दिनों से धर्म की आड़ में विपरीत बुद्धि होने से मैं संकट में पड़ गया। मैंने सोचा था– भगवान् गुरुदेव की कृपा से ही समस्त अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं; अतएव सब छोड़कर एकाग्र मन से उनका कृपा-प्रार्थी होकर व्याकुलता के साथ पड़े रहना ही उचित है। जो समस्त कार्यों के नियन्ता हैं, उनके कर्त्तव्य को अस्वीकार करना एवं स्वयं की चेष्टा से कोई अवस्था प्राप्त करूँगा– इस प्रकार के अभिमान से साधन-भजन करना गुरु द्रोहिता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। ऐसा सोचकर कुछ दिनों से मैं ठाकुर के प्रीतिकर आदेश के प्रति उदासीन हो गया एवं साधन-भजन, तपस्या, संयमादि सब त्यागकर क्रमशः अब संकट में पड़ गया। ठाकुर के आदेशानुसार चलकर जो अद्भुत अवस्थाएँ प्राप्त की थी, अब आदेश उल्लंघन करके मैंने उन्हें खो दी। फिर मेरी अवस्था जितनी ही हीन क्यों न हो, ठाकुर की कृपा से प्राप्त एक अवस्था की ओर ताककर अपने को अत्यन्त असाधारण भाग्यशाली समझ लिया था। भजनशील साधननिष्ठ गुरुभाई लोग जिस काम रिपु के उत्पीड़न से तंग होकर हाहाकार कर रहे हैं, उसका अणुमात्र अस्तित्व भी मेरी देह में नहीं है; यहाँ तक कि वह फिर कभी मुझे स्पर्श कर पाएगा, ऐसा लगता नहीं। अतः नाना दुरावस्था के बाद भी साधारण गुरुभाइयों की अपेक्षा मुझको ठाकुर ने श्रेष्ठ बना रखा है– ऐसी धारणा मेरे भीतर सदा बनी हुई थी। ठाकुर ने मुझसे बारम्बार कहा था– **'इन सब अवस्थाओं की बात कहीं भी प्रगट नहीं करना; प्रगट करने से नहीं रहतीं, सब नष्ट हो जाती हैं।'** फिर भी गुरुभाइयों के साथ बातचीत के प्रवाह में पड़ने से ठाकुर के आदेश का बिल्कुल भी ध्यान नहीं आया। फिर कभी-कभी आया भी, तो सोचा कि जो मूल सहित पूर्णतः नष्ट हो गया है, वह फिर कैसे उत्पन्न होगा? फलतः बातों-बातों में बहुतों के समक्ष आत्मगौरव का परिचय भी दिया। गुरुवाक्य की अवहेलना करना

एवं अन्ध अहंकारवशतः उनकी कृपा के दान को स्वउपार्जित सम्पत्ति समझना– इन दोनों भयंकर अपराधों में ठाकुर मुझे बढ़ावा क्यों देंगे? अतएव दयालु ठाकुर अब दया करके आश्चर्यजनक रूप से मेरी यथार्थ दुरावस्था मुझे समझा रहे हैं। इसी बीच स्वप्न देखा, कुछ सुन्दर युवतियाँ मुझे लक्ष्य करके मेरी ओर आ रही हैं एवं मेरे सामने से होकर मुस्कुराती हुई चली जा रही हैं। आश्चर्य की बात यह है, स्वप्न की उस कल्पित छवि की छाया का प्रभाव इतना गहरा है कि उसने मेरे चित्त को बिल्कुल अभिभूत कर डाला, मन से उसे किसी प्रकार भी हटा नहीं पाया। दूसरे दिन फिर इसकी अपेक्षा और भी मनोहर चित्र का दर्शन करके मुग्ध हो गया। क्रमशः अब यही मेरे स्मरण, मनन और आनन्द का विषय हो गया है। घर में रहकर इस प्रकार असहनीय दुर्दशा के फलस्वरूप दिन-रात अनुताप की अग्नि में दग्ध होकर मैंने एकाग्र मन से ठाकुर से प्रार्थना की– ठाकुर! अब मेरी रक्षा कैसे होगी? इस पाप का प्रायश्चित्त क्या है?

स्वप्न में आदेश

11 जनवरी, बुधवार को रात्रि में स्वप्न देखा। अपनी दीक्षा के समय ठाकुर को जिस प्रकार देखा था, वैसी ही पवित्र मूर्ति, तेजपूर्ण कलेवर, दीर्घाकृति, मुण्डित मस्तक गुरुदेव ही मानो सामने खड़े होकर मुस्कुराते हुए मेरी ओर देख रहे हैं। उनको प्रणाम करते ही जाग गया। इसके कुछ समय बाद ही मैं पुनः सो गया। तब सुना, ठाकुर मुझसे कर रहे हैं– **'वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है, मौन रहो।'** प्रातः नींद से उठकर सोचने लगा– यह क्या! यह मैंने क्या सुना? ऐसा उन्होंने क्यों कहा? वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है– बात तो अच्छी है और नई भी; लेकिन इसका अर्थ क्या है? वैषयिक चर्चा, दोष की आलोचना, मिथ्या वाक्य द्वारा जिह्वा दूषित हो सकती है; इसके सिवा वाक्य के और क्या दोष हैं? स्वप्न देखने के बाद अब एक विशेष आश्चर्यजनक परिवर्तन यह देख रहा हूँ– जटाधारी, स्निग्ध, प्रसन्न मूर्ति, स्थूल कलेवर गुरुदेव का अभी जो विराट रूप सर्वदा मेरे स्मृति-पथ में प्रत्यक्षवत् प्रकाशमान था, वह बिल्कुल अदृश्य हो गया है एवं उसके बदले अब स्वप्नदृष्ट वही पहले का रूप सदा आँखों में छाया रहता है। ठाकुर के वर्तमान रूप को किसी भी प्रकार से मैं स्मृति में नहीं ला पा रहा हूँ। स्वप्न में सुने वाक्य का और इस रूपान्तरण का तात्पर्य क्या है, सोचने लगा। सोचा– सद्गुरु और महापुरुषों के वाक्य का तात्पर्य हमारे व्याकरण, शब्दकोश अथवा पार्थिव विद्या-बुद्धि द्वारा समझ में नहीं आ सकता। महापुरुष लोग कृपा करके जिनके प्रति उसका प्रयोग करते हैं, वे जो कुछ समझते हैं, साधारणतः वही उस वाक्य और कार्य का यथार्थ तात्पर्य है; क्योंकि महापुरुषों के प्रयास और कार्य

कभी व्यर्थ या निरर्थक नहीं होते। महापुरुष लोग जिनको जो समझाना चाहते हैं, उनकी कृपा से वे वही समझ पाते हैं। स्वप्न देखने से मुझे बारम्बार लग रहा है कि ठाकुर की इच्छा है– मैं मौन रहूँ एवं पाप के प्रायश्चित्तस्वरूप मुण्डन करवाकर, संयत होकर ठाकुर की तीव्र तपस्यान्वित उस अन्धकार नाशक उज्ज्वल पावन मूर्ति के ध्यान में निरन्तर तल्लीन रहूँ। यह निश्चय करके अगले दिन प्रातः मुण्डन करवाकर स्नान करने के बाद मौन व्रत धारण किया। निर्जन साधन-कुटीर में रहकर बारम्बार एकाग्र मन से ठाकुर की वर्तमान स्नेहपूर्ण स्निग्ध मूर्ति को स्मृति में लाने का बहुत प्रयास करने लगा, लेकिन किसी भी प्रकार से सफल नहीं हुआ। पाँच-छः घण्टे तक लगातार यह प्रयास करते-करते अन्त में बहुत हैरान हो गया। सिर में पीड़ा होने लगी; भीतर की यन्त्रणा से दुःखी होकर समय काटने लगा। बार-बार ठाकुर का वही मुण्डित-मस्तक रूप ही मेरे चित्त में उदित होने लगा। लाचार होकर उन्हीं के ध्यान में मन को निविष्ट किया।

आगन्तुक आत्मीयजनों ने बड़ी आशा की थी कि मेरे साथ बातचीत आदि में वे खूब आनन्द प्राप्त करेंगे। मुझे मौन देखकर वे लोग दुःख प्रकट करने लगे। मेरे भी मन में कष्ट होने लगा; पर क्या करूँ! ठाकुर का अभिप्राय समझकर संकल्प के अनुसार मौन व्रत में अटल रहा। माताजी ने मेरे कार्य में कोई विघ्न नहीं डाला।

व्रत सम्पूर्ण: माँ के ऊपर ठाकुर की कृपा

12 से 29 जनवरी। 12 जनवरी, गुरुवार मकर संक्रान्ति के दिन से माताजी का आँवला द्वादशी का व्रत आरम्भ हुआ। ये 17–18 दिन किस प्रकार से बीत गए, समझ नहीं पाया। अनेक लोगों के समावेश से घर में इतने दिन मानो एक उत्सव की धूमधाम रही। ऊपर से श्रीपंचमी, माघी सप्तमी, भीमाष्टमी इत्यादि पुण्य तिथियों के संयोग से सबके भीतर अविराम आनन्द की धारा बही। मोहल्ले एवं समीप के गाँव से ब्राह्मण व सज्जनगण प्रतिदिन ही अपराह्न के समय पोथी सुनने आते थे। गाँव के सभी स्त्री-पुरुष रामायण पाठ सुनकर बड़े तृप्त हुए। पवित्र सदाचारी ब्राह्मण द्वारा भक्तिभावपूर्वक रामायण की व्याख्या सुनकर जो आनन्द प्राप्त किया, बता नहीं सकता। भगवत् प्रसंग के अनिर्वचनीय माधुर्य में इतने दिन मानो मुग्ध होकर बिताया। आज माताजी का व्रत पूरा होगा। प्रातःकाल से ही सब लोग उत्साह के साथ अपने-अपने कार्य में लग गए।

बाहर घर के आँगन में व्रत की समस्त सामग्रियाँ यथासमय जमा हो गई। पवित्र वेदी में शालग्राम स्थापित करके वृद्ध पुरोहित पूजा करने के लिए बैठ गए। शंख, घण्टा-घड़ियालादि बज उठे। महिलाएँ सामूहिक रूप से बारम्बार मंगल-ध्वनि

करने लगीं। धूप, धूना, गुग्गुल, चन्दन इत्यादि की सुगन्ध से घर परिपूर्ण हो गया। माँ दीन-हीन कंगालिन के जैसे शालग्रान की ओर देखकर मन्त्रोचारण करने लगीं। सब लोग चारों ओर से घेरकर व्रत-पूजा देखने लगे। सात्विक क्रिया के प्रभाव से सभी का चित्त प्रफुल्लित हो उठा। इस समय ऐसा लगा मानो व्रत की अधिष्ठात्री देवी व्रत-स्थल में आविर्भूत होकर माताजी को प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दे रही हैं। अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड के राजराजेश्वर दयालु भगवान् भक्त से कुछ उपहार पाने के लिए लालायित और बड़े उत्सुक हैं– यह स्मरण होते ही मुझे रोना आ गया। मैंने साष्टांग प्रणाम करके एकाग्र मन से प्रार्थना की– 'ठाकुर! दया करके मेरी माँ को अपने चरणों में स्थान दो।' व्रत यथासमय सम्पूर्ण हुआ। माताजी व्रत का फल भगवान् के चिराश्रय अभय श्रीचरणों में समर्पित करके कृथार्थ हो गईं।

मोहल्ले और समीप के पाँच-छः गाँव के ब्राह्मण, कायस्थादि निमन्त्रित लोगों को आदरपूर्वक भोजन कराया गया। संध्या तक अनेक लोग आकर बड़े आनन्द के साथ भोजन में तृप्ति प्राप्त करके मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते-करते चले गए। अपराह्न में पोथी का पाठ आरम्भ हुआ। कुछ समय पहले ही माँ मुझसे कह गई– 'अरे, कल रात में स्वप्न देखो कि तू बात कर रहा है, तेरा मौन भंग हो गया है।' इस बात पर ध्यान न देकर मैं पोथी-पाठ सुनने में तल्लीन हो गया। उसके बाद पाठक महोदय ने श्रीरामचन्द्रजी को लंका से अयोध्या लाकर सिंहासन पर बैठाते ही पोथी समाप्त करने की तैयारी की। मैंने सोचा, ऐसा करना तो अनुचित होगा। अन्त में बाध्य होकर मैंने मौन भंग करके पाठक महोदय को समझाकर कहा– बैकुण्ठेश्वर को मानव-भूमि अयोध्या में लाकर राजा बनाकर रखना भी निर्वासन-दण्ड के अन्तर्गत है। पाठक महोदय मेरी बात समझकर श्रीरामचन्द्रजी को बैकुण्ठ ले गए एवं वहाँ सिंहासन पर बैठाकर आनन्दसूचक जयघोष करते हुए पोथी समाप्त की। मैंने भी श्रवण का फल माताजी की अनुमति से ठाकुर के चरणों में समर्पित करके धन्य हो गया।

रामायण श्रवण से विविध संचारी भाव

इन 17–18 दिनों में रामायण सुनते समय ठाकुर ने मुझ पर किस प्रकार से कृपा की, उसे भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। पाठ आरम्भ होने के पहले ही श्रीश्री गुरुदेव को एकाग्र मन से स्मरण करके उनकी ही अतीत लीला श्रवण के लिए उनका आह्वान करता। ऐसा लगता था कि वे आकर शालग्राम में अधिष्ठित होकर श्रवण-सुख देने वाले अपने निर्मल चरित का वर्णन सुन रहे हैं। ठाकुर के सुस्निग्ध कोमल राम रूपी सुन्दर श्यामल कलेवर का ध्यान करके मेरा

चित्त उनके चरणों में विशेष रूप से संलग्न हो जाता था। इस समय दयालु ठाकुर मेरे भीतर विविध भावों का संचार कर देते। कभी ऋषियों का, कभी भक्तराज हनुमान का, कभी लक्ष्मण का, कभी कौशल्या का और किसी समय तो सीता का भाव संचारित करके मुझको उसमें बिल्कुल मुग्ध एवं अभिभूत कर डालते थे। बाह्य-स्मृति न रहने से तब उसी भाव में मग्न रहता था। पाठ आरम्भ होने से लेकर अन्त तक तेल की धार के समान लगातार आँसू बहते थे।

फरवरी–मार्च, सन् 1893 ई॰

भाभियों का गेण्डारिया जाना और दीक्षा: ठाकुर का उपदेश

2 फरवरी, गुरुवार। प्रातः उठते ही ढाका जाने की व्यवस्था करने लगा। मँझली भाभी गर्भवती हैं। नौ महीने हो चुके हैं। वे मेरे साथ अपने माता-पिता के पास ढाका जाएँगी। मैंने सोचा, इनके साथ छोटी भाभी और रोहिणी की पत्नी को भी ढाका ले जा सकता, तो बड़ा अच्छा होता। ठाकुर से इन लोगों को दीक्षा दिलवा सकूँ, तो निश्चिन्त हो जाऊँगा। सभी अभिभावक ठाकुर से दीक्षा दिलवाने के विरोधी हैं। पता चल जाने पर वे लोग ढाका जाने की कभी अनुमति नहीं देंगे। कारण पूछने पर यह बात छिपा नहीं पाऊँगा। अतः इस अवस्था में उन लोगों को छिपाकर या बलपूर्वक ले जाए बिना उपाय नहीं। यह सोचकर मैंने पालकी वालों से पालकी लाने को कहा। चाचाओं को पता चलने पर उन्होंने पालकी वालों को डाँटकर भगा दिया। इसे लेकर मोहल्ले के गुरुजन और अभिभावकों के साथ मेरा भयंकर झगड़ा भी हुआ। अन्त में भोजन के बाद सभी जब विश्राम करने गए, पालकी व कहारों को लाकर भाभियों को लेकर मैं संध्या के समय सीधे सेराजदीघा जः पहुँचा एवं वहाँ से किराये में एक बड़ी नौका करके छोटे भैया के साथ भाभियों को लेकर ढाका के लिए निकल पड़ा। रात बड़े आराम से सोते हुए बिताकर प्रातःकाल ढाका कोलघाट पहुँचे।

3 फरवरी, शुक्रवार। मँझली भाभी के शरीर में पीड़ा होने लगी। वेदना से वे बेचैन हो गईं। सोचा, अब विपत्ति आ गई! इस समय ऐसी अवस्था में कहाँ जाएँ? भैया के श्वसुरजी के घर जाने से फिर गेण्डारिया जाना नहीं हो पाएगा। फिर इधर भाभी की भी अवस्था देखकर लगता है कि अब प्रसव में अधिक समय नहीं है। क्या करें? कहाँ जाएँ? बड़े झमेले में पड़ गया; व्याकुल होकर ठाकुर को स्मरण करने लगा।

माताजी के व्रत समापन की प्रणामी 10 रुपये और दही-खीर आदि छोटे

भैया के द्वारा ठाकुर के पास भिजवा दिया। दीक्षा दिलवाने के अभिप्राय से ऐसी दशा में भाभियों को लेकर नौका में हूँ, ठाकुर को यह बतलाने के लिए कह दिया। छोटे भैया गेण्डारिया चले गए। मैं भाभियों को लेकर नौका में चुपचाप बैठा रहा। दीक्षा प्रार्थियों को प्रायः ठाकुर के समक्ष पहले दीक्षा हेतु प्रार्थना करनी होती है, उसके बाद दया करके ठाकुर सम्मति दें, तब किसी निर्दिष्ट दिन में उनको उपस्थित होकर दीक्षा ग्रहण करना होता है, यही साधारण नियम है; किन्तु मैं ठाकुर को इस सम्बन्ध में कुछ बतलाए बिना, उनकी इच्छा या आदेश की प्रतीक्षा किए बिना ही इन लोगों को दीक्षा दिलाने ले आया। ठाकुर क्या कहेंगे, पता नहीं। बड़ी चिन्ता हो गई और डर भी लग रहा है। एकाग्र मन से ठाकुर को अपनी आन्तरिक इच्छा निवेदित की। जो भी हो, इधर छोटे भैया ने ठाकुर के पास पहुँचकर मेरी सारी बातें बतलाई तो ठाकुर ने मानो थोड़ा व्यग्र होकर कहा– **'जाओ, शीघ्र ही उन लोगों को आश्रम में ले आओ, विलम्ब न करो। अभी दीक्षा होगी।'** छोटे भैया ने आकर जैसे ही मुझे यह खबर दी, मैं सबको लेकर आश्रम पहुँच गया। ठाकुर तब चाय पी रहे थे। मुझे देखकर कहा– **"क्या? तुम शीघ्र सन्तान प्रसव करने वाली बहू को भी दीक्षा के लिए ले आए? इस अवस्था में दीक्षा नहीं होती, तुम क्या जानते नहीं?"**

मैंने कहा– मैं जानता हूँ। आप दया करके गर्भस्थ सन्तान पर भी शक्ति-संचार करेंगे, इसी आकांक्षा से उन्हें ऐसी अवस्था में भी ले आया।

ठाकुर ने थोड़ा हँसते हुए कहा– **"बहुओं को तैयार रहने के लिए कहो, मैं चाय पी लूँ। अभी दीक्षा होगी।"**

भाभियाँ तैयार हो गईं। ठाकुर चाय पीकर अपनी कुटिया में जाकर बैठ गए। भाभियों को भी वहीं ठाकुर के सामने बैठा दिया। स्थानाभाव के कारण अन्य किसी को उस कमरे में स्थान नहीं मिला। ठाकुर ने मुझे अपने बायीं ओर बैठने को कहा। ठाकुर कुछ क्षण **'गुरु ॐ, गुरु ॐ'** कहकर चुप हो गए। फिर उपदेश देने लगे– (उपदेश का संक्षिप्त सारांश)

1. सत्य बातें कहना, मिथ्या नहीं कहना।

2. सब जीवों पर दया करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता सभी पर दया करना।

3. माता-पिता साक्षात् देवता हैं। उनकी सेवा-पूजा राम, कृष्ण के जैसे करनी चाहिए। तब भगवान् को सहज में प्राप्त किया जा सकता है। वैसा न कर पाने से भी माता-पिता की खूब श्रद्धा-भक्ति करनी चाहिए, सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करके चलना चाहिए।

4. अतिथि-सेवा करना। उपयुक्त आहारादि देकर अतिथि-सेवा न कर पाने से कम-से-कम आसन पर बैठाकर एक ग्लास पानी देकर, दो-एक मधुर बातें कहकर विदा करना चाहिए। अतिथि असन्तुष्ट होकर घर से न जाए, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

5. परमेश्वर पुरुष और स्त्री– इन दो भागों नें विभक्त होकर, पुरुष के भीतर नारायण एवं स्त्री के भीतर लक्ष्मी के रूप में विद्यमान हैं। यह भाव अथवा कल्पना की बात नहीं है, सत्य बात है। एक-दूसरे को उसी भाव से देखकर परस्पर श्रद्धा-भक्ति करनी चाहिए। इस प्रकार चलने से वह परिवार ऋषि-परिवार हो जाता है। उस परिवार में कभी अशान्ति प्रवेश नहीं करती।

6. परनिन्दा नहीं करना। विद्वेषपूर्वक किसी की मर्यादा नष्ट करने के उद्देश्य से किसी प्रकार की चेष्टा ही निन्दा है। वाक्य द्वारा, कार्य द्वारा, हँसी-मजाक द्वारा, यहाँ तक कि दीर्घ निःश्वास छोड़ने से भी निन्दा होती है। यह निन्दा नर-हत्या की अपेक्षा अधिक भयंकर पाप है।

7. मांस एवं उच्छिष्ट खाना निषेध है। मछली खाना मना नहीं है, लेकिन मछली खाने से भी हानि होती है। साधना-पथ में उन्नति होने के साथ-साथ मछली खाना छोड़ना पड़ता है। जब तक मछली खाने की इच्छा है, बलपूर्वक छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। माता-पिता, सास-श्वसुर, पति, बड़े भाई– इनके जूठे भोजन को जूठा नहीं कहते; वह प्रसाद है। इसके अतिरिक्त सबके उच्छिष्ट का विषवत् त्याग करना।

8. गुरु जो मन्त्र देंगे, उसे कहीं भी प्रकट नहीं करना। प्रकट करने से उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। मिट्टी के नीचे जिस प्रकार बीज रहता है, इष्ट-मन्त्र को भी उसी प्रकार हृदय में गुप्त रखना चाहिए। दूसरों को पता न चले।

9. देह-मन की शुद्धि के लिए प्रातः-संध्या कम-से-कम एक बार प्राणायाम करना। इसे भी गुप्त रूप से करना। कोई जान न पाए।

बड़े भैया और छोटे भैया जो मन्त्र पाए हैं, भाभियों को भी वही मिला है। दिन में लगभग 9 बजे दीक्षा का कार्य पूरा हो गया। नँझली भाभी का बड़ा अच्छा प्राणायाम हुआ, दीक्षा के बाद उनके शरीर की पीड़ा बहुत बढ़ गई। वे पिता के घर जाने के लिए व्यग्र हो गई; पर नानीजी ने भोजन किए बिना जाने नहीं दिया। दिन में लगभग 3 बजे वे सब लक्ष्मीबाजार में भैया के श्वसुरजी के घर चले गए। मैं भी निश्चिन्त हो गया।

शालग्राम और धातु की बनी मूर्ति: महापुरुषों का विचरणकाल उनकी कृपा प्राप्त करने का उपाय

4 फरवरी, शनिवार। ठाकुर ने मुझको शालग्राम की पूजा करने के लिए जब से कहा है, तब से दिनो-दिन शालग्राम के लिए मेरी उत्कण्ठा बढ़ती जा रही है; किन्तु मैंने तो पहले कभी इसकी कल्पना नहीं की! अयोध्या से मेरे लिए शालग्राम के बदले लक्ष्मीनारायण की मूर्ति आ गई। उसे देखते ही मेरा माथा गरम हो गया। मैंने उसे ठाकुर को दिखाकर कहा– भैया के मित्र ने समझ नहीं पाने के कारण शालग्राम की जगह यह लक्ष्मीनारायण की मूर्ति भेज दी। ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारी यदि इच्छा हो, तो उसी की पूजा कर सकते हो।"**

मैंने स्पष्ट कहा– मूर्ति-पूजा करने की मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है।

ठाकुर– **ठीक है, पीतल या किसी अन्य धातु की बनी मूर्ति की पूजा मत करना। लक्षणयुक्त स्वाभाविक शालग्राम की पूजा करना। इधर-ऊधर घूमकर ढूँढ़ने का प्रयास करना पड़ता है, तभी तो मिलेगा।**

मैं– भगवान् की पूजा जिस शिला में करूँगा, वह सुन्दर न होने से तृप्ति नहीं मिलेगी। अतः लक्षणयुक्त होने से भी कुरूप शिला की पूजा नहीं कर पाऊँगा।

ठाकुर– **नहीं, नहीं; तुम्हें लक्षणयुक्त सुन्दर आकृति का शालग्राम ही मिलेगा। उसी की पूजा करना।**

एक गुरुभाई ने ठाकुर से पूछा– 'राधाकृष्ण का विग्रह रखने की मेरी इच्छा होती है, क्या मैं रख सकता हूँ?

ठाकुर– **हाँ, बिल्कुल रख सकते हो; किन्तु बिना पूजा किए ये सब रखना ठीक नहीं है। सेवा-पूजा, भोग आदि की सुव्यवस्था करके ये सब विग्रह रखने चाहिए। वैसा न करने से नहीं रखते।**

प्रश्न– किस-किस समय में साधना करने से महापुरुषों की कृपा प्राप्त कर सकते हैं और समझ सकते हैं?

ठाकुर– **रात्रि में 1 बजे के बाद महापुरुष लोग बाहर निकलते हैं। 1 से 4 बजे तक वे लोग विचरण करते हैं। वही समय साधना के लिए श्रेष्ठ समय है। एक निर्दिष्ट समय में कुछ क्षण के लिए एक स्थान पर बैठकर कुछ दिन नाम-जप करने से महापुरुषों की कृपा समझ सकते हैं। कुछ-एक बार प्राणायाम करके स्थिर बैठकर नाम-जप करना चाहिए। मच्छरदानी के भीतर बिछौने में बैठकर नाम-जप करने से भी चलेगा– कोई हानि नहीं होती। नाम जपते समय महापुरुष लोग सामने आकर**

खड़े होते हैं, सहायता करते हैं। तब उनके शरीर की सुगन्ध मिलती है। धूप, धूना, गुग्गुल, चन्दन आदि की सुगन्ध, कभी पवित्र होम के धुएँ की गन्ध, तो कभी गाँजे, लोबान और सुगन्धित फूलों की गन्ध मिलती है। कभी उनके दर्शन से, तो कभी उनकी वाणी सुनकर भी उन लोगों का पता चलता है। नाना प्रकार से महापुरुष लोग कृपा करते हैं और अपना परिचय देते हैं।

दीक्षा ग्रहण के पूर्व कर्त्तव्य

कोई व्यक्ति दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो गए, ठाकुर से कहने पर उन्होंने कहा– **'यदि दीक्षा लेने के लिए चित्त वास्तव में व्याकुल होने लगता है, तो दीक्षा लेना उचित है। लोगों से सुनकर इच्छा हो, वह ठीक नहीं है। सामान्य वस्तु भी क्रय करना होता है, तो कितना देख-सुनकर लेते हैं। जो दीक्षा लेंगे, दीक्षा शास्त्र-सदाचार सम्मत है या नहीं, पहले जान लें, फिर दीक्षा लें। जिनसे दीक्षा लेंगे, कुछ दिन उनका संग करना चाहिए। दीक्षा लेने के पहले गुरु के ऊपर जितना भी सन्देह रहे, हानि नहीं है; पर दीक्षा लेने के बाद एक भी घटना से गुरु के ऊपर सन्देह होता है, तो बड़ी हानि होती है। इसलिए बहुत जाँच-पड़ताल करके जान-सुनकर फिर दीक्षा लेनी चाहिए।**

ठाकुर का आदेश समझना कठिन: इस विषय में नाना प्रश्नोत्तर

माताजी के व्रत के उपलक्ष्य में 17 दिन जो मौन था, उसका बारम्बार स्मरण होने लगा। उस समय चित्त कैसा अन्तर्मुखी था, सर्वदा नाम में विभोर रहता था। हृदय में ठाकुर की स्मृति निरन्तर जागरूक थी। मौन रहने से पुनः वही अवस्था प्राप्त हो जाएगी सोचकर मौन रहने की इच्छा हुई। इसके पहले कुछ दिनों से श्रीधर मौन हैं। मैंने उनसे पूछा– भाई, मौन किसलिए हुए हो? ठाकुर ने तुमको आदेश दिया है? श्रीधर ने लिखकर उत्तर दिया– 'भाई, वाक्य अनिष्ट का मूल है। वाक्य द्वारा बहुतों के मन में बड़ा आघात देकर बहुत पाप संचय कर लिया है। बातें नहीं करना ही उसका प्रायश्चित्त है, यह सोचकर मैं स्वयं ही मौन हुआ हूँ– यह गोसाँईजी का आदेश नहीं है।' श्रीधर की बात मेरे हृदय को स्पर्श कर गई। मैं भी मौनी हो गया। ठाकुर मुझसे कोई बात अस्फुट स्वर में पूछने लगे, तो मैं भी उसका उत्तर उन्हीं की भाँति इंगित करके अथवा अस्फुट स्वर में देने लगा। दो-चार बार ऐसा करने से ठाकुर ने चिढ़कर मुझसे पूछा– **"ये सब क्या है?**

ऐसा क्यों करते हो? तुम क्या मौन हो?" मैंने सिर हिलाकर बतलाया– हाँ। ठाकुर ने कहा– **"मौन किसलिए हुए?"** मैंने कहा– आपने मुझसे कहा था, **'वाक्य द्वारा जिह्वा उच्छिष्ट होती है। मौनी हो जाओ।'** ठाकुर ने कहा– **"मैंने कहा था! कब?"** मैंने कहा– घर में जब था, तब स्वप्न में एक दिन आपने मुझसे वैसा कहा था।' तभी वहाँ 17 दिन मौन था। उसके बाद मौन भंग हो गया। इसलिए अब पुनः मौन धारण कर लिया।

ठाकुर– **स्वप्न में मैंने कहा था? मेरा यही चेहरा तुमने देखा था?**

मैं– आपका यह चेहरा नहीं देखा, किन्तु स्पष्ट रूप से आपकी वाणी सुनी। मेरी भी निश्चित धारणा हो गई कि आपने ही कहा है।

ठाकुर– **जिन्होंने कहा, उनका कैसा रूप देखा? मुझे देखा था?**

मैंने कहा– पवित्र, शान्त, तेजपूर्ण कलेवर के एक ब्राह्मण को देखा था। देखते ही मेरी निश्चित धारणा हो गई कि आप ही हैं।

ठाकुर ने कहा– **"मैं नहीं, वह तुम्हारी ही प्रकृति है; तुम्हारे भीतर के रूप ने तुम्हारे सामने प्रकट होकर वैसा कहा था।"** ठाकुर की बात सुनकर मैं तो चकित रह गया। सोचा– हाय! हाय! मेरी ही प्रकृति ने ठाकुर का भाव लेकर मेरे सामने प्रकट होकर मुझको विपथगामी कर डाला! तो फिर अब उपाय क्या है? मैं ही यदि अपने को इष्ट कहकर अनिष्ट के पथ पर चलाता हूँ, तो फिर मेरी रक्षा कौन करेगा? कुछ क्षण बाद ठाकुर से पूछा– ऐसा होने से तो बड़ी कठिनाई है? स्वप्न में आपका आदेश वास्तव में आपका ही है या नहीं, किस प्रकार समझूँगा?

ठाकुर– **'स्वप्न में मेरे वर्तमान रूप को देखते हो, तो समझना कि उसका आदेश मेरा ही आदेश है। फिर भी गुरु जब तक जीवित हैं, उनसे पूछे बिना उस आदेश के अनुसार नहीं चलना चाहिए। कभी-कभी गड़बड़ हो जाता है।'** ठाकुर की बातों से समझ गया– उनका रूप देखे बिना केवल कण्ठस्वर में समानता पाकर उसे ठाकुर की वाणी समझना ठीक नहीं है। आशानन्द के ही एक शिष्य पर उस दिन एक महापुरुष ने अनुशासन किया था, उनका कण्ठ स्वर बिल्कुल ठाकुर के स्वर के समान था। उन सब बातों को सुनकर तब कोई कल्पना भी नहीं कर सका कि वह ठाकुर का स्वर नहीं है। अतएव ठाकुर को देखे बिना केवल उनकी वाणी सुनकर उसकी वास्तविकता के सम्बन्ध में निःशंक नहीं हुआ जा सकता।

ठाकुर ने कहा– **"वीर्य धारण न होने तक मौनी होना ठीक नहीं है। ऐसी अवस्था में मौनी होने से दिमाग खराब हो जाता है। बहुतों को पथरी का रोग हो जाता है। मौनी मत होना, वाक्य संयम करना।**

प्रतिष्ठा के लिए या देखादेखी करने से कई लोग मर भी जाते हैं।" ठाकुर की बात सुनकर बड़ा लज्जित हुआ।

नृत्यगोपाल गोस्वामी द्वारा ठाकुर को परखना

7 से 11 फरवरी। श्री नृत्यगोपाल गोस्वामी की एक बात सुनकर अच्छा लगा। प्रातःकाल प्रायः 7 बजे ठाकुर चाय पीते हैं। उस समय नृत्यगोपाल (नेपाल गोसाँई) गेण्डारिया आकर आम के पेड़ के नीचे ध्यानस्थ होकर बैठ गए। बाद में उन्होंने बतलाया– "मैंने वहाँ बड़ी एकाग्रता के साथ गोसाँईजी से प्रार्थना की– 'गोसाँईजी! तुम यदि रामकृष्ण परमहंसदेव से अभिन्न हो, तो प्रत्यक्ष रूप से मुझ पर थोड़ी कृपा करके परिचय दो।' गोसाँईजी चाय पीने के बाद कभी आसन से उठते नहीं; लेकिन उस समय वे चाय पीने के बाद ही धीरे-धीरे आम के पेड़ के नीचे आकर अपना पैर मेरे माथे पर रखे एवं बिना कुछ कहे ही अपने आसन पर चले गए। इस घटना से मैं उनके प्रति और आकृष्ट हो गया। फिर मैंने उनसे दीक्षा ले ली।" नेपाल गोसाँई पर रामकृष्ण परमहंसदेव की बड़ी कृपा है।

ठाकुर की चिट्ठी– दूर रहना ही अच्छा है

कोलकाता साधारण ब्राह्म-समाज के आचार्य श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय को लेकर बड़ी हलचल मची है। उनके व्यक्तिगत धर्म-मत और अनुष्ठान को लेकर नाना प्रकार की आलोचना हो रही है। कई ब्राह्मगण उनके दृष्टान्त को दूषणीय मानते हैं। अतएव ठाकुर की भाँति उनको भी आचार्य के पद में रखना नहीं चाहते। ब्राह्म-समाज ने नगेन्द्र बाबू से कुछ प्रश्न किए एवं शीघ्र ही किसी निर्दिष्ट दिन के भीतर उत्तर देने हेतु उनसे सविनय प्रार्थना की है। नगेन्द्र बाबू ने उस विषय में एक पत्र लिखकर ठाकुर से परामर्श चाहा। दैवयोग से वह पत्र ठाकुर के पास पहुँचने में विलम्ब हो गया। पत्र पढ़कर देखा गया कि उसमें जो प्रश्न पूछे गए हैं, कुछ दिन पहले ही ठाकुर ने अपने मन से नगेन्द्र बाबू को एक पत्र लिखा था, उसमें प्रत्येक के ही उत्तर दिए गए हैं। इस पत्र को पाकर ठाकुर यदि नगेन्द्र बाबू को जवाब देते, तो निर्दिष्ट समय में वह कभी नहीं पहुँचता। हम लोग यह घटना देखकर बहुत चकित हो गए।

ब्राह्म-समाज के सम्पादक ने अब ठाकुर को जनरल कमेटी का सदस्य होने के लिए अनुरोध करते हुए एक पत्र लिखा है। ठाकुर ने उस पद को ग्रहण करने में असहमति व्यक्त करते हुए उनके पत्र का उत्तर दिया; यथा– **'वे किसी**

साम्प्रदायिक धर्म के भीतर नहीं हैं। जो सत्य है, उसे जानना होगा। अतएव याग-यज्ञ, तिलक-माला, जटा-जूट, भस्म, व्रत किसी की अवज्ञा नहीं की जा सकती। इसलिए वे सभी दल में सम्मिलत हो सकते हैं। साधारण सत्यवस्तु को जानने के लिए कितनी शिक्षा की आवश्कता है! वे मौन हैं। तीर्थ-भ्रमण करते हैं। सर्वभूत में भगवान् का अधिष्ठान देखकर प्रतिमा को प्रणाम करते हैं। भगवान् विशेष प्रयोजन से अवतीर्ण होते हैं, इस पर विश्वास किया करते हैं। इन सब कारणों से ब्राह्म-समाज ने उनका त्याग किया है। इसलिए वे कहते हैं, दूर रहना ही अच्छा है।'

भावुकता में ठाकुर की डाँट

12 से 25 फरवरी। एक गुरुभाई ने ठाकुर से पूछा— 'भीतर की कुचिन्ता-कुकल्पना, संशय-सन्देह, ये किस प्रकार दूर होंगे?

ठाकुर— **जो मन्त्र मिला है, उसी से सब दूर हो जाएँगे। श्वास-प्रश्वास में उस मन्त्र का जप करो।**

गुरुभाई— वह क्या आपकी कृपा के बिना होगा? मेरी क्षमता ही क्या है?

ठाकुर— **वह सब भावुकता छोड़ दो। उससे कोई लाभ नहीं होता। अधिक भक्ति दिखाने से स्वयं की हानि होती है। कृपा की बात तो दूर, अभी कृपा को समझने की भी शक्ति नहीं है। जब तक मान-अपमान, सुख-दुःख, काम-क्रोध ये सब हैं, तब तक स्वयं को प्रयास करना होगा। यही प्रयास साधना है— नाम-जप है। मुझसे नहीं होता; यह कहना केवल भावुकता है। जब तक मनुष्य की अपनी इच्छा है, चेष्टा और क्षमता है, तब तक कृपा का प्रश्न ही नहीं उठता। स्वयं को परिश्रम करना होगा; अन्यथा कुछ नहीं होगा।**

भगवान् के प्रति समर्पण: अचला भक्ति कैसे होती है

एक गुरुभाई ने ठाकुर से कहा— 'अविश्वास, सन्देह से तो सब समय कष्ट पा रहे हैं। भगवान् के चरणों में चित्त समर्पण, उनमें अचला भक्ति कैसे होगी?' ठाकुर ने कभी लिखकर, तो कभी इंगित करके बतलाया— **'श्रीमद्भागवत, गीता, भक्तमाल इन ग्रन्थों का श्रद्धापूर्वक पाठ करने से पूर्वजन्म की सुकृति के अनुसार शीघ्र विश्वास उत्पन्न होने लगता है। श्रद्धापूर्वक शास्त्र-पाठ और साधु-संग करने से अनेक जन्मों की सुकृति के प्रभाव से भगवत्-भजन**

के प्रति हृदय में व्याकुलता आती है। उस समय सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करके उनके उपदेशानुसार निष्कपट भाव से साधन-भजन करने से भगवान् कृपा करके साधक को अपने दास के रूप में चुन लेते हैं एवं उसको दर्शन देते हैं। समस्त सुन्दर वस्तुओं की जिन्होंने रचना की है, उस रूपवान् के श्रीअंग के एक अंश का भी दर्शन करने से मनुष्य उनके चरणों से दूर नहीं रह सकता। ऋषियों ने कहा है– पहले ब्रह्मज्ञान; सर्वभूत में उनको प्रत्यक्ष अनुभव करना। द्वितीय अवस्था योग है-- आत्मा में परमात्मा की उपलब्धि। तृतीय अवस्था है– भगवत् सम्बन्ध; पूजा-अर्चना। इस अवस्था में उनके रूप का दर्शन होता है; वह रूप है– सच्चिदानन्द। उसका एक बार दर्शन होने से–

> भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

आरम्भ में यदि मैं धार्मिक हूँ, मैं साधु हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं भक्त हूँ– इस प्रकार अभिमान होता है, चारों ओर से लोग इस प्रकार सम्मान प्रदर्शित करते रहें, उस समय यदि मेरा हृदय धर्महीन, असाधु, अज्ञानी और अभक्त रहे, तो पूरे सम्मान को बनाए रखने के लिए मनुष्य क्रमशः ही कपटी होकर घोर पाप में डूबने लगता है। अतएव लोगों के सामने जितना ही तुच्छ एवं मलिन रूप में परिचित होवें, उतना ही मंगल है। इस विपत्ति से रक्षा पाने के लिए ऋषियों ने चार उपाय बतलाए हैं– 1. स्वाध्याय (धार्मिक ग्रन्थों का पाठ और नाम-जप करना)। 2. सत्संग। 3. विचार (सर्वदा अपने भीतर निरीक्षण करना होगा; यदि आत्मप्रशंसा अच्छी लगे, परनिन्दा से आनन्द मिलता है, तो अपने को नरकगामी समझना होगा, धर्मभ्रष्ट समझना होगा)। 4. दान। दान को दया बतलाया गया हैं। किसी के भी हृदय में किसी प्रकार का कष्ट न देना। किसी के शरीर या मन में वाक्य और व्यवहार द्वारा किसी प्रकार का क्लेश देने से दया नहीं रहती। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य सभी जीवों के ऊपर दया करना कर्त्तव्य है।

स्वाध्याय, सत्संग, विचार और दान प्रतिदिन अवश्य करना होगा। इसके साथ कर्मेन्द्रिय संयम के अभ्यास को भी आवश्यक कहा गया है; इन उपायों से सहज में ही वासना-कामना की निवृत्ति होती है।

धर्म-प्राप्ति का सहज उपाय– नित्यकर्म की व्यवस्था

एक गुरुभाई ने पूछा– 'मैं तो कुछ कर नहीं पाता। धर्म कैसे प्राप्त होगा?'

ठाकुर– **जीवन को एक निर्दिष्ट नियम के अन्तर्गत चलाना चाहिए। प्रतिदिन नियमित रूप से कुछ समय के लिए साधना करना कर्त्तव्य है। अच्छा न लगे, तो भी औषधि निगलने की भाँति करने से धीरे-धीरे रुचि उत्पन्न होती है। प्रातःकाल उठकर स्नान करके एक घण्टा प्राणायाम और नाम-जप; फिर एक घण्टा धर्म-ग्रन्थ का पाठ; उसके बाद वृक्ष-लता, पशु-पक्षी कीट-पतंग की सेवा; पास में यदि कहीं दुःखी लोग रहते हैं, तो उनकी देख-भाल करनी चाहिए। भोजन के बाद सोना ठीक नहीं है। दिन में सोने से बुद्धि नष्ट एवं आयु क्षीण होती है। कुछ क्षण विश्राम करके अध्ययन करना चाहिए। अपराह्न में थोड़ा भ्रमण; संध्या के समय कीर्तन, प्राणायाम व नाम-जप; उसके बाद उचित परिमाण में भोजन करके शयन करना। इसमें अभ्यस्त होने से सहज में ही धर्म प्राप्त होगा।**

कुअभ्यास से विषमय परिणाम

दीर्घकाल जो अनुष्ठान किया जाता है, उसका परिणाम भी कई दिनों तक रहता है। अनियम में चलने से जो कुअभ्यास हो गए हैं, अब बहुत चेष्टा करके भी उन्हें छोड़ नहीं पा रहा हूँ। ये सब कार्य मानो अब मेरे लिए स्वाभाविक हो गए हैं। प्रतिदिन ही संकल्प करके बिछौने से उठता हूँ कि 'आज इस प्रकार चलूँगा।' लेकिन दो-एक घण्टे बाद ही देखता हूँ, संकल्प टूट गया। किस प्रकार कब संकल्प के विरुद्ध कार्य कर डालता हूँ, कुछ समझ नहीं पाता। आहार के अनियम से धीरे-धीरे लोभ इतना बढ़ गया है कि अब उसका संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। सब स्वेच्छाचारों में इसी ने मेरे स्वभाव को अधिक कलुषित किया है। फिर दृष्टि भी पहले की भाँति अब पैर के अँगुठे पर स्थिर नहीं रहती, बड़ी चंचल हो गई है। अब कभी पुनः पैर के अँगुठे पर दृष्टि स्थिर रख सकूँगा, वैसा भरोसा भी नहीं है। वाक्य संयम की बात अब क्या कहूँ? जिस प्रकार ठाकुर के आदेश का विचार न करके असाधारण फल प्राप्ति की आकांक्षा से अत्यधिक हठ किया था, उसी प्रकार ठाकुर अब सूद सहित पूरा फल भोग करवा रहे हैं। वाक्य संयमित न होने से मन सर्वदा बहिर्मुखी रहता है– भीतर की ओर दृष्टि ही नहीं रहती। पग-पग पर सत्यभ्रष्ट हो रहा हूँ। नाम-जप तो मानो छूट ही गया है। यथारीति प्राणायाम, कुम्भक आदि न करने से श्वास-प्रश्वास अत्यधिक लघु व दीर्घ होकर चल रहे हैं। फलस्वरूप वीर्य भी अब स्थिर नहीं है, चंचल हो गया। सिंह के साथ सियार-कुत्ते

की लड़ाई जैसे असम्भव है, वाक्य के साथ मेरा यह संग्राम वैसा ही लग रहा है। हाय! हाय! अब क्या करूँ? ठाकुर के एक भी आदेश का पालन नहीं कर पाया।

ठाकुर के आदेश के अनुसार कार्य क्यों नहीं होता? वे ही बनाते है, वे ही तोड़ते हैं

ठाकुर के आदेश प्रतिपालन में यथासाध्य प्रयास करके भी जब बारम्बार असफल होने लगा, तब मन में सन्देह हुआ– ऐसा क्यों होता है? ठाकुर के आदेशानुसार चलने की मैं चेष्टा कर रहा हूँ, उसमें मुझे कौन बाधा देता है? सद्‌गुरु तो साक्षात् भगवान् हैं। उनके वाक्य और उनकी शक्ति एक ही वस्तु है। उनके वाक्य अलंघनीय हैं; उनकी शक्ति अचूक है। इस अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति, प्रलय जिनकी इच्छा मात्र से होता है, उनका आदेश तो प्रयोग मात्र से सिद्ध हो जाएगा। फिर मुझमें वैसा क्यों नहीं हुआ? गुरुवाक्य के साथ जब मेरी इच्छा का विरोध नहीं है, तो उसकी सफलता के विरुद्ध कौन खड़ा हो जाता है? ऐसा शक्तिशाली कौन है? इस विषय में सन्देह हुआ। समाधान हेतु ठाकुर से पूछा; पर आज उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया! अन्त में स्मरण हुआ कि कुछ दिन पहले ठाकुर से मैंने पूछा था, प्रयास करके भी आपके आदेशानुसार चल क्यों नहीं पाता? तब ठाकुर ने जो उत्तर दिया था, उसी से तो मेरे आज के प्रश्न का स्पष्ट समाधान हो गया। ठाकुर ने उस समय कहा था– **'मैं जो कहूँगा, वह यदि कर सकोगे, तब तो सिद्ध ही हो गए। कितना कुछ कहूँगा– जितना कर सकते हो, करते जाओ। फिर जो न कर सको, उसके लिए दुःखी मत हो। सोचना, अन्य कोई शक्ति तुमको उस प्रकार से चला रही है– उसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं है, दोष भी नहीं है।'**

फिर उस दिन ठाकुर से पूछा था– आपके आदेशानुसार न्यास करने से देह-मन सब तो भगवान् को ही अर्पित करना हुआ; उसके बाद जो सब अपराध, अनियम एकाएक हो जाए, उसे क्या वास्तव में मैं ही करता हूँ?

ठाकुर ने कहा– **"नहीं वह सब तुम नहीं करते।"** ठाकुर की बात से समझ में आ रहा है, आदेश भी वे करते हैं और तोड़ते भी वे ही हैं। केवल कर्तृत्व के अभिमानवशतः ही संस्कार के कारण कष्ट पाता हूँ; किन्तु इस प्रकार कष्ट पाते रहने से ही क्रमशः मेरे ढेरों प्रारब्ध का क्षय होता जा रहा है। ठाकुर ने कहा था– **'गुरु के साथ सम्बन्ध रखकर चलने से तुम लोगों के समस्त कर्म शंख काटने की आरी की भाँति ऊपर से भी कटेगा, नीचे से भी कटेगा।'**

गुरु के प्रति एकनिष्ठा अत्यन्त दुर्लभ है

ठाकुर जितना ही भरोसा क्यों न दें, कुछ दिनों से मन बड़ा उदास-उदास लग रहा है। सदा ऐसा लगता है, इतने समय तक क्या किया? घर-बार छोड़कर, आत्मीयजनों को रुलाकर जो धर्म-धर्म करके निकल पड़ा हूँ, उसकी तो एक भी अवस्था या बात की सत्यता के सम्बन्ध में प्रमाण दे न सका। भगवान् गुरुदेव ने मेरे सब प्रकार के कठोर कर्त्तव्य कटवाकर अपने शान्तिमय चरणों के नीचे आश्रय दिया है एवं अपनी देव-दुर्लभ सेवा का अधिकार देकर सर्वदा साथ-साथ रखा है। उनके साथ चिरकाल का नित्य सम्बन्ध जिससे स्थापित हो, उसका भी सन्धान बतला दिया है; किन्तु दुर्मतिवशतः मैंने उनके आदेश पालन के लिए एक बार भी तो वैसा प्रयास नहीं किया। लगभग तीन वर्ष हो गए, ब्रह्मचर्य लिया है; इस समय के बीच कितने ही प्रकार की अवस्थाओं का भोग किया। अभी तक साधना में कभी उत्साह तो कभी निरुत्साह, कभी दृढ़ता तो कभी शिथिलता– दिन तो इसी प्रकार चला जा रहा है। ठाकुर के इतने आदेशों में से एक को भी तो स्थिर भाव से पकड़कर रख नहीं पा रहा हूँ। हाय, हाय! अब मेरी क्या दशा होगी? सुना है, शास्त्र में है कि 'कठोर साधन-भजन, तपस्या एवं अनेक जन्मों की सुकृति के बल से भी सद्गुरु की कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती।' तथापि पतित-पावन दयामय प्रभु की अयाचित कृपा से उसे मैंने अनायास ही प्राप्त कर ली है; लेकिन उससे मेरा हुआ क्या! ठाकुर ने इस वानर के गले में मुक्ता की माला ही पहना दी है! वस्तु का माहात्म्य तो मैं कुछ समझ नहीं पाया! श्रीमद्भागवत में सुना था–

'करोड़ों जीवों के बीच एक ब्रह्मज्ञानी, करोड़ों ब्रह्मज्ञानी के बीच एक तत्त्वज्ञ, करोड़ों तत्त्वज्ञ में एक कृष्ण-भक्त है; किन्तु गुरु के प्रति एकनिष्ठ बहुत दुर्लभ है।'

सद्गुरु का आश्रय मिल जाने से ही उनके प्रति एकनिष्ठता प्राप्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है। सद्गुरु के आश्रित जनों का एकमात्र कर्त्तव्य है– उनके आदेश का पालन। उनके प्रति एकनिष्ठता प्राप्ति में उनकी आत्मा का चरम कल्याण है, श्रेष्ठ उन्नति है और यही एकमात्र लक्ष्य है। सुना है, बिना विचार किए गुरुवाक्य मानकर चलने से धीरे-धीरे गुरु के प्रति एकनिष्ठता उत्पन्न होती है; लेकिन उसमें मेरी इच्छा कहाँ जागी? गुरुदेव का कोई भी एक आदेश मानकर कुछ दिन चलने से शीघ्र ही आशा के अनुरूप फल न मिलने पर तुरन्त सन्देहयुक्त, विचलित और निराश हो जाता हूँ; फिर कुबुद्धिवशतः मति मारी जाने से ठाकुर की कृपा-वाणी के ऊपर दोष लगाता हूँ। हाय! हाय! ठाकुर के आदेश पालन में मेरी दृढ़ आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई, उनके प्रति थोड़ी भी निर्भरता या निष्ठा नहीं हुई! अपने कल्याण की अब क्या आशा करूँ?

तीन वर्ष ब्रह्मचर्य की विशेष-विशेष नियमावली

ब्रह्मचर्य की सब नियम-प्रणाली गुरु के प्रति एकनिष्ठा लाने के लिए ही है; किन्तु अभी तक मैं उसके किस नियम का सम्पूर्ण रूप से पालन करता आया हूँ? प्रथम वर्ष ब्रह्मचर्य के विशेष-विशेष नियम थे–

1. प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर कुछ समय तक साधना करना। फिर प्रातःक्रिया सम्पन्न करके पवित्रता के साथ आसन पर बैठकर नित्य-क्रिया करना। गीता का एक अध्याय पाठ करना।

2. स्वपाक आहार करना। आहार के विषय में किसी प्रकार का अनाचार न हो– सर्वदा इस विषय में ध्यान रखना। दिन-रात में केवल एक बार आहार करना। आहार की मात्रा और समय निर्दिष्ट रखना। अत्यधिक मीठा, तीखा, खट्टा, नमक आदि का सर्वदा त्याग करना। मीठा व खट्टा से काम, तीखी व चटपटी वस्तु से क्रोध, नमक से लोभ और घी की वस्तु से मोह बढ़ता है; ये सब उत्तेजक वस्तुएँ त्याग देना।

3. साधारण वस्त्र पहनना, साधारण शैय्या पर सोना। दिन के समय नहीं सोना।

4. किसी की निन्दा नहीं करना। किसी की निन्दा नहीं सुनना। किसी को भी कष्ट नहीं देना। सभी को सन्तुष्ट रखना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की यथासाध्य सेवा करना।

5. समस्त कार्यों को विचारपूर्वक करना। सत्य वाक्य कहना। सत्य व्यवहार और सत्य चिन्तन करना। बहुत कम बात करना।

6. युवती स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना।

7. गुप्त रूप से अपनी साधना करना। पवित्र आसन पर बैठना। अपने कार्य के प्रति सर्वदा निष्ठा रखना।

प्रथम वर्ष ब्रह्मचर्य में ठाकुर के यही कुछ आदेश विशेष थे। द्वितीय वर्ष के विशेष आदेश हैं–

1. छोटी हो या बड़ी किसी भी स्त्रियों की ओर ताकना नहीं। किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना। किसी भी प्रकार से स्त्रियों के सम्पर्क में नहीं रहना।

2. सर्वदा मस्तक झुकाकर रहना। दृष्टि सर्वदा पैर के अँगूठे की ओर रखना। कुछ दिन दृष्टि पैर के अँगूठे पर स्थिर रख पाने से दृष्टि-शक्ति खुल जाएगी, जिधर देखोगे– सब कुछ दिखलाई पड़ेगा।

मिट्टी, जल, आकाश सबको भेदकर दृष्टि जाएगी।

3. वाक्य संयम करना। कुछ पूछा न जाए, तो बात मत करना। पूछे जाने पर भी विशेष आवश्यकता बोध न हो, तो उत्तर मत देना। उत्तर देते समय अच्छी विवेचना करके बहुत संक्षेप में सत्य उत्तर देना।

4. अपराह्न 4 बजे के बाद स्वपाक आहार करना। किसी के द्वारा बनाई हुई दाल, सब्जी इत्यादि कोई भी 'कच्ची रसोई' नहीं खाना। केवल एक बार भोजन करना। यदि अन्य समय में अत्यधिक भूख लगे, तो केवल थोड़ा जलपान करना। बाजार की मिठाई, मुरमुरा, चिउड़ा, लाई अथवा सत्तू कुछ नहीं खाना।

5. सर्वदा कुम्भक के साथ नाम-जप करना— प्रत्येक दम में; जिससे एक भी श्वास-प्रश्वास व्यर्थ न जाए। '.....' चक्र में सर्वदा मन को स्थिर रखने का प्रयास करना।

6. प्रतिदिन हवन करना। गायत्री का अन्ततः ढाई सौ जप करना। प्रातः श्रीमद्भगवद्गीता, गुरु-गीता का; मध्याह्न में महाभारत पाठ करना। संध्या के बाद रात 10 या 11 बजे तक सोकर अवशिष्ट रात्रि साधना करके बिताना।

7. भिक्षान्न आहार करना। तीन घर तक ही भिक्षा कर सकते हो। भिक्षान्न सर्वदा ही पवित्र है। एक साथ सब पकाकर भोजन करना। संचय नहीं करना।

इस बार ब्रह्मचर्य का मूल उपदेश है—

1. क्रोध दुर्जय रिपु है, स्वजन-निर्जन का विचार नहीं करता। क्रोध के उत्पन्न होने से पूर्व की तपस्या के फल विनष्ट हो जाते हैं— मनुष्य चण्डाल हो जाता है। क्रोध को संयमित करने का प्रयास करना।

2. गीता के दो-एक श्लोक नित्य कण्ठस्थ करना। पाठ कम करके जप अधिक करना। नाम जपते-जपते क्लांति लगने से अध्ययन करना।

3. किसी की पकाई हुई वस्तु नहीं खाना। ब्राह्मणों के घर से ही भिक्षा लेना। इच्छा होने पर गुरुभाइयों के घर से भिक्षा ले सकते हो— उसमें कोई विचार नहीं करना।

4. किसी से पैसे नहीं माँगना। इस विषय में भाई-बन्धुओं को भी दूसरों के समान समझना। पैसे या अन्य वस्तुओं का संचय नहीं करना।

5. वाक्य को संयमित करना। किसी का भी विरोध नहीं करना।

सत्य की रक्षा व वीर्यधारण करना। पैर के अँगूठे पर सदा दृष्टि रखना। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना।

6. प्रतिदिन सूर्योदय के बाद गायत्री का एक हजार जप करना। जैसा कहा गया है, नियमानुसार प्रतिदिन न्यास और पूजा करना। श्रीमद्भागवत, गीता और गुरु-गीता का पाठ करना।

ठाकुर ने एक दिन रात्रि के समय कहा– **'मेरी दो बातें मानकर चलोगे, तो उससे ही सब कुछ प्राप्त हो जाएगा– वीर्यधारण और सत्य-कथन। इन दोनों का प्रतिपालन करके चलने से एक दिन भगवान् की कृपा अवश्य ही प्राप्त होगी। सत्य कहने के लिए वाक्य संयम करना होगा। पैर के अँगूठे पर दृष्टि होने से ही वीर्य अपने-आप स्थिर होने लगेगा।**

गुरु-शिष्य में देवासुर संग्रामः मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्

ठाकुर के इतने आदेशों में दो-चार का भी मैं आज तक बिना रुकावट के ठीक-ठीक पालन नहीं कर सका। किसी अति आवश्यक कारणों से ही इन नियमों का उल्लंघन करने में बाध्य हुआ हूँ, वैसी बात भी नहीं है। कुछ दिन किसी एक आदेश के अनुसार चलकर थोड़ी अच्छी अवस्था प्राप्त होते ही उस अवस्था के आनन्द में मुग्ध हो जाता हूँ; तब उस आदेश पालन की ओर ध्यान ही नहीं रहता। फिर ध्यान आने पर भी सोचता हूँ, कोई भी अवस्था ठाकुर की कृपा के बिना तो प्राप्त नहीं होती; फिर ठाकुर की कृपा अहैतुकी है, साधन-भजन, तपस्या किसी का ही विचार नहीं करती। सर्वनियन्ता ठाकुर ने स्वयं की कृपा की ओर जिससे साधक की दृष्टि न पड़े, केवल इसी कारण से बड़ी कुशलता के साथ साधन-भजन, तपस्या को असाधारण अवस्था प्राप्ति का निमित्त बना रखा है। ठाकुर के प्रति विश्वास-भक्ति एक बार उत्पन्न हो जाने पर भी वह कुछ दिन बाद क्यों नहीं रहती, पूछने पर ठाकुर ने कहा था– **'तुम लोगों की चेष्टा रहेगी, बारम्बार बनाने एवं स्थिर रखने की। मेरी चेष्टा रहेगी, उसे तोड़ने की।'** अब देख रहा हूँ, इसे लेकर सारा जीवन इसी प्रकार गुरु-शिष्य में देवासुर संग्राम चल रहा है। कभी उठा-पटक से निराश होकर उनका प्रभुत्व स्वीकार करता हूँ, कभी नियम पालन में थोड़ा सफल होने से ही फल प्राप्ति में अपने को प्रधान समझकर अभिमानवश गर्व करता हूँ। इस अहंकार के बाद ही ठाकुर कृपा करके अपनी प्रभुता समझाकर फिर दण्ड की व्यवस्था करते हैं। जब तक देह-मन-वाक्य से बड़ी व्याकुलता के साथ ठाकुर के शरणागत और अनुगामी नहीं हो जाता, उनको ही एकमात्र आसरा, एकमात्र कर्त्ता के रूप में मैं स्वीकार नहीं करता हूँ,

उतने दिन तक किसी प्रकार भी इस दण्डाघात से बचने का कोई उपाय नहीं है। किसी नियम-प्रणाली के प्रतिपालन से अथवा सैकड़ों उपाय-प्रयास करने से भी कभी किसी प्रकार से स्थायी फल प्राप्त नहीं होता, यदि वह गुरु के मुख से आदेश या उपदेश के रूप में बाहर न निकला हो। स्वयं देवाधिदेव महादेव ने कहा है– 'मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्'; जिस मन्त्र का स्मरण करने से जीव का उद्धार हो जाता है, उस मन्त्र का मूल गुरु का वाक्य है। आदेश-उपदेश व मन्त्र इन सबका मूल अर्थात् जीवनी-शक्ति एकमात्र वही गुरुवाक्य है। श्रीगुरु के मुख से निःसृत नहीं होने से मन्त्र में जीवोद्धार की शक्ति संचारित नहीं होती। गुरु का वाक्य ही गुरु-शक्ति है। गुरु के वाक्य को पकड़े रहने से ही गुरु के साथ सम्पूर्ण रूप से जुड़े रहते हैं। शिष्य के लिए गुरु के वाक्य में छोटा-बड़ा, न्यून-अधिक अथवा पृथकता नहीं है; सभी सर्वशक्तियुक्त और समान फलदायक हैं। सद्‌गुरु का वाक्य ही सार है। उनका वाक्य कभी असत्य नहीं होता। इस अधम को उन्होंने दया करके बड़ी आशा दी है, वही एकमात्र सहारा है। विश्वगुरु ऋषियों ने भी दोनों हाथ उठाकर बारम्बार कहा है–

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे।
विकसति यदि पद्मः पर्वतानां शिखाग्रे।।

प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति बह्नि।
न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित्।।

पश्चिम से सूर्योदय, पहाड़ की चोटी पर पद्म खिलना, पर्वत का गतिशील होना एवं अग्नि में शीतलता सम्भव होने पर भी सज्जन का वाक्य कभी असत्य नहीं होता। सज्जन अर्थात् भगवज्जन, सद्‌गुरु का वाक्य कभी असत्य नहीं होता; यह विश्वास होने से ही तो सब हो गया। भगवान् गुरुदेव दया करके मुझे ऐसी शुभ मति दें, जिससे फिर कभी उनके वाक्य में दुविधा या संशय उत्पन्न न हो। अब से ब्रह्मचर्य के नियमादि का उत्साहपूर्वक प्रतिपालन करने का निश्चय किया। इसके लिए यदि मुझे लोकालय छोड़ना पड़े, ठाकुर का साथ छोड़कर पहाड़ों पर जाना पड़े, तो भी मैं आनन्दपूर्वक वैसा करूँगा।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः– श्रीगुरु के ध्यान को कल्पना नहीं कहते

ठाकुर ने कहा था– **'अपने इस साधन में किसी प्रकार की कल्पना नहीं करते। भगवान् के अनन्त रूप हैं। किस रूप में किस समय किसके सामने प्रकट होंगे, कौन कह सकता है? भगवान् का नाम जपो। नाम-जप करते-करते जिस रूप में वे प्रकट होंगे, उसी को पकड़ लेना।**

पहले से किसी रूप की कल्पना नहीं करते।'

उन्होंने इस प्रकार भी कहा है– **'भगवान् के रूप का अन्त नहीं है। कब किस रूप में वे किसके सामने प्रकट हो जाएँ, कुछ कह नहीं सकते। जब भी जिस रूप में ही वे प्रकट क्यों न हों– उनकी भक्ति करना; लेकिन किसी रूप में बद्ध नहीं होना। नाम-जप करते-करते उनके अनन्त रूप प्रकट हुआ करते है, केवल एक रूप को पकड़े रहने से कैसे चलेगा?'**

ध्यान के सम्बन्ध में पूछे जाने पर पिछली बार ही ठाकुर ने कहा– **'भगवान् को कौन देख पाता है! गुरु ही भगवान् हैं। नाम-जप करते-करते गुरु के भीतर से ही भगवान् के अनन्त रूप, अनन्त विभूति का प्रकाश मिलता रहेगा।'**

ठाकुर की बातों से यह समझ में आया कि किसी रूप का ध्यान करना हो, तो गुरु की मूर्ति का ही ध्यान करना चाहिए; क्योंकि सद्गुरु से ही भगवान् के समस्त रूपों का प्रकाश मिलता है। इसलिए भगवान् सदाशिव ने भी कहा है– 'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः।' कई बार यह प्रत्यक्ष भी किया है– एकाग्र हुए बिना ही नाम-जप करते-करते भीतर अपने-आप श्रीगुरु का रूप प्रस्फुटित हो जाता है। फिर किसी भी प्रकार से उसे दूर नहीं कर पाता हूँ। अतएव मैं सद्गुरु के सच्चिदानन्द रूप का ध्यान करता हूँ; किन्तु कुछ गुरुभाई प्रायः मुझसे कहते हैं– 'तुम कल्पना की उपासना करते हो। गुरु के रूप का ध्यान भी तो कल्पना है; क्योंकि गुरु का रूप भी एक जैसा नहीं रहता– परिवर्तनशील है; अतः अनित्य है।'

गुरुभाइयों की बात से मेरे मन में शंका होने लगी। मैंने ठाकुर से पूछा– पूरे विश्व ब्रह्माण्ड को मिलाकर ही तो भगवान् पूर्ण हैं; प्रत्येक अणु-परमाणु में भी क्या वे पूर्ण रूप में ही हैं?

ठाकुर– **हाँ। प्रत्येक अणु-परमाणु में भी वे पूर्ण रूप में अवस्थान कर रहे हैं।**

पूर्ण का अंश भी पूर्ण है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्यात्मक ब्रह्म भी पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म से इस जगत् का विस्तार हुआ है। महाप्रलय में पूरा जगत् उसी पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो जाता है, केवल पूर्ण ब्रह्म ही बचा रहता है।

मैं– फिर तो पूरा विश्व ब्रह्माण्ड ही प्रत्येक अणु-परमाणु में विद्यमान है।

ठाकुर– **हाँ। प्रत्येक अणु-परमाणु के भीतर ही जो भगवान् हैं, उनके भीतर सब कुछ विद्यमान है।**

मैं– तो फिर मेरे नख में भगवान् का पूर्ण अधिष्ठान होने से उसमें कोलकाता शहर भी है, इस प्रकार यदि चिन्तन करता हूँ, वह क्या मिथ्या कल्पना होगी?

ठाकुर– **नहीं, उसको कल्पना नहीं कहते।**

मैं– सभी तो परिवर्तनशील है। पहले गुरु का रूप एक प्रकार का देखा हूँ, फिर अब उसे ही अन्य प्रकार का देख रहा हूँ। पहले के रूप का अब ध्यान करने से वह क्या कल्पना होगी?

ठाकुर– **प्रतिदिन के प्रत्येक मुहूर्त के समस्त रूपों में ही भगवान् स्थायी रूप से विद्यमान हैं। उन रूपों का ध्यान कल्पना नहीं है। कल्पना असत्य की होती है; जिसका अस्तित्व न हो, जो कभी हुआ नहीं; जैसे 'आकाश में पुष्प', 'घोड़े का अण्डा।' सत्य वस्तु के चिन्तन को ध्यान कहते हैं, वह कल्पना नहीं है।**

ठाकुर की बात सुनकर निश्चिन्त हुआ। फिर अधिक प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ; किस बात पर क्या कह दूँ, फिर अन्त में बड़ी कठिनाई में पड़ जाऊँगा। मन में प्रश्न उठा– सद्गुरु तो निश्चय ही साक्षात् भगवान् हैं! उस कारण से क्या अत्यन्त साधारण गुरु को भी भगवान् समझना होगा?

फिर यह प्रश्न उनसे पूछने की इच्छा नहीं हुई। मेरे लिए अनावश्यक है; फिर इसका सन्तोषजनक उत्तर पहले भी कई बार सुना है।

ठाकुर ने कहा था– **'जिस प्रकार अग्नि सर्वत्र रहने पर भी वह किसी को नहीं दिखती, उसके द्वारा कोई कार्य नहीं होता; अग्नि की आवश्यकता होने से जिस स्थान पर वह प्रकट है, अर्थात् चूल्हा, प्रदीप इत्यादि से ही उसे ग्रहण करना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् सर्वव्यापी होने पर भी उनको प्राप्त करने के लिए विशेष-विशेष आधार में उनकी उपासना करनी होती है। ऋषियों ने आठ आधार बतलाए है– गुरु, सूर्य, शालग्राम, अग्नि, जल, आत्मा, पिता, माता– स्त्रियों के लिए पति। चकमक पत्थर को आपस में रगड़ने से जिस प्रकार सहज में अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इन सब आधारों में भी भगवद्ध्यान से इष्ट वस्तु का बहुत सहज में प्रादुर्भाव होता है। पिता, माता, पति जैसे भी क्यों न हो, प्रत्यक्ष देवता मानकर उनकी सेवा-पूजा करना कर्त्तव्य है; प्रत्येक कार्य में उनके अनुगामी होकर चलना चाहिए। गुरु के सम्बन्ध में भी शिष्य का वैसा ही है। भगवद्बुद्धि से गुरु की सेवा-पूजा करनी**

चाहिए। बिना विचार किए उनके आदेशों का प्रतिपालन करना चाहिए। भगवान् को पाने के लिए इसकी तुलना में सहज उपाय अन्य नहीं है। यह ऋषियों की व्यवस्था है।'

गुरु जैसे भी क्यों न हों, निष्कपट रूप से उनकी सेवा-पूजा और श्रद्धा-भक्ति करके एवं बिना विचार किए उनके आदेशों का प्रतिपालन करके जो शिष्य सिद्धि प्राप्त करते हैं, इस देश में ऐसे दृष्टान्त विरल नहीं हैं। पति जैसे भी क्यों न हों, स्त्री के पतिव्रता होने से उनका असामान्य जीवन सम्पूर्ण स्त्री-जाति का आदर्श हो जाता है।

दृष्टि-साधन, पंचभूत एवं ज्योति का सारूप्य: नाम-साधना

25 फरवरी से 12 मार्च। मध्याह्न में आम के पेड़ के नीचे भागवत पाठ के बाद जब ठाकुर के पास बैठा करता हूँ, तब बड़ा आराम मिलता है; समय किस प्रकार निकल जाता है, पता नहीं चलता। ठाकुर ध्यानस्थ रहते हैं। मैं ठाकुर की स्नेहपूर्ण पवित्र मनोहर मूर्ति को भीतर रखकर नाम-जप किया करता हूँ। इस समय प्रत्येक नाम एक सारवान् वस्तु लगती है। नाम के स्मरण के साथ-साथ ठाकुर का रूप अधिक उज्ज्वल एवं मनोहर होता जाता है। क्रमशः उसका माधुर्य बढ़ने लगता है। आजकल प्रतिदिन ही नाना प्रकार के चक्र दर्शन हो रहे हैं। किस प्रकार वे कहाँ से उदित होते हैं, कुछ समझ नहीं आता। ये सब चक्र अत्यन्त उज्ज्वल वैद्युतिक शुभ्र तार से अंकित होते हैं। त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण अथवा द्वादशकोण चक्र दिखाई पड़ते हैं। इन सभी का मध्य स्थल घना कृष्णवर्ण का है। आँखें खुली रहने एवं बन्द रखने पर भी ठीक एक ही प्रकार का दर्शन होता है। यह दृष्टि-साधना का फल है या नाम-जप का– समझ नहीं आता। पंचभूत के एक ही भूत में दृष्टि-साधना के फलस्वरूप कई रंगों की अपूर्व ज्योतियाँ दिखती हैं। दृष्टि-साधना के सम्बन्ध में ठाकुर से कुछ-एक बातें पूछने की मेरी इच्छा हुई। अवसर मिलने पर कहा– सुना है, पंचभूत में ही दृष्टि-साधना करनी पड़ती है। कौन-सी अवस्था होने पर एक के बाद अन्य दूसरे भूत में साधना करनी होती है?

ठाकुर– **'गुरु के आदेश के बिना ये सब कभी नहीं करना चाहिए, बड़े संकट की आशंका रहती है। दृष्टि-साधना पहले वृक्ष पर करते हैं। वृक्ष पर जब अनायास बिना पलक झपके, बिना अश्रुपात के एक बिन्दु पर एक घण्टा दृष्टि स्थिर रख सकोगे, तब आकाश पर अभ्यास करना। नीले आकाश पर एक स्थान में दृष्टि स्थिर रखनी होती है। आधे घण्टे तक आकाश पर दृष्टि स्थिर होने से जल की धारा पर अभ्यास करना।**

जल की धारा पर एक घण्टा अभ्यास हो जाने से वायुरहित स्थान में घी का दीपक रखकर उस पर दृष्टि स्थिर करनी होती है। अन्ततः दो घण्टे तक दीप में अभ्यास हो जाने पर सूर्य में अभ्यास आरम्भ करना। सूर्य उदय होने से लेकर प्रथम प्रहर तक सूर्य में दृष्टि स्थिर रखना; किन्तु सम्पूर्ण वीर्यधारण न होने से सूर्य में दृष्टि-साधना नहीं करते– हानि होती है। इसलिए गृहस्थों के लिए निषेध ही है।' इस प्रसंग में ठाकुर ने मुझको दृष्टि-साधना का क्रम व प्रणाली स्पष्ट रूप से समझाकर कहा– **"बड़ी सावधानी के साथ विशेष रूप से गुरु से संकेत जान लेने के बाद फिर यह त्राटक साधना करनी चाहिए।"**

मैं– पंचभूत के किस भूत की ज्योति किस प्रकार होगी? एक भूत में भी तो नाना प्रकार की ज्योति देखी जाती है?

ठाकुर– **क्षिति की ज्योति का रंग पीला है; अप की ज्योति शुभ्र, तेजः की ज्योति लाल, मरुत की ज्योति नीली एवं व्योम की ज्योति का रंग नये बादल के समान घना कृष्ण मिश्रित नीला है।**

मैं– इनमें कौन-सी ज्योति किस गुण की है? कौन-सी सर्वश्रेष्ठ है?

ठाकुर ने कहा– **"अप की ज्योति शुभ्र है, सात्त्विक है– सर्वश्रेष्ठ है। तेजः की ज्योति लाल, रजोगुणी है। मरुत की नीली, रजः-सत्त्वगुणी है। व्योम की ज्योति तमः-सत्त्वगुणी है। पर प्रत्येक भूत में दृष्टि-साधना के समय धीरे-धीरे सभी ज्योतियों का दर्शन होता है।"**

मैं– नाम जपते-जपते कभी ऐसी अवस्था होती है कि देह के प्रत्येक परमाणु में भी नाम चले? एक रूप का चिन्तन करते-करते क्या वैसा ही रूप हो जाता है?

ठाकुर– **नाम जपते-जपते ऐसी अवस्था होती है कि देह के प्रत्येक रक्त-बिन्दु, प्रत्येक अणु-परमाणु में नाम चलता है। यह कल्पना नहीं है– प्रत्यक्ष सत्य है। इस अवस्था में महात्मा लोग वस्त्र द्वारा देह को ढँककर रखते हैं, देह में विभूति लगाते हैं। जिस रूप का ध्यान किया जाता है, धीरे-धीरे देह का भी वही रूप हो जाता है।**

मैं– बाहरी किसी अनुष्ठान द्वारा क्या वीर्यपात बन्द नहीं किया जा सकता?

ठाकुर– **सदा योनिमुद्रा करके बैठने से वीर्यपात बन्द हो जाता है।**

मैं– यह साधन जिन्हें मिला है, सभी क्या दृष्टि-साधना और योनिमुद्रा कर सकते हैं?

ठाकुर– **हाँ, बिल्कुल कर सकते हैं।**

ऐसा दिन नहीं रहेगा

आसन-कुटीर में ठाकुर के पास जब भी बैठता हूँ, दीवार पर ठाकुर के हाथ का लिखा– **'ऐसा दिन नहीं रहेगा'** आँखों में पड़ता है। अब लग रहा है कि ठाकुर ने यह बात मेरे लिए ही लिख रखी है। ऐसा लगता है, मेरा यह शुभ समय अब अधिक दिन मेरे भाग्य में नहीं है। स्वयं भगवान् गुरु के रूप में अवतीर्ण होकर साधारण मनुष्य की भाँति हम लोगों के साथ में हैं। निरन्तर उनका संग करके भी दुर्भाग्यवश उनको पहचाना नहीं। क्षणभर जिनका साथ पाने के लिए ऋषि-मुनि, देवी-देवता लोग भी लालायित हैं, उनका सर्वदा सान्निध्य पाकर भी उनका सम्मान या आदर-सत्कार नहीं कर पाया। भगवान् कितनी ही बार तो अवतीर्ण हुए हैं, किन्तु उनकी मानव-लीला सम्पूर्ण न होने से साधारणतः कोई उनको ठीक प्रकार से समझ या जान नहीं पाया। अन्तर्धान के बाद उनके भक्त-साथी लोग अन्त में– 'हाय! ऐसी सत्य वस्तु खो दी!' कहकर रोते-रोते अन्तिम दिन तक विलाप कर-करके बिताए हैं। लगता है, इस बार मेरे भाग्य में भी वही घटेगा! अभी कितने सुख से मेरे ये दिन बीत रहे हैं, ठाकुर का यह दुर्लभ संग और कब तक मिलेगा! कर्म के चक्कर में पड़कर किस दिन किस समय कहाँ पहुँच जाऊँ, कोई ठीक नहीं; अतएव समय रहते अभी मन भरकर अपने ठाकुर को देख लूँ। यह भाव आने से मन इतना व्याकुल हो गया कि रोने के वेग को किसी प्रकार भी रोक नहीं पाया। ठाकुर के सामने ही सिसक-सिसकर रोने लगा। एकाग्र मन से मैंने ठाकुर के चरणों में प्रार्थना की– 'ठाकुर! जिससे तुम्हारे प्रति अनन्य प्रेम हो और निरन्तर तुम्हारा संग मिलता रहे, दया करके तुम मेरी केवल इतनी आकांक्षा पूर्ण कर दो।' इस समय ठाकुर की ओर देखा, वे ध्यानस्थ हैं। उनका प्रफुल्लित मुखमण्डल लाल हो गया, अविरल अश्रुधारा बहने से गाल भीग गए; बीच-बीच में सिर उठा रहे हैं, वह फिर ढुल जा रहा है। अंग-प्रत्यंग रह-रहकर कम्पित हो रहे हैं। कुछ क्षण बाद ठाकुर को बाह्यज्ञान हुआ। मैं भी दिन ढलता देखकर खाना बनाने चला आया।

श्रीधर के साथ झगड़ा: भागवत में स्याही का दाग पहाड़ पर जाने का आदेश

प्रातःकाल नित्य-क्रिया सम्पन्न करके शान्त भाव से आसन पर बैठा हूँ, अचानक श्रीधर मेरी राशि में सवार हो गए। मेरी आँखें बन्द हैं देखकर वे धीरे-से मेरे सामने आए एवं मेरे होम के घी की बोतल हाथ में लेकर होम की अग्नि के ऊपर उसे बिल्कुल उल्टा करके पकड़े रहे। घी पड़ने से अग्नि एकाएक धू-धू करके जलने लगी। तब मैंने आँख खोलकर देखा, श्रीधर चंचल नयनों से बार-बार

मेरी ओर ताक रहे हैं और अधिक मात्रा में घी डालने के लिए व्यग्रता के साथ दोनों हाथ से बोतल को पकड़कर खूब हिला रहे हैं। मैंने 'ये क्या, ये क्या कर रहे हो' कहकर बोतल को खींच ली।

श्रीधर 'देख, उस आग को देख, उस आग को देख' कहते हुए जाकर अपने आसन पर बैठ गए। मेरे 15 दिन के होम के घी को इस प्रकार दो-चार सेकेण्ड में ही श्रीधर ने पूरा स्वाहा कर डाला, यह देखकर मेरा तो माथा गरम हो गया। खूब उत्तेजित होकर मैंने श्रीधर से कहा– ये क्या है! ये क्या किया! अब तुम्हारे दोनों हाथ मरोड़कर तोड़ूँ! साहस तो तुम्हारा कोई कम नहीं है! श्रीधर ने कहा– 'क्यों भाई! क्या दोष देखा, जो हाथ तोड़ोगे?'

मैं– तो दोष किसको कहते हैं? बहुत बड़ा दोष है! मेरा घी मुझसे पूछे बिना तुमने क्या समझकर आग में पूरा डाल दिया?

श्रीधर– पूछने पर फिर क्या तुम दे पाते? अग्निदेव को घी खिला दिया– वह दोष हो गया?

मैं– मेरे इतने परिश्रम से संगृहीत इस होम के शुद्ध घी को तुमने सीधे-सीधे आग में जला दिया, यह दोष नहीं तो क्या है?

श्रीधर– 'अरे! अपने स्वार्थ के लिए कुछ करने से दोष है। तुम अपने स्वार्थ के लिए ही होम करते हो, आग में घी डालते हो। फिर मैंने तो वैसा नहीं किया! मेरा पूरा निःस्वार्थ भाव है।' तब फिर मैं श्रीधर की बात सहन नहीं कर पाया। अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा– भला चाहते हो तो अब भी कहता हूँ, चुप हो जाओ; नहीं तो मार खाओगे, हाथो-हाथ निःस्वार्थ फल मिल जाएगा।

श्रीधर ने 'अच्छा, लो चुप हो जाता हूँ' कहकर अपनी आँखें बन्द कर ली। श्रीधर का यह उदासीनता और अवज्ञा का भाव देखकर मैं भयंकर क्रुद्ध हो गया। 'मारूँगा' कहकर क्रोध से हाथ दिखाने के लिए जैसे ही हाथ तीव्रता से उठाया, एकाएक वह सामने रखी स्याही की दावात से जा लगा। दावात से छिटककर स्याही आसन पर फैल गई एवं कुछ स्याही श्रीमद्भागवत के किनारे में लग गई। जितना हो सका, स्याही को गमछे से ऊपर-ऊपर पोंछकर भागवत को रख लिया। इतनी अच्छी नयी भागवत की यह दुर्दशा देखकर मन में बड़ा कष्ट होने लगा।

प्रायः 1 बजे अन्य दिनों की भाँति भागवत पाठ करने ठाकुर के पास पहुँचा। ठाकुर आज कुटिया में ही बैठे हैं। मैंने जैसे ही कुटिया में प्रवेश किया, ठाकुर ने भागवत की ओर देखकर कहा– **"यह क्या है?"**

मैं– अचानक दावात गिर जाने से कुछ स्याही लग गई है। मानो थोड़ा क्षुब्ध होकर ठाकुर ने कहा– **"भागवत में स्याही का दाग!"** ऐसा न हो कि फिर कोई

प्रश्न करें, इस भय से चुप रहा, किस प्रकार स्याही गिरी, कुछ नहीं बताया। निर्दिष्ट समय में पाठ समाप्त करके ठाकुर के पास ही बैठकर पंखा झलने लगा। इसी समय कुछ गुरुभाई आ गए एवं ठाकुर के साथ बातचीत करने लगे।

स्वामी हरिमोहन के ऊपर कटाक्ष करने से ठाकुर की विरक्ति और अनुशासन

ठाकुर गुरुभाइयों के साथ बातचीत करते-करते किन-किन गुरुभाइयों के साधना-पथ में क्या-क्या बाधाएँ हैं, सब कहने लगे। उस समय मेरे सम्बन्ध में उन्होंने कहा– **'इसका थोड़ा प्रतिष्ठा का भाव है। ये बस यदि नहीं रहता, तो इतने दिन में बड़ी अच्छी अवस्था प्राप्त कर लेता।'** गुरुभाइयों के समक्ष ठाकुर ने मुझे ऐसा कहा, सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। कष्ट भी होने लगा। सोचा– ठाकुर ने मेरे भीतर क्या प्रतिष्ठा का भाव देखा? मुझे तो कुछ नहीं दिखता। प्रतिष्ठा पाने के लिए कब क्या किया, कुछ तो स्मरण नहीं आता। कहीं ऐसा न हो कि मेरे भीतर प्रतिष्ठा का भाव आए, इसी कारण लगता है ठाकुर ने मुझे सतर्क कर दिया। फिर कुछ क्षण बाद सोचा, यदि प्रतिष्ठा का भाव मेरे भीतर नहीं रहेगा, तो गुरुभाइयों के समक्ष ठाकुर से अपने दोष की बातें सुनकर मैं ऐसा लज्जित व दुःखी क्यों हुआ? ठाकुर से पूछा– मैं इस प्रतिष्ठा के भाव का कैसे त्याग करूँ?

ठाकुर– **तुम तो क्या? कितने बड़े-बड़े लोग इस प्रतिष्ठा के भाव को छोड़ नहीं पाते। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करो– सारे दोष उससे कट जाएँगे। प्रतिष्ठा सूअर की विष्ठा है; प्रतिष्ठा का भाव एक रोग है– इस बात का सर्वदा स्मरण रखना चाहिए।**

थोड़ा रुककर ठाकुर ने मुझसे फिर कहा– **"तुम कुछ समय के लिए पश्चिम की ओर जाकर रहो न; लाभ होगा।"**

मैंने कहा – आपका साथ छोड़कर मेरी कहीं भी रहने की इच्छा नहीं होती। स्वामी हरिमोहन की भाँति एक बार जाना फिर एक बार आना– इस प्रकार के वैराग्य से क्या लाभ?

ठाकुर ने मेरी बात में हरिमोहन के प्रति कटाक्ष सुनकर बड़ी विरक्ति के साथ धमकाते हुए कहा– **"स्वामीजी को साधारण मत समझना। तुमको भी उनके समान कई बार आना-जाना करना होगा। वैराग्य प्राप्त करने में, शान्त अवस्था प्राप्त करने में अभी बहुत समय लगेगा।"** भागवत दिखाकर उन्होंने कहा– **"इस स्याही के दाग को छुड़ाने में बहुत समय लग जाएगा। अभी हुआ क्या है?"**

ठाकुर की ये बातें सुनकर मैं बहुत डर गया। कुछ कहा नहीं, शंकित और चिन्तित होकर चुप रहा। ठाकुर कहने लगे– **'सदा विचार करके चलना। जिससे अभिमान हो, ऐसा कुछ नहीं करना। किसी भी विषय का अनुकरण नहीं करना। प्रत्येक वस्तु को लेने, रखने एवं त्याग करने में सर्वदा विचार करना चाहिए। जिसका उद्देश्य भगवान् नहीं हैं, वह जो कुछ भी क्यों न हो, दूर हटा देना। जो उनके उद्देश्य से रखा जाता है, पूरा ब्रह्माण्ड ध्वंस होने पर भी उसको किसी भी प्रकार से नहीं हटाना। जिससे प्रतिष्ठा हो, उसे विषवत् त्याग देना। जटा, माला, तिलक आदि जो धर्म के उद्देश्य से रखे जाते हैं, उससे भी यदि अभिमान उत्पन्न हो, प्रतिष्ठा का भाव आए, उसे तुरन्त हटा देना। इन सब विषयों में सर्वदा दृष्टि न रखने से ही जोखिम है। धर्म का अभिमान बहुत भयानक है। अन्य अपराधों का तो पार है, किन्तु इस धर्माभिमान का पार नहीं है। जितने प्रकार के अभिमान हैं, उनमें धर्म का अभिमान सबसे बड़ा पाप है। सावधान रहना। साधन-भजन, तपस्या, अध्ययन, बातचीत, वेश-भूषा किसी भी विषय में अभिमान या प्रतिष्ठा का भाव मन में आता है– भयंकर रोग समझकर तुरन्त उसे त्याग देना।'**

कुछ क्षण बाद ठाकुर ने फिर कहा– **"अभी पश्चिम की ओर किसी स्थान पर जाकर साधना करो। काशी या चित्रकूट में जाकर रहो, उपकार होगा।"**

मैंने कहा– पश्चिम की ओर किसी भी स्थान पर रहने से चलेगा?

ठाकुर– **हाँ; दो-चार महीने करके एक-एक स्थान पर रहकर स्वाधीनतापूर्वक साधन-भजन करने से बड़ा उपकार होगा। वही करो।**

मैं– मेरे कल्याण हेतु जहाँ भी जाकर रहने के लिए कहेंगे, वहीं जाऊँगा। फिर भी मेरी आपके पास ही रहने की इच्छा होती है। आपके पास रहने से अधिक लाभ है– मेरी यही धारणा है।

ठाकुर– **वैसा कुछ नहीं है। अभी पास में न रहकर वरन् दूर रहने से ही तुम्हारा अधिक उपकार होगा। पास, दूर कुछ नहीं है।**

ठाकुर की इन बातों के बाद मैंने पश्चिम की ओर जाने का निश्चय किया।

स्याही के दाग में चण्डी पहाड़– अद्भुत चित्र: ईश्वरीय विधान

प्रातःकाल उठकर किसी प्रकार नित्य-क्रिया सम्पन्न की। मन में बड़ा कष्ट होने लगा। इतने दिन साथ रखकर ठाकुर ने इस बार क्या मुझको निकाल दिया?

मानसिक कष्ट से बहुत समय तक आसन पर पड़ा रहा। मध्याह्न में यथासमय ठाकुर के पास पहुँचा। आज तो भागवत एक अध्याय से अधिक नहीं पढ़ पाया। खूब रोने लगा। ठाकुर मग्न हैं। कुछ क्षण बाद उन्होंने धीरे-धीरे सिर उठाया और मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखकर कहा– **"तुम्हारी यह भागवत मुझे दिखाओ तो।"** मैंने भागवत ठाकुर के हाथ में दे दी। वे एकटक उस स्याही के दाग की ओर देखते-देखते कहने लगे– **'इसे देखे हो? कितना सुन्दर पहाड़ है! कल तो ऐसा नहीं देखा! एक सुन्दर पहाड़ का चित्र बना है। बड़ा आश्चर्य है! पहाड़ के नीचे नदी है, पहाड़ के सर्वोच्च शिखर पर सुन्दर मन्दिर है। मन्दिर के चूड़े की ध्वजा तक स्पष्ट झलक रही है।'** कुछ क्षण तक चित्र की ओर देखते रहे। फिर कुंज बाबू इत्यादि से उन्होंने कहा– **'देखो, कितना सुन्दर पहाड़ का चित्र है!'** देखकर सब चकित हो गए। ठाकुर ने मुझसे कहा– **"ऐसा पहाड़ जहाँ देखोगे– वहीं आसन लगाना। अभी जिस प्रकार चल रहे हो, ठीक वैसे ही चलना। किसी की बातों से विचलित नहीं होना।"**

कुंज बाबू– वास्तव में क्या इस प्रकार का पहाड़ कहीं है?

ठाकुर– **हाँ, ठीक ऐसा ही पहाड़ है। कल तो ऐसा देखा नहीं! आज ही यह पहाड़ का चित्र देख रहा हूँ। आश्चर्य है!**

कुंज बाबू– इस प्रकार का पहाड़ कहाँ है?

ठाकुर– **वह खोजने से ही मिल जाएगा।**

कुंज बाबू– 'भारतवर्ष में तो हजारों पहाड़ हैं। छोटा है, कहाँ-कहाँ घूमेगा; खोज निकालने में ही कितना समय लग जाएगा। पहाड़ कहाँ है, कह दीजिए।' आश्रम के सभी गुरुभाई लोग ठाकुर से मेरे लिए विनती करने लगे।

पहाड़ कहाँ है, उसका नाम क्या है, ठाकुर सहज में कहना नहीं चाहते थे। फिर बहुत अनुनय-विनय के बाद उन्होंने कहा– **"हरिद्वार में चण्डी-पहाड़ है। इस पहाड़ पर इसे जाना होगा– इसी कारण यह चित्र इसमें बना है। जाने से उपकार होगा। देखो, किस सूत्र से क्या हो जाता है!"**

मैं यह सब बातें सुनकर चकित हो गया। भगवान् का विधान समझने से मानसिक कष्ट दूर हो गया एवं पहाड़ पर जाने के लिए मन में उत्साह जागा।

ठाकुर ने कहा– **"अभी वहाँ ठण्ड है। इस महीने के बाद जाना।"** माताजी की अनुमति लेने हेतु ठाकुर ने मुझे घर जाने के लिए कहा।

पहाड़ पर जाने के लिए माँ की अनुमति और आशीर्वाद

माताजी की अनुमति लेने घर गया। अवसर देखकर माँ को सब बातें कही। माँ ने कहा– 'इस कम आयु में अकेले पहाड़ पर कैसे रहेगा? गोसाँईजी तुझे साथ-साथ रखेंगे सोचकर ही मैंने तेरे को उनके हाथ में सौंपा। अब साथ छुड़ाकर वे तुझे इस आयु में अकेले पहाड़ पर भेजेंगे?' मैंने कहा– मैं यथार्थ धर्म प्राप्त करूँ, इस आकांक्षा से जब तुमने मुझको उनके चरणों में अर्पित कर दिया, तब जहाँ जाकर रहने से मेरा कल्याण होगा, वही व्यवस्था तो वे करेंगे। ठाकुर कभी भी मुझको अपने संग से वंचित नहीं करेंगे। जहाँ भी रहूँ, वे मेरे साथ-साथ ही रहेंगे। अब प्रसन्न होकर सन्तोषपूर्वक तुम मुझे अनुमति नहीं दोगी तो मैं न इधर का रहूँगा, न ऊधर का; दोनों ही ओर से गया।

माँ– नहीं, नहीं। गोसाँईजी ने जब कहा है– गुरुवाक्य है; जाना ही होगा। फिर भी तू छोटा है, अकेले पहाड़ पर किस प्रकार रहेगा, सोचकर कष्ट होता है।

मैं– पहाड़ पर मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। मेरी सारी व्यवस्था गोसाँईजी ने वहाँ पर कर रखी है। लोकालय पास में है। भिक्षा की कोई असुविधा नहीं होगी। भोजन बहुत मिलेगा। उसकी चिन्ता मत करो।

माँ– अच्छा, वहाँ जाकर किस अवस्था में रहेगा, बीच-बीच में पत्र लिखना। गोसाँई जैसा कहें, वैसा चलना। मैं आशीर्वाद देती हूँ, तेरी मनोकामना पूर्ण होगी।

माताजी की अनुमति पाकर मैं ढाका के लिए निकल पड़ा। घर में रोना-धोना मच गया। माँ ने सबको धमकाकर चुप कराया। कहा– 'जाने के समय में आँसू नहीं गिराना चाहिए; अशुभ लक्षण है, इससे अमंगल होता है।'

मदनोत्सव में महाविष्णु का संकीर्तन– ठाकुर की प्रसन्नता : दीक्षा

गेण्डारिया आश्रम में आकर देखा, आश्रम लोगों से परिपूर्ण है। बंगाल के विभिन्न जिलों से गुरुभाई लोग ठाकुर का दर्शन करने आए हैं। हर्षोल्लास से सभी का मुख प्रफुल्लित है। संसार की ज्वाला-यन्त्रणा भूलकर सभी ठाकुर को लेकर आनन्द मना रहे हैं। गेण्डारिया के लड़कों ने इस बार भी माता ठाकुरानी के मन्दिर को फूल-पत्तों से सजाया। माता को विविध प्रकार से सजाकर आनन्द में मग्न हैं। ठाकुर भी लड़कों के आनन्द में प्रसन्नता व्यक्त करके सभी का उत्साह बढ़ाने लगे। अपराह्न में शहर से अनेक लोग ठाकुर का दर्शन करने आए। संध्या होने के पहले संकीर्तन आरम्भ हो गया। पता नहीं क्यों, आज संकीर्तन उतना जमा नहीं। बीच-बीच में ठाकुर बेचैनी व्यक्त करने लगे। इसी समय भागलपुर से महाविष्णु यति आए। वे अपना सामान मेरे आसन के पास रखकर आम के पेड़ के नीचे

संकीर्तन-स्थल पर आ गए एवं कुटीर के द्वार से ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े रहे। ठाकुर को सतृष्ण दृष्टि से देखने लगे। दो-तीन मिनट के बाद ही अवसर पाकर विष्णु बाबू मदनोत्सव का स्व-रचित बंगला गीत गाने लगे। ठाकुर गाने का प्रथम चरण सुनते ही आसन से उछल पड़े; **'जय राधे, श्री राधे'** कहते-कहते वे आम के पेड़ के नीचे आकर नृत्य करने लगे। ठाकुर के मनोहर नृत्य से सबके भीतर आनन्द और उत्साह का संचार हुआ। गुरुभाई लोग ताली बजाकर नृत्य करते-करते ठाकुर को घेरकर विष्णु बाबू के साथ गाने लगे (भावार्थ)–

चल रे सखी सजाएँगे आज, श्रीगोविन्द को कस्तुरी से।
मन की आस मिटा ले सब आज, बाँधेंगे आज प्राणसखा को हृदय में रे।।

आ रे ललिता, चली रे चम्पकलता, प्राणसखा बुलाते है विशाखा आ रे।
आओ रे तोता मैना, सब छोड़कर, खेलेंगे होली हरि के साथ।।

चन्द्र पर ढाले प्रेम, हँस हँसकर चाँदनी सारी।
कोयल कूके डोले पवन रे, अरे सुनो बंसी बुला रही रे।।

बकुल बेली जूही मालती, चमेली चम्पा कनक ज्योति।
तमाल फूल उठा सारे, देंगे सखा के गले में रे।।

आओ आओ जितनी ग्वालिनी बालाओं, अबीर चन्दन लाओ थाल भर के।
खिलाएँगे गोपन में सखा को, खीर मक्खन मलाई बाँधो जतन से रे।।

हाथ से हाथ पकड़कर नाथ को घेरकर, नाचेंगे गाएँगे सब सखी मिलकर।
निहारेंगे उसको मन प्राण भरकर, खड़े होएँगे बायीं ओर गले पकड़कर।।

बहेंगे हरिदास नयन जल में, लोटेंगे गोपियों के चरणों में।
कहे ब्रजबाला वह किशन-कन्हैया, दिखाएँगे इस बार तुमको रे।।
(दिखाएँगे इस बार तुमको रे।।)

आज ठाकुर मधुर भाव में उन्मत्त होकर अपूर्व नृत्य करने लगे। उन्हें विभिन्न प्रकार से अंग संचालनपूर्वक नृत्य करते हुए देखकर दर्शक मण्डली मुग्ध हो गई। इस समय ठाकुर बीच-बीच में विष्णु बाबू को बारम्बार अपनी छाती से लगाने लगे। चारों ओर क्रन्दन का कोलाहल होने लगा। बहुत समय के बाद संकीर्तन रुका। गुरुभाइयों के भाव की उमंग किन्तु बढ़ने लगी। ठाकुर को देखते-देखते कई लोग अचेत हो गए। कुछ लोग भयंकर यन्त्रणा व्यक्त करते हुए हाथ-पैर पटकने लगे। ठाकुर बार-बार हाथ हिलाकर **'गाओ, आनन्द से गाओ, आनन्द से गाओ'** कहने लगे। विष्णु बाबू नृत्य करते-करते मधुर स्वर में गाने लगे–

आज होली खेलूँगी श्याम तुम्हारे संग,
अकेली पाई हूँ तुम्हें निधुवन में।

सुनो हे किसन, हम तोड़ेगे तुम्हारा रसियापन,
कुंकुम फेकेंगे तुम्हारे रक्तवर्ण चरणों में।।

इस समय चारों ओर से रंग-गुलाल गिरने लगे। ठाकुर के पदाश्रित सभी अपनी इच्छानुसार ठाकुर के श्रीअंग में गुलाल डालने लगे। ठाकुर भी **'जय राधे, श्रीराधे'** कहकर सबके शरीर में गुलाल लगाने लगे। मदनोत्सव के मधुर संकीर्तन में आज सभी उन्मत्त हो गए। रात लगभग 11 बजे तक इस प्रकार आनन्द करके ठाकुर अपने आसन पर आ गए। कुछ क्षण विश्राम करने के बाद उन्होंने पूछा– **"आज गान किसने किया?"** मैंने तुरन्त कह दिया– महाविष्णु बाबू भागलपुर से दीक्षा लेने आए हैं, उन्होंने ही गान किया। ठाकुर ने सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा– **"कल प्रातः उनकी दीक्षा होगी, उनसे कह दो।"** मैं विष्णु बाबू को दीक्षा का संवाद देकर रात 12 बजे एकरामपुर गया। सजनी के घर जाकर उसको प्रातः गेण्डारिया जाने हेतु कहकर आ गया। सजनी दीक्षा लेने के लिए बहुत व्यग्र है।

8 मार्च, बुधवार। प्रातःकाल में सजनी आश्रम पहुँच गया। ठाकुर से उसकी दीक्षा की बात कहने पर ठाकुर ने पूछा– **"तुम्हारे भैया की अनुमति है तो? अभिभावक की अनुमति के बिना तो दीक्षा नहीं होती।"** मैंने उनसे कहा– भैया को इससे प्रसन्नता ही होगी। फिर अभी उनकी अनुमति किस प्रकार लूँगा?

ठाकुर– **'ठीक है, तुम भी तो उसके अभिभावक हो। वह तुम्हारी अनुमति से ही हो जाएगी।'** यह कहकर उन्होंने महाविष्णु बाबू के साथ ही सजनी की दीक्षा होने की बात कही। सजनी और महाविष्णु बाबू नदी में स्नान करने गए। ठाकुर चाय पीने के बाद बार-बार उनके बारे में पूछने लगे। मैंने कहा– चाय पीने के बाद दीक्षा होगी सुनकर वे लोग निश्चिन्त हैं। ठाकुर ने कहा– **"दीक्षा का एक शुभ मुहूर्त है। वह समय बीत जाने से ठीक नहीं होता।"** यह बात सुनते ही हम लोग दौड़कर उनको बुलाकर ले लाए। 9 बजे दीक्षा हुई। ठाकुर साधारणतः जो मन्त्र दिया करते हैं, उन लोगों को वह मन्त्र नहीं दिए। सजनी को जो मन्त्र मिला है, वह मन्त्र हमारे परिवार में किसी को भी नहीं मिला। अब तक भिन्न-भिन्न तीन मन्त्र हमारे परिवार में दिए हैं। सजनी की दीक्षा से मैं बड़ा निश्चिन्त हो गया।

महाविष्णु बाबू के साथ झगड़ाः संध्या करने हेतु ठाकुर का आदेश

मध्याह्न में भागवत पाठ के बाद ठाकुर के पास बैठा हूँ, विष्णु बाबू वहाँ आए। नाना प्रसंग में बातें करते-करते उन्होंने ठाकुर से पूछा– 'ब्राह्मण के लड़के हैं, लेकिन ये लोग कोई संध्या क्यों नहीं करते? आपने क्या इनको संध्या करने के

लिए मना किया है? लोग इनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की आलोचना करते हैं, सुनकर कष्ट होता है; परन्तु इनसे कुछ कह नहीं पाता, क्योंकि ये लोग कहते हैं– ये सब हमारे लिए आवश्यक नहीं है; ठाकुर ने संध्या करने के लिए नहीं कहा।'

ठाकुर ने कहा– **"क्यों? दीक्षा देते समय तो पहले ही कह देता हूँ– देशगत, समाजगत और कुल-परम्परा की रीति-नीति, आचार-पद्धति सब यथावत् मानते हुए साधना-पथ पर चलना। वर्णाश्रम धर्म का पालन करके चलना उचित है– सब समय तो कहता हूँ; ये लोग नहीं मानते, तो अब क्या किया जाए? फिर कहे अनुसार कौन चलता है?"**

मैं संध्या नहीं करता, इस कारण विष्णु बाबू भागलपुर में मेरे साथ प्रायः ही झगड़ा करते थे। ब्रह्मचर्य ग्रहण करके संध्या न करना बहुत बड़ा अपराध है, कहकर मुझको डराते थे। अब ठाकुर की बात से बल पाकर वे मुझ पर चढ़ बैठे। उन्होंने कहा– 'क्यों ब्रह्मचारी! तुम संध्या क्यों नहीं करते? ठाकुर ने तो तुमको मना नहीं किया?' ठाकुर के सामने विष्णु बाबू की बात से मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया; किन्तु विष्णु बाबू का मुँह बन्द करने के लिए ठाकुर के सामने ही तर्क करने लगा। मैंने कहा– संध्या करता हूँ या नहीं, तुमने कैसे जाना? संध्या तो मन्त्र है, उसका मूल सद्‌गुरु का वाक्य है। ठाकुर के आदेशानुसार चलने का प्रयास कर रहा हूँ, और तुम कहते हो, मैं संध्या नहीं करता? कैसी बात है?

विष्णु बाबू– तुम्हारे उपनयन के समय जो वैदिक संध्या का उपदेश मिला, उसे तुम करते हो?

मैं– उस दीक्षा को तो मैं दीक्षा ही नहीं मानता। ब्राह्म-समाज में प्रवेश करके उसे तो बिल्कुल ही छोड़ दिया। फिर अब ब्रह्मचर्य लिया हूँ। इस ब्रह्मचर्य में जो-जो आदेश हैं, उसके ही प्रतिपालन का यथासाध्य प्रयास कर रहा हूँ; और तुम अकारण ही कहते हो कि मैं संध्या नहीं करता? तुम तो बड़े भयानक व्यक्ति हो! हमारे झगड़े को शान्त करते हुए ठाकुर ने मुझसे कहा– **"जनेऊ रहने से संध्या करनी पड़ती है। संध्या ब्राह्मणों का अनिवार्य कर्त्तव्य है– नित्यकर्म है। प्रतिदिन संध्या करना– उपकार होगा।"** ठाकुर की यह बात सुनते ही मानो मेरा सिर चकरा गया। मैंने कहा– संध्या-फंध्या मैं नहीं कर पाऊँगा। जो कहा है, वह तो कर नहीं पाता, ऊपर से संध्या करूँ?

महाविष्णु– 'अरे, संध्या न करना पाप है। संध्या करने में इतना भय क्यों?'

मैंने चिढ़कर कहा– तुम चुप रहो। पाप-पुण्य को मैं नहीं मानता। वह सब विचार करने वाले कर्त्ता एक हैं। गायत्री-जप से ही सब हो जाता है– जानते हो?

ठाकुर ने मुझसे कहा– **"नहीं, नहीं, तुम संध्या करना। संध्या करने**

से उपकार होगा; केवल गायत्री-जप से ठीक नहीं होता।"

मैं– हाँ, जितना बोझा हो सके, मेरे ऊपर चढ़ा दीजिए। जिन सब नित्यकर्मों से मुझे बाँध दिए हैं, उसे ठीक प्रकार से करने में प्रातः से दोपहर तक सात-आठ घण्टे लग जाते हैं। इसके ऊपर त्रिसंध्या करने से मेरा तो दम निकल जाएगा। आदेश होने से तो करना ही होगा। वह सब मुझसे मत कहिए।

ठाकुर ने कहा– **"ब्राह्मणों के लिए संध्या अत्यन्त आवश्यक है। संध्या प्रतिदिन करो, उपकार होगा।"**

मैं– जिस समय बैठकर संध्या करूँगा, उस समय में इष्ट-मन्त्र का जप करने से तो और भी अधिक उपकार होगा?

ठाकुर– **नहीं, संध्या करने से इष्ट-मन्त्र का जप करने के समान ही उपकार होगा।**

मैं– संध्या करने से जब इष्ट-मन्त्र का जप करने के समान फल होता है, तब जप करने से ही तो हो गया। फिर संध्या का क्या प्रयोजन है?

ठाकुर– **प्रयोजन है। हमारे इस साधन में ही लोगों की शीघ्र वैसी उन्नति देखी नहीं जाती, उसका कारण है, क्षेत्र सब नष्ट हो गए हैं। ऋषियों के समय ब्रह्मचर्यादि आश्रम के अनुयायी नित्यकर्म के अनुष्ठान द्वारा अपना क्षेत्र बिल्कुल पवित्र कर लेते थे। फिर इस पारमहंस-धर्म को ग्रहण करते थे। इसलिए फल भी बहुत शीघ्र प्राप्त होता था।**

ठाकुर की बात सुनकर मैं 'भाग्य का ही भोग है' सोचकर चुप रह गया। अन्य समय में एकान्त पाकर ठाकुर से पूछा– कई लोग कहते हैं, गुरु स्वयं यदि कुछ कहें, तो फिर उनका आदेश है। लोगों की बातों पर जो कहते हैं, वह वास्तव में उनका आदेश नहीं है। मुझको एक हजार गायत्री-जप करने के लिए कहा है, मैं वही करता हूँ। मुझे लगता है, विष्णु बाबू की बात में समर्थन देते हुए वह सब बातें आपने मुझसे कही है। जिसके लिए जो आवश्यक कर्त्तव्य है, दीक्षा के समय ही तो कह देते हैं। दीक्षा के समय तो संध्या की बात आपने नहीं कही?

ठाकुर ने थोड़ा विरक्तिपूर्वक कहा– **"खाने के बाद हाथ-मुँह धोना, हगने के बाद सौंचना, ये सब बातें भी क्या दीक्षा के समय कहनी होगी? जो अनिवार्य नित्यकर्म हैं, उसे तो करोगे ही। प्रत्येक का नाम उल्लेख करके न कहें, तो उसे नहीं करोगे? शास्त्र-सदाचार के अनुसार चलना, यह बात तो कही जाती है।"**

मैं फिर कुछ कहने का साहस नहीं कर पाया। लाचार होकर ठाकुर के आदेशानुसार संध्या करने का निश्चय किया।

मैं– संध्या न करने से क्या कुछ नहीं होगा? हम लोगों के बीच फिर कितने लोग संध्या करते हैं?

ठाकुर– **व्रत भिन्न-भिन्न हैं। जो गृहस्थ हैं, उनका एक प्रकार का है; फिर सारा जीवन जो लोग धर्म लेकर रहेंगे, उनका अन्य प्रकार का है। तुम्हें धर्म लेकर ही जीवन यापन करना होगा। अतएव नित्यकर्म का कुछ भी तुम्हारे छोड़ने से नहीं चलेगा। संध्या करने में कोई कठिनाई नहीं है। कुछ दिन अभ्यास करने से ही हो जाएगा। फिर उससे आनन्द मिलेगा, उपकार भी होगा।**

मैंने कहा– इतने समय तक मैं समझा नहीं। अब लग रहा है, संध्या का नियम देकर आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। लगातार श्वास-प्रश्वास में नाम जपना बहुत कठिन है। बहुत प्रयास करके देखा, नहीं होता; लेकिन पूजा-अर्चना, होम-पाठ इत्यादि भिन्न-भिन्न कार्यों में आनन्दपूर्वक सहज में दिन बीत जाता है। इनमें समय बिताना और श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करके समय बिताने का फल यदि ठीक एक ही होता है, तो आपने ये सब काम देकर मुझ पर बड़ी कृपा की!

ठाकुर– **हाँ, जो कहा है, वही करना। संध्या, होम, गायत्री, पाठादि, ये सब करने से तुम्हारा नाम-जप करने के समान ही उपकार होगा।**

मैं– संध्या में तो नाना प्रकार के रूप का ध्यान करना पड़ता है, उन सब चतुर्भुज, रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण का ध्यान मैं नहीं कर पाऊँगा, वह सब मुझसे बिल्कुल नहीं बनता। मैं इष्ट देवता के रूप को अपने भीतर रखकर संध्या के मन्त्र का केवल उच्चारण करता जाऊँगा और उस मन्त्र को अपने ठाकुर की ही स्तुति, उनका ही रूप का वर्णन समझूँगा। इस प्रकार करने से होगा तो?

ठाकुर– **हाँ, वही करना। उससे ही हो जाएगा।**

मैं– शालग्राम तो मुझे मिला नहीं। यदि मिल जाए, तो किस प्रकार अभिषेक और पूजा करूँगा?

ठाकुर– **गायत्री-जप से अभिषेक और शास्त्रोक्त प्रणाली के अनुसार उनकी पूजा करना। शालग्राम की 'पूजा-पद्धति' मिलती है, खरीद लेना।**

मैं– शालग्राम को क्या सर्वदा साथ में रखना होगा या किसी निर्दिष्ट स्थान में रखूँगा?

ठाकुर– **शालग्राम को सर्वदा साथ में रखना। छोटा कण्ठ-शालग्राम मिलता है। उसे डिबिया में डालकर अपने साथ-साथ ही रखना चाहिए। साधु लोग उसे गले में लटकाकर रखते हैं।**

मैं– सुना है, इस बार सम्भवतः मेरी बहुत परीक्षा होगी। साथ-साथ चिमटे की मार खानी पड़गी। फिर चिमटे की मार खिलाने के लिए दूर क्यों कर रहे हैं। आप ही चिमटा मारकर साथ में रख सकते हैं। मैं क्या परीक्षा के योग्य हुआ हूँ? फिर मेरी परीक्षा किसलिए?

ठाकुर– **आसन पर स्थिर रहना, कोई डर नहीं है। साधु-संन्यासियों के साथ तर्क-वितर्क और झगड़ा-विवाद करने से ही चिमटे की मार खानी पड़ती है।**

मैं– पहाड़ में रहने की यदि कोई असुविधा होती है, तो पहाड़ के पास रह सकता हूँ या नहीं?

ठाकुर– **बिल्कुल रह सकते हो। हरिद्वार जाकर जहाँ अच्छा लगे, वहीं रहना। उससे ही पहाड़ में रहना हो जाएगा।**

मैं– आपको देखने की यदि बहुत इच्छा हो, तब क्या करूँगा?

ठाकुर– **जब वैसी इच्छा होगी, चले आना। बीच-बीच में चिट्ठी भी लिख सकते हो।**

मैं– हरिद्वार जाने का खर्च क्या यहाँ से ही संग्रह कर लूँगा?

ठाकुर– **नहीं, ग्वालन्द तक जाने का किराया यहाँ से ले जाना। फिर सारी व्यवस्था मार्ग में ही हो जाएगी।**

ठाकुर की बात सुनकर मैं निश्चिन्त हो गया। हरिद्वार जाने के लिए बेचैन हो उठा।

अभय-कवच की प्राप्ति: ठाकुर का आशीर्वाद– कोई डर नहीं

11 मार्च, शनिवार। कल प्रातः हरिद्वार जाने का निश्चय करके ठाकुर को बतलाया। ठाकुर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अनुमति देकर मुझे आशीर्वाद दिया। एक अच्छा स्वप्न देखा हूँ, यह बतलाने पर ठाकुर ने उसे सुनना चाहा। मैंने कहा– पहाड़ जाने के लिए तैयार होकर विदा लेने हेतु जब आपके चरणों में प्रणाम किया, आपने एक धागा मेरे दाहिने बाहु में बाँधते हुए कहा– **'तुमको यह अभय-कवच दे रहा हूँ, पहाड़ में जहाँ इच्छा हो जाकर रहो– अब कोई डर नहीं है।'** आपका यह आशीर्वचन सुनते ही मैं जाग गया। स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर ठाकुर ने सन्तुष्ट होकर कहा– **"ठीक देखे हो, बेधड़क जाओ, कोई डर नहीं।"**

ग्वालन्द में सिपाही की डाँट: कुली के डिपो में रोके रखना ठाकुर की अद्भुत व्यवस्था

आज मैं दिनभर ठाकुर के पास ही बैठा रहा। ठाकुर क्षण-क्षण में ममतापूर्ण स्निग्ध दृष्टि से मुझको मुग्ध करने लगे। आज सारा दिन मैंने रो-रोकर बिताया। फिर भोजन के बाद रात्रि में 11 बजे मैं दक्षिण ओर के कमरे में जाकर सो गया। रात्रि के अन्तिम प्रहर में ठाकुर ने मुझको उठाने के लिए योगजीवन को भेजा। योगजीवन के पुकारने से उठ गया। शौचादि सम्पन्न करके, ठाकुर को साष्टांग प्रणाम करके दोलाईगंज स्टेशन के लिए निकल पड़ा। चार-पाँच गुरुभाई मेरे साथ स्टेशन गए। आश्रम का कुत्ता कालू बार-बार आकर मेरे पैरों पर लोटने लगा। कालू स्टेशन तक साथ-साथ आया। गाड़ी में चढ़ने के बाद कालू भौंकने लगा। प्रातःकाल में नारायणगंज पहुँचकर ग्वालन्द के स्टीमर में चढ़ गया। संध्या के बाद ग्वालन्द पहुँचा। सामान लेकर स्टेशन में उतरकर सोचने लगा– अब कहाँ जाऊँ? आसन, कम्बल, झोला, लोटा लेकर पाँच मिनट भी चल सकूँ, शरीर में ऐसी क्षमता नहीं है। इधर हाथ में पैसे नहीं, कुली की सहायता लेने का भी उपाय नहीं है। फिर जाऊँगा भी कहाँ? स्टेशन के थोड़े ही दूर में विस्तृत मैदान के किनारे एक बड़ा पेड़ देखकर उसी के नीचे जाकर आसन लगा लिया एवं निरुपाय होकर एकाग्र मन से ठाकुर को स्मरण करने लगा। रात्रि लगभग 9 बजे एक लम्बा-चौड़ा हिन्दी भाषी सिपाही मेरे पास आकर मुझको धमकाकर कहा– 'कौन है रे तू? कितना माल चोरी किया है?' मैं उसकी बात का कोई उत्तर न देकर चुप रहा। सिपाही ने मुझसे कहा– 'चल, मेरे साथ चल।' मैं सामान सिर पर उठाकर उसके पीछे-पीछे चलते हुए कुली के विशाल डिपो में पहुँच गया। सिपाही मुझे एक कमरे के बरामदे में छोड़कर चला गया। लगभग आधे घण्टे बाद एक बाबू आकर मेरा नाम-धाम, परिचय पूछने लगे। उसके बाद उन्होंने मुझसे कहा– 'मेरे साथ आइए।' एक कुली मेरा आसन, कम्बल आदि सिर पर उठाकर मेरे साथ-साथ चलने लगा। मैं बाबू के साथ उनके घर में प्रवेश किया। घर पहुँचते ही उन्होंने अपनी पत्नी को उच्च स्वर में पुकारकर कहा– 'कहाँ हो! शीघ्र आओ। आकर देखो, तुम्हारे लिए एक अच्छा कुली पकड़कर लाया हूँ।' महिला दूर से मुझको देखते ही दौड़ते हुए आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ी; उसने मुझे प्रणाम करके बड़े विस्मय के साथ कहा– 'ये क्या भैया! आप यहाँ अचानक कहाँ से आए? मुझे पहचान रहे हो? मैं आपकी बहिन प्रवासिनी!' मैं अपनी फुफेरी बहिन को वहाँ देखकर चकित हो गया। प्रवासिनी ने बड़े उत्साह के साथ मेरे रहने की अच्छी व्यवस्था करके शीघ्र ही भोजन बनाने का जुगाड़ कर दिया। खिचड़ी बनाकर भोजन करने के बाद उन

लोगों के साथ कुछ क्षण बातचीत करके थका हुआ होने के कारण मैं सो गया। दूसरे दिन मेरी सारी खबर जानकर बहिन ने पति से कहा– 'भैया के हाथ में एक पैसा नहीं है। जिससे कोलकाता आराम से पहुँच सकें, ऐसी व्यवस्था कर दीजिए।' ठीक समय में उन्होंने इन्टरक्लास का एक टिकट लेकर मुझे गाड़ी में बैठा दिया। मैं दूसरे दिन प्रातःकाल में सियालदह पहुँचकर स्वेच्छा से भाँजे के घर में ठहरा। छोटे भैया भी अभी यहीं रहते हैं। तीन-चार दिन मुझे कोलकाता में रुकना पड़ा।

कोलकाता में ये कुछ दिन गुरुभाइयों के साथ मैंने बड़े आनन्द से बिताया। प्रायः 10 बजे तक आसन का कार्य करके अभयनारायण राय जी के घर जाता था। वहाँ अपराह्न 4 बजे तक एकान्त में रहकर फिर भिक्षा के लिए बाहर निकलता था। रात्रि में भाँजे के घर में ही रहना हुआ।

तारकनाथ का दर्शन: संकट: आश्चर्यजनक रूप से गया पहुँचना

13 मार्च, सोमवार। बाबा तारकनाथ को देखने के लिए मन बेचैन हो उठा। मैंने तारकेश्वर जाने का निश्चय किया। मेरा अभिप्राय जानकर छोटे भैया ने मेरा तारकेश्वर का टिकट बना दिया। संध्या के समय तारकेश्वर पहुँचा। कहाँ जाऊँगा, कहाँ रहूँगा, कोई ठीक नहीं है। थोड़ा चिन्तित हो गया। तारकेश्वर मन्दिर के पास ही किसी स्थान पर पड़ा रहूँगा, सोचकर गाड़ी से उतरा। स्टेशन से बाहर निकलते समय एक व्यक्ति ने आकर कहा– 'बाबाजी! स्टेशन मास्टरजी ने आपसे अनुरोध किया है कि आप वहाँ पर आकर उन्हें दर्शन दें।' मैं उसके साथ स्टेशन मास्टर के कमरे में गया। स्टेशन मास्टरजी ने मुझे बड़े आदर के साथ बैठाया। बहुत समय तक धर्म के विषय में बातचीत करके वे बड़े सन्तुष्ट हुए। रात्रि में लगभग 10 बजे वे मेरे लिए अधिक परिमाण में मिठाइयाँ एवं गरम दूध ले आए। खाने के बाद द्वितीय श्रेणी के प्रतीक्षालय के एक कमरे में उन्होंने अच्छी व्यवस्था कर दी। बड़े आराम से सोया। प्रातःकाल उठकर स्टेशन मास्टर के एक व्यक्ति के साथ मन्दिर के पास पहुँचा। भाग्यवश भगवान् की आरती का दर्शन हो गया। स्नान के बाद तारकेश्वरनाथ की पूजा करने का निश्चय करके मन्दिर के पास तालाब के किनारे जाकर बैठ गया। थोड़े समय के भीतर ही महामाया का प्रभाव देखकर चकित हो गया। 'नमस्तस्यै-नमस्तस्यै' कहते हुए स्नान-तर्पण करके मन्दिर में गया। तारकेश्वर को जल और विल्बपत्र चढ़ाकर इच्छानुसार पूजा की। फिर मन्दिर से बाहर निकलकर सोचने लगा– अब कहाँ जाऊँ? ठीक इसी समय एक सज्जन ने मुझसे कहा– 'बाबाजी! दया करके आप एक बार मेरे घर चलिए।' मैं उनके साथ उनके घर गया। वे मेरे लिए होम का प्रबन्ध करके नाना प्रकार के

फल, मिठाई, दूध लाकर रख दिए। तृप्तिपूर्वक आहार करके स्टेशन पहुँच गया। किसी प्रकार अब रानीगंज पहुँच जाने से वहाँ गुरुभाई श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त के साथ भेंट होगी। तब उनसे हरिद्वार तक पहुँचने का रेल का किराया मिल जाएगा, इस प्रत्याशा से रानीगंज जाने की इच्छा हुई। वैद्यनाथ जाने की मेरी इच्छा है, यह सोचकर स्टेशन मास्टर ने अयाचित रूप से मेरे लिए एक टिकट बना दिया। मैंने वैद्यनाथ की यात्रा की।

15 मार्च, बुधवार। रात 9 बजे रानीगंज पहुँचा। गुरुभाई श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त रानीगंज में हैं, यह सोचकर वहाँ उतर गया। उनका डेरा खाड़सुली बाजार में है। दो-तीन लोगों से पूछने पर उन्होंने कहा– 'वह डेरा लगभग एक कोस दूर है– इस रास्ते से चले जाओ।' मैं आसन, झोलादि कन्धे में लेकर अन्धकार रात्रि में अकेले ही उस रास्ते पर चल पड़ा। बहुत दूर तक चलने के बाद हैरान हो गया। तब किसी व्यक्ति के घर के चबूतरे पर आसन, झोला रखकर विश्राम करने लगा। घर के एक सज्जन ने बाहर आकर मेरा परिचय पूछा। मैंने उनसे देवेन बाबू के डेरे का ठिकाना पूछकर अपना परिचय दिया। उन्होंने बड़े आदरपूर्वक मुझे कमरे में ले जाकर बैठाया एवं कहा– 'यह डेरा देवेन्द्र बाबू का ही है।' देवेन भैया मेरा पत्र पाकर भी किसी विशेष कार्य से वर्द्धमान गए हैं एवं चार-पाँच दिन वहाँ रहेंगे। यह सुनकर मेरे सिर पर मानो बिजली गिर पड़ी। देवेन भैया के साथ भेंट होने से हरिद्वार तक जाने की सहज में अच्छी व्यवस्था हो जाएगी, केवल इसी आशा से मैं यहाँ आया हूँ; किन्तु हाय! यह क्या सर्वनाश हो गया! एक स्टेशन जाने का भी प्रबन्ध नहीं है, अब कहाँ जाऊँ? दुश्चिन्ता और अनिद्रा में सारी रात बीत गई। वे सज्जन मेरा बड़ा आदर-सत्कार करने लगे। प्रातः उठकर स्नान करके नियम से होम, पाठ व न्यासादि किया। डेरे के कुछ सज्जन मेरी नित्य-क्रिया देखकर खूब आनन्दित होकर मुझे कुछ-कुछ प्रणामी दिए एवं मेरी चरण-धूलि लेकर चले गए। मैंने हिसाब करके देखा, ठाकुर ने इस प्रकार से मुझ पर कृपा करके ठीक गया तक पहुँचने का किराया जुटा दिया। हरिद्वार जाते समय गया के आकाशगंगा पहाड़ पर रघुबर बाबाजी के साथ भेंट करके जाने के लिए ठाकुर ने कहा था। मैं यथासमय स्टेशन पहुँचकर एक टिकट लेकर गया के लिए रवाना हो गया।

गया में रहने की अच्छी व्यवस्था

17 मार्च, शुक्रवार। अधिक रात में वास्तिकपुर स्टेशन पर उतरा। स्टेशन के बरामदे में अन्यान्य यात्रियों के साथ रात बिताई। रात्रि में बहुत भूख लग रही थी, साधु का वेश देखकर एक हिन्दी भाषी व्यक्ति ने अपने-आप ही आधा पाव पूरी और मिठाइयाँ लाकर मुझे खाने के लिए दी। फिर तृप्तिपूर्वक उसे खाकर मैं सो गया।

प्रातः गया की ट्रेन आने पर उसमें चढ़कर लगभग 9 बजे गया पहुँचा। सुना था, श्रद्धेय गुरुभाई श्री मनोरंजन गुह ठाकुरता जी गया में ही हैं; परन्तु उनका ठिकाना कहाँ है, पता नहीं। अनजान शहर में उनका मकान ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गया। चान-चौराहा नामक स्थान पर आकर एक बंगाली युवक को देखकर उनसे मनोरंजन बाबू के घर का ठिकाना पूछा। वे सज्जन मुझको बहुत थका हुआ देखकर अपने घर ले गए एवं कुछ समय विश्राम करके मेरी थकान दूर होने पर उन्होंने मुझको उस घर तक पहुँचा देने की बात कही। थोड़े समय के भीतर ही उस घर के सभी ने मेरे साथ खूब घनिष्ठता कर ली एवं आदरपूर्वक मेरे स्नान, संध्या-तर्पण और होम आदि की व्यवस्था कर दी। बाहर के एक एकान्त कमरे में मेरे रहने की व्यवस्था हुई। मैं जितने दिन गया में रहूँ, जिससे इस घर में ही आसन लगाऊँ, उसके लिए ये लोग बड़ी जिद करने लगे। अन्त में मैं इस प्रस्ताव में सहमत हो गया। श्री हीरालाल, मोतीलाल, कृष्णलाल, और नन्दलाल बाबू ठीक सगे भाइयों की भाँति मेरे साथ स्नेहपूर्वक व्यवहार करने लगे। अँग्रेजी-शिक्षित और जाति में कायस्थ होने पर भी इनका आचार-व्यवहार सदाचारी ब्राह्मणों जैसा है। इन लोगों की आन्तिरिक सेवा से थोड़े समय के भीतर ही मैं बहुत मुग्ध हो गया। सदा कोई-न-कोई मेरे पास रहते। प्रातः चाय पीने के बाद से लेकर भोजन के बाद निद्रित न होने तक ये लोग मेरे पास रहकर आवश्यकतानुसार सेवा करने लगे। इसे अपने ठाकुर की असीम कृपा मानकर मैं विस्मित और मुग्ध होने लगा। निरुपाय होकर ठाकुर पर छोड़ देने से वे किस प्रकार समस्त व्यवस्था करते हैं, यही देखने योग्य है।

गया में आकाशगंगा पहाड़ : रघुबरदास बाबाजी : शेष-चक्र संग्रह

सायंकाल नन्दलाल बाबू के साथ आकाशगंगा पहाड़ गया। सिद्ध रघुबर बाबाजी का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। मेरा परिचय पाकर उन्होंने बड़े आदर के साथ बैठाया एवं आश्रम दिखलाया। प्रायः 1500-1800 घन फीट समतल भूमि पर आश्रम स्थित है। गोदावरी नदी के रास्ते से तीन-चार मिनट उत्तर की ओर चलने पर बायीं ओर मुरली और दाहिनी ओर आकाशगंगा पहाड़ है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर दोनों पहाड़ के सन्धि-स्थल से आकाशगंगा पहाड़ के पश्चिम भाग पर स्थिति बाबाजी के आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ महावीरजी की विशाल मूर्ति देखकर प्रणाम किया। मूर्ति के सामने 10-12 फीट चौड़ा एवं 15-17 फीट लम्बा घिरा हुआ आँगन है। आँगन के पूर्व में, महावीरजी के दक्षिण-पूर्वी कोने पर बेल का पेड़ है। इस बेल के पेड़ के नीचे आँगन से लगभग डेढ़ फुट ऊँचा, छः फीट लम्बा एवं चार फीट चौड़ा एक स्वच्छ पत्थर उत्तर-दक्षिण लम्बायमान पड़ा है। बाबाजी ने कहा—

'दीक्षा प्राप्त करने के बाद भावोन्मत्त अवस्था में ठाकुर डोलते-डोलते बेल के पेड़ के नीचे आकर इसी पत्थर के ऊपर बैठे थे एवं 11 दिन, 11 रात्रि लगातार एक ही प्रकार से समाधि की अवस्था में वे इसी स्थान पर थे।' उस समय बाबाजी सर्वदा पास रहकर ठाकुर के शरीर की रक्षा करते थे। इस पत्थर से लगी हुई पूर्व दिशा में एक विशाल चट्टान है। इस चट्टान के नीचे एक बड़ी सुन्दर गुफा है। वह लगभग चार फीट चौड़ी एवं छः फीट लम्बी होगी। ठाकुर ने इस गुफा के भीतर बैठकर बहुत दिनों तक एकान्त साधना की थी।

आश्रम के उत्तर भाग में दो बड़े कमरे हैं। पूर्व ओर का कमरा बाबाजी का भण्डार-गृह है एवं उससे लगा हुआ पश्चिम में उनका आसन-गृह है; दोनों कमरों के सामने अर्थात् दक्षिण में लगभग पाँच फीट चौड़ा एवं 15-20 फीट लम्बा घिरा हुआ बरामदा है। इस बरामदे से लगा हुआ दक्षिण में अतिथि साधु-संन्यासियों के रहने के लिए एक बड़ा कमरा है, कमरे के दक्षिण ओर के बरामदे में ही महावीरजी प्रतिष्ठित हैं। आश्रम के पश्चिम ओर लगभग 25-30 फीट नीचे आकाशगंगा झरना एक कुण्ड को जल से परिपूर्ण रखते हुए कलकल ध्वनि के साथ नीचे की ओर प्रवाहित हो रहा है। आश्रम के दक्षिण में बेल के पेड़, पूर्व में वट व पीपल के एवं उत्तर में नीम के पेड़ ने छाते की भाँति पूरे आश्रम को आच्छादित करके रखा है। आश्रम में बैठकर पूरा गया शहर, विष्णु-पद मन्दिर और फल्गु नदी के दूसरे छोर में रामगया पहाड़ देख सकते हैं।

आश्रम के पूर्व दिशा में लगभग दो सौ फीट सीधा चढने पर ठाकुर के दीक्षा का स्थान है। सिर झुकाकर रखने के नियम के कारण वह मेरी दृष्टि नें नहीं पड़ा। पहाड़ के सामने और नीचे की ओर का सौन्दर्य देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगा। बाबाजी बेल के पेड़ के नीचे बैठाकर अनेक उपदेश देने लगे। उन्होंने मुझसे कहा– 'तुम्हें हरिद्वार के पहाड़ में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम इसी पहाड़ पर मेरे आश्रम में रहो, यहाँ रहकर निश्चिन्त होकर साधन-भजन करो। मैं भिक्षा करके लाऊँगा और तुम्हें खिलाऊँगा। मैं ही तुमको यहाँ ले आया हूँ। तुम्हारे गुरुजी को मैं सब संवाद दूँगा। वे इससे सन्तुष्ट ही होंगे।' मैंने कहा– उन्होंने मुझको साक्षात् रूप से जो आदेश दिया है, उनका दूसरा आदेश न मिलने तक मैं उसे ही करूँगा। मैंने हरिद्वार जाने का निश्चय किया है। बाबाजी ने कहा– 'अच्छा, अभी तुम जाओ, परन्तु इसके बाद मैं तुमको यहाँ लाऊँगा।' बाबाजी के समक्ष लक्षणयुक्त शालग्राम पाने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने नख के बराबर का सर्पांकित शिलाचक्र दिखलाकर मुझसे कहा– "यह बहुत उत्कृष्ट चक्र है। इच्छा होने से ले सकते हो। इसका नाम 'शेष' है। इस चक्र को नेपाल की नरसिंह नदी से लेकर आया था। उस नदी में तुलसी, चन्दन, पुष्प आदि द्वारा शालग्राम के उद्देश्य से पूजा करने

पर शालग्राम की मूर्ति (शिलाचक्र) पास आ जाती है। गमछा या वस्त्र बिछाकर रखने से वह उसके ऊपर आ जाती है; तब उठा लेना पड़ता है। किसी-किसी शालग्राम के भीतर स्वर्ण रहता है, ऊपर में चिह्न देखकर समझ सकते हैं। वहाँ के पहरा देने वाले कर्मी उसे निकाल लेते हैं; यह चक्र मैं स्वयं संग्रह करके लाया था। दुर्लभ वस्तु होने के कारण मैंने इतने समय से गुप्त रखा है।" बाबाजी की ये बातें मेरे मन को कुछ भी स्पर्श नहीं कर पाई। ऐसा लगा, काले पत्थर के ऊपर अच्छे कारीगर द्वारा सर्प की आकृति अंकित कर रखी है। बाबाजी के कहने पर शिला को साथ में ले आया। सिर झुकाकर रखने के कारण पहाड़ के अपूर्व दृश्य को देख नहीं पाया। बाबाजी को दण्डवत् प्रणाम करके नन्द बाबू के साथ घर आ गया।

घर की महिलाओं ने श्रद्धापूर्वक मेरे भोजन बनाने की सब व्यवस्था कर दी। दिन बीतने पर भोजन करके आराम से सो गया।

निराश्रित मनोरंजन बाबू: फल्गु नदी में स्नान

19 मार्च, रविवार। गुरुभाई श्री मनोरंजन गुह ठाकुरता जी गुरुदेव के आदेशानुसार सपरिवार गया में हैं। श्रद्धेय श्री रेवती बाबू, वेणी बाबू इत्यादि गुरुभाई भी साथ में रहते हैं। एक पैसा भी आय नहीं है, सम्पूर्ण आकाशवृत्ति के ऊपर निर्भर हैं। अनजान स्थान में अनेक पालित सदस्यों को लेकर निराश्रय अवस्था में जिस प्रकार वे दिन काट रहे हैं, वह सोचकर सिर चकरा जाता है। संसार में इस प्रकार का दृष्टान्त कहीं है या नहीं, पता नहीं। गया में आकर अभी तक उनके ठिकाने की कोई खोज-खबर नहीं मिली— उनसे भेंट भी नहीं हुई। आज उन्हें देखने की बड़ी इच्छा हुई; ठाकुर की कृपा से मनोरंजन बाबू लोगों से मेरी चर्चा सुनकर दिन में लगभग 8 बजे मुझसे मिलने आए। उन्होंने मुझसे कहा— 'फल्गु नदी में पानी आ गया है, चलो स्नान करके आते हैं। फल्गु गुप्त नदी है। इस समय कभी पानी देखा नहीं जाता। उत्तप्त बालू को थोड़ा खोदने से बर्फ की भाँति स्वच्छ शीतल जल से गड्ढा भर जाता है। सर्दी-ज्वर के भय से कोई इस पानी में स्नान नहीं करता।' नदी में पानी आने की बात सुनकर मनोरंजन बाबू के साथ स्नान करने गया। अत्यन्त ठण्डे पानी में बहुत समय तक रहकर मन भरकर स्नान-तर्पण किया। सुना है, फल्गु नदी में स्नान करने के बाद पितृ-पुरुषों के उद्देश्य से बालू का पिण्ड देना चाहिए। फिर विष्णु-पद में पिण्डदान करने से पितृ-पुरुषों का उद्धार हो जाता है। मैंने तीन मुट्ठी बालू लेकर पिता और पितृ-पुरुषों की तृप्ति के उद्देश्य से प्रदान किया। फिर विष्णु-पद में जाकर उनकी तृप्ति एवं कल्याण के लिए जल और तुलसी द्वारा पूजा करके मैं घर आ गया। हवन करने के बाद गरम चाय पीने से बड़ा आराम मिला।

सूक्ष्म तत्त्व– अतीन्द्रिय

अपराह्न में मुन्सिफ, सब-जज, वकील, सहायक अधिकारी इत्यादि कुछ सुशिक्षित सज्जन मुझको देखने आए। उन लोगों ने मुझसे पूछा– 'महाराज, विष्णु-पद में पिण्डदान करने से परलोकगत आत्माओं का जो कल्याण होता है, उसका क्या कोई प्रमाण है?' मैंने कहा– इस विषय में मैंने भी एक बार किसी महात्मा से पूछा था। उन्होंने कहा था– 'प्रमाण बहुत हैं; परन्तु उन सब प्रमाण को ग्रहण करने की योग्यता तो हम लोगों में नहीं है! सूक्ष्म पारलौकिक तत्त्व स्थूल जागतिक दृष्टान्त से किस प्रकार समझ में आएगा? अतीन्द्रिय विषय को हम इन्द्रियों द्वारा समझना चाहते हैं। ऐसा क्या कभी होता है?' मैंने उनसे कहा– इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वारस्वरूप हैं। जानने योग्य विषय क्या इस प्रकार हो सकते हैं, जो इन्द्रियों द्वारा समझ में नहीं आएँगे? उन्होंने कहा– "जिन्होंने कभी कोई वस्तु जीवन में नहीं देखी– जन्म से अन्धे हैं, उन्हें क्या दृष्टान्त द्वारा दृश्य वस्तु और विचित्र कलाकृति कोई समझा सकता है? हजारों बार कहने से भी वे दृश्य वस्तु के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं कर पाएँगे। जिह्वा, नासिका, कर्ण, त्वचा के समस्त विषय समझ पाएँगे, लेकिन वे आँखों से देखने वाली वस्तु के सम्बन्ध में बिल्कुल नहीं समझ पाएँगे। उसी प्रकार भगवान् के सृष्ट ऐसे अनेक विषय हैं, जिन्हें षष्ठ, सप्तम आदि इन्द्रियों के विकसित होने पर समझ सकते हैं। एकमात्र साधना के द्वारा ही वे सब इन्द्रियाँ प्रस्फुटित होती हैं। 'अतीन्द्रिय' का अर्थ है– हमारी पंच इन्द्रियों के अतीत।" इस समय एक साधु ने मेरी बात काटकर उन लोगों से कहा– 'साधना के बल से दैहिक आवरण भेद होने पर इस इन्द्रिय-शक्ति द्वारा भी साधक साधारण लोगों के न जानने योग्य कितने ही सूक्ष्म तत्त्व और पारलौकिक ज्ञान की उपलब्धि कर सकते हैं।' इस बात को लेकर उन सज्जनों के साथ साधु का वाद-विवाद चलने लगा, मैं भी बच गया। भगवान् की अनन्त सृष्टि, अनन्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा के चारों ओर अनन्त द्वार हैं। पंच-इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वारस्वरूप हैं, ऐसा होने से भी उनके द्वारा केवल स्थूल पंचभूत का ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। सूक्ष्म तत्त्व में प्रवेश करने का अधिकार नहीं मिलता। आज धर्मालोचना में दिन आनन्दपूर्वक बीता।

बुद्ध-गया का दर्शन

फल्गु नदी के ठण्डे पानी में बहुत समय तक स्नान किया था। उससे शरीर अस्वस्थ हो गया है। मनोरंजन बाबू मुझे बुद्ध-गया ले जाने हेतु आए हैं। हीरालाल बाबू ने कुछ गाड़ियाँ किराये पर ले ली; हम सभी दिन में लगभग 1 बजे बुद्ध-गया

के लिए निकल पड़े। रास्ते में मुझे ज्वर हो गया। सिर की पीड़ा से बेचैन हो उठा। घूम-फिरकर मन्दिर आदि कुछ देख नहीं पाया। ये सब मन्दिर एवं सरोवर आदि सैकड़ों वर्षों से बालू के नीचे दबे थे। कुछ वर्ष पूर्व सरकार ने इनका उद्धार किया। अभी भी कितनी ही वस्तुएँ भूमि के नीचे दबी पड़ी हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं किसी प्रकार से मन्दिर का दर्शन करके उसके पीछे की ओर बोधि-वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। एकाग्र मन से भगवान् बुद्ध को स्मरण करके नाम-जप करने से बड़ा आराम मिला। मन्दिर के परिक्रमा मार्ग की सीमा पर स्थित नये मन्दिर में बुद्धदेव की ध्यान-मग्न प्रशान्त मूर्ति को देखकर मैं तो मानो कृतार्थ ही हो गया। शरीर की अवस्था अत्यन्त पीड़ित लगने से शीघ्र घर लौट गया एवं तीव्र ज्वर से मैं शय्याशायी हो गया। घर के लोगों ने शहर से बड़े डॉक्टर को लाकर मेरी चिकित्सा की व्यवस्था की। पाँच-सात दिन के भीतर ही मैं स्वस्थ हो गया। अस्वस्थता के समय मोती बाबू मेरे पास रहते थे। ठाकुर की बातें सुनने में उनको बडा अच्छा लगता था। मैं उनसे ठाकुर की बातें कहता; इसके फलस्वरूप उन्होंने ठाकुर से दीक्षा लेने हेतु पत्र लिखा। पता चला, शीघ्र ही वे दीक्षा प्राप्त करेंगे।

साधु के आक्रोश से भूत का उपद्रव

मोती बाबू इत्यादि से उनके परिवार की एक दुर्घटना के विषय में सुनकर चकित हो गया। एक साधु के आक्रोश के कारण यह परिवार भूत के उपद्रव से बड़े ही संकट में पड़ गया था। साधु इनके घर में प्रायः ही भिक्षा लेने आते थे। निर्विघ्न भिक्षा मिल जाने से वे दो-एक दिन के अन्तर-अन्तर में आने लगे। इच्छानुसार वस्तु न मिलने पर अप्रसन्न होकर गालियाँ बकने लगते। एक दिन गृह-स्वामी ने उनके व्यवहार से तंग आकर दरबान से कहा– 'उसे बाहर निकालो, फिर कभी यहाँ न आए।' दरबान ने सम्भवतः थोड़ा अपमान करके घर से बाहर कर दिया। साधु अत्यन्त क्रुद्ध होकर, 'अरे पाखण्डी! साधु को नहीं मानता है? अच्छा, हम भी देख लेंगे,' यह कहकर 'नरसिंग, नरसिंग' चीत्कार करते हुए द्वार पर चिमटे से तीन बार प्रहार करके चले गए। इस घटना के बाद ही इस घर में भूत का बड़ा उपद्रव आरम्भ हो गया। संध्या के बाद घर के समस्त दरवाजे एवं खिड़कियाँ बन्द रहने पर भी अचानक धड़ाम-धड़ाम शब्द करके खुल जाते थे। दीपक, लालटेन आदि अचानक बुझ जाते; कमरे के भीतर कहीं से ईंट-पत्थर, धूल-बालू गिरा करते और भोजन के बर्तनों में विष्ठा, कूड़ा-करकट, हड्डी इत्यादि पता नहीं, कहाँ से आ जाते; ऐसी अवस्था में फिर कितने दिन रहा जा सकता है? बहुत चेष्टा करके भी कोई समाधान न कर पाने से अन्त में सब बाँकीपुर चले गए।

वहाँ पर भी ठीक इसी प्रकार का उपद्रव होने लगा। तब आरा में एक शक्तिशाली फकीर का पता पाकर वहाँ जा पहुँचे। फकीर साहब ने मन्त्र पढ़ते-पढ़ते शंख बजाकर भूत को भगा दिया। तब से वहाँ किसी प्रकार का उपद्रव फिर नहीं हुआ। यह घटना मुझे बड़ी आश्चर्यजनक लगी। ये ईट-पत्थर, कूड़ा-करकट, मैलादि कहाँ से किस प्रकार आते, कौन ये सब लाता, दरवाजा-खिड़कियाँ कौन बन्द करता, दीपकादि कैसे एक बार में बुझ जाते– प्रत्यक्ष करके भी कुछ समझ में नहीं आता। ये सब अलौकिक कार्य जिनके द्वारा सम्पादित होते हैं, साधक साधना के बल से उन सब परलोकगत आत्माओं पर अधिकार और शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं– यह और भी आश्चर्यजनक है।

ब्रजमोहन की अलौकिक रूप से दीक्षा

पाँच-छः दिन शय्यागत रहकर मैं स्वस्थ हो गया। रोग-मुक्त होते ही कुंज के पास जाने के लिए व्यग्र हो गया। मेरे हाथ में कुछ नहीं है जानकर बाबुओं ने आरा जाने तक का टिकट कर दिया। 28 मार्च, मंगलवार को कुंज के पास पहुँचा। कुंज के बड़े भाई श्री रासविहारी गुह ठाकुरता आबकारी विभाग के इन्सपेक्टर हैं। उन्होंने मेरा खूब आदर-सत्कार किया। कुछ दिन कुंज के पास रहकर ठाकुर के प्रसंगों में बड़ा आनन्द प्राप्त किया। गेण्डारिया में रहते समय कुंज के कुल-पुरोहित ब्रजमोहन चक्रवर्ती जी की दीक्षा का विवरण सुनकर आश्चर्यचकित हो गया था। प्रत्यक्ष रूप से कुंज द्वारा घटना जानने की इच्छा हुई। पूछने पर कुंज ने कहा– "पुरोहित जी की ठाकुर से दीक्षा लेने की बड़ी इच्छा हुई; पर उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी– गेण्डारिया जाने का भी सामर्थ्य नहीं था। अतएव वे व्याकुल होकर मन-ही-मन ठाकुर से प्रार्थना करने लगे। एक दिन वे रात्रि भोजन करके सो गए; रात्रि अधिक होने पर **'ब्रजमोहन, ब्रजमोहन'** पुकार सुनते ही उठकर कमरे से बाहर निकलकर देखे, ठाकुर सामने खड़े हैं। ठाकुर ने उनसे कहा– **'शीघ्र स्नान करके आओ, अभी तुम्हारी दीक्षा होगी।'** ब्रजमोहन स्नान करके आ गए। कपड़े बदलकर ठाकुर के कहे अनुसार वे उनको लेकर चण्डी-मण्डप में जाने लगे। कमरे के पास पहुँचकर उन्होंने पीछे की ओर देखा– ठाकुर नहीं हैं। तब व्याकुलता के साथ कमरे का दरवाजा खोला, तो देखा– कमरे के भीतर ठाकुर बैठे हुए हैं। ठाकुर ने ब्रजमोहन को सामने बैठाकर यथारीति दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद ब्रजमोहन ने ठाकुर को साष्टांग प्रणाम किया, सिर उठाकर देखा– ठाकुर नहीं हैं। ब्रजमोहन इधर-उधर थोड़ा ढूँढ़े, फिर कमरे में जाकर सो गए। प्रातः उठने पर उनको रात्रि की बात का स्मरण हुआ; थोड़ा संशय भी हुआ, परन्तु भीगे कपड़े दरवाजे के पास पड़े देखकर संशय दूर हो गया। उन्होंने तुरन्त गुरुभाई श्रद्धेय

श्री रामकृष्ण ठाकुरता और रजनी ठाकुरता के पास जाकर सारी घटना बतलाई। वे लोग उस घटना की सत्यता के विषय में शंकित होकर ठाकुर को पत्र लिखे। ठाकुर ने उत्तर में लिखा– **'घटना सत्य है, पर उसे पुनः दीक्षा लेनी होगी।'**

बस्ती की यात्रा: भैया का अद्भुत दीन भाव

आरा में आकर शरीर स्वस्थ नहीं रहा। कुंज के साथ कुछ दिन आनन्द से बिताकर काशी जाने का निश्चय किया। काशी में रामकुमार विद्यारत्न (ब्रह्मानन्द स्वामी) और ताराकान्त भैया (ब्रह्मानन्द भारती) हैं। उनके प्रयास से रुचि के अनुसार शालग्राम मिल सकेगा; फिर उनसे त्रिसंध्या भी अच्छे-से सीख सकूँगा। आसन, झोला बाँधकर मैं काशी जाने के लिए तत्पर हो गया। तब कुंज ने कहा– 'शरीर अस्वस्थ है, काशी क्यों जाते हो; वहाँ जाने पर नाना प्रकार के अनियम से शरीर और भी अस्वस्थ हो जाएगा। अविलम्ब पहाड़ जाने में भी बाधा आ जाएगी। वरन् भैया के पास बस्ती जाना अच्छा है।' मैं भी वही ठीक समझकर बस्ती के लिए निकल पड़ा। कुंज ने द्वितीय श्रेणी का एक टिकट ले दिया। रेल लाइन के दोनों ओर साल के घने जंगल देखकर बड़ा अच्छा लगा। उनके बीच ठाकुर को देख पाता हूँ या नहीं, जाँच करने लगा। दूसरे दिन प्रातः 7 बजे भैया के घर पहुँचा। तब भैया संध्या-वन्दना आदि कार्य कर रहे थे। भैया के पास न जाकर बाहर बरामदे में मैं आसन बिछाकर बैठ गया। पूजा सम्पन्न करके भैया मेरे पास आए। उन्हें देखकर चकित हो गया। भैया का अब वैसा स्थूल चेहरा नहीं है, शरीर एकदम हल्का हो गया है। वे हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए मेरे सामने आए। मुझे ऐसा लगा कि भैया के दोनों पैर भूमि से मात्र थोड़ा ही स्पर्श किए हुए हैं। उनको देखते ही मैं दण्डवत् प्रणाम करने लगा; किन्तु उन्होंने किसी प्रकार भी मुझे चरण स्पर्श करने नहीं दिया। मैं उनके बाद के चार भाई-बहनों से भी छोटा हूँ, तथापि भैया का इस प्रकार का भाव! यह बड़ा आश्चर्यजनक लगा। भैया का चेहरा तपस्यापूर्ण उज्ज्वल सात्विक वैष्णव की भाँति हो गया है। उनकी स्नेहपूर्ण स्निग्ध दृष्टि से मैं शीतल हो गया। उनकी ऐसी दीन-भावापन्न मूर्ति कभी नहीं देखी। ठाकुर ने भैया के सम्बन्ध में पहले कहा था– **'तुम्हारे बड़े भैया एकदम सीधे-साधे व्यक्ति हैं, अत्यन्त सरल हैं; संसार का कुछ भी नहीं जानते। फैजाबाद में उनके समस्त काण्ड देखकर हम लोग चकित हो गए। बिल्कुल बालक के जैसा सरल विश्वास हैं।'** भैया को देखकर ठाकुर की इस बात का मुझे स्मरण हुआ। भैया ने मुझसे स्नान-संध्यादि के बाद जलपान करके विश्राम करने को कहा एवं वे शालग्राम का थोड़ा प्रसाद पाकर अस्पताल चले गए।

बस्ती में आरोग्य

भैया के बैठक कक्ष से संलग्न जिस कमरे में कल रात में था, उसी में अपना आसन लगा लिया। रात्रि के अन्तिम प्रहर से पुनः निद्रित न होने तक दिनभर के कार्य समय के अनुसारं करने लगा। प्रातःकाल से दिन के 3 बजे तक ठाकुर मुझको अपने नाम व ध्यान में मानो मुग्ध करके रखते हैं। आहा! कब निर्जन पहाड़ पर जाकर उनके मनोहर रूप के ध्यान में दिन-रात तल्लीन रहूँगा? कब ठाकुर मेरे चारों ओर रिक्त करके अपने शान्तिमय श्रीचरणों में चिर आश्रय प्रदान करेंगे? अविलम्ब पहाड़ पर जाने के लिए मन अधीर हो उठा; लेकिन शरीर की बड़ी दुर्दशा देखकर भैया ने उसमें बाधा देते हुए कहा– 'कुछ दिन नियम के अनुसार आहार आदि करके शरीर को अच्छा स्वस्थ कर लेना होगा।' फिर उन्होंने मेरे लिए पुष्टिकर आहार की अच्छी व्यवस्था कर दी। समय-समय पर औषधि भी देने लगे। भिक्षा करने में असमर्थ होने के कारण मैंने भिक्षा बिल्कुल ही बन्द कर दी। पाँच-सात दिन भैया की व्यवस्था के अनुसार चलने से मेरा शरीर स्वस्थ हो गया। पहाड़ के निकटवर्ती गाँव में भिक्षा में चावल न जुटने के अनुमान से भैया ने मुझसे दाल व रोटी खाने का अभ्यास करने के लिए कहा। मैंने वही किया। बाद में केवल नमक व रोटी खाने लगा। उससे मेरा शरीर कुछ दिनों के भीतर अच्छा सक्षम और स्वस्थ हो गया। पहाड़ पर कहीं ऐसा न हो कि ठण्ड से मुझे पुनः ज्वर हो जाए, इस आशंका से भैया ने मेरे लिए एक गरम अँगरखा एवं कन्द-मूल खोदने के लिए एक बड़ा चिमटा ला दिया। चाँदी की एक सुन्दर डिबिया मुझको देकर कहा– 'इसके भीतर शालग्राम रखकर गले में पहनकर रखना; अन्यथा चोरी हो जाएगा।'

शालग्राम की पूजा और त्रिसंध्या आरम्भ

रघुवर बाबाजी के पास से जो 'शेष-चक्र' मिला था, इतने समय तक वह झोले में ही रखा था। अब जल, तुलसी, चन्दन, फूल आदि चढ़ाकर उसकी पूजा करने लगा। वह मेरी रुचि के अनुसार सुन्दर रूप वाला नहीं होने के कारण पूजा में उतना आनन्द नहीं मिल रहा है। संध्या करने की भी प्रबल इच्छा होने से प्रतिदिन मैं त्रिसंध्या कर रहा हूँ; लेकिन संध्या का आचमन, अपमार्जन, अघमर्षण आदि किस प्रकार करना चाहिए, वह मैं नहीं जानता। समस्त मन्त्र का तात्पर्य तो स्वयं भगवान् ही हैं, अतएव संध्या भी केवल अपने ठाकुर के श्रीअंगों का वर्णन करके ही करता जा रहा हूँ। संध्या-पाठ के समय ठाकुर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग सुस्पष्ट रूप से मानो आँखों में छाए रहते हैं। उससे कितना आनन्द मिलता है, उसे व्यक्त नहीं कर सकता। आजकल ऐसा लगता है मानो सारा दिन ही ठाकुर की उपासना में जा रहा है।

पुरातन के प्रति समादर

कुछ समय पूर्व फैजाबाद में भैया को बड़े सुख-भोग में रहते हुए देखा हूँ; लेकिन अब उनकी अद्‌भुत वैराग्य की अवस्था देखकर चकित हुआ जा रहा हूँ।

अयोध्या से भैया के धार्मिक मित्रगण बीच-बीच में उनका सत्संग प्राप्त करने के लिए यहॉ पर आते हैं। उनके साथ बड़े आनन्द से कुछ दिन व्यतीत हो गए। भैया से वाबू हरिसिंह की बात सुनकर चकित हो गया। वे विपुल ऐश्वर्य के भीतर रहकर जिस प्रकार दीन भाव से जीवन यापन कर रहे हैं, वह बड़ा ही अद्‌भुत है।

भैया ने कहा– "एक दिन मैं हरिसिंह का घर देखने गया। उनका घर-द्वार, टेवल-कुर्सी, साज-सामान देखने से वे असाधारण धनी व्यक्ति लगे। घर के भीतर मिट्टी की एक पुरानी खपरैल वाली झोपड़ी को देखकर मेरी पत्नी ने हरिसिंह की पत्नी से पूछा– 'ऐसे सुन्दर घर के भीतर यह खपरैल वाली झोपड़ी क्यों है?' उन्होंने कहा– 'यह झोपड़ी ही हमारी लक्ष्मी है; मेरे पति जब दस रुपये वेतन की नौकरी करते थे, तव हम इसी झोपड़ी में रहते थे। हमारा जो कुछ भी ऐश्वर्य है, इस झोपड़ी में रहकर ही हुआ है। अब क्या मैं इस झोपड़ी को छोड़ सकती हूँ? वर्षा में, बादल में, शीत में, ग्रीष्म में बारहों महीने ही हम इस झोपड़ी में रहते हैं। जब तक रामजी संसार में रखेंगे, इस झोपड़ी में ही रहेंगे। ये सब ऐश्वर्य जिनके भाग्य से आया है, वे भोग करेंगे।' कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं। सुना है, हरिसिंह अब लाखों रुपये के मालिक हैं। जगह-जगह कई सत्र एवं धर्मशालाएँ बनवाए हैं। प्रत्येक महीने में हजारों रुपये दूसरों के हित के लिए व्यय करते हैं। राजा के महल के समान बड़ा मकान बनाकर भी पुरानी कुटिया को छोड़ा नहीं। स्वयं पति-पत्नी उसी में रहते हैं, ऐसे दृष्टान्त अत्यन्त विरल हैं।"

श्वास-प्रश्वास में साधन तत्त्व

बस्ती शहर के भीतर कोई प्रसिद्ध मन्दिर अथवा साधु-महात्मा हैं या नहीं– भैया से पूछा। उन्होंने कहा– 'नानकशाहियों का एक अखाड़ा है। उसके सिवा दो-एक मन्दिर हैं; परन्तु उतने प्रसिद्ध नहीं हैं। बौद्ध लामा-गुरु लोग बीच-बीच में यहाँ आकर रहते हैं। वे लोग घूम-फिरकर चले जाते हैं।

सुना था, यही बस्ती सम्भवतः प्राचीन कपिलवस्तु है। इसी स्थान में राजपुत्र शाक्यसिंह गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। इसी स्थान में जरा, व्याधि, मृत्यु का दर्शन करके उनमें वैराग्य का उदय हुआ था। त्रिताप की ज्वाला से जीव को दग्ध होता देखकर वे संसार के सब बन्धन तोड़कर अतुल राजैश्वर्य और यौवन-सुख के आनन्द आदि का स्वेच्छा से परित्याग करके घने जंगल में जाकर कठोर तपस्या

में लग गए थे; किन्तु छः वर्ष तक निरन्तर प्रबल परिश्रम से आत्मसंयम और इन्द्रियनिग्रह द्वारा नाना प्रणालियों से योगाभ्यास करके भी वे 'सत्य तत्त्व' की उपलब्धि न कर सके। अन्त में अन्तःदृष्टि की सहायता से उन्होंने दुःख के मूल कारण का अनुसन्धान करते-करते निर्वाण का एक नवीन पथ अविष्कार किया। दूसरों के कष्ट से व्याकुल दयालु बुद्धदेव केवल अपने निवार्ण की उपलब्धि से परितृप्त न रहकर, जीव के कल्याण हेतु मनोविज्ञान-सम्मत ऐसी अमूल्य साधन-प्रणाली प्रकाशित कर गए, जिसके अनुसरण से आज भी पृथ्वी के एक तिहाई लोग मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं एवं युग-युगान्तर से मानव-सभ्यता के ऊपर आर्य-धर्म का जो प्रभाव चला आ रहा है, क्रमशः उसका और भी विस्तार सम्पादित कर रहे हैं। ठाकुर की अपरिसीम कृपा से हमें जो साधन मिला है, बौद्ध-साधना के साथ उसकी बहुत-कुछ समानता है।

बुद्धदेव ने नाना प्रकार की साधन-प्रणाली के मध्य देह-तत्त्व पर आधारित साधना-पथ का बहुत अधिक विशेषत्व दिखलाया है। 'त्रिपिटक' और 'विशुद्धि-मार्ग' आदि बौद्ध-धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में उसके अनेक दृष्टान्त हैं।

'अंगुत्तरनिकाये रोहिलाश्ववग्ग' में उन्होंने कहा है—

"अपिचाहं आवास इमस्मिं एव व्याममत्ते करलेवरे सन्निद्धि समानके
लोकंच पन्नपेमि लोकसमुदायंच लोकनिबोधंच पतिपदन्ति" इत्यादि।

साढ़े तीन हाथ लम्बे इस शरीर में जहाँ पर चेतना और मन विद्यमान हैं, वहीं जगत् के सृष्टि, स्थिति, प्रलय भी हैं एवं संसार-चक्र से मुक्ति के पथ भी हैं।

फिर कायगतासति अर्थात् देह-तत्त्व पर आधारित साधना-प्रणाली में आनापानासति अर्थात् श्वास-प्रश्वास में मन को लगाकर साधना करना श्रेष्ठ है। आनयति का अर्थ श्वास लेना एवं पानयति का अर्थ श्वास छोड़ना समझाया है। सति शब्द का संस्कृत उच्चारण स्मृति है; किन्तु स्मृति शब्द का अर्थ जो भी क्यों न हो, पाली भाषा में 'सति' शब्द सूचित करता है— प्रत्येक पल में, प्रत्येक मुहूर्त में जो क्रिया साधित होती है, उस विषय में जागृत रूप से मन को लगाए रखना। ध्यान करने के पहले मन को लक्ष्य वस्तु में बारम्बार एकाग्र करने के लिए प्रस्तुत करना होगा। चंचलता, जड़ता, निद्रा, आलस्यादि आकर एकाग्रता को नष्ट न करे, इसलिए चेष्टा द्वारा मन को सर्वदा सजग रखना होता है। अतः बौद्ध-धर्मशास्त्र में भी बारम्बार कहा गया है— साधक जंगल में पेड़ के नीचे अथवा किसी निरुत्पात निर्जन स्थान में जाकर पद्मासन में बैठते हैं। देह को सुगमता से सीधा रखकर नासिका के अग्रभाग में चित्त को स्थिर करके साधना के विषय अर्थात् लक्ष्य वस्तु में मन को एकाग्र करते हैं। उसके बाद बड़े धैर्य के साथ तल्लीनता से प्रत्येक

श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान रखकर नीचे दी हुई प्रणाली के अनुसार साधना आरम्भ करते हैं।

1. स सतो अस्ससति सतो व पस्ससति।

वे स्मृतिशील होकर श्वास लेते और प्रश्वास छोड़ते हैं अर्थात् श्वास लेते समय उसका स्पष्ट रूप से अनुभव हुआ करता है कि वे श्वास ले रहे हैं; उसी प्रकार प्रश्वास छोड़ते समय भी उसका पता रहता है कि वे प्रश्वास छोड़ रहे हैं। इस प्रकार वे स्मृतिशील होकर अर्थात् अतीत और भविष्य की ओर न देखकर केवल वर्तमान में जो घट रहा है, उसकी ओर ही लक्ष्य रखकर श्वास लेते और प्रश्वास छोड़ते हैं।

2. दीघं वा अस्ससन्तो दीघं अस्ससामीति प्रजानाति,
दीघं वा पस्ससन्तो दीघं पस्ससामीति प्रजानाति।

रस्सं वा अस्ससन्तो रस्सं अस्ससामीति प्रजानाति,
रस्सं वा अस्ससन्तो रस्सं अस्ससामीति प्रजानाति।

श्वास-प्रश्वास की गति लम्बी रहने से वे (साधक) दीर्घ श्वास ले रहे हैं एवं दीर्घ प्रश्वास छोड़ रहे हैं– वे जानते हैं। इसी प्रकार श्वास-प्रश्वास की गति छोटी रहने से वे लघु श्वास ले रहे हैं एवं लघु प्रश्वास छोड़ रहे हैं– वे जानते हैं।

3. सव्वकाय पटिसंवेदी अस्ससामीति सिक्खति,
सव्वकाय पटिसंवेदी पस्ससामीति सिक्खति।

वे (साधक) सर्वांगों में श्वास-प्रश्वास के स्पन्दन अर्थात् कम्पन अर्थात् उसकी गति का अनुभव कर रहे हैं, इस प्रकार से श्वास लेने और प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

यहाँ पर सर्वांग का अर्थ बुद्धदेव के मतानुसार– नाभि से नासिका के अग्रभाग तक समझना; क्योंकि श्वास-प्रश्वास की उत्पत्ति और अवसान नाभि से नासाग्र तक बतलाया गया है।

4. पस्सम्भयं कायसंस्खारं अस्ससामीति सिक्खति,
पस्सम्भयं कायसंस्खारं पस्ससामीति सिक्खति।

श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान रखने से देह का संस्कार प्रस्रम्भित अर्थात् विलुप्त हो जाएगा, वे इस प्रकार से श्वास लेने और प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

उपरोक्त चार सूत्रों को लेकर प्रथम चतुष्क बनाया गया है। इस चतुष्क के प्रथम में, श्वास-प्रश्वास चलने की प्रतीति; द्वितीय में, श्वास-प्रश्वास के लघु व दीर्घता का ज्ञान; तृतीय में, पूरे शरीर में श्वास-प्रश्वास के कार्य होने का ज्ञान और

चतुर्थ में, देह-संस्कार के त्याग में सचेष्ट होने की प्रतीति की सूचना मिलती है।

5. पीति पटिसंवेदी अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
पीति पटिसंवेदी पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास प्रीति बढ़ाने वाले हैं– इस भाव से श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

6. सुख पटिसंवेदी अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
सुख पटिसंवेदी पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में सुख की उत्पत्ति हो रही है– इस भाव से श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

7. चित्तसंखारं पटिसंवेदी अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
चित्तसंखारं पटिसंवेदी पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में चित्त के संस्कार अर्थात् उपेक्षा, वेदना इत्यादि का उदय हो रहा है– इस भाव से श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

8. पस्‌सम्भयं चित्तसंखारं अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
पस्‌सम्भयं चित्तसंखारं पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

चित्त के संस्कार का निवारण, दमन, शान्त और निरोध करते-करते श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

पंचम से अष्टम तक चार सूत्रों को लेकर द्वितीय चतुष्क बनाया गया है। इस द्वितीय चतुष्क में कहा गया है, देह के संस्कार का त्याग कर पाने से मन अन्तर्मुखी हो जाता है, विक्षिप्तता कम हो जाती है और एकाग्रता बढ़ जाती है; उससे प्रीति, सुखादि चित्तवृत्ति का अर्थात् भाव का संचार होता है। उसके बाद इस चतुष्क के अन्त में इन चित्तवृत्तियों के भी निरोध करने की बात कही गई है। श्वास-प्रश्वास के अवलम्बन से भीतर के प्रत्येक भाव को पहले जगाया जाता है, फिर उसके द्वारा ही उसे समूल उखाड़ने का कौशल बुद्धदेव ने बतला दिया है।

9. चित्त पटिसंवेदी अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
चित्त पटिसंवेदी पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

ऊपर बतलाए गए उपायों से चित्त वृत्तिविहीन होने पर प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में उस चित्त का विकास होता है; इस प्रकार वृत्तिविहीन चित्त को प्रत्यक्ष करते-करते श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

10. अभिपमोदयं चित्तं अस्‌ससामीति सिक्‌खति,
अभिपमोदयं चित्तं पस्‌ससामीति सिक्‌खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में चित्त अभिप्रमोदित अर्थात् आनन्दमय हो रहा है– इस भाव से श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

11. समादहं चित्तं अस्ससामीति सिक्खति,
समादहं चित्तं पस्ससामीति सिक्खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में चित्त साम्यभावापन्न अर्थात् समाहित हो रहा है– इस भाव में चित्त को सम्पूर्ण रूप से स्थापन करते-करते, समाहित अर्थात् समाधियुक्त करते-करते श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

12. विमोचयं चित्तं अस्ससामीति सिक्खति,
विमोचयं चित्तं पस्ससामीति सिक्खति।

प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में 'पंचनिवारक' अर्थात् निर्वाण के पाँच प्रतिबन्धक– अविद्या, अस्मिता, आनन्दादि पंचभाव से पूर्ण विमुक्त होकर शुद्ध बुद्धावस्थापन्न हो रहे हैं– इस भाव से साधक श्वास लेने व प्रश्वास छोड़ने का अभ्यास करते हैं।

नवम से द्वादश तक चार सूत्रों को लेकर तृतीय चतुष्क बनाया गया है। तृतीय चतुष्क में यह विशेष रूप से कहा गया है कि चित्त की वृत्ति का निरोध होने से भी मूल चित्त रह जाता है। अतः पहले उसको और भी विकसित कर लेना होगा; उससे आनन्द की अवस्था प्राप्त होगी। आनन्द के आधिक्य से चित्त सम्पूर्ण रूप से एकाग्र होगा। इस बार तीव्र एकाग्रता के साथ परीक्षण करके चित्त के गुप्त संस्कारादि जो कुछ रहते हैं, उसे दूर करना होगा। सुख, प्रीति, आनन्दादि सब निर्वाण के विरोधी हैं। इन्हें निर्मूल करके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था में पहुँचना होगा।

सबसे अन्तिम चतुर्थ चतुष्क में 'आनापानासतिर' अर्थात् श्वास-प्रश्वास पर आधारित साधना के साथ 'विदर्शन भावना' करने का उपदेश दिए हैं। पूर्वोक्त प्रणाली से साधना करने पर जो पवित्रता उत्पन्न होती है, वह सामयिक और असम्पूर्ण है। जैसे काई से भरे तालाब में पत्थर फेंकने पर काई पानी से कुछ क्षण के लिए हटकर पुनः जम जाती है, साधना के द्वारा चित्त के संस्काररहित होने पर भी संस्कार का मूल रह जाता है। सुयोग मिलते ही वह पुनः अंकुरित होकर आच्छादित कर डालती है। उसको निर्मूल करने के लिए श्वास-प्रश्वास में 'अनित्य, दुःख, अनात्मा' कहकर विश्वास उत्पन्न करना होगा। तब वैराग्य का उदय होगा। किसी भी अवस्था में आबद्ध रहने की इच्छा नहीं होगी। इस प्रकार निरोध की ओर जितना ही अग्रसर होते जाओगे, उतना ही समस्त विसर्जित होते जाएँगे अर्थात् सब छूट जाएँगे। तभी निर्वाण प्राप्त होगा।

साधक तृतीय चतुष्क की अवस्था में पहुँचने के पूर्व 'विदर्शन भावना' करने के योग्य नहीं हो पाता। नाना प्रकार के विचार-वितर्क, जल्पना-कल्पना, भूल-भ्रान्ति,

सुख-समृद्धि, आमोद-प्रमोद इत्यादि मन के भाव विद्यमान रहने से संसार-चक्र में बारम्बार जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि की यन्त्रणा भोगनी ही होगी। सत्य-मिथ्या, पाप-पुण्य, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की प्रतीति केवल संस्कार है। वास्तव में उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है; क्योंकि मैं जिसे पाप समझता हूँ, अन्य उसे ही पुण्य समझ सकते हैं। संस्कारवशतः ही हमारे भीतर ये सब मिथ्या धारणा उत्पन्न हुई है– असार, अनित्य संसार को सत्य समझ रहे हैं। ज्वाला-यन्त्रणामय संसार को परम सुख का स्थान समझ रहे हैं। सब वस्तुओं में 'मेरा, मेरा' करके आसक्त हो रहे हैं। अनित्य, दुःखद, भौतिक जगत् को नित्य, सुख देने वाला और परमात्मा की प्रकाशमान अवस्था समझ रहे हैं। ये समस्त भ्रान्तियाँ दूर नहीं होने से शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था प्राप्त नहीं होती। इन सबको दूर करने के लिए ही साधन-भजन है। जिस प्रकार बड़े पेड़ को सुगमता से गिराने अथवा उखाड़ने के लिए पहले उसके पत्ते-डालियों को छाँटकर मूल तना काटते है, उसके गिर जाने पर फिर मिट्टी के नीचे से जड़ निकालते हैं; उसी प्रकार पहले ऊपर-ऊपर से संस्कार को नष्ट करके क्रमशः हृदय के भीतर प्रवेश करके समस्त संस्कारों को समूल नष्ट कर पाने से पूर्वोक्त 'विदर्शन भावना' स्वतः ही जागृत हो जाती है; क्योंकि उस समय केवल श्वास-प्रश्वास ही स्मरण का विषय रहता है; लेकिन यह श्वास-प्रश्वास किसी भी एक अवस्था में स्थिर नहीं रहता है। यह सब समय गतिमान और परिवर्तनशील होने के कारण पूर्णतः अनित्य लगेगा। श्वास-प्रश्वास ही सब दुःखों का कारण है, यह आत्मा नहीं है– इस समय ऐसा प्रतीत होने लगेगा। इसलिए श्वास-प्रश्वास अनित्य, दुःखद और अनात्म प्रतीत होगा; किन्तु 'विदर्शन भावना' में हम पहले से ही गुरु का दिया हुआ अप्राकृत शक्तियुक्त नाम का जप करते हैं। सब संस्कारों के विनष्ट हो जाने पर श्वास-प्रश्वास में एकाग्रता सम्पूर्ण रूप से बनी रहती है; उस समय 'विदर्शन भावना' करें या नाम-जप ही करें, वे श्वास-प्रश्वास में मिलकर एक हो जाएँगे। पहले ही दर्शाया गया है कि 'विदर्शन भावना' से अनित्यता, दुःखत्व, अनात्मक की प्रतीति उत्पन्न होती है; श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम-जप करते जाने से भी ध्यान की चरम अवस्था में श्वास-प्रश्वास ही नाम है, नाम ही श्वास-प्रश्वास है– इस प्रकार की अनुभूति होने लगती है। उस समय नाम में किसी भी अर्थ का बोध नहीं होता, किसी रूप का संस्कार भी नहीं जागता। स्वभाव से नाम-जप अपने-आप ही होता है; मैं निश्चेष्ट दर्शक की भाँति केवल उसका अनुभव किया करता हूँ। इस अवस्था के सम्बन्ध में वाक्य या भाषा द्वारा कुछ व्यक्त नहीं कर सकते। आर्य ऋषियों ने इसे ही 'अवांगमनसगोचर' कहा है। बुद्धदेव ने भी कहा है, यह 'अचिन्तेयानि और अचिन्तितव्यानि' अर्थात् चिन्तन का विषय नहीं है, चिन्ता की भी नहीं जा सकती।

उन्होंने और भी कहा है–

"पतिसोतागम्मं निपुनं गम्भीरं अनुं वागरत्ता न दक्खति तमोखन्देन आवता।"

राग-द्वेषयुक्त, अज्ञानांध व्यक्ति सृष्टि-प्रवाह के भीतर स्थित सूक्ष्म गूढ़ सत्य को देख नहीं पाता। ज्ञानी लोग देख लेने पर भी व्यक्त नहीं कर पाते।

अचिन्तनीय तत्त्वों की उपलब्धि कितनी जटिल है– उसे एक घटना से अच्छे-से समझ सकते हैं। हमारे गुरुभाई श्रद्धेय मनोरंजन बाबू की पत्नी मनोरमा देवी एक बार में 48 घण्टे तक निरन्तर समाधिस्थ रहती हैं। इस विषय में ठाकुर से प्रश्न करने पर उन्होंने कहा था– **'केवल नाम के आनन्द में ही मग्न हैं, अभी हुआ ही क्या है? आस्तिक्य बुद्धि का ही जन्म नहीं हुआ है।'** भाव-अभाव से रहित होकर शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था में पहुँचे बिना तत्त्व का प्रकाश नहीं मिलता एवं प्रकाश मिलने के पूर्व उस विषय में कुछ कहना बकवास है। इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध में बुद्धदेव से कुछ पूछने पर वे कोई उत्तर नहीं देते थे एवं जिज्ञासु को अपने द्वारा प्रदर्शित साधना-पथ पर चलकर लक्ष्य स्थल में स्वयं उपस्थित होकर तत्त्व प्रत्यक्ष करने का उपदेश देते थे। ठाकुर से बार-बार प्रश्न करने पर देखा हूँ, वे कहते हैं– **'केवल श्वास-प्रश्वास में नाम जपते जाओ– समस्त अवस्थाएँ उससे ही प्राप्त होंगी।'** किन्तु कौन-सी अवस्था प्राप्त होगी, उस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ उल्लेख नहीं किया; न ही नाम के प्रतिपाद्य वस्तु के सम्बन्ध में कोई ध्यान, धारणा करने का उपदेश दिया। शक्तिमान गुरु सहज श्वास-प्रश्वास पर मनोयोग रूपी अत्यन्त उर्वरा साधन-क्षेत्र में कोई भी बीज रोपन क्यों न करें, बहुत सहज में ही उसका अंकुर फूटने से वह क्रमशः फूल, फल से सुशोभित हुआ करता है। इस विषय में नानक, कबीर, तुलसीदास इत्यादि महापुरुषगण साक्ष्य प्रदान कर गए हैं। वे लोग इसी साधना के अवलम्बन से अपनी-अपनी इष्ट वस्तु प्राप्त करके कृतार्थ हुए हैं। वर्तमान समय में भी इस साधन की सफलता के विषय में, इसके फल प्राप्ति के सम्बन्ध में महात्मा गम्भीरनाथ जी एवं हमारे ठाकुर ज्वलन्त दृष्टान्त दिखला गए हैं। बुद्धदेव ने इस साधन सम्बन्धी उपदेश के आरम्भ और अन्त में कहा है–

"एकायनो अयं भिक्खवे ..... निव्वानस्स सच्छि किरियाय, यदिदं चत्तारो सतिपट्ठानो।" इत्यादि– अर्थात् निर्वाण प्राप्ति के लिए यही एकमात्र पथ है।

केवल यही कहकर वे निवृत्त नहीं हुए।

"आमतं तेस विरुद्धं येसं कायगतासति विरुद्धा।"

जो कायगतासति अर्थात् श्वास-प्रश्वास आदि देह तत्त्व के अवलम्बन से साधना करने के विरोधी हैं, वे निर्वाण के भी विरुद्ध हैं। यही बुद्धदेव का चरम

सिद्धान्त है।

सबसे अन्त में इस साधन के फलाफल के सम्बन्ध में बुद्धदेव ने और भी कहा है।

"तिट्ठतु भिक्खवे अद्धमासो योहि केचि भिक्खवे इमे चत्तारो सचिपट्ठानो एवं भावेय्यं सत्ताहं तस्स द्विन्नं फलानं अञतरं फलं पटिकंखं दिट्ठेव धम्मे अञासति उपादिसेसे अनागामिता।"

हे भिक्षुगण! जो आधा महीना या एक सप्ताह भी इस साधना को करते हैं, वे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं देहान्त के बाद अनागामी होते हैं।

सुना है, ठाकुर ने भी कहा है– **'लामा गुरुओं का आचार-व्यवहार और उनकी साधन-प्रणाली को देखे बिना बौद्ध-धर्म को समझ नहीं सकते। वही एकमात्र उपाय है।'** गत 7 जनवरी, शुक्रवार को गुरुभाइयों को उपदेश देते समय ठाकुर ने कहा था– **'एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप द्वारा आत्मा के समस्त पाप व संशय नष्ट होंगे। तब विश्वास अपने-आप आएगा। प्रत्येक श्वास में नाम-जप करना ही उपाय है।'**

अप्रैल–मई, सन् 1893 ई॰

बस्ती त्याग: नीरव अयोध्या में राम का नाम

23 से 25 अप्रैल। भगवान् गुरुदेव की कृपा से भैया के साथ परमानन्द से दो-तीन सप्ताह बस्ती में बिताया। अच्छा स्वस्थ लगने पर पहाड़ जाने के लिए व्याकुल हो उठा। हरिद्वार जाने के लिए मैंने भैया से अनुमति माँगी। उन्होंने हाथ जोड़कर ठाकुर को प्रणाम करके प्रसन्नता के साथ मुझे जाने की अनुमति दे दी। महातीर्थ अयोध्या में सैकड़ों मन्दिरों में सुलक्षणयुक्त मनोरम शिलाचक्र रखे रहते हैं; भैया के मित्रों के प्रयास से शिलाचक्र मिलने की प्रत्याशा से मैं अयोध्या गया। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में एक दिन रात्रि 12 बजे भैया के श्रीचरणों से विदा लेकर बस्ती स्टेशन गया। प्रातःकाल सरयू नदी के किनारे लकरमण्डी घाट पहुँच गया।

पवित्र नदी सरयू के निर्मल जल में स्नान करके मेरा शरीर शीतल हो गया, मन भी प्रफुल्लित हो उठा। मैंने परमानन्द से स्नान-पूजा सम्पन्न करके 'जय राम, जय राम' कहते हुए अयोध्या में प्रवेश किया। यह उन्हीं दया के सागर भगवान् श्रीरामचन्दजी की अप्राकृतिक लीला-भूमि शान्तिमय अयोध्या है– जिनकी छाया का ही स्पर्श करके कितने योगी-ऋषि-तपस्वी कृतार्थ हुए हैं, आज भी कितने ही

महापुरुष छद्म वेश में इस स्थान में वास कर रहे हैं! देवता-तपस्वियों के वन्दित इस नित्य अयोध्याधाम में कितने ही देवर्षि-महर्षि आज भी अज्ञात रूप से रहते हैं एवं सूक्ष्म देह में विचरण करके 'राम' नाम का गान कर रहे हैं– इन सब बातों का स्मरण होने से हृदय आह्लादित हो उठा। मैं इहलोक-परलोकवासी महापुरुषों के चरणों के उद्देश्य से प्रणाम करते हुए रास्तों में घूमने लगा। देखा– जनपूर्ण अयोध्या शान्त एवं स्तब्ध है। इतना बड़ा शहर है, किन्तु लोगों का कोई कोलाहल नहीं, सर्वत्र सभी के मुख से बीच-बीच में 'राम राम, जय राम, सीताराम' निकल रहा है। कोई भी वृथा बातचीत नहीं कर रहा है– बातचीत करने के पहले भी सब लोग 'राम' नाम कहते हैं। ग्राहक दुकानदार से कहते हैं– 'रामजी, भैया राम राम है? रामदाना दो, रामरस चाहिए!' घोड़े वाले, ग्वाले आदि घोड़े व गाय को 'राम राम' कहकर हाँक रहे हैं; कथन के पूर्व सभी राम का नाम लेते हैं! ऐसा कहीं नहीं देखा।

हनुमान-गढ़ी के दर्शन से ठाकुर का स्मरण: महापुरुष का दर्शन

ठाकुर से सुना था– **'प्राचीन अयोध्या में हनुमान-गढ़ी ही ठीक है। विशेष-विशेष पर्व में वहाँ हनुमान, विभीषण, अश्वस्थामा, व्यास इत्यादि ऋषिगण आया करते हैं।'** भक्तराज महावीर की वास-भूमि हनुमान-गढ़ी देखने के लिए मन व्याकुल हो उठा। मैं गुरुदेव के श्रीचरणों का स्मरण करते हुए हनुमान-गढ़ी पहुँचा। अयोध्या के सार्वजनिक स्थानों से यह स्थान बहुत ऊँचा है। कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर महावीरजी के मन्दिर में जाना पड़ता है। देखा– चौड़ी सीढ़ियों के दोनों ओर ही अनगिनत बन्दर हैं। वे मनुष्य से सटकर चल रहे हैं– किसी प्रकार का डर नहीं। मैं सीढ़ियाँ चढ़कर महावीर के मन्दिर के सामने गया। मुझे ठाकुर की बात का स्मरण हुआ। हमारे ठाकुर भावावेश में झूमते-झूमते लड़खड़ाते हुए किसी प्रकार सीढ़ियाँ चढ़कर धीरे-धीरे खसकते हुए मन्दिर के पास आए थे। फिर महावीरजी का दर्शन करके उनकी बाह्य-चेतना विलुप्त हो गई– वे भाव-विभोर अवस्था में बहुत समय तक इसी स्थान पर पड़े हुए थे। ठाकुर की उस समय की बात सोचकर मुझे रोना आ गया। मैंने बारम्बार महावीरजी को प्रणाम करके प्रार्थना की– 'भक्तराज! तुम्हारा दर्शन व्यर्थ नहीं होता, दया करके इस अत्यन्त दुराचारी, अविश्वासी, नास्तिक को आशीर्वाद दो, जिससे तुम्हारे एक कण चरण-रज की ही प्राप्ति से कृतार्थ होकर अपने परम दयालु ठाकुर के चरणों की सेवा का अधिकारी हो सकूँ– उनका अविच्छिन्न संग और एकान्त अधीनता ही इस जीवन की सम्पत्ति हो।' देखा– महावीरजी के मन्दिर का विस्तृत आँगन लोगों से परिपूर्ण है; सभी एकाग्र मन से रामायण पाठ सुन रहे हैं। बहुत-से बन्दर भी

श्रोताओं के शरीर से सटकर सिर झुकाए बैठे हैं, मानो एकाग्र मन से वे भी पाठ सुन रहे हैं। सुन्दरकाण्ड का पाठ हो रहा है। अनेक लोगों के बीच एक सादे बाल वाले तेजस्वी वृद्ध संन्यासी को देखकर कुछ क्षण के लिए मेरी दृष्टि स्थिर हो गई। रामायण श्रवण से मुग्ध होकर मानो भाव के गहरे समुद्र में डूबे हुए हैं। उन्हें देखकर मन की कैसी दशा हो गई, बता नहीं सकता– ऐसा लगा, उस वेश में हमारे ठाकुर ही बैठे हैं। उनकी चरण-धूलि लेने की इच्छा हुई; लेकिन पाठ के बाद वे भीड़ में किस ओर से कहाँ चले गए, समझ नहीं पाया।

वेदान्ती के ऊपर शोक का संचार

महावीरजी को साष्टांग प्रणाम करके अयोध्या स्टेशन पहुँचा एवं एक टिकट लेकर फैजाबाद के लिए निकल पड़ा। फैजाबाद स्टेशन में उतरकर भैया के मित्र बाबू जालिम सिंह के घर गया। मुझे देखकर जालिम सिंह दौड़कर आए एवं छाती से लगा लिए। उन्होंने बाहर के एक अच्छे कमरे में मेरे रहने की व्यवस्था कर दी। जालिम सिंह को देखकर चकित हो गया; उनसे पूछा– भैया, आपका ऐसा रूप देख रहा हूँ, क्यों? आपको कोई रोग हुआ है? दाढ़ी, मूँछ, बाल इस प्रकार कैसे पक गए? जालिम सिंह ने कहा– 'भाई, यह एक बड़ी ही आश्चर्यजनक घटना है। मेरे पुत्र का कुछ दिनों पहले देहान्त हो गया। मेरी पत्नी उसके शोक से पागल के समान हो गई; लेकिन मुझे कुछ नहीं लगा। सर्वदा वेदान्त का बारम्बार मनन किया करता– पत्नी को मैं वेदान्त का उपदेश देने लगा। तीन दिन मेरा उपदेश सुनकर पत्नी शान्त हुई– उसकी शोकाग्नि बिल्कुल दूर हो गई; किन्तु इसके साथ-साथ मेरे भीतर उसकी ज्वाला प्रवेश कर गई, मैं यन्त्रणा से छटपटाने लगा। दूसरे दिन प्रातः उठकर मैंने देखा– दाढ़ी, मूँछ, सिर के सारे बाल पक गए हैं।' शोक से इतना सब होता है, पहले कभी जानता नहीं था। मैं ये सब बातें सुनकर चकित रह गया।

भगवान् का नाम जपना सहज नहीं है

जालिम सिंह की दया का एक कार्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पोस्ट-ऑफिस के एक चपरासी को किसी अपराध के कारण काम से निकाल देने पर वह जालिम सिंह के पास आकर रो पड़ा; कहा– 'बाबू साहब! नौकरी गई, अब क्या उपाय है? मैं तो भूखा मर जाऊँगा।' जालिम सिंह ने कहा– अच्छा, तुम 6 से 11 बजे तक एवं 1 से 6 बजे तक यहाँ बैठकर उच्च स्वर में 'सीताराम, सीताराम' जप करना, मैं तुम्हें आठ आना प्रतिदिन दूँगा; तुम वेतन से तीन-चार रुपये अधिक ही पाओगे।

वह बड़ा सन्तुष्ट होकर सहमत हो गया एवं दूसरे दिन से जप करने में लग जाने की बात कहकर चला गया। तीन-चार दिन उसने किसी प्रकार से जप किया। फिर एक दिन जालिम सिंह को सलाम करके उसने कहा– 'बाबू साहब! यह काम हमसे नहीं हो पाएगा– दूसरी नौकरी दे दीजिए, नहीं तो हम घर चले जाते हैं।' वह चला गया। आश्चर्य है! एक स्थान पर बैठकर भगवान् का नाम-जप करना इतना कष्टदायक है?

अयोध्या के आश्रम और मन्दिर: हिरण्यगर्भ-चक्र की प्राप्ति

फैजाबाद के सुप्रसिद्ध वकील बलदेव प्रसाद एवं लालता प्रसाद इत्यादि भैया के मित्रों ने मेरे साथ भेंट की। उन लोगों ने मुझे अयोध्या के बड़े-बड़े मन्दिर एवं आश्रमों में ले जाकर शालग्राम दिखलाया। एक-एक मन्दिर में हजार-हजार शालग्राम के हम दर्शन किए; लेकिन मेरी रुचि के अनुसार एक भी नहीं मिला। अनेक प्राचीन मन्दिरों में विविध आकार के भिन्न-भिन्न लक्षणयुक्त शिलाचक्र डलिया भरकर रखे हुए हैं– देखा कि तुलसी-चन्दन मिश्रित जल से उन सबका एक साथ स्नान होता है। पूजा, भोग, आरती भी एक साथ ही हुआ करती है। विग्रह के सामने कुछ विशिष्ट शालग्राम रखे हैं, केवल उनकी ही साज-सज्जा, पूजा, भोग, आरती आदि विशेष रूप से हुआ करती है। बहुत समय से इन सब विग्रहों की सेवा, पूजा, भोग, आरती बिना रुकावट के प्रतिदिन बड़े समारोह के साथ सुश्रृंखलित रूप से सम्पन्न होती आ रही है– सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है। एक-एक आश्रम में सैकड़ों-सैकड़ों साधु हैं, कहीं-कहीं तो हजारों साधु भी रहते हैं। सब अपने-अपने आसन पर वैठे हुए हैं– कोई एकाग्र मन से नाम-जप में मग्न हैं, कोई धूनी के सामने ध्यानस्थ हैं, तो कोई रामायण पाठ में मग्न हैं– देखकर बड़ा अच्छा लगा। अनगिनत लोगों के आवास-स्थान इन आश्रमों में शान्ति और स्तब्धता छाई हुई है– कभी-कभी किसी-किसी स्थान में 'राम राम, सीताराम' की ध्वनि ही हो रही है, सारे आश्रम ही भगवद्भाव से परिपूर्ण हैं– देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

किसी प्रसिद्ध मन्दिर के भजनानन्दी वृद्ध महन्त ने मुझको एक शिलाचक्र देकर कहा– 'आप इसको ग्रहण कीजिए– इसका नाम हिरण्यगर्भ है। बहुत समय से इस मन्दिर में ये श्रद्धा-भक्ति के साथ पूजित होते आ रहे हैं।' मैंने इसे ठाकुर की इच्छा समझकर शालग्राम को ले लिया; किन्तु वह रुचि के अनुरूप नहीं है। निश्चय किया, अब शालग्राम के लिए प्रयास नहीं करूँगा; ठाकुर का वाक्य असत्य नहीं हो सकता, मुझे सुन्दर शालग्राम अवश्य ही मिलेगा– जब तक नहीं मिलता, श्रद्धा के साथ इसी की पूजा करूँगा।

गुप्तार घाट में श्रीरामचन्द्र की अन्तःलीला के स्मरण से शोकावेश

कुछ सत्संगियों के साथ फैजाबाद के पश्चिम प्रान्त में गुप्तार घाट गया; इस घाट का शास्त्रीय नाम गोप्रान्तर है। अयोध्या से लगभग दो कोस की दूरी पर सरयू के किनारे यह घाट स्थित है। यह पक्के पत्थरों से बड़ा सुन्दर बना है। घाट के ऊपर सुन्दर शिल्पकलायुक्त कुछ मन्दिर हैं, उनमें राम-सीता प्रतिष्ठित हैं। अच्छे-अच्छे भजनानन्दी साधु-महात्मा आकर इस स्थान में एकान्त वास करते हैं। साधन-भजन के लिए यह स्थान बहुत ही अनुकूल है। मैं घाट पर बैठकर सरयू का दर्शन करने लगा। कितनी बातों का स्मरण होने लगा। एक समय इसी स्थान पर भगवान् रामचन्द्रजी की मर्त्यलीला का अवसान हुआ– उस समय की भयंकर हृदय-विदारक घटनाएँ मन में उदित होने से मेरा शरीर व मन शिथिल होने लगा। अहा! सर्वनियन्ता स्वयं भगवान् ने भी भाग्य को अतिक्रम नहीं किया। अपनी ही इच्छा से बनाए विधान में स्वयं आबद्ध होकर साधारण लोगों की भाँति संसार की सब यन्त्रणाओं का भोग किया। सुना है, विधि के विधानानुसार क्रूरकर्मा कालपुरुष भगवान् ब्रह्मा से प्रेरित होकर दूत के रूप में श्रीरामचन्द्रजी के पास पहुँचे एवं श्रीराम से बोले– 'एक बड़ी आवश्यक बात कहने हेतु मैं आपके पास आया हूँ। हमारी बातचीत के समय यदि कोई व्यक्ति हमारे पास आ जाए, तो फिर वे आपके द्वारा वध्य होंगे; इसे आप स्वीकार करेंगे, तो मैं अपनी आवश्यक बात आपसे कह सकता हूँ।' कालपुरुष को ऋषि द्वारा प्रेरित दूत जानकर श्रीरामचन्द्रजी ने उनकी बात पर सहमति प्रदान कर दी एवं अपने चिर अनुगत दृढ़कर्मा लक्ष्मण को द्वार की रक्षा के लिए नियुक्त करके निर्जन स्थान में कालपुरुष की बात सुनने लगे। इसी समय अचानक महा तेजस्वी ऋषि दुर्वासा ने लक्ष्मण के पास आकर कहा– 'अपने किसी विशेष प्रयोजन हेतु मैं श्रीरामचन्द्र से अभी भेंट करना चाहता हूँ।' लक्ष्मण ने कहा– 'भगवन्! आपकी जो आवश्यकता है, दया करके मुझे आदेश दें, मैं अभी उसे पूरी कर देता हूँ।' दुर्वासा ने कहा– 'अरे! नहीं, वह किसी प्रकार भी तुमसे नहीं होगा– मुझे राम ही चाहिए। तुम यदि राम के पास जाने से मुझे रोकोगे, तो आज इसी समय मैं श्रीराम सहित पूरे अयोध्या को दग्ध करके चला जाऊँगा, यह निश्चय जान लो।' लक्ष्मण बड़े संकट में पड़ गए; सोचने लगे– ऋषि को यदि श्रीरामचन्द्रजी के पास जाने से रोकता हूँ, तो वे तुरन्त अयोध्या को ध्वंस कर देंगे; और यदि मैं ऋषि के आगमन का संवाद श्रीरामजी को देता हूँ, तो केवल मैं ही मारा जाऊँगा। अतएव यही करना उचित है। ऋषि की बात कहने के लिए लक्ष्मण श्रीरामजी के पास पहुँच गए। कालपुरुष 'सफल हो गया' जानकर तुरन्त चले गए। रामचन्द्रजी ने ऋषि के पास जाकर हाथ जोड़ते हुए कहा– 'भगवन्! आपका विशेष प्रयोजनीय कौन-सा कार्य मुझे पूरा करना होगा, आदेश दीजिए।' ऋषि ने कहा–

'मैं पेटभर भोजन करूँगा, बहुत दिन मैंने उपवास किया है– अब मुझे खिलाओ।' श्रीरामचन्द्रजी ने ऋषि को तृप्तिपूर्वक भोजन कराया। यह सामान्य कार्य लक्ष्मण से सुसम्पन्न नहीं होगा; राम को ही चाहता हूँ– ऋषि की इस प्रकार की जिद केवल नियतिवश ही हुई है समझकर शोक से व्याकुल श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– 'अपनों का त्याग या वध, दोनों ही साधुओं की दृष्टि में समान है। सत्य की रक्षा के लिए अब मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ।' श्रीराम के बिना जीवन को वृथा समझकर श्रीराम के परम भक्त लक्ष्मण सरयू नदी में कूद पड़े। सरयू विरुद्ध दिशा में बहकर लक्ष्मण को इस स्थान पर ले आई; लक्ष्मण 'जय राम, जय राम' कहते-कहते इसी स्थान में अन्तर्धान हो गए। प्राणप्रिय भाई लक्ष्मण ने 'राम, राम' कहकर सरयू में देह का विसर्जन कर दिया है, सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शोक से अधीर हो गए एवं उन्होंने लक्ष्मण का ही अनुगमन करने का निश्चय किया। इसके बाद शीघ्र ही रामचन्द्रजी सरयू के तट पर पहुँचे। उस समय अयोध्यावासी नर-नारी, पशु-पक्षी सभी 'हे राम, हे राम' कहते-कहते श्रीरामचन्द्रजी के पीछे-पीछे चले आए। 'प्राणप्रिय राम को छोड़कर किस प्रकार हम देह धारण किए रहेंगे', यह सोचकर वे लोग अधीर हो उठे एवं श्रीरामचन्द्रजी के साथ ही सभी ने इहलोक त्याग करने का संकल्प कर लिया। उस समय भक्त-वत्सल रामचन्द्रजी समस्त अयोध्यावासियों को साथ लेकर इसी स्थान में सरयू के गहरे जल में सदा के लिए अदृश्य हो गए। उस समय का दृश्य सोचते-सोचते मुझे रोना आ गया। शोकवश बहुत समय तक घाट पर ही बैठा रहा, फिर संध्या के बाद जालिम सिंह के साथ घर आ गया।

भयानक स्वप्न– माँ के प्रति अत्याचार

26 अप्रैल, बुधवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक भयंकर यन्त्रणादायक स्वप्न देखकर रोते-रोते जाग गया। कितने ही प्रकार की दुश्चिन्ता मन में आ रही है– हाय! हमारी माँ परम सौभाग्यवती होकर भी मेरे द्वारा अभागिनी हो गई। माँ की एक पलक की स्नेहपूर्ण दृष्टि का ऋण सैकड़ों जन्म में भी बिन्दुमात्र शोध नहीं किया जा सकता! हाय, मैंने उस स्नेहमयी माँ को पहचाना नहीं! रात्रि में माँ के प्रति मैंने जो निष्ठुर व्यवहार किया, स्मरण होने से हृदय विदीर्ण हो जाता है। स्मरण से ही क्लेश देने वाले स्वप्न की स्मृति चिरकाल के लिए विलुप्त हो जाए– ठाकुर के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है। इसी अभिप्राय से डायरी में यहाँ स्वप्न का विवरण नहीं लिखा। साक्षात् मिलने पर इस स्वप्न का वृत्तान्त कहकर ठाकुर से पूछने की इच्छा है– 'इस प्रकार के स्वप्न का तात्पर्य क्या है?' फैजाबाद मेरे लिए अब श्मशान हो गया है। जितना शीघ्र हो सके, यह स्थान छोड़ने में ही भलाई है।

हरिद्वार में हर-गौरी का अनुपम ज्योति-दर्शन

27 अप्रैल, गुरुवार। फैजाबाद में अब एक मुहूर्त भी रुकने की इच्छा नहीं हुई। पहाड़ पर जाने के लिए मन अधीर हो उठा। यथासमय स्टेशन जाकर हरिद्वार के लिए निकल पड़ा। दूसरे दिन प्रातःकाल लक्सर स्टेशन पहुँचकर गाड़ी बदली। दो-एक स्टेशन पार होते ही हरिद्वार के पहाड़ दिखलाई पड़े। देवाधिदेव महादेव भाव में विभोर होकर दिन-रात मग्नावस्था में कभी इसी पहाड़ पर उन्मत्तवत् विचरण करते थे। परम आराध्या भगवती पार्वती ने पति के रूप में महादेव को प्राप्त करने के लिए इसी पहाड़ पर कठोर तपस्या की थी। मैं एकाग्र मन से सद्गुरुरूपी सदाशिव को स्मरण करके बारम्बार प्रणाम करने लगा। मुझे रोना आ गया। हर-पार्वती के दर्शन की आकांक्षा से व्याकुल होकर मैं पहाड़ की ओर ताकता रहा। ज्वालापुर पहुँचकर नील पर्वत के ऊँचे-ऊँचे शिखरों को स्पष्ट रूप से देख सका। उसमें से असंख्य श्वेत और नीली ज्योतियों को बिजली के समान चमककर तुरन्त लय होते हुए देखा। ये समस्त ज्योतिर्मय बिन्दु कभी खण्ड-खण्ड में, तो कभी एक साथ मिलकर अपूर्व प्रकाश फैलाने लगे। देखते-देखते हरिद्वार स्टेशन पहुँच गया।

मैं सिर झुकाकर नीचे दृष्टि रखते हुए शहर की ओर अग्रसर होने लगा। मैंने स्वच्छ भूमि के बीच से स्वर्णवर्ण के अत्यन्त उज्ज्वल कई ज्योतिर्बिम्बों को विविध प्रकार से घूमते-घूमते फूटकर चारों दिशाओं को आलोकित करते देखा।

महामाया भगवती के अनुपम रूप की छटा समझकर बारम्बार उन सबको प्रणाम करने लगा। मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठा। मैं धीरे-धीरे गंगा के किनारे ब्रह्मकुण्ड के घाट पर पहुँचा। मुझे स्मरण हुआ, माता योगमाया की अस्थि गंगाजल में यहीं पर समाहित हुई थी। यहाँ स्नान-पूजा सम्पन्न करके घाट के ऊपर एक कुटिया में बैठकर नाम-जप करने लगा।

जलदान का व्रत

दिन के लगभग 2 बजे 'कहाँ रहूँगा' सोचकर चिन्तित हो उठा। तुरन्त एक कुली के सिर पर सामान चढ़ाकर कनखल में रामप्रकाश महन्त के आश्रम के लिए निकल पड़ा। प्रचण्ड धूप में उत्तप्त धूल-बालु के ऊपर कुछ क्षण नंगे पैर चलने के बाद बड़ा कष्ट होने लगा, मेरे पैर जलने लगे। सोचने लगा– अब कहाँ जाऊँ, कहाँ रुकूँ? कुछ दूर चलकर मैंने देखा– रास्ते के बायीं ओर एक आश्रम के द्वार पर गेरुआधारी एक वृद्ध संन्यासी जलदान करने के लिए बैठे हैं। बरफ के जैसा अच्छा ठण्डा पानी कुछ घड़ों में भरकर रखे हैं। थके हुए पथिकों को देखते ही उन्हें बुलाकर ठण्डा पानी पिलाते हैं एवं वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने के लिए

अनुरोध करते हैं। 11 से 4 बजे तक साधु का यही कार्य है। उनका कार्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। प्यासे पथिक प्रचण्ड धूप से बेचैन होकर जब इस स्थान पर आते एवं विशाल वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर पानी पीकर शीतल हो जाते हैं, तब वे लोग किस प्रकार तृप्ति प्राप्त करते हैं– सोचने लगा। ऐसा लगा, साधु का यह कार्य ही परम धर्म है। जो प्यास से व्याकुल सैकड़ों लोगों को सुशीतल जल प्रदान करके तृप्त कर रहे हैं, भगवान् उनके कार्य से जो आनन्द प्राप्त करते हैं; कठोर तपस्या, व्रत-नियम, याग-यज्ञ आदि से कभी वैसा सन्तोष प्राप्त नहीं करते। सदाचार से पतित अत्यन्त दुराचारी लोग भी यदि केवल इस जलदान-व्रत को ग्रहण कर लेते हैं, तो भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त करके वे अवश्य ही मुक्ति की स्थिति प्राप्त करेंगे।

संन्यासी की चरण-धूलि लेकर उन्हें हरिद्वार आने का उद्देश्य बतलाया। उन्होंने बड़े आनन्दपूर्वक आशीर्वाद देकर कहा– 'तुम्हारी व्यवस्था अवश्य होगी। भगवान् सदिच्छा पूर्ण करते हैं।'

रामप्रकाश महन्त का आश्रय: मधुमक्खियों के उत्पात से रक्षा

साधु के पास से निकलकर मैं रामप्रकाश महन्त के आश्रम में पहुँच गया। द्वार पर एक व्यक्ति को देखकर पूछा– स्वामीजी! मैं रामप्रकाश महन्त से मिलना चाहता हूँ, वे कहाँ हैं? उन्होंने कहा– 'आपको क्या काम है, कहिए– मैं ही रामप्रकाश महन्त हूँ।' मैंने उनको प्रणाम करके हरिद्वार में अपने आने का कारण स्पष्ट रूप से कह दिया एवं जितने दिन पहाड़ पर रहने की व्यवस्था नहीं होती, इस आश्रम में रह सकूँगा या नहीं, यह भी पूछा। उन्होंने बड़े आदर के साथ रहने की अनुमति दी एवं शिष्यों को बुलाकर मुझे दुमंजिले में ले जाने के लिए कहा। मैंने और भी आदर पाने की अभिलाषा से महन्त के परिचित अपने एक मित्र की बात कहकर उसका एक अनुरोध-पत्र महन्त के हाथ में दिया। उन्होंने थोड़ा देखने के बाद पत्र को फाड़कर फेंकते हुए कहा– 'इन्हें मैं नहीं पहचानता। यहाँ कितने बंगाली आते हैं, जाते हैं। माँ-बाप को छोड़कर उन लोगों का स्मरण करने के लिए तो मैं साधु नहीं बना। आप मेरे पास आए हैं, अभी आपको ही मैं पहचानता हूँ। आप अतिथि हैं, हमारे देवता हैं– यहाँ पर चिट्ठी-पत्री की आवश्यकता नहीं होती; आप इन लोगों के साथ चलिए।' मैं महन्त के शिष्यों के साथ-साथ चलने लगा। महन्त भी पीछे-पीछे आने लगे। ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी के पास पहुँचते ही झुंड-के-झुंड अनगिनत मधुमक्खियाँ आ गईं। मेरे आगे चलने वाले कुछ साधु सीढ़ी से चढ़ते-चढ़ते मुझे 'शीघ्र आइए, शीघ्र आइए' कहकर पुकारने लगे। सीढ़ी पर पैर

रखा भी नहीं हूँ कि मधुमक्खियाँ आकर मुझे घेर लीं एवं भिनभिनाती हुई मेरे खुले अंगों में सर्वत्र टकराने लगीं। मैं कोई उपाय न देखकर वहीं स्थिर खड़ा रहा एवं ठाकुर को स्मरण करने लगा। महन्त मुझे धक्का देकर हटाते हुए ऊपर चढ़ गए। मैं धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा। कमरे में जाकर देखा– महन्त एवं उनके दो-तीन शिष्य भूमि पर गिरकर 'गया, मर गया', 'आह-उँह' कर रहे हैं। प्रत्येक को कम-से-कम 15-20 स्थानों पर मधुमक्खियों ने डंक मारा। मेरे हाथ से दबकर एक मधुमक्खी ने मुझे थोड़ा डंक मारा, किन्तु अनगिनत मधुमक्खियाँ तब शरीर से टकराती रहीं। जहाँ डंक लगा, वहाँ भी चार-पाँच मिनट से अधिक समय तक यन्त्रणा नहीं रही। इसे स्पष्ट रूप से गुरुदेव की कृपा के सिवा और क्या कहूँ? इस घटना से महन्त और उनके शिष्यों ने मुझे शक्तिशाली सिद्धपुरुष मान लिया। यह कम नहीं है! 'आँधी-तूफान से कौआ मरे और फकीर की करामत बढ़े।'* यह तो वैसा ही हुआ!

रामप्रकाश महन्त ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया। अपने रहने के पास वाले कमरे में ही मुझे आसन लगाने के लिए कहा। उन्होंने चण्डी पहाड़ अथवा उसके निकट जहाँ कहीं भी हो, मेरे रहने की सुव्यवस्था कर देने का वचन दिया। मैंने कल चण्डी पहाड़ जाकर स्थान देखकर आने का निश्चय किया। महन्त ने अपने एक शिष्य को मेरे साथ जाने का आदेश दिया। रात किसी प्रकार से बिताई। रात्रि में मोटी-मोटी रोटी, नमक और मिर्च के साथ भोजन हुआ। मैं उनकी लहसुन वाली दाल नहीं खा सका।

चण्डी पहाड़ गमन: गंगा का बन्धन

29 अप्रैल से 11 मई। श्री रामप्रकाश महन्त के आश्रम में रहकर मेरा मन उद्विग्न हो उठा। नित्यकर्म करने की यहाँ पर किसी प्रकार की सुविधा नहीं है। महन्तजी के एक शिष्य को लेकर चण्डी पहाड़ गया। कनखल और हरिद्वार के मध्य एक स्थान पर पहुँचकर देखा– गंगा के उस पार तक एक पुल है। लोग इस पुल को 'दाम' कहते हैं। अँग्रेज सरकार ने गंगा के ऊपर पत्थर के कुछ सुन्दर खम्बे तैयार करके उनके बीच लोहे के कपाट बैठा दिए हैं। वे लोग कपाट बन्द करके गंगा के पानी को 'दाम' से संलग्न एक विस्तृत नहर में निकाल देते हैं। नहर को परिपूर्ण करके जो थोड़ा पानी बचता है, वही गंगा के स्वाभाविक पथ से प्रवाहित

---

*एक फकीर पेड़ के नीचे बैठकर लोगों को उपदेश दिया करते थे। एक दिन उस पेड़ पर बैठे कौएँ ने उनके घुटने पर बीट कर दिया। फकीर ने कुछ क्षण ऊपर उसकी ओर ताका, फिर पानी से घुटने को धो लिया। उस रात भयंकर आँधी-तूफान से कौओं के घोंसले गिर पड़े और कई कौएँ मर भी गए। दूसरे दिन लोग कहने लगे– फकीर के ऊपर बीट करने के बाद उनके ताकने से ही कौओं की यह दशा हुई है। – अनुवादक

होता है। वह बहुत सामान्य 12-15 फीट चौड़ा एवं तीन-चार फीट ही गहरा होगा। गंगा की दुर्दशा देखकर मन में बड़ा कष्ट हुआ। मानो हृदय विदीर्ण हो गया हो। एक समय जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका था, ऋषियों की उस भविष्यवाणी का ध्यान आ गया– 'क्वचित् छिन्ना क्वचित् भिन्ना यदा सुरतरंगिनी। भविष्यति महाप्राज्ञे, तदैव प्रबला कलिः।' मेरी आँखें भर आईं, रोते-रोते माँ गंगा से कहा– पतितोद्धारिणी आनन्ददायिनी माँ! यदि भगवान् गुरुदेव मुझे कभी षड़ैश्वर्यशाली कर दें, तो सर्वप्रथम मैं उस शक्ति का प्रयोग तुम्हारे बन्धन को तोड़ने में करूँगा। जब तक वैसा नहीं होता, तब तक तुम्हारे बन्धन का भाला मेरे हृदय में विद्ध रहकर मुझको भयंकर यन्त्रणा देता रहे।

तपस्या का स्थान निश्चित

पुल पार करके वहाँ पहुँचकर देखा, चण्डी पहाड़ के रास्ते के बायीं ओर गंगा के ऊपर में एक सुन्दर आश्रम है। वहाँ पर विशाल वट के वृक्ष के नीचे एक पर्ण-कुटी है, उसमें एक साधु रहते हैं। साधु का नाम आत्मानन्द है, वे हम लोगों को बड़े आग्रह के साथ बुलाने लगे। हम वहाँ जाकर वट के वृक्ष के नीचे बैठ गए। स्थान का सौन्दर्य देखकर चकित रह गया। आश्रम के नीचे पश्चिम की ओर स्वच्छसलिला पतितपावनी गंगा कलकल ध्वनि करती हुई प्रवाहित हो रही है। गंगा के तट पर मायापुरी व हरिद्वार है, उसके बाद विल्वकतीर्थ का शोभायमान मनोरम विल्वकेश्वर पहाड़ है। उत्तर में गंगा का विस्तृत टापू है, उसके बाद हिमालय की पर्वतश्रेणी क्रम से आकाश को भेदकर ऊपर की ओर उठती गई हैं। पूर्व की ओर आश्रम के निकट ही गंगा की निर्मल नीलधारा है। उसके ऊपर नील सरस्वती के उद्गम-स्थल मनोहर नील पर्वत के ऊँचे-ऊँचे शिखर शोभायमान हैं। इसके सर्वोच्च शिखर पर श्रीचण्डी प्रतिष्ठित हैं। इसलिए लोग इसको चण्डी पहाड़ कहते हैं।

मेरे भागवत ग्रन्थ पर पहाड़ का जो चित्र बन गया था, इस स्थान से पहाड़ का दृश्य ठीक उसी प्रकार दिख रहा है। पहाड़ की मनोरम आकृति देखते-देखते ठाकुर का उज्ज्वल रूप जागृत हो उठा। कुछ क्षण के लिए दृष्टि स्थिर हो गई, मैं शान्त बैठा रहा। नाम-जप जीवन्त शक्ति के रूप में अपने-आप चलने लगा। बहुत समय तक उसमें मग्न रहा। फिर महन्त के शिष्य के साथ चण्डी पहाड़ गया। लौटते समय पुनः आश्रम होकर जाने के लिए आत्मानन्द ने हठपूर्वक हमसे कहा। मैंने उनकी बात स्वीकार कर ली। साधन-भजन के अनुकूल ऐसा एक भी स्थान इसके पहले मैंने कभी देखा नहीं– यह स्थान छोड़कर जाने में कष्ट होने लगा।

आश्रम से पहाड़ देखकर लग रहा था, पाँच-सात मिनट की दूरी में है; लेकिन चलते-चलते समझ गया, आधा कोस से कम नहीं है। हम चण्डी पहाड़ पर चढ़ने लगे। रास्ता बड़ा दुर्गम है। दोनों ओर घना जंगल है। सुना है, उसमें असंख्य हिंसक जीव-जन्तुओं का वास है। जगह-जगह संकीर्ण पथ से संलग्न भयंकर गहरे अन्धकारमय गड्ढे हैं। थोड़ा पैर फिसलने से ही किस गहरे तल में जाकर गिरेंगे, पता नहीं चलेगा। एक समय जिमनास्टिक का अच्छा अभ्यास था, इस कारण पहाड़ पर चढ़ने में कष्ट नहीं हुआ।

चण्डी पहाड़ के सर्वोच्च शिखर पर माँ चण्डी के मन्दिर के सामने पहुँचा। देखा, पहाड़ दर्शनार्थियों से परिपूर्ण है। माँ की पूजा करके कई लोग लौट रहे हैं। मैं भी माँ को साष्टांग प्रणाम करके आश्रम के लिए निकल पड़ा। उतरकर पहाड़ के निचले भाग में नर-मांस खाने वाले सिद्ध अघोरी कामराज का आश्रम देखा। आश्रम एकदम सुनसान है। पूरे पहाड़ में एक भी व्यक्ति का आवास नहीं है। बाघ-भालुओं से भरे इस महावन में अकेले वास करना कोई सहज बात नहीं है।

नीलधारा पार करके दामपाड़ आश्रम में पहुँचा। आत्मानन्द ब्रह्मचारी ने मेरे हरिद्वार आने के अभिप्राय से अवगत होकर मुझे इसी आश्रम में किसी भी स्थान पर कुटिया बनाकर रहने को कहा। चण्डी पहाड़ पर रहना सुविधाजनक नहीं है, वह भी उन्होंने समझा दिया। चण्डी पहाड़ में भजन-कुटी बनाकर रहना एकदम असम्भव है। चारों ओर नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं का वास है और वहाँ से भिक्षा करने में भी बहुत असुविधा है। लगभग डेढ़ कोस चलकर हरिद्वार या कनखल में भिक्षा करनी होगी। फिर वर्षा के समय नीलधारा पार करना भी सम्भव नहीं है। वर्षा के पहले ही तीन-चार महीने का आहार संग्रह करके रखना होगा। कोई संकट आ जाने पर बिल्कुल अन्धकार– एक मनुष्य या प्राणी भी दिखलाई नहीं पड़ेगा। आत्मानन्द की बात सुनकर लगा, इस स्थिति में चण्डी पहाड़ पर मेरा रहना असम्भव है। आत्मानन्द ने मुझसे कहा– 'भैया! तुम यहाँ रहकर निश्चिन्त होकर साधन-भजन करो। मैं भिक्षा करके तुमको खिलाऊँगा एवं सर्वदा तुम्हारी आवश्यकता की ओर दृष्टि रखूँगा।' मैं भी देख रहा हूँ– इस स्थान से मेरी कहीं जाने की इच्छा नहीं होती। भजन के अनुकूल ऐसा एक भी स्थान जीवन में कहीं देखा नहीं। सोचा– आते समय ठाकुर ने जो कहा, उससे ऐसा कुछ जान नहीं पड़ता कि चण्डी पहाड़ में ही मुझे रहना होगा; उन्होंने कहा था– **'ऐसा पहाड़ जहाँ देखोगे, वहीं आसन लगाना।'** चण्डी पहाड़ नाना स्थानों से नाना प्रकार का दिखता है, किन्तु यहाँ से पहाड़ का दृश्य भागवत के चित्र के अनुरूप है; अतएव लगता है, इस स्थान में ही रहना ठाकुर की इच्छा है।

आत्मानन्द अत्यन्त आग्रह के साथ मुझे इस आश्रम में अभी उनकी कुटिया

में ही रहने के लिए कहा। मैं उनकी बात में सहमत होकर रामप्रकाश महन्त के आश्रम के लिए निकल पडा। दामपाड़ में रहूँगा, सोचकर चित्त प्रफुल्लित हो उठा। सभी प्रकार से यह स्थान सुविधाजनक है। मैं संगी को साथ में लेकर रामप्रकाश महन्त के आश्रम में पहुँचा। महन्त मुझसे दामपाड़ और पहाड़ की सारी बातें सुनकर दामपाड़ में ही रहने के लिए कहा। सहज में शहर की सारी सुविधाएँ मिल जाएँगी, फिर साधन-भजन के लिए दामपाड़ के जैसा अत्यन्त निर्जन स्थान अन्य नहीं है। महन्त के अभिप्राय से अवगत होकर कल ही दामपाड़ जाने का निश्चय कर लिया।

भजन-कुटी तैयार

दामपाड़ में आए पाँच-छः दिन हो गए। एक कमरा तैयार करवाने के लिए आत्मानन्द की बड़ी खुशामद कर रहा हूँ, आत्मानन्द भी बहुत प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु मेरे भाग्य के दोष से मजदूर नहीं मिल रहे हैं। हरिद्वार या कनखल से कोई दामपाड़ आना नहीं चाहता। आत्मानन्द के कमरे में एक ओर आसन लगाया हूँ– कमरा बहुत छोटा, नाना वस्तुओं से परिपूर्ण है। निरन्तर तीव्र हवा और प्रचण्ड धूप के कारण बाहर बैठा नहीं जाता। बेल के पेड़ के नीचे बैठने में बड़ा आराम है; लेकिन चण्डी के दर्शनार्थी यातायात के समय दिन के लगभग 3 बजे तक झुँड-के-झुँड आ-आकर इस पेड़ के नीचे विश्राम करते हैं। आत्मानन्द उन लोगों की तम्बाकू व पानी देकर सेवा करते हैं। उन लोगों से भी दो-चार पैसे मिल जाने पर आत्मानन्द को बड़ी सुविधा हो जाती है; किन्तु मुझे बड़ी असुविधा होने लगी। नित्यकर्म बन्द होने से मेरे मन और शरीर में आराम नहीं है– बड़ी विरक्ति और यन्त्रणा होने लगी। शरीर धीरे-धीरे सुस्त हो गया।

सातवें दिन प्रातः नित्यकर्म का उपाय न कर पाने से इतना कष्ट हुआ कि ठाकुर को स्मरण करके रो पड़ा। कहा– 'गुरुदेव! अब लाचार होकर तुम्हारी ओर ताक रहा हूँ– कमरे की व्यवस्था नहीं करेंगे, तो यह कष्ट सहन नहीं कर पाऊँगा– ठाकुर! कमरे की व्यवस्था कर दो, नहीं तो मैं पुनः तुम्हारे ही पास आ जाऊँगा।' अपने प्रयास से कुछ नहीं होगा, स्पष्ट समझ गया। अद्भुत है गुरुदेव की दया! प्रातः शौच के बाद स्नान करके आश्रम में आकर देखा, कैनल के मैनेजर मजदूर लेकर आश्रम में आए हैं। आत्मानन्द ने बातों-बातों में एक दिन उनसे कहा था– 'एक ब्रह्मचारी को कमरे के अभाव से कष्ट हो रहा है– मजदूर नहीं मिल रहे हैं।' इस बात का स्मरण होने से मैनेजर बाबू आज पाँच मजदूर लेकर आए हैं। आत्मानन्द ने मजदूरों को मेरी इच्छानुसार कमरा बनाने के लिए नियुक्त कर दिया। आत्मानन्द की बड़ी इच्छा थी कि उनके कमरे के सामने ही अपना कमरा बनवाऊँ; किन्तु उससे साधन-भजन में बड़ा विघ्न होगा, सोचकर लगभग 225 फीट की दूरी

पर स्थान ठीक किया। एक पुराने घने शीशम के वृक्ष के नीचे कुटिया बनने लगी। आनन्द से चित्त प्रफुल्लित हो उठा।

कमरा दो-तीन दिन में ही बन गया। ठीक मेरी रुचि के अनुसार हुआ है। कुटिया छः फीट चौड़ी व आठ फीट लम्बी बनवाया हूँ। आसन पर बैठने से सामने हिमालय पर्वत, बायीं ओर कुछ ही दूरी पर गंगा और मायापुरी, दाहिनी ओर नीलधारा के ऊपर विशाल नीलगिरी है– समस्त ही देखने में बहुत मनोरम हैं। जिस ओर देखें, देखते ही रहने की इच्छा होती है। उत्तरमुख करके आसन लगाया; सामने हवन-कुण्ड बनाया गया है। आत्मानन्द से अनुमति लेकर भजन-कुटीर में प्रवेश किया एवं रूटीन (Routine) के अनुसार उत्साहपूर्वक साधना करने लगा।

भिक्षा में विपत्ति की आशंका– महामाया का खेल

दामपाड़ में आकर सात दिन आत्मानन्द की कुटिया में रहा। मेरे द्वारा भिक्षा करने की बात सुनकर उन्होंने बहुत दुःखी होकर कहा– 'भैया! वह नहीं होगा। जितने दिन मेरी कुटिया में रहोगे, मेरे लिए जो खाद्य जुटेगा तुम भी वही खाना; तुम्हारा कमरा बनने के बाद भिक्षा करके खाना। मैं आत्मानन्द के आश्रय में हूँ– इसलिए उनकी इच्छा के विरुद्ध जिद करना ठीक नहीं समझा। उन्होंने चार-पाँच गायें पाल रखी है, बहुत दूध होता है– वे प्रतिदिन मुझको आधा सेर दूध देने लगे।

प्रातःकाल स्नान करने के बाद अपनी कुटिया में आसन लगाकर बैठ गया। 3 बजे तक का समय साधना में बड़े आनन्दपूर्वक बिताया। भिक्षा में जाने के लिए तैयार होकर आत्मानन्द को बतलाने गया। उनके पास में कुछ संन्यासी बैठे थे। उन लोगों ने मुझसे कहा– 'हरिद्वार में बहुत-से सदावर्त और धर्मशालाएँ हैं। मध्याह्न में भोजन के समय जाने से दाल-रोटी मिल जाती है, पर कच्ची भिक्षा कोई नहीं देता, चलन नहीं है। गृहस्थ लोग कच्ची भिक्षा में दाल-आटा दिया करते हैं। अपराह्न में, असमय में आप कहाँ जाकर भिक्षा करेंगे?' मैंने गृहस्थों के घर से भिक्षा करने की बात कही, तो वे सभी सुनकर हँसने लगे एवं बोले– 'तब तो हो गया? अब आपकी जो इच्छा, कीजिए; पर गृहस्थों के घर भिक्षा करने कभी मत जाना।' मैंने कहा– क्यों? सभी स्थानों में तो लोग गृहस्थों के घर से भिक्षा लेते हैं? संन्यासियों ने कहा– 'वह हम जानते हैं। सभी स्थानों में तो यह मायापुरी नहीं है? यहाँ तो महामाया की विचित्र लीला है! ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी है, तो कभी इस वेश में गृहस्थ के घर मत जाना। महिलाएँ बड़ा उत्पात करती हैं। साधु-सज्जन, सिद्धपुरुष द्वारा पुत्र को जन्म देने से वह पुत्र सबल, स्वस्थ, सब विषय में गुणवान और दीर्घजीवी होगा– इधर कुछ महिलाओं का ऐसा विश्वास है, इसलिए वे लोग

साधु को देखते ही नाना प्रकार के प्रलोभन दिखलाकर घर के भीतर ले जाती हैं, पीछे रहकर कोई बाहर से दरवाजा बन्द कर देता है। फिर जिस प्रकार भी हो, साधु का सर्वनाश करती हैं।

मैं– गृहस्थों के घर में क्या उनके सिवा कोई लड़के-लड़कियाँ नहीं रहते? उन्हें क्या किसी से संकोच या भय नहीं होता? संन्यासियों ने कहा– 'मध्याह्न में भोजन के बाद पण्डे लोग घर में नहीं रहते, यात्रियों की खोज में निकल पड़ते हैं। फिर अपकर्म करने से संकोच या अपमान का भय रहता है। वे लोग तो कुप्रवृत्ति चरितार्थ करने के लिए कुछ नहीं करतीं। साधु-सज्जन द्वारा पुत्र का जन्म होने से वंश का उद्धार होगा– यही उन लोगों का संस्कार है। सद्‌बुद्धि से जो करे, उसमें फिर क्या डर? वरन् सफल होने पर वे गर्व करती हैं। थोड़ा भी संकोच अनुभव नहीं करतीं। इनका अस्वाभाविक आचार-व्यवहार है!

जयपुर के महाराज के गुरु वृद्ध ब्रह्मानन्द स्वामी ने कहा– निरुपद्रव में रह सकते हो, तो विपत्ति के स्थान में क्यों जाना? देखो, मैं छोटी आयु में उपनयन के बाद दण्ड लेकर निकल पड़ा, कुछ वर्ष नवद्वीप में रहकर संस्कृत पाठशाला में अध्ययन किया। फिर देश में भ्रमण करके कुछ वर्ष बिताया। 18 वर्ष की आयु के समय मैं हरिद्वार में आया। भगवान् की कृपा से उस समय मुझे गुरु मिल गए। एक निष्ठावान् महात्मा से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण करके मैंने 49 वर्ष की आयु तक का समय उनके आदेशानुसार सदाचार का पालन करके साधन-भजन में बिताया। प्रबल उत्साह से गुरु के साथ विविध स्थानों में रहकर अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने से मुझे अपने ऊपर अत्यधिक विश्वास हो गया। मैं स्वाधीन रूप से चलने का निश्चय करके गुरु का संग त्यागकर पुनः हरिद्वार आ गया। कुछ दिन तो मैं ठीक था। फिर भिक्षा के कार्य में स्त्रियों के सम्पर्क में आकर उनके प्रलोभन से मेरी बुद्धि लुप्त हो गई। 50 वर्ष की वृद्धावस्था में मैंने चिरकाल के लिए ब्रह्मचर्य-रत्न खो दिया। मेरा सर्वनाश हो गया। तीन-चार महीने तक मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि क्या कर रहा हूँ; फिर सब कुछ नष्ट हो जाने पर चेतना लौटी। तब कोई उपाय न देखकर गुरु के पास पहुँचा। गुरुदेव ने दया करके प्रायश्चित्त करवाकर मुझे संन्यास-व्रत दे दिया। इसीलिए कहता हूँ, स्त्रियों के प्रलोभन को साधारण नहीं समझना!' दण्डी स्वामी की बात सुनकर मैं चकित हो गया। सोचा– आत्मशक्ति के ऊपर भरोसा करके अहंकारपूर्वक गुरु का संग त्यागने का ही यह परि[illegible]। मैं दो कोस चलकर एक धर्मशाला से भिक्षा करके छिलके वाली उड़द दाल व आटा लेकर आश्रम आ गया। सोचा– एक मुट्ठी आटा एवं एक छटाक दाल के लिए इतना परिश्रम करना व इतना समय नष्ट करना सामान्य परीक्षा नहीं है।

स्थूल भिक्षा की आवश्यकता और आदेश

प्रतिदिन डेढ़-दो कोस आने-जाने का कष्ट सहकर एक मुट्ठी आटा संग्रह करने में बड़ी विरक्ति लगने लगी। साधुओं ने भी मुझसे कहा है– 'नित्य भिक्षा करके यहाँ पर रहना असम्भव है। गंगा का पानी बढ़ जाने से बाँध खोल देते हैं, तब यहाँ से कहीं भी आने-जाने का उपाय नहीं रहता। नित्य भिक्षा के लिए प्रतिदिन दो घण्टे बिताने से साधन-भजन में भी बड़ा विघ्न होगा।' साधुओं की बात मुझे ठीक ही लगी। मैंने ठाकुर को इस स्थान की सारी परिस्थिति लिखकर, स्थूल (एक साथ) भिक्षा करूँ या नहीं, यह जानना चाहा। ठाकुर ने पत्र के उत्तर में मुझे स्थूल भिक्षा करने की अनुमति दे दी। मैंने आनन्द के साथ एक दिन की भिक्षा में जितना संग्रह किया, उससे दो-तीन सप्ताह मेरा आराम से चल जाएगा। महन्तों ने मेरे होम के घी की भी व्यवस्था कर दी। भिक्षा में चावल नहीं मिलता; उड़द दाल, आटा, नमक, मिर्च ही मिलते हैं। प्रचण्ड धूप के उत्ताप से हरिद्वार, कनखल दिन के समय तपते हैं। कुछ दिनों तक नित्य भिक्षा करने के फलस्वरूप मेरा शरीर अस्वस्थ हो गया। भयंकर ज्वर से शय्यागत हो गया।

तन्द्रावस्था में प्रसाद की प्राप्ति: ज्वर से मुक्ति

मेरा ज्वर क्रमशः बढ़ने लगा। सिर की पीड़ा से मैं बेचैन हो गया। आत्मानन्द प्रातः उठकर गो-सेवा करते हैं। फिर 8 बजे भिक्षा के लिए जाते हैं। मध्याह्न में किसी-किसी दिन आश्रम आते हैं, अधिकांश समय ही वे बाहर रहते हैं। पूरे दामपाड़ के तट पर चण्डी के यात्री छोड़कर एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता। ज्वर की यन्त्रणा से छटपटाते हुए समय बिताने लगा। प्यास लगने पर पानी देने वाला भी कोई नहीं है। ऐसी निर्जन कुटिया में पड़े-पड़े ज्वर की पीड़ा से बीच-बीच में बेहोश होने लगा। सोचा, इस बार लगता है, प्राण गया! ठाकुर का स्मरण हुआ। व्याकुल मन से उनकी ओर ताकते हुए कहा– दयामय! मुझे तुम्हीं ने अपने हाथों से अभय कवच पहनाया था ना? अब मेरी दशा देखो! ठाकुर को अपने क्लेश से अवगत कराते ही मैं अचेत हो गया। मूर्च्छित अथवा तन्द्रावस्था में देखा– मैं ठाकुर के पास बैठा हूँ; बहुत प्यास लगी। अपने पास में कुछ अच्छे मुनक्के रखे हुए देखा। ठाकुर को देने की बड़ी इच्छा हुई! मुनक्के उठाकर ठाकुर के सामने रख दिया। ठाकुर सन्तुष्ट होकर सारा ग्रहण कर लिए, लेकिन केवल चार-पाँच ही खाए; अवशिष्ट सारा मुझको देकर उन्होंने कहा– **'ये लो, ये सब लेकर खा लो।'** मैंने योगजीवन को थोड़ा देकर, पूरा मुँह में डाल लिया। उत्कृष्ट मुनक्के खाते-खाते जाग गया। जागृत अवस्था में भी मुनक्का चबा रहा हूँ जानकर चकित हो गया।

मैं आसन से उठकर बैठ गया एवं थोड़ा पानी पिया। आश्चर्य की बात यह है कि मेरा शरीर अब पूर्णतः स्वस्थ अनुभव होने लगा। ज्वर से जो भयंकर यन्त्रणा पा रहा था, उसकी कल्पना भी नहीं कर पाया। शरीर अच्छा बलवान्, स्वस्थ, हल्का अनुभव होने लगा। मैं आसन पर बैठकर दिनचर्या के अनुसार काम करने लगा। यथासमय भिक्षा में प्राप्त उड़द की दाल और रोटी धूनी में बनाकर भोजन किया।

हरिद्वार में नित्यकर्म

साधन-कुटीर बहुत ही सुन्दर बनी है। उत्तरमुख करके आसन लगाया। दाहिनी, बायीं एवं सामने की ओर बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं, उसे खोल देने से कमरा अच्छा आलोकित हो जाता है। जहाँ भी देखते हैं, विशाल पर्वत-श्रेणियों की अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती है। फिर खिड़कियाँ बन्द कर देने से कमरे में एकदम अन्धकार हो जाता है। यह स्थान अच्छा ऊँचा है, सूर्य उदय से अस्त तक दिखाई देता है। स्थान का प्रभाव ऐसा अद्‌भुत है कि आसन पर बैठने से चित्त अपने-आप एकाग्र होने लगता है। ध्यान में ठाकुर की स्मृति धीरे-धीरे प्रगाढ़ हो जाया करती है। अविरल अश्रु वर्षण से परमानन्द में दिन कैसे बीत जाता है, बता नहीं सकता। भोजन करके आसन में ही बैठे रहने की इच्छा होती है, सोने की इच्छा नहीं होती। ठाकुर की असीम कृपा से इतना तन्मय रहता हूँ कि दिन-रात मानो एक नशे में बीत रहे हैं। ऐसा लगता है, ठाकुर ने मुझे चिरकाल के लिए यहाँ रख दिया है।

बहुत दिनों के अभ्यास के कारण रात्रि में 3 बजे ही नींद खुल जाती है। तब हाथ-मुँह धोकर आसन पर बैठता हूँ एवं धूनी जलाकर हवन किया करता हूँ। फिर प्राणायाम और नाम-जप में भोर तक का समय बिता देता हूँ। ब्रह्ममुहूर्त में आसन से उठकर नीलधारा के दूसरी ओर स्थित बेल के बगीचे में चला जाता हूँ। हजारों बेल के वृक्षों से स्थान परिपूर्ण है। वृक्षों के नीचे छोटे-छोटे बेल सब समय पड़े रहते हैं। शौच के बाद स्नान-तर्पण करके दो बेल लेकर कुटिया में आता हूँ। प्रातःकाल आत्मानन्द मुझको आधा सेर दूध दे जाते हैं; मैं उनको चाय पिलाता हूँ, स्वयं भी बड़ी तृप्तिपूर्वक चाय पीता हूँ। 10 बजे तक गायत्री-जप और न्यास सम्पन्न करके पाठ करता हूँ। 11 बजे आसन से उठकर लकड़ियाँ संग्रह, कमरा लीपना आदि बाहर के कार्य करता हूँ। 12 बजे स्नान-संध्या करके बेल खाया करता हूँ। फिर शान्त भाव से 3 बजे तक आसन पर बैठकर नाम-जप और ध्यान करता हूँ। उसके बाद भिक्षा करके संध्या के समय कुटिया में आता हूँ। धूनी की अग्नि पर एक छोटे लोटे में दाल चढ़ाता हूँ। केवल नमक, मिर्च डालकर पानी में उसे उबाल लिया करता हूँ। हाथ से दबाकर एक टिक्कड़ बनाकर उसे धूनी में सेंक लेता हूँ।

उसका ठाकुर को भोग लगाकर तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाता हूँ। नींद न आने तक आसन पर बैठकर नाम-जप करता हूँ। उसके बाद तीन घण्टे आराम से सोता हूँ।

मेरी प्रार्थना से ठाकुर का भयंकर भोग

मेरी रुचि के अनुसार कुटिया अच्छी बन गई है। सोचा, अब और कोई चिन्ता नहीं; अब देह-मन को तपाकर साधन-भजन, तपस्या करूँगा। किन्तु ठाकुर का क्या अभिप्राय है, समझ में नहीं आता। अचानक भयानक संकट आ पड़ा। उससे कमरे में रहना बिल्कुल असम्भव हो गया। प्रातःकाल में स्नान करने के बाद कुटिया में आकर देखा, विविध प्रकार के अनगिनत कीड़ों से कमरा भरा हुआ है। मुरमुरे के समान बड़े-बड़े अत्यन्त घिनौने कीड़े इतने परिमाण में कमरे में फैल गए कि दो-चार इंच भी जगह नहीं बची। कीड़े चारों ओर से आसन पर चढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। कई बार झाड़ू देकर भी इन कीड़ों को हटाया नहीं जा सका, आधे घण्टे की भीतर ही कमरा ज्यों का त्यों हो जाता, कीड़ों से वह भरने लगता। आसन पर बैठकर सारा दिन शरीर से कीड़े हटाते-हटाते बिताया। ऊपर से एक और अधिक यन्त्रणादायक उत्पात आरम्भ हो गया। अनगिनत मक्खियाँ एक झुँड में आकर आँख, कान, नाक, मुँह, सारे अंगों से टकरा-टकराकर भिनभिनाने लगीं। ये मक्खियाँ ऐसी भयानक हैं कि कपड़े से हटाने पर भी हटना नहीं चाहतीं। हटकर फिर तुरन्त शरीर पर भिनभिनाने लगतीं। अत्यन्त उद्विग्न होकर मैंने धूनी में लकड़ियाँ डाली! एवं दरवाजा-खिड़कियाँ बन्द करके कमरे में अन्धकार कर दिया; पर कोई लाभ नहीं हुआ, एक भी मक्खी नहीं हटी; वरन् धुएँ से दम घुटने लगा। ये कैसा भयंकर क्लेश है, व्यक्त नहीं किया जा सकता।

इन उत्पातों के बीच फिर एक बड़ी यन्त्रणादायक स्थिति उत्पन्न हो गई। आसन पर बैठते ही पता नहीं कोई एक अज्ञात शक्ति मेरे चित्त को भीतर की ओर खींचने लगी। मधुमय इष्ट-मन्त्र की स्मृति प्रगाढ़ होकर अपने-आप जाग उठी। इसके प्रभाव से मेरा शरीर अवश होने लगा। एकाग्र भाव से बैठे रहने की प्रबल इच्छा हुई, लेकिन उत्पाती मक्खियों और कीड़ों के उपद्रव से उद्विग्न होने लगा। 15-20 मिनट के अन्तर-अन्तर में कमरे के भीतर-बाहर होते-होते हैरान हो गया। दो दिन, दो रात इस असह्य यन्त्रणा का भोग करके मैं पागल के समान हो गया। तीसरे दिन अपराह्न में धैर्य नहीं रख पाने से मैं रो पड़ा एवं ठाकुर को स्मरण करके कहने लगा– गुरुदेव! अब मुझसे नहीं होगा, यह क्लेश मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। या तो तुम शीघ्र ही इस उत्पात को दूर करो, या फिर आशीर्वाद दो– तुम्हारी स्नेहपूर्ण दृष्टि को हृदय में रखकर इस संसार से सदा के लिए बिदा हो जाऊँ।

तुम अपने नाम में, अपने ध्यान में डुबाकर नहीं रखते, तो यह जीवन धारण करना मेरे लिए केवल नरक भोग है। ठाकुर दया करो! क्लेश से छुटकारा पाने के लिए इस प्रकार कितनी ही प्रार्थनाएँ करते-करते सो गया।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखकर जाग गया। देखा— गेण्डारिया आश्रम में पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर अपने आसन पर स्थिर बैठे हुए हैं। योगजीवन, कुंज घोष इत्यादि गुरुभाई लोग अपने में ही हँसी-मजाक कर रहे हैं; कोई भी ठाकुर की ओर नहीं देख रहा है। अनगिनत घिनौने कीड़े ठाकुर के शरीर में चढ़कर कुलबुला रहे हैं। झुँड-की-झुँड मक्खियाँ आकर ठाकुर के चारों ओर भिनभिनाकर आँख, कान, नाक, मुँह में बैठ रही हैं। ठाकुर शान्त एवं स्थिर बैठे हैं! मैं वह सब देखकर बारम्बार सिहर उठता। मैं एक पंखा लेकर हवा करने लगा, किन्तु उससे एक भी मक्खी उड़ी नहीं, एक भी कीड़ा हिला नहीं। कोई उपाय नहीं मिलने से मैं एक-एक करके कीड़ों को निकालने लगा— इसी समय जाग गया।

आसन से उठकर बेल के बगीचे में चला गया। शौच के बाद स्नान करके कुटिया में आकर देखा, पूरे कमरे में एक भी कीड़ा या मक्खी नहीं है। मैं चकित होकर कमरे में एवं बाहर कीड़े और मक्खियों को ढूँढ़ने लगा। आठ-दस कीड़ों को कमरे के एक स्थान पर अधमरी दशा में पड़े देखा। आसन में बैठकर सोचने लगा— ये क्या हुआ, इतने कीड़े, मक्खियाँ सब कहाँ गए? बार-बार स्मरण होने लगा कि कल जो प्रार्थना की थी, यह उसी का परिणाम है। ठाकुर ने मेरी प्रार्थना सुनी एवं मैं अपने भयंकर भोग को स्वयं भोगना नहीं चाहता— यह देखकर उन्होंने स्वयं ही उसे ग्रहण कर लिया एवं घिनौने कीड़ों व मक्खियों के उत्पात को स्थिर भाव से आसन पर बैठकर सह रहे हैं। इससे मेरा अन्तःकरण दग्ध हो उठा। सोचने लगा— हाय, मैंने क्या किया! सुशीतल गंगाजल में चन्दन के साथ तुलसी और सुगन्धित फूल डुबाकर जिनके चरणों में एक बार अर्पण करने से अनन्तकाल के प्रारब्ध पलभर में अन्तर्हित हो जाते हैं, अपने आराम के लिए उन दयालु ठाकुर के श्रीअंगों पर अपने भोगने योग्य घिनौने कीड़ों को छोड़ देने में थोड़ा भी संकोच नहीं किया! हाय, हाय क्या किया! ठाकुर ने मुझे धमकाकर कहा था— **'ब्रह्मचारी! सावधान, प्रार्थना करने से ही अब वह मंजूर हो जाएगी। सावधान रहना।'** मैं ठाकुर की उस बात का अर्थ तब समझा नहीं। अब क्या करूँ, मेरा अन्तःकरण दग्ध हुआ जा रहा है। मैंने रोते-रोते एकाग्र मन से ठाकुर को कहा— गुरुदेव, तुम्हारा वाक्य कभी असत्य नहीं हो सकता— तुम तो मेरी समस्त प्रार्थनाएँ ही स्वीकार करोगे। अब व्याकुल हृदय से श्रीचरणों में यह प्रार्थना कर रहा हूँ, 'मेरा भोग मुझे दे दो। मैं आनन्द के साथ उसे भोगूँगा। अब मेरे अन्तःकरण में प्रार्थना कभी उदित न हो, यह आशीर्वाद दो।' ठाकुर का सुन्दर मुखमण्डल कीड़ों-मक्खियों से भर गया है—

सोचकर सारा दिन मैंने रो-रोकर काटा। यह यातना कितनी भयंकर है, उसे भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। प्रार्थना से मुझे घृणा होने लगी। मैंने प्रतिज्ञा की कि अब जीवन में कभी प्रार्थना नहीं करूँगा। संध्या के समय अचानक ठाकुर की सहास्य स्नेहपूर्ण दृष्टि अन्तःकरण में उदित हो उठी। चित्त में उनके परम पवित्र सुन्दर मुखमण्डल की जैसे छाप पड गई। ठाकुर के इस अपूर्व दया के विषय में सोचते-सोचते मैं अवसन्न हो गया। जय गुरुदेव!

उच्छिष्ट मुख से भोजन देने से उच्छिष्ट ही देना हुआ

एक स्वप्न देखा– ठाकुर हमारे घर गए हैं। बड़े समारोह के साथ उनकी सेवा एवं भोग का आयोजन होने लगा। माँ खाना बनाने गई। ठाकुर के जलपान के लिए नाना प्रकार के उत्कृष्ट फल एक थाल में रख गई। देखा, मेरे लिए भी एक थाल में खाद्य वस्तुएँ रखी हैं। ठाकुर के लिए रखे फल-मिठाई आदि उन्हें देने हेतु ले गया। अपना थाल भी बायें हाथ में ले लिया। ठाकुर के भोजन-पात्र में उत्कृष्ट खाद्य देखकर मुझे लोभ हुआ। तभी उस पात्र से कुछ फल नीचे गिर पड़े। फलों को उठाकर अपने मुँह में डालने लगा एवं चबाते-चबाते ठाकुर का और अपना थाल लेकर जाने लगा। सोचा, ठाकुर के थाल से कुछ फल तो गिर गए, अतएव बायें हाथ में रखे अपने थाल का सब फल आदि ठाकुर को दे दूँगा और उनके थाल का मैं खा लूँगा। उसी समय माँ ने मुझको देखकर कहा– 'ये क्या! खाते-खाते ठाकुर के भोग की वस्तुएँ ले जा रहा है। वह सब तो जूठी हो गई।' मैंने माँ से कहा– मेरा मुख और दाहिना हाथ उच्छिष्ट है, बायाँ हाथ ठीक है। ठाकुर के फल गिर पड़े, इस कारण सोचा कि अपने फल आदि उनको दे दूँगा। माँ ने कहा– 'वैसा नहीं होगा। बायें हाथ में रखकर खाने की कोई भी वस्तु ठाकुर को नहीं देते। फिर जूठे मुख से खाद्य वस्तु ले जाने से उसका भोग नहीं लगता।' यह बात सुनकर मैं जाग गया।

स्वप्न में आज माताजी का उपदेश सुनकर बड़ा अच्छा लगा। माँ की बात सत्य है– ठाकुर की कही एक बात का स्मरण होने से यह स्पष्ट हो गया। योगजीवन एक दिन भोजन के बाद बिना आचमन किए ही एक गुरुभाई को बायें हाथ से खाने की वस्तु दे रहे थे। ठाकुर ने योगजीवन से कहा था– **'खाने के बाद उच्छिष्ट मुख से अन्य को खाना देने से उच्छिष्ट ही देना हुआ– सामान्य शिष्टाचार भी नहीं जानते; जूठे मुख से सखरी वस्तु नहीं देते।'**

साधना में योगमाया की कृपा

शरीर की अवस्था कुछ दिनों से क्रमशः बिगड़ती जा रही है। दिनो-दिन दुर्बलता का अनुभव हो रहा है। आत्मानन्द के साथ जो कुछ दिन भोजन किया; उसमें परिमाण का कोई नियम नहीं था, भरपेट भोजन होता था। लगभग आधा सेर दूध भी दोनों समय लिया। फिर भोजन की मात्रा कम करने गया तो देखा– उससे मेरी भूख नहीं मिटती। भात खाना यहाँ सम्भव नहीं है– खाने से शरीर में रस का संचार होता है, जिससे शौच नहीं होता; शरीर बड़ा अस्वस्थ हो जाता है। भिक्षा में साधारणतः चने का सत्तू मिलता है, एक दिन खा लें, तो चार-पाँच दिन कुछ खा नहीं पाते; पेट गड़बड़ा जाता है। शरीर अच्छा स्वस्थ, सबल रहने से एवं सब प्रकार के भोजन का अभ्यास रहने से ही नित्य भिक्षा करके देह की रक्षा करना यहाँ सम्भव है। जब तक शरीर अच्छा स्वस्थ नहीं होता, तब तक नियमानुसार आहार की सुव्यवस्था आवश्यक है; अन्यथा साधन-भजन तो दूर की बात रही– प्राण बचाना ही कठिन है। शरीर पीडित रहने से, शरीर में यन्त्रणा रहने से मन फिर कैसे अच्छा रहेगा? साधन-भजन करने की प्रबल इच्छा और व्याकुलता तो दिनो-दिन बढ़ रही है, पर शरीर दुर्बल रहने से वह कुछ भी नहीं हो पा रहा है। ठाकुर की कृपा से जिस दिन शरीर में कोई अस्वस्थता नहीं रहती, वह दिन साधन-भजन में प्रातःकाल से संध्या तक किस प्रकार बीतता है, समझ नहीं पाता। मानो आनन्द में ही मुग्ध रहता हूँ। ठाकुर को स्मरण करके कभी-कभी मेरी ऐसी अवस्था भी हुई है कि मैंने एकान्त में चिल्ला-चिल्लाकर रोते हुए समय बिताया। अविरल अश्रुधारा बहाते-बहाते सारा दिन बीता है। प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण, साधन-भजन के अनुकूल नाना स्थानों में बहुत प्रयत्न करके भी मैंने मन की जो एकाग्रता उत्पन्न नहीं कर पाई, यहाँ पर आसन में बैठते ही स्थान के असाधारण प्रभाव से वह अपने-आप ही हो गई। गुरुदेव को स्मरण करके नाम-जप आरम्भ करते ही बिना प्रयास के सारी इन्द्रिय-शक्ति अपने-आप ही अन्तर्मुखी हो जाती है। इस महातीर्थ में कहीं भी, किसी भी अवस्था में थोड़ा स्थिर बैठकर प्रयास करने से ही हृदय में गुणमयी योगमाया के असामान्य गुण की अनुभूति हुआ करती है। जय आनन्दमयी योगमाया! तुम्हारी असीम कृपा जो मुझ पर तेल की धार के समान लगातार बरस रही है, दया करके उसे बिन्दुमात्र अनुभव करने की अवस्था मुझे प्रदान करो। तुम्हारी कृपा से गुरुदेव की मनोहर लीला-दर्शन में सर्वदा मुग्ध रहूँ।

नाम-जप और ध्यान में परमानन्द का उपभोग

13 से 19 मई। भगवान् गुरुदेव की कृपा से मेरे साधन-भजन में विघ्नकारी बाहरी उपद्रवों का शीघ्र अन्त हो गया। निश्चिन्त होकर एकाग्रतापूर्वक साधन-भजन करने का ऐसा सुयोग जीवन में फिर मिलेगा या नहीं– सोचकर व्याकुल हो उठा। हाय! लगता है कि मेरा यह शुभ समय अधिक दिन नहीं रहेगा, मन में सर्वदा यही विचार आने लगा। मैं अविराम भगवद्ध्यान में दिन-रात बिताने का संकल्प करके साधन-भजन में लग गया। प्रातः यथासमय आसन से उठकर नीलधारा की ओर चला जाता; शौच के बाद स्नान-संध्यादि सम्पन्न करके कुटिया में प्रवेश करता हूँ। उसके बाद देह-कल्प की विधि के अनुसार दो-तीन त्रिदल विल्वपत्र थोड़ी चीनी एवं घी के साथ मिलाकर खाता हूँ और एक ग्लास ठण्डा पानी पीता हूँ। फिर धूनी जलाकर आसन पर बैठता हूँ। नित्य होम पूरा करके गायत्री-जप आरम्भ करता हूँ। 1296 बार जप करके, उसके दस भाग घी मिश्रित विल्ववत्र की प्रज्वलित अग्नि में आहुति देता हूँ; फिर न्यास आरम्भ करता हूँ। न्यास में डेढ़ घण्टे लग जाते हैं। 11 बजे तक का समय इसी प्रकार बिताता हूँ। उसके बाद आसन से उठकर कमरा स्वच्छ करके पानी लाता हूँ, लकड़ी संग्रह करता हूँ, फिर स्नान करता हूँ। 12 बजे पुनः आसन पर बैठता हूँ। साढ़े 5 बजे तक नाम-जप एवं ध्यान करता हूँ; इस समय दयालु ठाकुर मुझे किस भाव में रखते है, उसे व्यक्त नहीं कर सकता। हरिद्वार के पहाड़-जंगल, वृक्ष-लता समस्त ही मानो भगवत् भाव में मग्न हैं। महामाया की असीम शक्ति के प्रभाव से सब मानो अभिभूत हैं। जहाँ भी देखता हूँ, ठाकुर के मनोमुग्धकारी रूप की स्मृति प्रत्यक्षवत् प्रस्फुटित होकर मुझको बिल्कुल अभिभूत करके रखती है। दिन ढलने पर मुझे रोना आ जाता है– हाय! आज का यह आनन्द समाप्त हो गया!

तीव्र तपस्या से साधन-भजन बन्द

सुना है– शुभ-अशुभ, सुख-दुःखादि सभी अवस्थाएँ सदा परिवर्तनशील हैं। ठाकुर की कृपा अनुभूति की दुर्लभ अवस्था मेरे भाग्य में कब तक है, पता नहीं। किस दिन, किस समय, किस सूत्र के माध्यम से यह चली जाएगी, कोई ठीक नहीं। अतएव जब तक ठाकुर ने दया करके मुझे इस अवस्था में रखा है, मन लगाकर प्राणपण से साधन-भजन कर लेता हूँ। कहीं ऐसा न हो कि शुभ क्षण चला जाए, इस भय से दिन-रात एकाग्र मन से साधन-भजन करने लगा। योग-भूमि के असाधारण प्रभाव से मेरी तीव्र तपस्या की आकांक्षा दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। मैंने रीति के अनुसार कठोर व्रत आरम्भ कर दिया। प्रातः से संध्या तक एक चुल्लू

पानी भी ग्रहण न करके केवल एक बार भोजन करने लगा। इतने दिन तक कभी छिलके वाली उड़द दाल को उबालकर, तो कभी ज्ञात-अज्ञात वृक्ष-लता के कोमल नये ताजे पत्तों को नमक पानी में उबालकर एक छटाक आटे के साथ खाया। उससे शरीर अच्छा सबल, स्वस्थ हो गया था; मन के उत्साह, उद्यम, तेजस्विता एवं चित्त की प्रफुल्लता का सर्वदा उपभोग किया। अब मैं एक छटाक से भी कम आटा सानकर हथेली से दबाकर धूनी में डाल देता, राख के भीतर घुसाकर ऊपर अंगार रख देता। आधे घण्टे बाद निकालकर देखता, कचौड़ी के समान फूल गया। नमक और मिर्च के साथ उसे ठाकुर को भोग निवेदन करके मैं प्रसाद पाता हूँ। बहुत भूख लगने के कारण ही हो या ठाकुर की कृपा से हो, बड़ी तृप्ति के साथ उसे खाया करता हूँ। इतनी कठोरता करने पर भी मेरी तृष्णा नहीं मिट रही है।

कुछ दिन से मेरा शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया है। यथासमय आसन से उठकर शौचादि क्रिया और स्नान-संध्या सम्पन्न नहीं कर पाता। एक मिनट की दूरी पर स्थित गंगा से एक कलसी पानी लाने में हाँफने लगता। रास्ते में दो-तीन बार विश्राम करना पड़ता है। आसन पर अधिक समय तक नहीं बैठ पाता। बीच-बीच में लेट जाता हूँ; भूख से पेट जलता है। इधर शिथिलता भी इतनी अधिक है कि हाथ-पैर हिलाने में कष्ट होता है। चीखकर रोने की इच्छा होती है। ऐसी दशा में भी मेरी तपस्या की प्रवृत्ति, कठोरता की इच्छा कम नहीं हो रही है। ठाकुर ने कहा था– **'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।'** सब धर्म-कर्म के पहले शरीर का रक्षण है। शरीर अस्वस्थ रहने से 'आह, उँह' करके ही दिन-रात बिताना पड़ता है। दैहिक यन्त्रणा की किसी भी प्रकार से अवहेलना तो कर नहीं पाता; साधन-भजन कैसे करूँगा? सोचा था, सब प्रकार के रस का त्याग करके दैहिक विकार से मुक्ति पाऊँगा; किन्तु अब देख रहा हूँ, अत्यधिक हठकारिता से दुर्बल हो गया हूँ। साधु लोग मेरी दुर्दशा देखकर कहते हैं, 'जिससे शरीर अस्वस्थ होता है, नष्ट होता है, जान-बूझकर आप वैसा कर रहे हैं; यह तो आत्महत्या कर रहे हो।' अब मुझे खेद हो रहा है; शरीर में यदि कोई कष्ट नहीं रहता, तो दिन-रात ठाकुर के नाम में मग्न रहता। विपत्ति में पड़कर स्पष्ट समझ गया– जो लोग गुरु का आश्रय ग्रहण करके भी धर्म-प्राप्ति के लिए मनोमुखी होकर चलते हैं, उससे उनकी जो दशा होती है, वही मेरी हुई है। ठाकुर! दया करो। तुम्हारा आदेश पाए बिना, तुम्हारा अभिप्राय समझे बिना परम धर्म का अनुष्ठान भी जिससे मुझे अधर्म लगे। मैं दाल-सब्जी खाकर भूख मिटाऊँगा। थोड़ा दूध भी आत्मानन्द से मिल जाएगा। अपने शरीर को सबल, स्वस्थ, निरोग रखना ही अब मुझे श्रेष्ठ धर्म लग रहा है। कल से कठोरता त्यागकर ठाकुर के आदेशानुसार चलने का मैंने संकल्प किया।

स्वाभाविक आहार करने से ठाकुर की कृपा

20 से 26 मई। कल अपराह्न में 5 बजे के बाद भरपेट दाल-रोटी खाई थी। आज शौच ठीक हुआ। कुछ दिन से मल के साथ रक्त गिरता था, आज नहीं गिरा। हाथ-पैर के जोड़ों में जो वेदना थी, वह कम हुई। शरीर खूब हल्का लग रहा है। रूटीन (Routine) के अनुसार दिन बिताने में कोई कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। कल ठाकुर को दाल-रोटी निवेदन करते समय आँखों में आँसू आ गए; मैं रो पड़ा। ठाकुर से कहा– गुरुदेव, मैं अत्यन्त अयोग्य हूँ। तपस्या करना मेरा कार्य नहीं है। शरीर का कष्ट सहन नहीं कर पाने से आज मैं कठोरता की जलांजलि देता हूँ। दया करके तुम एक बार इस दाल-रोटी पर दृष्टिपात करो। तुम्हारा प्रसाद खा रहा हूँ, सोचकर सन्तुष्ट हो जाऊँ। ठाकुर का कुछ क्षण ध्यान करने के बाद आँख खोलकर देखा, आश्चर्यजनक घटना! दाल व रोटी के ऊपर सरसों के आकार की छोटी-छोटी ज्योतियों के सात-आठ खण्ड एक साथ जुड़कर झिलमिला रहे हैं। यह ज्योति नील छटायुक्त गहरे लाल रंग की प्रतीत होने लगी। जितने समय तक आहार किया, उज्ज्वल मनोरम सब ज्यातिर्बिन्दु मेरी आँखों के सामने छाए रहे। सात-आठ मिनट तक इस ज्योति का दर्शन करते हुए आनन्दपूर्वक भोजन किया। आज भी दिनभर चित्त अच्छा प्रफुल्लित रहा।

आज मध्याह्न में संध्या करते समय कुम्भक के साथ जब ध्यान कर रहा था, अचानक ललाट में एक ज्योति प्रकाशित हुई। कुछ ही समय के भीतर वह ज्योति सुन्दर उज्ज्वल हो उठी। इस ज्योति का वर्ण कुछ निश्चित नहीं कर पाया। लाल, नीला, हरा आदि कोई वर्ण नहीं है; ऐसा लगा, जैसे इन प्रत्येक वर्ण की उज्ज्वल कान्ति के परस्पर मेल से एक सुन्दर स्वतन्त्र ज्योति बन गई है। ज्योति-मण्डल के चारों ओर से शुभ्र-नील मिश्रित छटा सूर्य की किरण की भाँति विकीर्ण होकर नभोमण्डल में फैल रही है। ज्योतिर्बिन्दु के मध्य स्थल में नख के बराबर की एक उज्ज्वल चंचल ज्योति क्षण-क्षण में प्रकाशित होकर तुरन्त अदृश्य हो जाने लगी। यह चंचल ज्योति क्या है, उसकी आकृति कैसी है, कुछ निश्चित नहीं कर पाया। इन्द्रधनुष के सात वर्णों से भिन्न होने के कारण उसकी तुलना नहीं की जा सकती। ध्यान के विराम के साथ-साथ ही वह विलीन हो गई। यह ज्योति ऐसी सुन्दर, ऐसी मनोमुग्धकारी है कि शरीर, मन जितना ही अस्वस्थ और उद्विग्न क्यों न रहे, उसके दर्शन से ही चित्त प्रफुल्लित हो उठता है, बाह्य-स्मृति विलुप्त हो जाती है। दर्शन की इच्छा और व्याकुलता क्रमशः बढ़ने लगती है। ठाकुर से प्रार्थना किया– गुरुदेव! तुम्हारे असीम सौन्दर्य के भण्डार में यदि तुम्हारी अपेक्षा सुन्दर मनोहर कुछ रहे, तो वह जिससे कभी मेरे सामने प्रकट न हो– यह आशीर्वाद दीजिए।

मेरा दैनिक कर्म

कुछ दिन नियमानुसार आहार करने से मेरा शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ लगने लगा। मैं पुराने रूटीन के अनुसार चलने लगा। प्रातःक्रिया सम्पन्न करके आसन पर बैठता हूँ। गायत्री-जप करके नारायण को गंगाजल, तुलसी चढ़ाता हूँ। शालग्राम को तुलसी के 12 पत्ते चढ़ाने में मेरे लगभग दो घण्टे बीत जाते हैं। उसके बाद 11 बजे तक गीता, चण्डी व चैतन्य-चरितामृतादि का पाठ करता हूँ। 11 बजे आसन से उठकर कमरे को झाड़कर स्वच्छ करके गोबर से लीपता हूँ। फिर लकड़ियाँ संग्रह करके धूनी के पास लाकर रखता हूँ। तत्पश्चात् दाल चुनकर आधा लोटा पानी में भिगाकर रखता हूँ। आटा भी छानकर लगभग डेढ़ छटाक सानकर रख देता हूँ। फिर पूजा के बर्तन और कलसी लेकर गंगा-स्नान के लिए जाता हूँ। बर्तन माँजकर एवं स्नान करके एक कलसी पानी लेकर चला आता हूँ। 12 बजे आसन पर बैठकर मैं नारायण को बेल निवेदन करके प्रसाद पा लेता हूँ। फिर 5 बजे तक ठाकुर मुझको अपने नाम-ध्यान में किस प्रकार तन्मय रखते हैं, बता नहीं सकता। 5 बजे के बाद आत्मानन्द की कुटिया के पास वट के वृक्ष के नीचे बैठा करता हूँ। तब चण्डी-दर्शनार्थी अनेक साधु-संन्यासियों के साथ मिलकर एवं कथावार्ता में बड़ा आनन्द पाता हूँ। 6 बजे सने हुए आटे को हाथ से दबाकर टिक्कड़ बनाकर धूनी में जलते कुँदों के नीचे रखकर कुँदों के ऊपर दाल का लोटा रख देता हूँ। उसमें थोड़ा नमक-मिर्च डालकर गंगा में स्नान करने चला जाता हूँ। स्नान-संध्या सम्पन्न करके एक घण्टे में लौटता हूँ। सुपक्व टिक्कड़ व दाल ठाकुर को निवेदन करके तृप्तिपूर्वक प्रसाद पाता हूँ। रात 10 बजे तक सो जाता हूँ।

अकारण ज्वाला: नित्य-क्रिया से शान्ति

27 से 29 मई। रात्रि के अन्तिम प्रहर में होम के बाद नीलधारा में शौच-क्रिया सम्पन्न करके आसन पर आकर बैठ गया। आज शरीर अच्छा स्वस्थ लग रहा है। सोचा, अच्छे एकाग्र मन से साधन-भजन करके दिन परमानन्द से बिताऊँगा; लेकिन जैसे ही न्यास आरम्भ किया, देखा कि अन्तःकरण बिल्कुल सूना हो गया। लक्ष्य वस्तु का ही पता नहीं; बहुत प्रयास करके भी मन को एकाग्र नहीं कर पाया। कोई उपाय न देखकर मैंने शालग्राम की पूजा आरम्भ कर दी; लेकिन उसमें भी मन नहीं लगा। तब संक्षेप में पूजा समाप्त करके पाठ आरम्भ किया। पाठ करने में भी उदासीनता आने लगी। तब सब छोड़-छाड़कर बैठा रहा। सोचने लगा— आज ऐसा क्यों हुआ? बहुत अनुसन्धान करके भी समझ नहीं पाया। भीतर की ज्वाला धीरे-धीरे इतनी बढ़ गई कि आसन पर बैठ नहीं पाया। बारम्बार कमरे के

अन्दर-बाहर आवागमन करने लगा। माथा गरम हो गया, ठाकुर के ऊपर बड़ा क्रोध आने लगा। सोचा– अकारण ठाकुर मुझे दग्ध कर रहे हैं। यह ज्वाला मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। इस ज्वाला से छुटकारा पाने के लिए जो भी कार्य हो, मैं करूँगा। बाहर-भीतर मुझे सब सूना लगने लगा। मैं असह्य उद्वेग से बेचैन होकर आसन पर लेट गया। दो-तीन घण्टे तक छटपटाता रहा। ऐसा लगा, संसार में सत्-असत् ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके सहारे मैं क्षणभर भी आराम पा सकूँ। बहुत चिन्ता-कल्पना करने का भी प्रयास किया, लेकिन सब नीरस लगने लगा। फिर निश्चय किया, अच्छा लगे या बुरा, रूटीन के अनुसार कार्य करता जाऊँगा। आनन्द-निरानन्द के मालिक एक हैं; वे आनन्द नहीं देंगे, तो फिर कहाँ से पाऊँगा? मैं नियमानुसार समय से नित्यकर्म करने लगा। इस नित्य-क्रिया के साथ-साथ मन प्रफुल्लित हो उठा। फिर दिन अच्छे आराम से बीत गया। इतनी ज्वाला-यन्त्रणा, शुष्कता में भी देखा, मेरे प्रयास की प्रत्याशा न करके नाम-जप स्वतः चल रहा है– यही आश्चर्य है!

दण्डी स्वामी से त्रिसंध्या का उपदेश

हमारे आश्रम के ही किनारे से होकर चण्डी पहाड़ पर जाने का मार्ग है। अनेक गृहस्थ एवं संन्यासी यात्री इस आश्रम में विश्राम करने आते हैं। दो दिन से एक वृद्ध नैष्ठिक ब्रह्मचारी यहीं हैं। ये दण्डी स्वामी के नाम से इधर प्रसिद्ध हैं। ठाकुर ने मुझे संध्या एवं शालग्राम-पूजा पद्धति किसी से समझ लेने हेतु कहा था। इतने दिनों से मैं योग्य व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहा था। दण्डी स्वामी को देखकर, उनके साथ जान-पहचान करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। त्रिसंध्या एवं शालग्राम-पूजा के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे स्पष्ट रूप से वह सब समझा देंगे। आज लगभग 12 बजे निर्जन में बैठकर उनसे वह सब सीख लिया। उन्होंने कहा– 'त्रिकालीन संध्या करने के लिए ब्रह्मयज्ञादि करना निष्ठावानों का परम कर्त्तव्य है। ब्रह्मयज्ञ (ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का) पाठ करके सप्तर्षि न्यास करना चाहिए; फिर 24 तत्त्वों का न्यास करके संध्या समापन के बाद पुनः शान्तियज्ञ पाठ करना चाहिए, तभी संध्या-क्रिया विधि के अनुसार सुसम्पन्न होती है। संध्या के किसी अंश को संक्षेप में करने से उसका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता। रीति के अनुसार नित्य त्रिसंध्या करने से उसी में समस्त उपासना तत्त्व की उपलब्धि होने लगती है। ब्रह्मतेज प्राप्त करने के लिए संध्या ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है।' संध्या के समस्त क्रम व अंश और शालग्राम-पूजा पद्धति मैंने दण्डी स्वामी से सीख ली। आज मध्याह्न में अन्य कोई काम नहीं हुआ। 4 बजे हवन करके स्तवादि पाठ किया। चण्डी एवं गीता के पाँच-पाँच श्लोक पाठ करके, श्रीमद्भागवत को प्रणाम करके

रख दिया। लकड़ी संग्रह एवं भोजन का प्रबन्ध करके संध्या के समय स्नान किया। सायंकालीन संध्या व कीर्तन करने के बाद भोजन बनाकर ठाकुर को भोग लगाया। प्रसाद पाकर मैं बड़ा तृप्त हुआ।

वर्षा से भीगना: ठाकुर के ऊपर क्रोध

आज भयंकर वर्षा होने लगी। कुटिया पर छाए हुए फूस अभी जमे नहीं हैं। इसलिए जगह-जगह से पानी चूने लगा। झरने के समान पानी चूने से आसन-गृह भीग गया। सिर बचाने के लिए कोई स्थान न रहा। तब शालग्राम की ओर देखा, वे बड़े आराम से आसन पर बैठे हैं– मानो मेरी दुर्दशा देखकर हँस रहे हैं। शालग्राम के आसपास थोड़ा भी पानी नहीं है। देखकर मन में बड़ा क्षोभ आ गया। सोचा– जिनकी इच्छा मात्र से विश्व-ब्रह्माण्ड में सृष्टि-स्थिति-प्रलय हो जाता है, जिनकी इच्छा से यह भयंकर आँधी-तूफान समस्त उथल-पुथल कर दे रहा है, क्या वे अपनी इच्छा से इस वर्षा के पानी में भीगने से मुझे बचा नहीं सकते? असीम शक्तिशाली भगवान् पूर्ण रूप में यहाँ अवस्थान कर रहे हैं, पर मेरे दुःख के प्रति वे उदासीन हैं। मैंने शालग्राम को कहा– 'ठाकुर! स्वयं आराम से बैठे हो और मुझे भिगोकर मजा देख रहे हो! अच्छा, तुम शीघ्र इस आँधी-पानी को बन्द करो, नहीं तो फिर कुछ क्षण देखकर मैं तुमको बाहर पानी में रखकर तमाशा देखूँगा।' आसन में शान्त भाव से बैठकर मैं नाम-जप करने लगा। मन एकाग्र होने लगा। शरीर पर पानी गिरना बन्द हो गया। आँख खोलकर देखा, कमरे में कहीं भी पानी नहीं चू रहा है। लगातार मूसलधार पानी गिरने से लगता है कि नए छत के फूस ठीक से जम गए हैं, इसलिए पानी चूना बन्द हो गया। बाहर के घटना-क्रम को देखकर युक्ति-विचार द्वारा हम कुछ भी क्यों न समझें, चैतन्ययुक्त महाशक्ति ही प्रत्येक अणु-परमाणु को चालित, रक्षित एवं परिवर्धित कर रही है। मेरे ठाकुर ने मेरा दुःख देखकर मेरे आराम के लिए यह वर्षा बन्द कर दी– मैं यही मानता हूँ। यह आँधी पूर्वी बंगाल की 'काल वैशाखी' के समान थी।

ये क्या प्रलोभन है या ठाकुर की दया?

30–31 मई, मंगलवार–बुधवार। आज प्रातः न्यास एवं पूजा सम्पन्न करके आसन पर बैठा हूँ; तभी कनखल से एक धनी पण्डा आए। निःसन्तान होने के कारण उन्होंने कनखल और मायापुरी के बीच एक बड़े बगीचे में शिवजी की स्थापना करने के लिए मन्दिर बनाया है। उन्होंने हाथ जोड़कर बड़ी व्याकुलता के साथ मुझसे कहा– 'प्रभु, दया करके आप मेरे शिवालय में आकर रहें। आपकी समस्त

आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करके मैं दिन-रात आपकी सेवा में पड़ा रहूँगा। बगीचे, देवालय और विग्रह सेवा की उपयुक्त व्यवस्था करके सब आपको अर्पित कर दूँगा। आपको आहार आदि किसी भी आवश्यक वस्तुओं की भिक्षा नहीं करनी पड़ेगी। निश्चिन्त होकर आप वहाँ दिन-रात साधन-भजन करते हुए आनन्दपूर्वक रहना। मैं निःसन्तान हूँ; मेरा जो कुछ भी है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी को देकर निश्चिन्त होना चाहता हूँ। आप मुझे निराश न करें।'

पण्डाजी से मैंने कहा– मेरा घर-द्वार है; किसी अभाव से मैं साधु नहीं हुआ। भिक्षा मेरे व्रत का नियम है, इस कारण मैं भिक्षा करता हूँ। हमारे घर में अन्न है, दूसरे लोग भी खाते हैं। किसी मन्दिर में महन्तगिरि करने की मेरी इच्छा नहीं है। हरिद्वार और कनखल में मेरे रहने के लिए बहुत स्थान हैं। मैं एकान्त प्रेमी हूँ, इसलिए यहाँ आया हूँ। आप अन्य को देखें, मैं आसन उठाकर कहीं नहीं जाऊँगा। यहाँ गुरुदेव के आदेश से हूँ। पण्डाजी अनेक ऐश्वर्य की बातें कहकर एवं अच्छी सुविधा का अवसर दिखाकर भी जब मुझमें इच्छा जागृत नहीं कर पाए, तो निराश होकर धीरे-धीरे चले गए। सुना है, इस बगीचे में मन्दिर का मालिक बनने के लिए अनेक लोग प्रयास कर रहे हैं। यह क्या महामाया की परीक्षा है या ठाकुर की दया! गुरुदेव, दया करो! जिससे तुम्हारे हाथ की बनाई हुई वस्तु किसी के थोड़ा दबाने से टूट न जाए। मेरी क्या क्षमता है कि किसी प्रलोभन से अपनी रक्षा कर सकूँ!

मदिरापान करने वाले के पल्ले पड़ना: ज्योतिर्मय शालग्राम

आज आत्मानन्द के पास कुछ समय तक था। उन्होंने मुझको एक बोतल दिखलाकर कहा– 'भैया, तुम्हारे लिए यह अच्छा रस लाया हूँ। तुम थोड़ा पिओ।' मैं बोतल को हाथ में लेते ही मदिरा की गन्ध पाकर चकित हो गया। सोचा– आत्मानन्द मदिरा पीते हैं; मैं यदि कहूँ कि मैं यह नहीं पीता, तो वे लज्जित होंगे; उनके अभिमान में ठेस लगने से अनायास मुझे भगा देंगे। मैंने आत्मानन्द से कहा– हे भगवान्! तुम यह दुर्गन्धयुक्त रस पीते हो। क्या अच्छी मदिरा नहीं ला सकते? इसे पीने से मेरा दम ही निकल जाएगा। आत्मानन्द ने एक अन्य बोतल मुझको देकर कहा– 'यह बहुत अच्छी है। यह तुम्हारे लिए ही लाया हूँ। यह तुम्हें पीना ही पड़ेगा।' मैंने उसे हाथ में लेकर कहा– ये सब देशी मदिरा मैं कभी नहीं पीता, सहन नहीं होगी। तुम संकोच मत करो, ये सब जैसा पीते हो, आराम से पिओ। मदिरा की बोतल लौटा देने से आत्मानन्द दुःखी हो गए एवं उन्होंने मुझसे कहा– 'भैया, मदिरा तो पिओगे नहीं; अच्छा, ये दो कचौड़ी खा लो। मैं उसे लेकर अपने कमरे में आ गया एवं खाने के लिए सहमत होकर लाने के कारण उसे खा लिया।

कचौड़ी खाने के पाँच-सात मिनट के भीतर ही मेरा चित्त एकदम अशान्त हो उठा। मन बहुत चंचल हो गया। शरीर भी अस्वस्थ लगने लगा। मैंने फिर निश्चय किया, आज आसन का कोई कार्य नहीं करूँगा। पर संध्या करने की इच्छा हो या न हो, उसे करना ही होगा, सोचकर मैं हठपूर्वक आसन पर बैठकर संध्या करने लगा। संध्या करते-करते शालग्राम पर दृष्टि पड़ी। देखा– शालग्राम ज्यातिर्मय हो गया। मैं उसकी ओर देखते हुए संध्या करने लगा। अद्‌भुत है ठाकुर की कृपा! देखा, काले पत्थर के सर्वांग से श्वेत-नील मिश्रित उज्ज्वल ज्योति बाहर निकल रही है। उसे देखते-देखते चित्त प्रफुल्लित हो उठा। अवशिष्ट दिन बड़े आनन्द में बीता। कचौड़ी खाने से सिर में बहुत पीड़ा हो रही थी, होम करने के बाद कम हो गई। रात 8 बजे दाल-रोटी बनाकर ठाकुर को भोग दिया। प्रसाद पाने से शान्ति मिली।

शालग्राम की चोरी

यहाँ आकर बन्दरों का बड़ा उपद्रव भोग रहा हूँ। प्रायः प्रतिदिन ही बेड़े के खुले भाग से बन्दर कमरे में घुसकर कुछ-न-कुछ हानि कर जाते हैं। कल कुछ घी नष्ट करके गए। आज भी होम का पूरा घी नष्ट कर दिए। घी का अभाव होने से कनखल के एक समृद्ध पण्डे के पास एक साधु को भेजा था। कुछ क्षण बाद ही लौटकर साधु ने मुझसे कहा– 'मैं उस पण्डे के पास अब कभी नहीं जाऊँगा। उससे मेरा झगड़ा हो गया। आपके लिए उसने घी रखा है, पर उसे मेरे हाथ में नहीं देगा– इसीलिए झगड़ा हुआ। घी लेने के लिए उसने आपको ही बुलाया है। आप एक बार जाइए न! उसका घर तो दूर नहीं है। आपके लौटने तक मैं आश्रम में रहूँगा।' साधु की बात सुनकर मैं अपने कमरे में टट्टर बाँधकर कनखल गया। आत्मानन्द भी दण्डी स्वामी के साथ स्टेशन चले गए। दण्डी स्वामी आज नर्मदा की ओर जाएँगे। मैंने कनखल में पण्डे के साथ भेंट की। उन्होंने मेरे आने का उद्देश्य जानकर कहा– 'उस साधु ने आपसे झूठ कहा। मैंने घी के विषय में उससे कुछ नहीं कहा।' सुनकर मैं चकित हो गया। अपने आश्रम के लिए रवाना हो गया। आश्रम में मैंने जैसे ही प्रवेश किया, मुझे मानो कुछ विचित्र-सा अनुभव होने लगा। कुटिया के सामने जाकर देखा, टट्टर रस्सी से बँधा है, पर डण्डा नहीं लगा है। यह देखकर मुझे कुछ सन्देह हुआ। कमरे में जाकर देखा, कमरा ज्यों-का-त्यों है। सब सामान ठीक स्थान पर रखे हुए हैं, लेकिन फिर भी मुझे सूना-सूना लगा। मुझको बहुत प्यास लगी थी। ठाकुर को मिठाई का भोग लगाने की इच्छा हुई। मैं आसन पर बैठकर कुछ मिठाई और पानी शालग्राम के आसन के सामने रखा। निवेदन करते समय देखा, शालग्राम वहाँ नहीं है। मेरा तो मानो सिर चकरा गया।

चूहे या बन्दर ले जा सकते हैं, इस अनुमान से कुटिया में एवं बाहर अच्छे-से ढूँढ़ा। कहीं चिह्न तक नहीं मिला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा– शालग्राम का आसन भी नहीं है। काले मार्बल पत्थर का चार इंच घेरे का चौकोन सुन्दर सिंहासन चोरी हो गया। पूजा के कुछ बर्तन भी गए। गेरुआधारी नव-परिचित साधु की कोई खबर नहीं। शालग्राम लेने के उद्देश्य से ही उसने मुझे धोखा देकर घी लाने भेजा। हाय, हाय! अब मैं क्या करूँ? मेरे ही भयंकर दोष के कारण मेरे दोनों शालग्राम चोरी हो गए। चोर के ऊपर मुझे क्रोध नहीं आया। उसके दोष की अपेक्षा मेरा दोष अधिक है।

दण्डी स्वामी श्री ब्रह्मानन्द से शालग्राम की सब पूजा पद्धति जानने के बाद मेरे मन में शालग्राम की विधिवत् पूजा आरम्भ करने की इच्छा जागृत हुई थी; किन्तु उस समय मैंने सोचा, विधिवत् पूजा आरम्भ करने से इस शालग्राम को फिर मैं छोड़ नहीं सकूँगा। ठाकुर ने मुझसे कहा था– **'सुलक्षणयुक्त सुन्दर रूप वाले शालग्राम की पूजा करना।'** पर इस शालग्राम की आकृति मेरे लिए सन्तोषदायक नहीं थी। महात्मा के द्वारा हाथ पकड़कर दिया गया है, इस कारण ले आया था। रुचि के अनुसार एक सुन्दर शालग्राम की आकांक्षा जब मेरे भीतर विद्यमान है एवं ठाकुर ने भी जब मुझसे कहा है कि वैसे शालग्राम की व्यवस्था मेरे लिए हो जाएगी, तो फिर इस शालग्राम की विधिवत् प्रतिष्ठा करने की क्या आवश्यकता है? शालग्राम के प्रति मेरा इस प्रकार अनादर का भाव होने के कारण ही लगता है शालग्राम मुझे छोड़कर चले गए। शालग्राम खोकर छटपटाते हुए दिन बिताया। अब शालग्राम के अभाव में किसकी पूजा करूँगा, सोचकर बड़ा कष्ट होने लगा। ठाकुर क्या करेंगे, वे ही जानते हैं। शालग्राम के जाने से मेरा हृदय सूना हो गया। जैसे भी हो एक शालग्राम संग्रह करना ही होगा। कल शालग्राम की खोज में बाहर निकलने का निश्चय किया। हरिद्वार एवं कनखल में बहुत-से ब्राह्मण और पण्डे 'गुणी भैया' कहकर मेरी बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति करते हैं; उन्हीं के पास जाकर पूछूँगा।

—: 0 :—

(तृतीय भाग समाप्त)

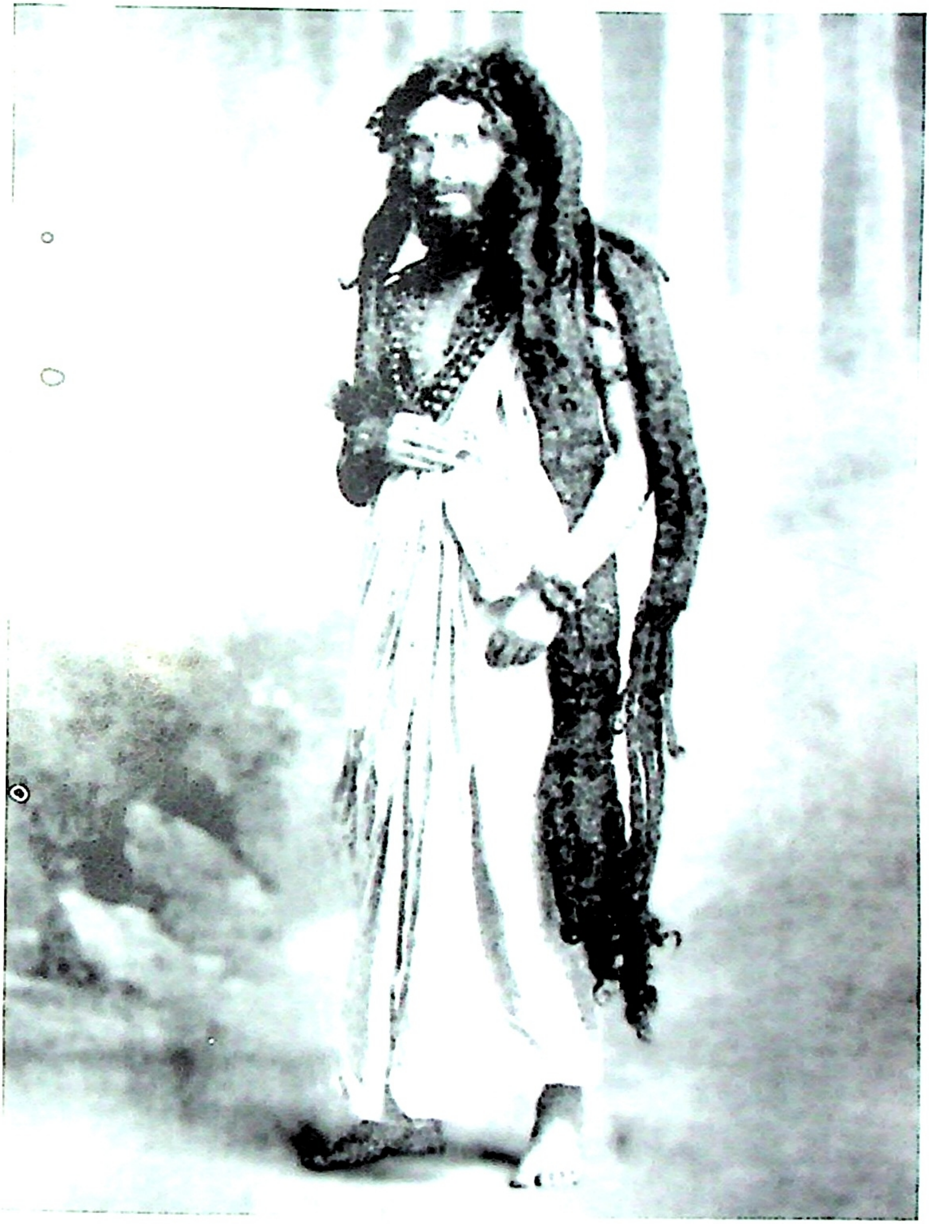

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

- "ब्रह्मचारी की कठोर तपस्या, अविराम नाम–साधना, भगवत् निर्भरता देखकर हम लोग प्रेरित होते थे। उनका तेजःपूर्ण सुन्दर रूप देखकर सभी मुग्ध हो जाते थे। जीवन में कभी भी उनके मुख से असत्य कथन नहीं सुना। उन्होंने परनिन्दा–परचर्चा को कभी प्रश्रय नहीं दिया; वरन् सबके गुणों के सम्बन्ध में बातें करके निन्दाकारी को भी उससे निवृत्त कर देते थे। विपथगामी गुरुभ्राताओं को सहृदयता के साथ श्रीगुरु संग का सुयोग देते थे, जिससे वे लोग श्रीगुरु के पुण्य प्रभाव से सुपथ पर आ सकें।"

– श्री किरणचन्द्र दरवेश

- "हमने बीस बरस कठोर योग–साधना करके जो प्राप्त किया है, ब्रह्मचारी को तो गोस्वामीजी की कृपा से केवल नाम–साधना द्वारा ही सब कुछ प्राप्त हो गया है। बड़ा भाग्यवान है।"

– बाबा गम्भीरनाथ जी

- "जिस प्रकार से अपने आपको सेवा में लगा रखे हो, यह व्यर्थ नहीं होगा; जीवन सार्थक हो जाएगा। गुरुशक्ति अदृश्य रूप से तुम्हारे भीतर संचारित हो रही है। जीवन मधुमय हो जाएगा।"
- "ब्रह्मचारी से अभी अनेक कार्य करवाने हैं।"
- "मेरा कोई ऐसा कार्य है, जो कि इस शरीर में रहते हुए नहीं हो पाएगा। यथासमय वह कार्य आरम्भ होगा।"

– श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी